TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

OUP—881—5-8-74—15,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/C 49V Accession No. H.303

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

वैशाली की नगरवधू

(बुद्धकालीन इतिहास रस का मौलिक उपन्यास)

पूर्वार्द्ध

आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक :

श्री चन्द्रसेन : मंत्री

चतुरसेन साहित्य समिति

ज्ञानधाम, शाहदरा, दिल्ली-३२

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्

'वैशाली की नगरवधू' का रचनाकाल—१९३९-१९४७
'नगरवधू' के रचनाकाल में ग्रन्थकार की आयु—४८-५६ वां वर्ष
'नगरवधू' का प्रथम प्रकाशन—१९४८
'नगरवधू' का प्रस्तुत संस्करण—पाँचवाँ, नवम्बर १९६३

P.G. H 3024
West Bengal State Library
College of Arts & Commerce, C. U.

संशोधित और सम्पूर्ण संस्करण

मूल्य ६) प्रति खण्ड

अशोका प्रिन्टर्स, हाथरस में मुद्रित।

स्नेह भेंट

श्रीजवाहरलाल नेहरू को

ओ ब्राह्मण,

तेरे राज्य में शत-प्रतिशत असुविधाओं और विपरीत परिस्थितियों में जी कर हमने यह ग्रन्थ तैयार किया है। तू, जो पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर अपने आसपास के कूड़े कर्कट का भार लाद, उतावली में देश को घसीटे चला, और मानव संस्कृति के निर्माता तथा कोटि २ जनपद के शास्ता साहित्यजनों को रंगरूटों की भी भूल बैठा, इस से तुझ पर निर्भर रहने वालों और तुझे प्यार करने वालों को सिर धुन धुन कर अपने ही काषाय रक्त में आचूड़ स्नान करना पड़ा। तो भी वे तुझे प्यार करते हैं। किन्तु, मैं रोषान्वित हूँ— क्योंकि मैंने उन सब से अधिक तुझे प्यार किया है। इसलिए— कि तू मेरी दृष्टि के पूर्वापि भू रत्नों पर रंगमात्र जीवित सर्वश्रेष्ठ पुरुष है अब मैं अपने सात्विक रोष और हार्दिक प्यार की स्मृति में यह अपनी प्रतिनिधि रचना तुझे भेंट करता हूँ।

श्री विजया दशमी
सं. २००५

चतुरसेन

प्रवचन

अपने जीवन के पूर्वान्ह में—सन् १९०९ में, जब भाग्य रुपयों से भरी थैलियां मेरे हाथों में पकड़ाना चाहता था—मैंने कलम पकड़ी। इस बात को आज ४० वर्ष बीत रहे हैं। इस बीच मैंने छोटी-बड़ी लगभग ८४ पुस्तकें विविध विषयों पर लिखीं, अथच दस हजार से अधिक पृष्ठ विविध सामयिक पत्रिकाओं में लिखे। इस साहित्य-साधना से मैंने पाया कुछ भी नहीं, खोया बहुत कुछ। कहना चाहिए सब कुछ, धन, वैभव, आराम और शान्ति। इतना ही नहीं, यौवन और सम्मान भी। इतना मूल्य चुका कर निरन्तर चालीस वर्षों की अर्जित अपनी सम्पूर्ण साहित्य-सम्पदा को मैं आज प्रसन्नता से रद करता हूँ; और यह घोषणा करता हूँ—कि आज मैं अपनी यह पहिली कृति विनयाञ्जलि सहित आपकी भट कर रहा हूँ।

यह सत्य है कि यह उपन्यास है। परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि यह एक गम्भीर रहस्यपूर्ण संकेत है। जो उस काले पर्दे के प्रति है, जिसकी ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय सहस्राब्दियों से छिपी हुई है, जिसे सम्भवतः किसी इतिहासकार ने आंख उघाड़ कर देखा नहीं है।

मैंने जो चालीस वर्षों में तन-मन-धन से साधित अपनी अमूल्य साहित्य-सम्पदा को प्रसन्नता से रद करके इस रचना को अपनी पहिली कृति घोषित किया है; सो यह इस रचना के प्रति मात्र मेरी व्यक्तिगत निष्ठा है, परन्तु इस रचना पर गर्व करने का मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं केवल आपसे एक यह अनुरोध करता हूँ; कि इस रचना को पढ़ते समय उपन्यास के कथानक से पृथक् किसी निगूढ़ तत्त्व को ढूंढ़ निकालने में आप सजग रहें। सम्भव है, आपको वह सत्य मिल जाय; जिसकी खोज में मुझे आर्य, बौद्ध, जैन और हिन्दुओं के साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन दस वर्ष करना पड़ा है।

ज्ञानधाम
दिल्ली-शाहदरा
१-१-४९

चतुरसेन

जन्म : २६ अगस्त १८९१ मृत्यु : २ फरवरी १९६०

(आचार्य जी का यह चित्र १९४५ के आरम्भ काल का है)

प्रवेश

१

मुजफ्फरपुर से पश्चिम की ओर, जो पक्की सड़क जाती है—उस पर, मुजफ्फरपुर से लगभग अठारह मील दूर "वैसौढ़" नामक एक बिल्कुल छोटा सा गांव है। उसमें अब तीस-चालीस घर भूमिहार ब्राह्मणों के—और कुछ गिनती के घर क्षत्रियों के बच रहे हैं। गांव के चारों ओर कोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियां ढेर की ढेर मिलती हैं, जो इस बात की याद दिलाती हैं कि कभी यहां कोई बड़ा भारी समृद्ध नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में वहां, अब से कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व एक विशाल नगर बसा था। आजकल जिसे गण्डक कहते हैं, उन दिनों उसका नाम 'मिही' था। आज यह नदी यद्यपि इस गांव से कई कोस उत्तर की ओर हटकर बह रही है; किन्तु उन दिनों यह दक्षिण की ओर इस वैभवशालिनी नगरी के चरणों को चूमती हुई दिघिवारा के निकट गंगा में मिल गई थी। इस विशाल नगरी का नाम वैशाली था। यह नगरी अति समृद्ध थी। उस में ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियां थीं। धन-जन से परिपूर्ण यह नगरी तब अपनी शोभा की समता नहीं रखती थी।

यह लिच्छवियों के वज्जी संघ की राजधानी थी। विदेह राज्य टूट कर यह वज्जी संघ बना था। इस संघ में विदेह, लिच्छवि, क्षात्रिक, वज्जी, उग्र, भोज, एक्ष्वाकु और कौरव ये आठ कुल सम्मिलित थे, जो अष्टकुल कहलाते थे। इसमें प्रथम चार प्रधान थे। विदेहों की राजधानी

मिथिला, लिच्छवियों की वैशाली, क्षात्रियों की कुण्डपुर और कोल्लाग थी। वैशाली पूरे संघ की राजधानी थी। अष्टकुल के संयुक्त लिच्छवियों का यह संघ व्रात्यसंकरों का संघ था और इनका यह गणतन्त्र पूर्वी भारत में तब एकमात्र आदर्श और सामर्थ्यवान् संघ था, जो प्रतापी मगध साम्राज्य की उस समय की सबसे बड़ी राजनैतिक और सामरिक बाधा थी।

नगरी के चारों ओर काठ का तिहरा कोट था, जिसमें स्थान-स्थान पर गोपुर और प्रवेशद्वार बने हुए थे। गोपुर बहुत ऊँचे थे और उन पर खड़े होकर मीलों तक देखा जा सकता था। प्रहरीगण हाथों में पीतल के तूर्ण ले इन्हीं पर खड़े पहरा दिया करते थे। आवश्यकता होते ही वे उन्हें बजाकर नगर को सावधान कर देते और प्रतिहार तुरन्त नगर-रक्षकों को संकेत कर देते। इसके बाद आनन-फानन सैनिक हलचल नगर के प्रकोष्ठों में दीखने लगती थी। सहस्रों भीमकाय योद्धा लोह वर्म पहिने, शस्त्रसज्जित, धनुष-बाण लिए, खड्ग चमकाते, चंचल घोड़ों को दौड़ाते प्राचीर के बाहरी भाग में आ जुटते थे।

बज्जी संघ का शासन एक राज-परिषद् करती थी, जिसका चुनाव हर सातवें वर्ष उसी अष्टकुल में से होता था। निर्वाचित सदस्य परिषद् में एकत्र होकर वज्जि चैत्यों, वज्जि संस्थाओं और राज्य-व्यवस्था का पालन करते थे। शिल्पियों और सेट्ठियों के नगर में पृथक् संघ थे। शिल्पियों के संघ श्रेणी कहाते थे, और प्रत्येक श्रेणी का संचालन उसका जेट्ठक करता था। जल, थल और अट्टवी के नियामकों की श्रेणियां पृथक् थीं। नगर में श्रेणियों के कार्यालय और निवास पृथक्-पृथक् थे। बाहरी वस्तुओं का क्रय-विक्रय भी पृथक्-पृथक् हट्टियों में हुआ करता था। परन्तु श्रेणियों का माल अन्तरायण में बिकता था। सेट्ठियों के संघ निगम कहाते थे। सब निगमों का प्रधान नगरसेट्ठि कहाता था। और उसकी पदमर्यादा राजनैतिक और औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती थी।

वत्स, कोसल, काशी और मगध साम्राज्य के घिरा रहने, तथा श्रावस्ती से राजगृह के मार्ग पर अवस्थित रहने के कारण यह स्वतन्त्र नागरिकों का नगर उन दिनों व्यापारिक और राजनैतिक संघर्षों का केन्द्र बना हुआ था। देश-देश के व्यापारी, जौहरी, शिल्पकार और यात्री लोगों से यह नगर सदा परिपूर्ण रहता था। 'श्रेष्ठिचत्त्वर', जो यहां का प्रधान बाजार था, में जौहरियों की बड़ी-बड़ी कोठियां थीं, जिनकी व्यापारिक शाखाएं समस्त उत्तराखण्ड से दक्षिणापथ तक फैली हुई थीं। सुदूर पतित्थान से माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी, और साकेत होकर पहाड़ की तराई के रास्ते सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम और भण्डग्राम के मार्ग से बड़े-बड़े सार्थवाह वैशाली से व्यापार सम्बन्ध स्थापित किए हुए थे। पूर्व से पच्छिम का रास्ता नदियों द्वारा था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। वैशाली से मिथिला के रास्ते गान्धार को, राजगृह के रास्ते सौवीर को, तथा भरुकच्छ के रास्ते बर्मा को और पतित्थान के रास्ते बैबिलोन तथा चीन तक भी भारी-भारी सार्थवाह जल और थल पर चलते रहते थे। ताम्रपर्णी, स्वर्णद्वीप, यवद्वीप आदि सुदूर पूर्व के द्वीपों का यातायात चम्पा होकर था।

श्रेष्ठिचत्त्वर में बड़े-बड़े दूकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए, पान की गिलौरियां कल्लों में दबाए, हंस-हंस कर ग्राहकों से लेन-देन करते थे। जौहरी पन्ना, लाल, मूंगा, मोती, पुखराज, हीरा और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों को सान पर चढ़ाते, स्वर्णाभरणों को रंगीन रत्नों से जड़ते और रेशम की डोरी में मोती गूंथते थे। गन्धी लोग केसर के थैले हिलाते, चन्दन के तेल में गन्ध मिलाकर इत्र बनाते थे, जिनका नागरिक खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दूकानों पर बैबिलोन और फारस के व्यापारी लम्बे-लम्बे लबादे पहिने भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलियाँ संकरी और तंग थीं, और

उनमें गगनचुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी थीं, जिनके अन्धेरे और विशाल तहखानों में इन धनकुबेरों की अतुल सम्पदा और स्वर्णरत्न भरे पड़े रहते थे।

संध्या के समय सुन्दर वाहनों, रथों, घोड़ों, हाथियों और पालकियों पर नागरिक नगर के बाहर सैर करने राजपथ पर आ निकलते थे। इधर-उधर हाथी झूमते बढ़ा करते थे और उनके अधिपति रत्नाभरणों से सज्जित अपने दासों तथा शरीर-रक्षकों से घिरे चला करते थे।

२

दिन निकलने में अभी देर थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड़ रही थी। उसमें वैशाली के राजप्रासादों के स्वर्ण-कलशों की धूमिल स्वर्ण-कान्ति बड़ी प्रभावोत्पादक दीख पड़ रही थी। मार्ग में अभी अंधेरा था। राजप्रासाद के मुख्य तोरण पर अभी प्रकाश जल रहा था। पार्श्व के रक्षागृहों में प्रहरी और प्रतिहार पड़े सो रहे थे। तोरण के बीचों बीच एक दीर्घकाय मनुष्य भाले पर टेक दिए ऊंघ रहा था।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजकर्मचारी और नागरिक इधर-उधर आने जाने लगे। किसी-किसी हर्म्य से मृदुल तंतुवाद्य की झंकार के साथ किसी आरोह-अवरोह की कोमल तान सुनाई पड़ने लगी। प्रतिहारों का एक नया दल तोरण पर आ पहुँचा। उसके नायक ने आगे बढ़कर भाले के सहारे खड़े ऊँघते मनुष्य को पुकारकर कहा—'सावन्त महानामन्, सावधान हो जाओ और घर जाकर विश्राम करो।' महानामन् ने सजग होकर अपने दीर्घकाय शरीर को और भी विस्तार करके एक जोर की अंगड़ाई ली और 'तुम्हारा कल्याण हो नायक,' कह कर वह अपना भाला पृथ्वी पर टेकता हुआ तृतीय तोरण की ओर बढ़ गया।

सप्तभूमि राजप्रासाद के पच्छिम की ओर प्रासाद का उपवन था, जिसकी देखरेख नायक महानामन् के ही सुपुर्द थी। यहीं वह अपनी

प्रौढ़ा पत्नी के साथ ३८ वर्ष से अकेला एकरस आंधी-पानी, सर्दी-गर्मी में रहकर गण की सेवा करता था।

अभी भी वह नींद में ऊंघता हुआ झूम-झूम कर चला जा रहा था। अभी प्रभात का प्रकाश धूमिल था। उसने आगे बढ़कर, आम्रकुञ्ज में एक आम्रवृक्ष के नीचे, एक श्वेत वस्तु पड़ी रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्र में लिपटा हुआ अपना अंगूठा चूस रहा है। आश्चर्यचकित होकर महानामन् ने शिशु को उठा लिया। देखा—कन्या है। उसने कन्या को उठाकर हृदय से लगाया और अपनी स्त्री को वह कन्या देकर कहा--देखो, आज इस प्रकार हमारे जीवन की एक पुरानी साध मिटी।

और वह उसी आम्रकानन में उस एकाकी दम्पति की आंखों के आगे शशिकिरण की भांति बढ़ने लगी। उसका नाम रखा गया 'आम्रपाली', उसी आम्रवृक्ष की स्मृति में, जहाँ से उसे पाया गया था।

३

ग्यारह बरस बाद। वैशाली के उत्तर-पश्चिम पचीस-तीस कोस पर अवस्थित एक छोटे से ग्राम में एक वृद्ध अपने घर के द्वार पर प्रातःकाल के समय दतौन कर रहा था। पैरों की आहट सुनकर उसने पीछे की ओर देखा। चम्पक पुष्प की कली के समान ग्यारह वर्ष की एक अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुंघराले बाल हवा में लहरा रहे थे, दौड़ती हुई बाहर आई, और वृद्ध को देखकर उससे लिपटने के लिए लपकी, किन्तु पैर फिसलने से गिर गई। गिरकर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक, दौड़कर बालिका को उठाया, उसकी धूल झाड़ी और हृदय से लगा लिया। बालिका ने रोते-रोते कहा--'बाबा, देखा है तुमने रोहण का वह कंचुक ? वह कहता है तेरे पास नहीं है ऐसा। वैशाली की सभी लड़कियाँ वैसा ही कंचुक पहनती हैं, मैं भी वैसा ही कंचुक लूंगी बाबा !'

वृद्ध की आँखों में पानी और होठों में हास्य आया। उसने कहा—

'अच्छा, अच्छा, मैं तुझे वैशाली से वैसा ही कंचुक मंगा दूंगा बेटी।'

'पर बाबा, तुम्हारे पास दम्म कहां हैं ? वैसा बढ़िया चमकीला कंचुक छै दम्म में आता है, जानते हो ?'

'हाँ, हाँ, जानता हूँ।'

वृद्ध की भृकुटी कुंचित हुई और ललाट पर चिन्ता की रेखा पड़ गई। वृद्ध की पत्नी को मरे आठ साल बीत चुके थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख सावन्त महानामन् राजसेवा त्यागकर अपने ग्राम में आ कन्या की सेवा-शुश्रूषा में अबाध रूप से लगे रहते थे। अम्बपाली को उन्होंने इस भाँति पाला था जैसे पक्षी चुग्गा देकर अपने शिशु को पालता है। अब उसकी छोटी सी कमाई की क्षुद्र पूँजी यत्न से खर्च करने पर भी समाप्त हो गई थी। यहाँ तक कि पत्नी की स्मृतिरूप जो दो-चार आभरण थे, वे भी एक-एक करके उसकी उदर-गुहा में पहुंच चुके थे! अब आज जैसे उसने देखा--उसके प्राणों की पुतली यह बालिका जीवन में आगे बढ़ रही है, उसकी अभिलाषाएँ जाग्रत् हो रही हैं और भी जाग्रत् होंगी। यही सोचकर वृद्ध महानामन् चिन्तित हो उठे। किन्तु उन्होंने हंसकर तड़ातड़ तीन चार चुम्बन बालिका के लिए और गोद से उतारकर कहा—'वैसा ही बढ़िया कंचुक ला दूंगा बेटी।'

बालिका खुश होकर तितली की भाँति घर में भाग गई और वृद्ध की आंखों से दो-तीन बून्द गर्म आँसू टपक पड़े। वे चिन्तित भाव से बैठकर सोचने लगे—एक बार फिर वैशाली चलकर पुरानी नौकरी की याचना की जाय। वृद्ध का बाहुबल थक चुका था किन्तु क्या किया जाय ? कन्या का विचार सर्वोपरि था। परन्तु वृद्ध के चिन्तित होने का केवल यही कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा में बल था—बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी—बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। सहस्राधिक बालिकाएँ भी क्या उस पारिजात-कुसुमतुल्य कुन्द कलिका के समान हो सकती थीं ? किस पुष्प में इतनी गन्ध, कोमलता और सौंदर्य था ? उन्हें भय था कि वज्जियों के उस विचित्र कानून के अनुसार

उनकी कन्या विवाह से वंचित करके कहीं 'नगरवधू' न बना दी जाय। वज्जी गणतन्त्र में यह विचित्र कानून था—कि उस गणराज्य में जो कन्या सर्वाधिक सुन्दरी होती थी, वह किसी एक पुरुष की पत्नी न होकर 'नगरवधू' घोषित की जाती थी और उस पर सम्पूर्ण नागरिकों का समान अधिकार रहता था। उसे 'जनपद-कल्याणी' की उपाधि प्राप्त होती थी। कन्या के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर वृद्ध महानामन् वास्तव में इसी भय से राजधानी छोड़कर भागे थे, जिससे किसी की दृष्टि बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था। महानामन् ने एक बार फिर वैशाली जाने का निर्णय किया।

४

फागुन बीत रहा था। वैशाली में सन्ध्या के दीपे जल गए थे। नागरिक और राजपुरुष अपने-अपने वाहनों पर सवार घरों को लौट रहे थे। रंगबिरंगे वस्त्र पहिने बहुत से स्त्री पुरुष इधर से उधर आ-जा रहे थे। धीरे-धीरे यह चहल-पहल कम होने लगी और राजपथ पर अन्धकार बढ़ चला। नगर के दक्षिण प्रान्त भाग में मद्य की एक दूकान थी। दूकान में दीया जल रहा था। उसके धीमे और पीले प्रकाश में बड़े-बड़े मद्यपात्र कांपते से प्रतीत हो रहे थे। बूढ़ा दूकानदार बैठा ऊंघ रहा था। सड़कें अभी से सूनी हो चली थी। अब कुछ असमृद्ध लोग ही इधर-उधर आ-जा रहे थे। जिनमें मल्लुए, कसाई, माझी, नाई, कम्मकार आदि थे। वास्तव में इधर उन्हीं की बस्ती अधिक थी।

वृद्ध महानामन् बालिका की उंगली पकड़ दूकान के आगे आ खड़े हुए। वे बहुत थक गए थे और बालिका उनसे भी बहुत अधिक। महानामन् ने थकित किन्तु स्नेहभरे स्वर में कहा-'अन्त में हम आ पहुंचे, बेटी।'

'क्या यही नगर है बाबा ? कहां, वैसे कंचुक यहां कहां बिकते हैं ?'

'यह उपनगर है, नगर और आगे है। परन्तु आज रात हम यहीं कहीं विश्राम करेंगे। अब हमें चलना नहीं होगा। तुम तनिक यहीं बैठो, बेटी।'

यह कहकर वृद्ध महानामन् और आगे बढ़कर दूकान के सामने आ

गए। महानामन् का कण्ठस्वर सुनकर बूढ़ा दूकानदार ऊंघ से चौंक उठा था, अब उसने उन्हें सामने खड़ा देखकर कहा—

'हाँ, हाँ, मेरी दूकान में सब कुछ है, क्या चाहिये ? कैसा पान करोगे ? दाक्खां, लाजा, गौड़, माध्वीक, मैरेय ?' फिर उसने घूरकर वृद्ध महानामन् को अंधकार में देखा और उसे एक दीन भिक्षुक समझ कर कहा—'किन्तु मित्र, मैं उधार नहीं बेचता। दम्म या कपाहण पास हों तो निकालो।' वृद्ध महानामन् ने एक कदम आगे बढ़कर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो नागरिक, परन्तु मुझे पान नहीं, आश्रय चाहिये। मेरे साथ मेरी बेटी है, हमलोग दूर से चले आ रहे हैं, यहां कहीं निकट में विश्राम मिलेगा ? मैं शुल्क दे सकूंगा।'

बूढ़े दूकानदार ने सन्देह से महानामन् को देखते हुए कहा-'शुल्क, तुम दे सकते हो, सो तो है। परन्तु भाई तुम हो कौन ? जानते हो, वैशाली में बड़े-बड़े ठग और चोर दस्यु नागरिक का वेश बनाकर आते हैं। वैशाली की सम्पदा ही ऐसी है भाई, मैं यही सब देखते-देखते बूढ़ा हुआ हूँ।'

वह और भी कुछ कहना चाहता था। परन्तु इसी समय दो तरुण बातें करते-करते उसकी दूकान पर आ खड़े हुए। बूढ़े ने सावधान होकर दीपक के धुंधले प्रकाश में देखा दोनों राजवर्गी पुरुष हैं, उनके वस्त्र और शस्त्र अंधेरे में भी चमक रहे थे।

बूढ़े ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'श्रीमानों को क्या चाहिए ? गौड़ीय, माध्वीक, दाक्खा·····।'

'अरे पहिले दस्यु की बात कह ! कहाँ हैं दस्यु, बोल ?' आगन्तुक में से एक तरुण ने अपना खड्ग हिलाते हुये कहा।

बूढ़े की घिग्घी बँध गई। उसने हाथ जोड़कर कहा—'दस्यु की बात कुछ नहीं श्रीमान्, यह बूढ़ा ग्रामीण कहीं से आकर रात भर के लिए विश्राम खोजता है। मुझे भय है, नहीं नहीं श्रीमान्, मैं कभी भय नहीं करता, किसी से भी नहीं। परन्तु मुझे सन्देह हुआ—कौन जाने कौन है यह। महाराज, आप तो देखते ही हैं कि वैशाली का महावैभव यहाँ

बड़े-बड़े दस्युओं को खींच लाता है·····।'

'बक-बक मत कर बूढ़े।' उसी तरुण ने खड्ग चमकाते हुए कहा—'उन सब दस्युओं को मैं आज ही पकड़ूंगा। ला माध्वीक दे।'

दोनों आगन्तुक अब आसनों पर बैठ गए। बूढ़ा चुपचाप मद्य ढालने लगा। अब आगन्तुकों ने महानामन् की ओर देखा, जो अभी भी चुपचाप अँधेरे में खड़े थे। अम्बपाली थककर घुटनों पर सिर रखकर सो गई थी। दीपक की पीत प्रभा उसके पीले मुख पर खेलती हुई काली अलकावलियों पर पड़ रही थी।

तरुण आगन्तुक ने महानामन् को सिर से पैर तक देखा और फिर अम्बपाली पर जाकर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। उसने वृद्ध महानामन् से कहा—'बूढ़े, कहाँ से आ रहे हो?'

'दूर से।'

'साथ में यह कौन है?'

'मेरी बेटी है।'

'बेटी ही है? कहीं से उड़ा तो नहीं लाए हो? यहाँ वैशाली में ऐसी सुन्दर लड़कियों के खूब दाम उठते हैं। कहो बेचोगे?'

वृद्ध महानामन् बोले नहीं। क्रोध से उनके नथुने फूल उठे और होठ सम्पुटित हो गए। वह निश्चल खड़े रहे।

कहने वाले ने यह सब नहीं देखा। उसके होठों में एक हास्य नाच रहा था। दूसरा साथी माध्वीक पी रहा था। पात्र खाली करके अब वह बोला। उसने हँसकर साथी से कहा—'क्यों? ब्याह करोगे?'

दूसरा ठहाका मारकर हँसा। 'नहीं, नहीं, मुझे एक दासी की आवश्यकता है। छोटी सी एक सुन्दर दासी।' वह फिर महानामन् की ओर घूमा। महानामन् धीरे-धीरे वस्त्र के नीचे से खड्ग खींच रहा था। देखकर आगन्तुक चौंका।

वृद्ध महानामन् ने शिष्टाचार से सिर झुकाया। उसने कहा—'नायक, तुम्हारे इस राजपरिच्छद का मैं अभिवादन करता हूँ। तुम्हें मैं पहिचानता

नहीं, तुम कदाचित् मेरे किसी मित्र के पुत्र, पौत्र अथवा नाती होगे। अब से ११ वर्ष पूर्व मैं भी एक सेना का नायक था। यही राजपरिच्छद जो तुम पहिने हो, मैं पूरे बयालीस साल तक पहन चुका हूँ। उसकी मर्यादा मैं जानता हूँ और मैं चाहता हूँ कि तुम भी जानो। इसके लिए मुझे तुम्हारे प्रस्ताव का उत्तर इस खड्ग से देने की आवश्यकता हो गई, जो अब पुराना हो गया है और इन हाथों का अभ्यास और शक्ति भी नष्ट हो गई है। परन्तु कोई हानि नहीं। आयुष्मान्! तुम खड्ग निकालो और तनिक कष्ट उठाकर आगे बढ़कर उधर मैदान में आ जाओ। यहाँ लड़की थककर सो गई है, ऐसा न हो, शस्त्रों की झनकार से वह जग जाय।'

तरुण मद्यपात्र हाथ में ले चुका था। अब वृद्ध महानागन् की यह अतर्कित वाणी सुन उसने हाथ का मद्यपात्र फेंक खड्ग निकाल लिया और उछलकर आगे बढ़ा।

तरुण का दूसरा साथी कुछ प्रौढ़ था। उसने हाथ के संकेत से साथी को रोककर आगे बढ़कर बूढ़े से कहा—'आप यदि कभी वैशाली की राजसेना में नायक रह चुके हैं तो आपको नायक चन्द्रमणि का भी स्मरण होगा?'

'चन्द्रमणि! निस्सन्देह, वे मेरे परम सुहृद् थे। नायक चन्द्रमणि क्या अभी हैं?' महानामन् ने दो कदम आगे बढ़कर कहा।

'हैं, यह तरुण उन्हीं का पुत्र है, आपका नाम क्या है भन्ते?'

महानामन् ने खड्ग कोष में रख लिया। कहा—'मेरा नाम महानामन् है। यदि यह आयुष्मान् मित्रवर चन्द्रमणि का पुत्र है तो अवश्य ही इसका नाम हर्षदेव है।' युवक ने धीरे से अपना खड्ग वृद्ध के पैरों में रखकर कहा—'मैं हर्षदेव ही हूँ, भन्ते, मैं आपका अभिवादन करता हूँ।'

वृद्ध ने तरुण को छाती से लगाकर कहा—'अरे पुत्र मैंने तो तुझे अपने घुटनों पर बैठाकर खिलाया है। आह, आज मैं बड़भागी सिद्ध हुआ। नायक के दर्शन हो सकेंगे तो?'

'अवश्य, पर अब वे हिल-डोल नहीं सकते। पक्षाघात से पीड़ित हैं। भन्ते, किन्तु आप मुझे क्षमा दीजिए।'

'इसकी कुछ चिन्ता न करो आयुष्मान्! तो, मैं कल प्रातःकाल मित्र चन्द्रमणि से मिलने आऊँगा।'

'कल ? नहीं, नहीं, अभी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, आप थके हुए हैं और वह बालिका·····कैसी लज्जा की बात है। भन्ते, मैंने गुरुतर अपराध·····।' वृद्ध ने हंसते-हंसते युवक को फिर छाती से लगाकर उसका क्षोभ दूर किया और कहा—'वह मेरी कन्या अम्बपाली है।'

'मैं समझ गया भन्ते, पितृचरण ने बहुत बार आपके विषय में चर्चा की है। चलिए अब घर, रात्रि आप यों राजपथ पर न व्यतीत करने पाएँगे।'

महानामन् ने और विरोध नहीं किया। बालिका को जगाकर दोनों तरुणों के साथ उन्होंने धीरे-धीरे नगर में प्रवेश किया।

१ : : धिक्कृत-कानून

उस दिन वैशाली में बड़ी उत्तेजना फैली थी। सूर्योदय के साथ ही ठठ के ठठ नागरिक संथागार की ओर जा रहे थे। संथागार की ओर जाने वाला राजमार्ग मनुष्यों से भरा हुआ था। पैदल, अश्वारोही, रथ और पालकी पर सवार सभी प्रकार के पुरुष थे। उनमें नगरसेट्ठि, श्रेणिक और सामन्तपुत्र भी थे। संथागार का प्रांगण विविध वाहनों, मनुष्यों और उनके कोलाहल से परिपूर्ण था। बहुत से नागरिक और सेट्ठिपुत्र संथागार की स्वच्छ संगमर्मर की सीढ़ियों पर बैठे थे। बहुत से खुले मैदान में अपने अपने वाहनों को थामे उत्सुकता से भवन की ओर देख रहे थे। अनेक सामन्तपुत्र अपने-अपने शस्त्र चमका कर और भाले ऊँचे करके चिल्ला-चिल्ला कर उत्तेजना प्रकट कर रहे थे। वहाँ उस समय सर्वत्र अव्यवस्था फैली हुई थी और लोग आपस में मनमानी बातें कर रहे थे। उनके बीच से होते हुए गणसदस्य अपने-अपने वाहनों से उतर चुपचाप गम्भीर मूर्ति धारण किए सभाभवन में जा रहे थे। दण्डधर आगे-आगे उनके लिए रास्ता करते और द्वारपाल पुकारकर उनका नाम लेकर उनका आगमन सूचित कर रहे थे।

संथागार का सभामण्डप मत्स्य देश के उज्ज्वल श्वेत मरमर का बना था और उसका फर्श चिकने और प्रतिबिम्बित काले पत्थर का बना था। उसकी छत एक सौ आठ खम्भों पर आधारित थी। ये खम्भे भी काले पत्थर के बने थे। सभाभवन के चारों ओर भीतर की तरफ नौ सौ निन्यानवे हाथी दाँत की चौकियाँ रखी थीं, जिन पर अपनी-अपनी

नियुक्ति के अनुसार आठों कुल के सभ्यगण आ-आकर चुपचाप बैठ रहे थे। भवन के बीचोंबीच सुन्दर चित्रित हरे रंग के पत्थर की एक वेदी थी जिस पर दो बहुमूल्य स्वर्ण खचित चाँदी की चौकियाँ रखी थी। एक पर गणपति सुनन्द बैठते थे और दूसरी पर महाबलाधिकृत सुमन। ये दोनों ही आसन अभी खाली थे। गणपति और महाबलाधिकृत अभी संथागार में नहीं आए थे। वेदी के ऊपर सोने के दण्डों पर चंदवा तना था, जिस पर अद्भुत् चित्रकारी हो रही थी और बीच में रंगीन पताकाएँ फहरा रही थीं। वेदी के तीन ओर सीढ़ियाँ थीं और सीढ़ियों के निकट वृद्ध कर्णिक गण-सन्निपात की तमाम कार्यवाही लिखने को तैयार बैठे थे। उन्हीं के लिए छन्दशलाकाग्राहक हाथ में लाल काली छन्दशलाकाओं से भरी टोकरियाँ लिए चुपचाप खड़े थे। अधेड़ अवस्था के कर्मचारी परिषद् की सब व्यवस्था देखभाल रहे थे, तथा विनयधरों को आवश्यक आदेश दे रहे थे। उनके आदेश पर विनयधर इधर-उधर दौड़कर आदेश पालन कर रहे थे।

गणपति और महाबलाधिकृत भी आकर अपने आसन पर बैठ गए। प्रतिहार ने सन्निपात के कार्यारम्भ की सूचना तूर्य बजा कर दी।

संथागार के बाहर खड़ी भीड़ में और भी क्षोभ फैल गया। सब के मुँह उत्तेजना से लाल हो गये। प्रत्येक व्यक्ति की आँखें चमकने लगीं। संथागार के अलिन्द में सामन्तपुत्रों और सेट्ठिपुत्रों के झुण्ड के झुण्ड जमा हो गए। सामन्तपुत्र अपने-अपने भाले और खड्ग चमका-चमकाकर मनमाना बकने और शोर करने लगे। सेट्ठिपुत्रों का सदा का हास्यपूर्ण और निश्चिन्त मुख भी आज रौद्र मूर्ति धारण कर रहा था। वैशाली का जनपद, अन्तरायण, हट्ट और श्रेष्ठिचत्वर सब बन्द थे। भीतर गणपति और गण चिन्तित भाव से बैठे किसी अयाचित घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे। वातावरण अत्यन्त अशांत, उत्तेजित और उद्वेगपूर्ण था।

एकाएक रथ का गम्भीर घोष सुनकर कोलाहल थम गया। जो

जहाँ था, चित्रलिखित सा खड़ा रह गया। सब उन्मुख हो परिषद्-प्रांगण की ओर बढ़ते हुए रथ की ओर देखने लगे। रथ पर श्वेत कौशेय मढ़ा था और श्वेत पताका स्वर्णकलश पर फहरा रही थी। रथ धीर मन्थर गति से अपनी सहस्र स्वर्णघण्टिकाओं का घोष करता हुआ संथागार के प्रांगण में आ खड़ा हुआ। लोगों ने कौतूहल से देखा—एक भव्य प्रशान्त भद्र वृद्ध पुरुष रथ से उतर रहे हैं। उनका स्वच्छ श्वेत परिधान और लम्बी श्वेत दाढ़ी हवा में फहरा रही थी। कमर में एक लम्बा खड्ग लटक रहा था जिसकी मूठ और कोष पर रत्न जड़े थे। वृद्ध के मस्तक पर श्वेत उष्णीष था, जिस पर एक बड़ा हीरा धक् धक् चमक रहा था। वे एक तरुण के कन्धे पर सहारा लिए धीर भाव से संथागार की सीढ़ियां चढ़ने लगे। लोगों ने आप ही उन्हें मार्ग दे दिया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया।

परन्तु शान्त वातावरण क्षण भर बाद ही क्षुब्ध हो उठा। पहिले धीरे-धीरे, फिर बड़े वेग से जनरव उठा। एक उद्धत युवक साहस करके अपना भाला सीढ़ियों में टेककर भद्र वृद्ध के सम्मुख अड़कर खड़ा हो गया। उसके नथुने क्रोध से फूल रहे थे और मुख पर समस्त शरीर का रक्त एकत्रित हो रहा था। उसने दाँत पीसकर कहा—'तो भन्ते महानामन्, आप एकाकी ही आए हैं ? देवी अम्बपाली नहीं आईं ?'

तुरन्त दस बीस फिर शत सहस्र सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र, श्रेणिक और नागरिक चीत्कार कर उठे—'यह हमारा, हम सबका वैशाली के गण-विधान का, कानून का, घोर अपमान है, हम इसे सहन नहीं करेंगे।'

शत सहस्र सामन्तपुत्र अपने भाले ऊंचे उठा-उठा कर और खड्ग चमका चमकाकर चिल्ला उठे—'हम रक्त की नदी बहा देंगे, परन्तु कानून की अवज्ञा नहीं होने देंगे।' भद्र नागरिकों ने विद्रोही मुद्रा से कहा-'यह सरासर कानून की अवहेलना है। यह गुरुतर अपराध है। कानून की मर्यादा का पालन होना ही चाहिए। प्रत्येक मूल्य पर।'

शत सहस्र कण्ठों ने चिल्लाकर कहा—'किसी भी मूल्य पर।'

वृद्ध महानामन् का मुख क्षण भर के लिये पत्थर के समान भाव-हीन और सफेद हो गया। उनका सीधा लम्बा शरीर जैसे तनकर और भी लम्बा हो गया। उन्मुक्त वायु में उनके श्वेत वस्त्र और श्वेत दाढ़ी लहरा रही थी और उष्णीष पर बंधा हीरा धक् धक् चमक रहा था। उनकी गति रुकी, वे तनिक विचलित हुए और उनके कमर में बंधा खड्ग खड़खड़ा उठा। उनका हाथ खड्ग की मूंठ पर गया।

किसी अतर्कित शक्ति से युवक सहमकर पीछे हट गया और वृद्ध महानामन् उसी धीर मन्थर गति से सीढ़ियाँ चढ़ संथागार के भीतर जाकर वेदी के सम्मुख खड़े हो गए।

एक बार संथागार में सर्वत्र सन्नाटा छा गया। एक सूई के गिरने का भी शब्द होता।

गणपति सुनन्द ने कहा—'भन्तेगण सुनें, आज जिस गुरुतर कार्य के लिए अष्टकुल का गण-सन्निपात हुआ है, वह आप सब जानते हैं। मैं आप सबसे प्रार्थना करूँगा कि आप सब शान्ति और व्यवस्था भंग न करें और उत्तेजित न हों। ऐसा होगा तो हमें सन्निपात भंग करने को विवश होना पड़ेगा। अब सब से पहिले मैं आयुष्मान् गणपूरक से यह जानना चाहता हूँ कि आज सन्निपात में कितने सदस्य उप-स्थित हैं ?

गणपूरक ने उत्तर दिया—'कुल नौ सौ दो है।'

'भन्ते गण, वज्जी के प्रत्येक गण को आज के सन्निपात की सूचना दे दी गई थी और अब जितने सदस्य उपस्थित हो सकते थे उपस्थित हैं। सदस्यों में से कोई पागल तो नहीं हैं ? हों, तो पास वाले आयुष्मान् सूचित करें।'

परिषद् में सन्नाटा रहा। गणपति ने कहा—'कोई रोगी, उन्मत्त या मद्य पिये हों तो भी सूचना करें।'

सर्वत्र सन्नाटा रहा। गणपति ने कहा—'अब भन्तेगण सुनें। भन्ते महानामन्, आज आपकी पुत्री अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर

चुकी। वैशाली जनपद ने उसे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी निर्णीत किया है। इस-लिए वज्जी गणतन्त्र के कानून के अनुसार उसे यह परिषद् 'वैशाली की नगरवधू' घोषित किया चाहती है और आज उसे 'वैशाली की जनपद-कल्याणी' का पद देना चाहती है। गण-सन्निपात की आज्ञा है कि वह आज से सार्वजनिक स्त्री की भाँति जीवन व्यतीत करे, इसी से आज उसे संथागार में उपस्थित होकर अष्टकुल के गण-सन्निपात के सम्मुख शपथ ग्रहण करने की आज्ञा दी गई थी। उसके अभिभावक की हैसियत से आप पर उसे गण-सन्निपात के सम्मुख उपस्थित करने का दायित्व है। अब आप क्या देवी अम्बपाली को गण-सन्निपात के सम्मुख उपस्थित करते हैं, और उसे वैधानिक रीति पर घोषित 'वैशाली की नगरवधू' स्वीकार करते हैं ?'

महानामन् ने एक बार सम्पूर्ण सन्निपात को देखकर आँखें नीची कर लीं। वे कुछ झुके और उनके होठ काँपे। परन्तु फिर तुरन्त ही वे तनकर खड़े हो गए, और बोले—

'भन्ते मैं स्वयं लिच्छवी हूँ, और मैंने बयालीस वर्ष वज्जी संघ की निष्ठापूर्वक सेवा इस शरीर से इसी खड्ग के द्वारा की है। अनेकों बार मैंने इन भुजदण्डों के बल पर वैशाली गणतन्त्र के दुर्धर्ष शत्रुओं को दलित करके कठिन समय में वैशाली की लाज रखी है। मैंने सदैव ही वज्जीसंघ के विधान, कानून और मर्यादा की रक्षा की है और अब भी करूँगा। यह प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह कानून की मर्यादा का पालन करे।' महानामन् इतना कहकर चुप हो गए। उनके होठ जैसे आगे कुछ कहने में असमर्थ होकर जड़ हो गए। उन्होंने आँखें फैला कर परिषद्-भवन में उमड़ती उत्तेजित भीड़ को देखा, जिनकी जलती हुई आँखें उन्हीं पर लगी थीं। फिर सहज शान्त स्वर में स्थिर वाणी से कहा—'मेरी पुत्री अम्बपाली के सम्बन्ध में वज्जी गणतन्त्र के कानून के अनुसार गण-सन्निपात ने जो निर्णय किया था, उसे जानकर मैंने अठारह वर्ष की अवस्था तक उसका विवाह करना स्थगित कर दिया था। अब ···

बीच ही में सामन्तपुत्र चिल्ला उठे—'स्थगित कर दिया था ! इसका क्या अर्थ है ? यह सन्दिग्ध बात है ।'

सहस्रों कण्ठ चिल्ला उठे—'यह सन्दिग्ध बात है, हम स्पष्ट सुना चाहते हैं । देवी अम्बपाली किसी एक पुरुष की पत्नी नहीं हो सकती । वह हमारी, हम सबकी है । हमारा उस पर समान अधिकार है और उसे हम शस्त्र के बल से भी प्राप्त करेंगे ।'

गणपति सुनन्द ने हाथ उठाकर कहा—'आयुष्मान् शान्त होकर सुनें, सन्निपात के कार्य में बाधा न दें । अभी भन्ते महानामन् का वक्तव्य पूरा नहीं हुआ है । उन्हें पूरी बात कह लेने दीजिए ।'

परिषद् में फिर सन्नाटा छा गया । सब की दृष्टि महानामन् के ऊपर जाकर जम गई ।

महानामन् ने परिषद् के बाहर-भीतर दृष्टि फेंककर आंख नीची कर ली और फिर कहा—'भन्तेगण, आज अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी । वज्जी संघ के कानून के अनुसार अब वह स्वाधीन है और अपने प्रत्येक स्वार्थ के लिए उत्तरदात्री है । अतः आज से मैं उसका अभिभावक नहीं हूँ । वह स्वयं ही परिषद् को अपना मन्तव्य देगी ।

संथागार का वातावरण फिर बड़े वेग से क्षुब्ध हो उठा । तरुण सामन्तपुत्रों ने अपने खड्ग कोष से खींच लिए । बहुतों ने अपने-अपने भालों को हवा में ऊँचा करके चीत्कार करना प्रारम्भ कर दिया । सब लोग चिल्लाने लगे—'विश्वासघात ! विश्वासघात ! भन्ते महानामन् ने वज्जी संघ से विश्वासघात किया है !! उन्हें इसका दण्ड मिलना चाहिए ।' बहुतों ने अपने पैर धरती में पटक-पटक कर और भाले हवा में हिला-हिला कर कहा—'हमारे जीवित रहते अम्बपाली हमारी, हम सबकी है, वह वैशाली की नगरवधू है । संघ यदि अपने कर्त्तव्य-पालन में ढील करेगा तो हम अपने भालों और खड्ग की तीखी धार के बल पर उसे कर्त्तव्य-पालन करने पर विवश करेंगे ।'

सहसा कोलाहल स्तब्ध हो गया। जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। सब कोई चकित स्तम्भित होकर परिषद् के द्वार की ओर देखने लगे। एक अवगुण्ठनवती नारी वातावरण को सुरभित करती हुई और मार्ग में सुषमा फैलाती हुई आ रही थी। तरुणों का उद्धत भाव एक-बारगी ही विलीन हो गया। सब ने माया-प्रेरित से होकर उसे मार्ग दिया। गण के सदस्य और अन्य जनपद उस अलौकिक मूर्ति को उत्फुल्ल होकर देखते रह गए। उसने वेदी के सम्मुख आकर ऊपर का अवगुण्ठन उतार डाला। अब वैशाली के जनपद ने पहिली ही बार रूप की उस विभूति के दर्शन किए जो गत तीन वर्ष से सम्पूर्ण वैशाली जनपद की चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया था और जिसके लिए आज सम्पूर्ण जनपद में ऐसा भारी क्षोभ फैल रहा था। सहस्र-सहस्र नेत्र उस रूप को देख अपलक रह गए, वाणी जड़ हो गई, अंग अचल हो गए। तरुणों के हृदय जोर-जोर से धड़कने लगे। बहुतों की सांस की गति रुक गई। अम्बपाली की वह अलौकिक रूप-माधुरी शरत्चन्द्र की पूर्ण विकसित कौमुदी की भांति संथागार के कोने-कोने में फैल गई। उसके स्निग्ध प्रभाव से जैसे वहाँ की सारी उत्तेजना और उद्वेग शांत होगया।

अम्बपाली ने शुभ्र कौशेय धारण किया था। उसके जूड़ाग्रथित केश-कुन्तल ताजे फूलों से गूंथे गए थे। ऊपरी वक्ष खुला हुआ था। देहयष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखण्ड टुकड़े से यत्नपूर्वक खोदकर गढ़ी थी। उससे तेज, आभा, प्रकाश, माधुर्य, कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था। इतना रूप, इतना सौष्ठव, इतनी अपूर्वता कभी किसी ने एक स्थान पर देखी नहीं थी। उसने कण्ठ में बड़े-बड़े सिंहल के मोतियों की माला धारण की थी। कटिप्रदेश की हीरे-जड़ी करधनी उसकी क्षीण कटि को पुष्ट नितम्बों से विभाजित सी कर रही थी। उसके सुडौल गुल्फ मणिखचित उपानत से, जिनके ऊपर स्वर्ण पैजानियां चमक रही थीं, अपूर्व शोभा का विस्तार कर रही थीं। मानो वह संथागार में रूप, यौवन,

मद, सौरभ को बखेरती चली आई थी। जनपद लुटा-सा, मूर्छित-सा, स्तब्ध-सा खड़ा था।

यही वह अम्बपाली थी जिसे पाने के लिए वैशाली का जनपद उन्मत्त होकर लोहू की नदी बहाने को तैयार हो गया था। जिसे एक बार देख पाने के लिए वर्षों से धनकुबेर सेट्ठिपुत्रों तथा सामन्तपुत्रों ने न जाने कितने यत्न किए थे, षड़यन्त्र रचे थे। कितनों ने उसकी न जाने कितनी कल्पना-मूर्ति बनाई थी, जो वैशाली में ही गत तीन वर्षों से यत्नपूर्वक गुप्त करके रखी गयी थी और जिसे सर्वगुणविभूषिता करने के लिए वैशाली राज-परिषद् ने मनों स्वर्ण-रत्न खर्च कर दिए थे। आज वैशाली का जनपद देख रहा था कि विश्व की यौवनश्री अम्बपाली की देहयष्टि में एकीभूत हो रही थी। जिसे देख जनपद स्तम्भित, चकित और जड़ हो गया था। वह अपने को, जीवन को और जगत् को भी भूल गया था।

अम्बपाली जैसे उस सुषमा की सम्पदा को आंचल में भरे, नीची दृष्टि किए वृद्ध महानामन् के पार्श्व में आ खड़ी हुई। गणपति सुनन्द ने कहा—'भन्ते, देवी अम्बपाली अपना मत परिषद् के सामने प्रकट करने आई हुई हैं। सब कोई उनका वक्तव्य सुनें।'

एक बार गगनभेदी जयनाद से परिषद्-भवन हिल उठा—'देवी अम्बपाली की जय, वैशाली की नगरवधू की जय, वैशाली जनपद कल्याणी की जय।

अम्बपाली के होठ हिले। जैसे गुलाब की पंखड़ियों को प्रातः समीर ने आन्दोलित किया हो। वीणा की झंकार के समान उसकी वाणी ने संथागार में सुधावर्षण किया—'भन्ते, आपके आदेश पर मैंने विचार कर लिया है। मैं वज्जी संघ के विधिकृत-कानून को स्वीकार करती हूं, यदि गण-सन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हों। वे शर्तें भन्ते, गणपति आपको बता देंगे।'

परिषद्-भवन में मन्द जनरव सुनाई दिया। एक अधेड़ सदस्य ने

अपनी मूछों को दांतों से दाबकर कहा—'क्या कहा ? धिक्कृत-कानून ? देवी अम्बपाली, तुम यह वाक्य वापस लो, यह परिषद् का घोर अपमान है ।'

चारों ओर से आवाजें आने लगीं । 'यह शब्द वापस लो, धिक्कृत-कानून, शब्द अनुचित है ।'

अम्बपाली ने सहज शान्त स्वर में कहा—'मैं सहस्र बार इस शब्द को दुहराती हूँ । वज्जी संघ का यह धिक्कृत-कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतन्त्र का कलंक है । भन्ते, मेरा अपराध केवल यही है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया । इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लांछना और अपमान के पंक में डुबो देने को विवश की जा रही हूँ । इसी से मुझे स्त्रीत्व के उन सब अधिकारों से वंचित किया जा रहा है जिस पर प्रत्येक कुलवधू का अधिकार है । अब मैं अपनी रुचि और पसन्द से किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकती, उसे अपनी देह और अपना हृदय अर्पण नहीं कर सकती । अपना स्नेह से भरा हृदय और रूप से लतपत यह अधम देह लेकर अब मैं वैशाली की हाट में ऊंचे-नीचे दाम में इसे बेचने बैठूंगी । आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं, वह एक बार नहीं-लाख बार धिक्कृत होने योग्य है, जिसे आज ये स्त्रैण तरुण सामन्तपुत्र अपने खड्ग की तीखी धार और भालों की नोक के बल पर अक्षुण्ण और सुरक्षित रखा चाहते हैं और ये सेट्ठिपुत्र अपनी रत्नराशि जिस पर लुटाने को दृढ़प्रतिज्ञ हैं ।' अम्बपाली यह कह कर रुकी । उसका अंग कांप रहा था और वाणी तीखी हो रही थी । परिषद्-भवन में सन्नाटा था ।

उसने फिर कहा—'भन्ते, मैं अपना अभिप्राय निवेदन कर चुकी । यदि सन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हों—तो मैं अपना सतीत्व, स्त्रीत्व, मर्यादा, यौवन, रूप और देह आपके इस धिक्कृत-कानून के अर्पण करती हूँ । यदि आपको मेरी शर्तें स्वीकार न हों तो मैं नीलपद्म प्रासाद में आपके वधिकों की प्रतीक्षा करूंगी ।'

इतना कह कर उसने अवगुण्ठन से शरीर को आच्छादित किया और वृद्ध महानामन् का हाथ पकड़कर कहा—'चलिये।' महानामन् अम्बपाली के कन्धे का सहारा लिए संथागार से बाहर हो गए। वैशाली का जनपद मूढ़ अवाक् होकर देखता रह गया।

२ : : गण-सन्निपात

जब तक रथ की घण्टियों का घोष सुनाई देता रहा और रथ की ध्वजा दीख पड़ती रही, वैशाली का जनपद मार्ग पर उसी ओर मन्त्र-विमोहित सा देखता रह गया। अम्बपाली का वह अपूर्व रूप ही नहीं—उसका तेज, दर्प साहस और दृढ़ता सब कुछ उन्हें अकल्पित दीख पड़ी। जो थोड़े से वाक्य अम्बपाली ने सभा में कहे, उनका सभी पर भारी प्रभाव पड़ा। कुछ लोग निरीह नारीत्व की इस कानूनी लाञ्छना के विरोधी हो गए। उन्होंने चिल्ला-चिल्ला कर कहना आरम्भ किया कि–'कौन देवी अम्बपाली को बलात् 'नगरवधू' बनायेगा ? हम उसके रक्त में वसुन्धरा को डुबो देंगे। निस्सन्देह यह धिक्कृत-कानून वैशाली जनपद और वज्जी संघ शासन का कलंक रूप है। यह स्वाधीन जनपद के अन्तस्तल पर पराधीनता की कालिमा है। अंग, बंग, कलिंग, चम्पा, काशी, कोशल, ताम्रपर्णी और राजगृह कहीं भी तो स्त्रीत्व का ऐसा बलात् अपहरण नहीं है। फिर वज्जियों का यह गण-तन्त्र ही क्या, जहां नारी का नारीत्व इस प्रकार अपहरण हो। यह हमारी रक्षणीया कुल-वधुओं, पुत्रियों और बहिनों की प्रतिष्ठा और मर्यादा का घोर अपमान है। इसे हम सहन नहीं करेंगे। हम विद्रोह करेंगे। समाज से, संघ से, अष्टकुल के गणतन्त्र से और गण-परिषद से।'

कुछ सामन्तों ने अपने-अपने खड्ग कोष से खींच लिए। चलती बार अम्बपाली जो शब्द कह गई थी, उससे उनके हृदय तीर से विद्ध पक्षी की भांति आहत हो गए थे। उन्होंने क्रुद्ध स्वर में हथियार ऊँचे उठाकर कहा—'अरे, वैशाली की जनपद कल्याणी—देवी अम्बपाली नीलपद्म-प्रासाद में परिषद् के वधिकों की प्रतीक्षा कर रही है। कौन उन्हें वध करने के लिए वधिकों को भेजता है, हम देखेंगे। हम अभी-अभी उसके खण्ड-खण्ड कर डालेंगे। हम इस संथागार का एक-एक पत्थर धूल में मिला देंगे।'

कुछ सेट्ठिपुत्र पागल की भांति बक रहे थे—'वज्जियों के इस गणतन्त्र का नाश हो। हम राजगृह में जा बसेंगे। देवी अम्बपाली जिएं। हमारे धन और प्राण देवी अम्बपाली पर उत्सर्ग हैं।'

इस पर सब ने उच्च स्वर में जयघोष किया। 'जय, देवी अम्बपाली की जय, जनपद कल्याणी को अभय।'

परन्तु बहुत से उद्धत तरुण सामन्तपुत्र शस्त्र चमका-चमका कर और हवा में भाले उछाल-उछाल कर अपने अश्व दौड़ाने लगे। वे कह रहे थे कि—'उसका वध वधिक नहीं कर सकते। हम उसके दिव्य देह का उपयोग चाहते हैं। हम उसकी शरच्चन्द्र की चांदनी के समान रूप-सुधा का पान किया चाहते हैं। उसके अनिन्द्य यौवन का आनन्द लिया चाहते है। वह हमारी है, हम सबकी है। वह वैशाली का प्राण, वैशाली की शोभा, वैशाली के जीवन की केन्द्रस्थली है। वह वैशाली की नगरवधू है। उसकी वे शर्तें कुछ भी हों, हमें स्वीकार हैं। हम सर्वस्व देकर भी उसे प्राप्त करेंगे या स्वयं मर मिटेंगे।'

प्रतिहार और दण्डधर परिषद् की व्यवस्था-स्थापन में असमर्थ हो गए। तब गणपति सुनन्द ने खड़े होकर कहा—'आयुष्मान्! शांत होकर देवी अम्बपाली की शर्तों को सुनें। उन पर अभी गण-सन्निपात का छन्द ग्रहण होगा। उन शर्तों के पूरी होने पर देवी अम्बपाली स्वेच्छा से नगर-वधू होने को तैयार है।'

एक बार संथागार में फिर सन्नाटा छा गया। परन्तु क्षण भर बाद

ही बहुत से कण्ठ एक साथ चिल्ला उठे—'कहिए, भन्ते गणपति ! वे शर्तें क्या हैं और कैसे उनकी पूर्ति की जा सकती है ?'

गणपति ने कहा—'सब आयुष्मान् और भन्तेगण सुनें। देवी की पहिली शर्त यह है कि—उसे रहने के लिए सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्ण भार, प्रासाद के समस्त साधन और वैभव सहित दिया जाय।'

गण सदस्य जड़ हो गए। नागरिक भी विचलित हुए। बहुत से राज-वर्गियों की भृकुटियों में बल पड़ गए। महामात्य सुप्रिय ने क्रुद्ध होकर कहा—'भन्ते, यह असम्भव है, ऐसा कभी नहीं हुआ। सप्तभूमि प्रासाद जम्बूद्वीप भर में अद्वितीय है, उसका वैभव और साधन एक राजतन्त्र को संचालन करने योग्य है। उसका सौष्ठव ताम्रलिप्त, राजगृह, श्रावस्ती और चम्पा के राजमहलों से बढ़-चढ़कर है। फिर नौ कोटि स्वर्ण भार ? नहीं, नहीं। नौ कोटि स्वर्ण भार देने पर वज्जी संघ का राजकोष ही खाली हो जायगा। नहीं, नहीं; यह शर्त स्वीकार नहीं की जा सकती। किसी भांति भी नहीं। किसी भांति भी नहीं।' उद्वेग से उनका वृद्ध शरीर कांपने लगा और वे हांफते-हांफते बैठ गए।

बहुत से सेट्ठिपुत्र एक साथ ही बोल उठे—'क्यों नहीं दिया जा सकता ? राजकोष यदि रिक्त हो जायगा तो हम उसे भर देंगे। अष्टकुल दूसरे प्रासाद का निर्माण कर सकता है। हम शत कोटि स्वर्ण भार भी देने को प्रस्तुत हैं।'

सामन्तपुत्रों ने अपने-अपने भाले चमका-चमका कर कहा—'देवी अम्बपाली को सप्तभूमि प्रासाद, सम्पूर्ण साधन और वैभव तथा नौ कोटि स्वर्ण भार सहित दे दिया जाय। वह प्रासाद, वह वैभव वैशाली के जन-पद का है, वह हमारा है हम सब का है, हमने गर्म रक्त के मूल्य पर उसका निर्माण कराया है। जिस प्रकार अनुपम रूप यौवन-श्री की अधिष्ठात्री देवी अम्बपाली हमारी—हम सबकी है, उसी प्रकार अप्रतिम वैभव और सौष्ठव का आगार सप्तभूमि प्रासाद भी हमारा, हम सब का है। वह अवश्य वैशाली के जनपद का सान्ध्य क्रीड़ास्थल होना चाहिए।'

गणपति ने खड़े होकर हाथ के इशारे से सबको चुप रहने को कहा। फिर कहा—'भन्तेगण, अब मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आपको देवी अम्बपाली की पहली शर्त स्वीकार है ? यदि किसी को आपत्ति हो तो बोलें।' सभा-भवन में सब चुप थे। गणपति ने कहा—'सब चुप हैं। मैं फिर दूसरी बार पूछता हूँ·····और अब तीसरी बार भी ! सब चुप हैं। तो भन्ते, वज्जियों का यह सन्निपात देवी अम्बपाली की पहली शर्त स्वीकार करता है।'

सभा के बाहर-भीतर हर्ष की लहर दौड़ गई। एक बार फिर देवी अम्बपाली के जयनाद से संथागार गूंज उठा।

गणपति ने कुछ ठहरकर कहा—'भन्ते, अब देवी की शेष दो शर्तें भी सुनिए। उसकी दूसरी शर्त यह है कि उसके आवास की दुर्ग की भाँति व्यवस्था की जाय और तीसरी यह कि उसके आवास में आने-जाने वाले अतिथियों की जांच-पड़ताल गणिकाध्यक्ष न करें।'

गणपति के यह कहकर बैठते ही महाबलाधिकृत सुमन ने क्रोध से आसन पर पैर पटक कर कहा—'भन्ते, यह तो आत्मघात से भी अधिक है। मैं कभी इसका समर्थन नहीं कर सकता कि देवी का आवास दुर्ग की भांति व्यवस्थित रहे। इसका तो स्पष्ट यह अर्थ है कि देवी अम्बपाली अलग ही अपनी सेना रखेंगी और नगर के कानून उसके आवास में रहने वालों पर लागू नहीं होंगे।'

सन्धि-विग्राहिक जयराज ने कहा—'और उसके आवास में कौन आता जाता है, यदि इसकी जांच-पड़ताल गणिकाध्यक्ष न करेंगे तो निश्चय ही अम्बपाली का आवास शीघ्र ही षड्यन्त्रकारी शत्रुओं का एक अच्छा खासा अड्डा बन जायगा और वे लोग निश्चिन्तता से वैशाली ही में बैठकर वैशाली के गणतन्त्र की जड़ उखाड़ने के सब प्रयत्न करते रहेंगे और यदि कभी नगर-रक्षक को किसी चोर या षड्यन्त्रकारी के वहां रहने का सन्देह होगा, तभी देवी की सेना [redacted] की सेना के कार्य में बाधा डाल सकेगी और यदि वह चोर [redacted] शत्रु, राजा

या सम्राट् हुआ तो उसकी सेना को भीतर-बाहर से पूरी सहायता प्राप्त हो जायगी। भन्ते, मैं कहना चाहता हूँ कि इस समय वैशाली का गण-संघ चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ है। एक तरफ राजगृह के सम्राट् बिम्बसार उसे विषम लोचन से देखते हैं, दूसरी ओर मत्स्य, अंग, बंग, कलिंग, कौशल और अवन्ती के राजाओं की उस पर सदा वज्र-दृष्टि बनी हुई है। वे सदा वैशाली के गण-संघ को ध्वंस करने की ताक में रहते हैं। यदि हमने देवी अम्बपाली की ये दो शर्तें स्वीकार कर लीं तो निस्सन्देह उसका आवास शत्रुओं के गुप्तचरों का एक केन्द्र बन जायगा और हमारे घर में एक ऐसा छिद्र हो जायगा जिससे हम वैशाली जनपद की रक्षा नहीं कर सकेंगे।'

संथागार के बाहर-भीतर फिर विषम कोलाहल हुआ। परन्तु गण-नायक सुनन्द के खड़े होते ही सब चुप हो गए। गणपति ने कहा—'भन्ते, अम्बपाली जैसी गुण गरिमापूर्ण जनपद कल्याणी के लिए जनपद को कुछ बलिदान तो करना ही होगा। इस समय जब कि वैशाली का जनपद पद-पद पर शत्रुओं से घिरा है, हमें छोटी-छोटी बातों पर गृह-कलह नहीं करना चाहिए। मैं अपने तरुण सामन्तपुत्रों से, जो बार-बार अपने खड्ग और भाले चमका-चमका कर बात-बात पर रोष प्रकट करते हैं, यह कहना चाहता हूं कि वह समय आ रहा है, जब उनके बाहुबल और शस्त्रों की परीक्षा होगी, जिन पर उन्हें इतना गर्व है। पर हमें अपनी शक्ति शत्रु पर ही लगानी चाहिए, गृहकलह से आपस में टकरा कर नष्ट नहीं होना चाहिए। इसलिए गण-सन्निपात से मैं अनुरोध करूंगा कि वह देवी की दूसरी शर्तें स्वीकार कर ले। तीसरी शर्त की बात यह कि जब कभी देवी के आवास की जांच करने की आवश्यकता समझी जाय तो उसे एक सप्ताह पहले इसकी सूचना दे देनी चाहिए।'

सभा-भवन में सन्नाटा हो रहा। गणपति कुछ देर को चुप रहकर बोले—'भन्तेगण सुनें, जैसा कि मैंने प्रस्ताव किया है, देवी अम्बपाली की दूसरी शर्त ज्यों की त्यों और तीसरी प्रस्ताविक संशोधन के साथ स्वीकार

कर ली जाय। इस पर जो सहमत हों वे चुप रहें। जो असहमत हों, वे बोलें।'

सब कोई चुप रहे। गणपति ने कहा—'सब चुप हैं। अब मैं दूसरी बार·····और तीसरी बार भी पूछता हूं, जिन्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार हो वे चुप रहें।'

'साधु भन्ते ! सब चुप हैं, तो तीसरी शर्त थोड़े संशोधन के साथ स्वीकार करके देवी अम्बपाली की तीनों शर्त अष्टकुल का गण-सन्निपात स्वीकार करता है। मैं अभी नीलपद्म प्रासाद में देवी अम्बपाली से मिलकर सब बातें तय करने जाता हूं और कल इसके निर्णय की घोषणा कर दी जायगी। आज संघ का कार्य समाप्त होता है।

गणपति के आसन त्यागते ही एक बार तीव्र कोलाहल से संथागार का भवन गूंज उठा और सामन्तपुत्र तथा नागरिक भांति-भांति की बातें करते परिषद्-भवन से लौटे।

३ : : नीलपद्म प्रासाद

नीलपद्म प्रासाद नीलपद्म सरोवर के बीचोंबीच बना था। प्रासाद का बाहरी घेरा और फर्श मत्स्य देश के श्वेत मर्मर का था, किन्तु उसकी दीवारों पर ऊपर से नीचे तक विविध रंगीन रत्नों की पच्चीकारी हो रही थी। बाहरी प्रांगण से प्रासाद तक एक प्रशस्त किन्तु सुन्दर पुल था, जिसके दोनों ओर स्वर्ण-दण्ड लगे थे। नीलपद्म सरोवर का जल वास्तव में नीलमणि के समान स्वच्छ और चमकीला था और उसमें पारस्य देश से यत्नपूर्वक लाए हुए बड़े बड़े नीलपद्म सदा खिले रहते थे। सरोवर में बीच-बीच में कृत्रिम टापू बने थे, जिनमें हंस,

चक्रवाक, बक, सारंग के कृत्रिम निवास बनाए गए थे। इन पक्षियों का कलरव, निर्मल जल में नील पद्मों की शोभा और उस पर प्रासाद की कांपती हुई परछाई देखते ही बनती थी। परिषद् की अतिथि रूप देवी अम्बपाली इसी प्रासाद में आजकल निवास कर रही थीं।

सरोवर के तट पर एक स्वच्छ मर्मर की वेदी पर देवी अम्बपाली, विषण्णवदना बैठी सान्ध्याकाश में सुदूर एक क्षीण तारे को एकटक देख रही थी। अनेक प्रकार के विचार उसके मन में उदय हो रहे थे। वह सोच रही थी अपना भूत और भविष्य। एक द्वन्द उसके भीतर चल रहा था। आज से सात वर्ष पूर्व एक ग्यारह वर्ष की बालिका के रूप में जब उसने वैशाली की पौर में सन्ध्या के बढ़ते हुए अन्धकार में पिता की उंगली पकड़कर प्रवेश किया था, उसने नवीन जीवन, नवीन चहल-पहल, नवीन भाव देखे थे। नायक चन्द्रमणि की कृपा से उसके पिता को उसकी नष्ट सम्पत्ति और त्यक्त पद मिल गया था और अब उसके उद्ग्रीव यौवन और विकसित जीवन की क्रीड़ा के दिन थे। सब वैभव उसे प्राप्त थे, भाग्य उसके साथ असाधारण खेल खेल रहा था। जो बालिका एक दिन छै दम्म के कंचुक के लिए लालायित हो गीली आंखों से पिता से याचना कर चुकी थी, आज जीवन के ऐसे संघर्ष में आ पड़ी थी, जिसकी कदाचित् ही कोई युवती सम्भावना कर सकती है। वैशाली का जनपद आज उसके लिए क्षुब्ध था और अष्टकुल के एक महासंकट को टालने की शक्ति केवल उसी में थी।

एक दिन, उसके अज्ञात में धृष्टतापूर्वक जिस हर्षदेव ने उसके पिता से उसके सम्बन्ध में उपहास किया था उसी हर्षदेव की प्रणयाभिलाषा उसने एक बार अपनी कच्ची मति में आंखों में हंसकर स्वीकार कर ली थी। उस स्वीकृति में कितना विवेक और कितना अज्ञान था इसका विश्लेषण करना व्यर्थ है। परन्तु जब उन दोनों के बूढ़े पिता पुरातन मैत्री और नवीन कृतज्ञता के पाश में बँधकर उनके विवाह का वचन दे चुके तब से वह हर्षदेव को आंखों में 'हां' और होठों में 'ना' भरकर

कितनी बार तंग कर चुकी थी। इसके इतिहास पर आज अनायास ही उसका ध्यान जा पहुंचा था। उसकी अप्रतिम रूपराशि को वैशाली के जनपद से छिपाने के सभी प्रयत्न, सभी सतर्कता व्यर्थ हुई। प्रभात की धूप की भांति उसके रूप की ख्याति बढ़ती ही गई और अन्ततः वह वैशाली के घर-घर की चर्चा की वस्तु बन गई। तब से कितने सामन्त-पुत्रों ने अयाचित रूप से उसके लिए द्वन्द युद्ध किये, कितने सेट्ठिपुत्रों ने उसे एक बार देख पाने-भर के लिए हीरा-मोती-रत्न और स्वर्ण की राशि जिस तिस को दी। पर अम्बपाली को जनपद में कोई देख न सका। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, अम्बपाली के रूप की काल्पनिक सैकड़ों कहानियाँ वैशाली के घर-घर कही जाने लगीं और इस प्रकार अम्बपाली वैशाली जनपद की चर्चा का मुख्य विषय बन गई।

फिर एक दिन, जब महानामन् ने अम्बपाली के वाग्दान की अनुमति नायक चन्द्रमणि के पुत्र हर्षदेव के साथ करने की गण से माँगी तो संथागार में एक हंगामा उठ खड़ा हुआ और गणपति को आज्ञापत्र जारी करके महानामन् को विवश किया गया कि जब तक अम्बपाली वयस्क न हो जाय, वह उसका विवाह न करें और महानामन् को प्रतिज्ञा लिखनी पड़ी कि वह अम्बपाली का विवाह तब तक नहीं करेंगे, जब तक कि वह अठारह वर्ष की नहीं हो जाती। अठारह वर्ष की आयु होने पर वह उसे संथागार में उपस्थित करेंगे।

उस बात को आज तीन वर्ष बीत गए। इन तीन वर्षों में जनपद ने खुल्लम-खुला अम्बपाली को जनपद कल्याणी कहना प्रारम्भ कर दिया और गणसंघ पर जोर दिया कि वह उसे 'नगरवधू' घोषित कर देने का आश्वासन अभी दे। यह आन्दोलन इतना उग्र रूप धारण कर गया कि अष्टकुल के गणपति को अम्बपाली और महानामन् को गण-संघ के समक्ष प्रत्युत्तर के लिए संथागार में उपस्थित करने को बाध्य होना पड़ा।

अम्बपाली ने अपने उस नये जीवन के सम्बन्ध में, जिसमें वैशाली

का जनपद उसे डालना चाहता था, जब कल्पना की, तो वह सहम गई। हर्षदेव के प्रति प्रेम नहीं तो स्नेह उसे था। कुलवधू होने पर वही स्नेह बढ़कर प्रेम हो जाता है। अब एक ओर उसके सामने कुलवधू की अस्पष्ट धुंधली आकृति थी और दूसरी ओर 'नगरवधू' बनकर सर्वजन-भोग्या होने का चित्र था। दोनों ही चीजें उसके लिए अज्ञात थीं, उसकी कल्पनाएं बाल सुलभ थीं। वह भावुक थी, उसका स्वभाव आग्रही था और जीवन आशामय। एक ओर बन्धन और दूसरी ओर उन्मुक्त जीवन। एक ओर एक व्यक्ति को मध्य बिन्दु बना कर आत्मार्पण करने की भावना थी दूसरी ओर विशाल वैभव, उत्सुक जीवन और महा-विलास की पूर्त्ति थी। उसका विकसित साहसी हृदय द्वन्द में पड़ गया और उसने अपनी तीन शर्तें परिषद् में रख दीं। उसने सोचा, जब कानून की मर्यादा पालन करना ही है तो फिर जीवन को वैभव और अधिकार की चोटी पर पहुंचाना ही चाहिए और वैशाली के जिस जनपद ने उसे इस ओर जाने को विवश किया है उसे अपने समर्थ चरणों में रोंद-रोंद कर दलित करना चाहिए।

विचारों की उत्तेजना के मारे उसका वक्षःस्थल लुहार की धोंकनी की भाँति उठने-बैठने लगा। उसने दांतों में होठ दबा कर कहा—'मैं वैशाली के स्त्रैण पुरुषों से पूरा बदला लूंगी। मैं अपने स्त्रीत्व का पूरा सौदा करूंगी। मैं अपनी आत्मा का हनन करूंगी और उसकी लोथ इन लोलुप गृद्धों को उन्हीं की प्रतिष्ठा और मर्यादा के दामों पर बेचूंगी।'

धीरे-धीरे पूर्ण चन्द्र का प्रकाश आकाश में फैल गया और भी तारे आकाश में उदय हुए। उन सबका प्रतिबिम्ब नीलपद्म सरोवर के निर्मल जल की लहरों पर थिरकने लगा। अम्बपाली सोचने लगी—'आह, मैं इस प्रकार अपने मन को चंचल न होने दूंगी। मैं दृढ़तापूर्वक जीवन-युद्ध करूंगी और उसमें विजय प्राप्त करूंगी।'

यही सब बातें अम्बपाली सोच रही थी। शुभ्र चन्द्र की ज्योत्स्ना में, शुभ्र वसनभूषिता, शुभ्रवर्णा, शुभानना अम्बपाली उस स्वच्छ शुभ्र शिला-

खण्ड पर बैठी मूर्तिमती ज्योत्स्ना मालूम हो रही थी। उसका अन्तर्द्वन्द अथाह था और वह वाह्य जगत को भूल गई थी। इसीसे जब मदलेखा ने आकर नम्रतापूर्वक कहा—'देवी की जय हो! गणपति आए हैं और द्वार पर खड़े अनुमति की प्रतिक्षा कर रहे हैं'—तब वह चौंक उठी। उसने भृकुटी चढ़ा कर कहा—'उन्हें यहीं ले आ।'

वह प्रस्तर पीठ पर सावधान होकर बैठ गई। गणनायक सुमन्त ने आकर कहा—'देवी अम्बपाली प्रसन्न हों! मैं वज्जीसंघ का संदेश लाया हूँ।'

'तो आपके वधिक कहां हैं? उनसे कहिए कि मैं तैयार हूँ। वैशाली जनपद के ये हिंस्र नरपशु किस प्रकार मेरा हनन किया चाहते है?'

'वे तुम्हारा शरीर चाहते हैं।'

'वह तो उन्हें अनायास ही मिल जायगा।'

'जीवित शरीर चाहते हैं, सस्मित शरीर। देवी अम्बपाली, वज्जीसंघ ने तुम्हारी शर्त स्वीकार कर ली है। केवल अन्तिम शर्त·····'

'अन्तिम शर्त क्या?' अम्बपाली ने उत्तेजना से कहा—'क्या वे उसे अस्वीकार करेंगे? मैं किसी भी प्रकार अपनी शर्तों की अवहेलना सहन न करूंगी।'

वृद्ध गणपति ने कहा—'देवी अम्बपाली, तुम रोष और असन्तोष को त्याग दो। तुम्हें सप्तभूमि प्रासाद, समस्त वैभव और साधन सहित और नौ कोटि स्वर्णभार सहित मिलेगा। तुम्हारा आवास दुर्ग की भांति सुरक्षित रहेगा। किन्तु यदि तुम्हारे आवास के आगन्तुकों की कभी जांच की आवश्यकता हुई तो उसकी एक सप्ताह पूर्व तुम्हें सूचना दे दी जायगी। अब तुम अदृष्ट की नियति को स्वीकार करो, देवी अम्बपाली! महान् व्यक्तित्व की सदैव सार्वजनिक स्वार्थों पर बलि होती है। आज वैशाली के जनपद को तुम्हारे स्त्रीत्व की बलि की आवश्यकता है। वह बलि उसे दो, वैशाली जनपद को अपने ही लोहू में डूबने से बचा लो।'

अम्बपाली ने उत्तेजित हो कहा—'क्यों, किसलिए? जहां स्त्री की

स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो, उस जनपद को जितनी जल्द लोहू में डुबोया जाय उतना ही अच्छा है। मैं आपके वधिकों का स्वागत करूंगी पर अपनी शर्तों में तनिक भी हेरफेर स्वीकार न करूंगी। भले ही वैशाली का यह स्त्रैण जनपद कल की जगह आज ही लोहू में डूब जाय।'

'परन्तु यह अत्यन्त भयानक है, देवी अम्बपाली! तुम ऐसा कदापि नहीं करने पाओगी। तुम्हें वैशाली के जनपद के बचाना होगा। अष्टकुल के स्थापित गणतन्त्र की रक्षा करनी होगी। यह जनपद तुम्हारा है, तुम उसकी एक अंग हो। कहो, तुम अपना प्राण देकर उसे बचाओगी?'

'मैं, मैं अभी प्राण देने को तैयार हूँ। आप वधिकों को भेजिए तो।'

गणपति ने आर्द्रकण्ठ से कहा—'तुम चिरंजीविनी होओ,देवी अम्बपाली! तुम अमर होओ। जनपद की रक्षा का भार स्त्री-पुरुष दोनों ही पर है। पुरुष सदैव इस पर अपनी बलि देते आए हैं। स्त्रियों को भी बलि देनी पड़ती है। तुम्हारा यह दिव्य रूप, यह अनिन्द्यसौन्दर्य, यह विकसित यौवन, यह तेज, यह दर्प, यह व्यक्तित्व स्त्रीत्व के नाम पर, किसी एक नगण्य व्यक्ति के दासत्व में क्यों सौंप दिया जाय? तुम्हारी जैसी असाधारण स्त्री क्यों एक पुरुष की दासी बने? यही क्यों धर्म है देवी अम्बपाली? समय पाकर रूढ़ियां ही धर्म का रूप धारण कर लेती हैं और कापुरुष उन्हीं की लीक पीटते हैं। स्त्री अपना तन-मन प्रचलित रूढ़ि के आधार पर एक पुरुष को सौंपकर उसकी दासी बन जाती है और अपनी इच्छा, अपना जीवन उसी में लगा देती है। यह तो साधारण जीवन है। पर देवी अम्बपाली, तुम असाधारण स्त्री-रत्न हो, तुम्हारा जीवन भी असाधारण ही होना चाहिए।'

'तो इसीलिए वैशाली का राष्ट्र मेरी देह को आक्रान्त किया चाहता है क्यों?' अम्बपाली ने होंठ चबाकर कहा।

'इसीलिए', वृद्ध गणपति ने स्थिर मुद्रा में कहा 'देवी अम्बपाली, वैशाली का जनपद अप्रतिम सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्णभार और प्रासाद की सब सज्जा-रत्न, वस्त्र और साधन तुम्हें दे रहा है--तुम्हें

दुर्ग में सम्राट् की भांति शासक रहने की प्रतिष्ठा दे रहा है। यह वह प्रतिष्ठा है देवी अम्बपाली, जो आज तक वज्जीसंघ के अष्टकुलों में से किसी गण को, यहां तक कि गणपति को भी प्राप्त नहीं हुई। अब और तुम चाहती क्या हो ?'

'तो यह मेरा मूल्य ही है न ? इसे लेकर मैं अपनी देह वैशाली जनपद के अर्पण कर दूं, आप यही तो कहने आए हैं ?'

'निस्संदेह, मेरे आने का यही अभिप्राय है। देवी अम्बपाली, किन्तु अभी जो तुम्हें अटूट सम्पदा मिल रही है, यही तुम्हारा मूल्य नहीं है। यह तो उसका एक क्षुद्र भाग है। विश्व की बड़ी-बड़ी सम्पदाएं और बड़े-बड़े सम्राटों के मस्तक तुम्हारे चरणों पर आ गिरेंगे। तुम स्वर्ण, रत्न, प्रतिष्ठा और श्री में लद जाओगी। इस सौभाग्य को, इस अवसर को मत जाने दो, देवी अम्बपाली !'

'तो आप यह एक सौदा कर रहे हैं ? किन्तु यदि मैं यह कहूं कि मैं अपनी देह का सौदा नहीं करना चाहती, मैं हृदय को बाजार में नहीं रख सकती, तब आप क्या कहेंगे !' अम्बपाली ने वक्र दृष्टि से वृद्ध गणपति को देखकर कहा।

गणपति ने संयत स्वर में कहा—'मैं केवल सौदा ही नहीं कर रहा हूं देवी, मैं तुम से कुछ बलिदान भी चाहता हूं, जनपद कल्याण के नाते। सोचो तो, इस समय वैशाली का जनपद किस प्रकार चारों ओर से संकट में घिरा हुआ है। शत्रु उसे ध्वस्त करने का मौका ताक रहे हैं और अब तुम्हीं एक ऐसी केन्द्रित शक्ति बन सकती हो जिसके संकेत पर वैशाली जनपद के सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों की क्रियाशक्ति अवलम्बित होगी। तुम्हीं उनमें आशा, आनंद, उत्साह और उमंग भर सकोगी। तुम्हीं इन तरुणों को एक सूत्र में बांध सकोगी। वैशाली के तरुण तुम्हारे एक संकेत से, एक स्निग्ध कटाक्ष से वह कार्य कर सकेंगे जो अष्टकुल का गणसंघ तथा संथागार के सम्पूर्ण राजपुरुष मिलकर भी नहीं कर सकते।'

वृद्ध गणपति इतना कहकर घुटनों के बल धरती पर झुक गए। उन्होंने आँखों में आँसू भरकर कहा—'देवी अम्बपाली, मैं जानता हूं कि तुम्हारे हृदय में एक ज्वाला जल रही है। परन्तु देवी, तुम वैशाली के स्वतन्त्र जनपद को बचा लो, नहीं तो वह गृह-कलह करके अपने ही रक्त में डूबकर मर जायगा। वह आज तुम्हारे जीवित शरीर की बलि चाहता है, वह उसे तुम दो। मैं समस्त वज्जियों के जनपद की ओर से तुमसे भीख माँगता हूं।'

अम्बपाली उठ खड़ी हुई। उसने कहा—'उठिए, भन्ते गणपति!' वह सीधी तनकर खड़ी हो गई। उसके नथुने फूल उठे, हाथों की मुट्ठियाँ बंध गईं। उसने कहा—'जाइए आप, वैशाली के जनपद को सन्देश दे दीजिए कि मैंने उस धिक्कृत-कानून को अंगीकार कर लिया है। आज से अम्बपाली कुलवधू की सब मर्यादा, सब अधिकार त्याग कर वैशाली की नगरवधू बनना स्वीकार करती है।'

वृद्ध गणपति ने कांपते हुए दोनों हाथ ऊंचे उठाकर कहा—'आयुष्मती होओ, देवी अम्बपाली! तुम धन्य हो, तुमने वैशाली के जनपद को बचा लिया।'

उनकी आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे और वे नीची गर्दन करके धीरे-धीरे वहां से चले गए।

अम्बपाली कुछ देर तक टकटकी लगाए, इस आहत वृद्ध राजपुरुष को देखती रही। फिर वह उसी स्फटिक शिला-पीठ पर, उसी धवल चन्द्र की ज्योत्स्ना में, उसी स्तब्ध शीतल रात में, दोनों हाथों से मुंह ढांपकर औंधे मुंह गिर कर फूट-फूट कर रोने लगी।

नीलपद्म सरोवर की आन्दोलित तरंगों में कम्पित चन्द्रविम्ब ही इस दलित द्रवित हृदय के करुण रुदन का एकमात्र साक्षी था।

४ : : मंगलपुष्करिणी अभिषेक

वैशाली की मंगलपुष्करिणी का अभिषेक वैशाली जनपद का सब से बड़ा सम्मान था। इस पुष्करिणी में स्नान करने का जीवन में एक बार सिर्फ उसी लिच्छवि को अधिकार मिलता था, जो गण संस्था का सदस्य निर्वाचित किया जाता था। उस समय बड़ा उत्सव समारोह होता था। और उस दिन 'गण नक्षत्र' मनाया जाता था। यह पुष्करिणी उस समय बनाई गई थी जब वैशाली प्रथम बार बसाई गई थी। उसमें लिच्छवियों के उन पूर्वजों के शरीर की पूत गन्ध होने की कल्पना की गई थी, जिन्हें आर्यों ने ब्रात्य करके बहिष्कृत कर दिया था और जिन्होंने अपने भुजबल से अष्टकुल की स्थापना की थी। इस समय लिच्छवियों के अष्टकुल के ९९९ सदस्य ही ऐसे थे, जिन्हें इस पुष्करिणी में स्नान करने की प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। अन्य लिच्छवि भी इसमें स्नान नहीं कर सकते थे, औरों की तो बात ही क्या है। बहुत बार आर्य सम्राटों और उनकी राजमहिषियों ने इस पुष्करिणी में स्नान करने के लिए वैशाली पर चढ़ाई की, परन्तु हर बार उन्हें लिच्छवि तरुणों के बाणों से विद्ध होकर भागना पड़ा। इस पुष्करिणी पर सदैव नंगी तलवारों का पहरा रहता था और उस पर ताँबे का एक जाल बिछा हुआ था। कोई पक्षी भी उसमें चोंच नहीं डुबो सकता था। यदि कोई चोरी-छिपे इस पुष्करिणी में स्नान करने की चेष्टा करता तो उसे निश्चय प्राणदण्ड मिलता था।

यह पुष्करिणी छोटी सी किन्तु अति स्वच्छ और मनोरम थी।

इसके चारों ओर श्वेत संगमरमर के घाट ओर सीढ़ियां बनी थीं। स्थान-स्थान पर छत्र और अलिन्द बने हुए थे, जिन पर खुदाई और पच्ची-कारी का अति सुन्दर काम किया हुआ था। पुष्करिणी का जल इतना निर्मल था कि उसके तल की प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दीख पड़ती थी। उसमें अनेक रंगों के बड़े-बड़े कमल खिले थे। समय-समय पर उसका जल बदल कर तल साफ कर दिया जाता था। पुष्करिणी में सन्ध्या समय बहुत सी रंग-विरंगी मछलियां क्रीड़ा किया करती थीं। पुष्करिणी के चारों ओर जो कमल-वन था उसकी शोभा अनोखी मोहिनी शक्ति रखती थी।

अम्बपाली लिच्छवि थी और वैशाली की जनपद कल्याणी का पद उसे मिला था। उसे विशेषाधिकार के तौर पर वैशाली के जनपद ने यह सम्मान दिया था। तीन दिन से इस अभिषेक महोत्सव की धूम वैशाली में मची थी। उस दिन अम्बपाली शोभायात्रा बना कर पहली बार सार्व-जनिक रूप में वैशाली के नागरिकों के सामने अनवगुण्ठनवती होकर निकलनेवाली थी। उसे देखने को वैशाली का जनपद अधीर हो गया था। नागरिकों ने विविध रंग की पताकाओं से अपने घर, वीथी, हाट और राजमार्ग सजाए थे। मंगलपुष्करिणी पर फूलों का अनोखा शृंगार किया गया था। कदाचित् उस दिन वैशाली जनपद की सम्पूर्ण कुसुम-राशि वहीं आ जुटी थी। तीन दिन से गणनक्षत्र घोषित किया गया था और सब कोई आनन्द उत्सव मना रहे थे।

पहर दिन चढ़े, उस मनोरम वसन्त के प्रभात में नीलपद्म प्रासाद से देवी अम्बपाली की शोभायात्रा चली। उसका विमान विविध वर्ण के फूलों से बनाया गया था। उस पर देवी अम्बपाली केवल अन्तरवासक और उत्तरीय पहिने लज्जावनत मुख बैठी निराभरण होने के कारण तारकाहीन ऊषा की सुषमा धारण कर रही थी। वह फूलों के ढेर में एक सजीव पुष्पगुच्छ सी प्रतीत हो रही थी। लज्जा और संकोच से जैसे उसकी आँखें झुकी जा रही थीं। उसका मुंह रह-रह कर लाल हो रहा था। उसकी सुडौल शुभ्र ग्रीवा, उज्ज्वल उन्नत वक्ष और लहराते

हुए चिक्कण कुन्तल, उसमें गुथे हुए ताजे विविध रंग के कुसुम, इन सब की शोभा अपार थी।

शोभा-यात्रा में आगे वाद्य बज रहे थे। उसके पीछे हाथियों पर ध्वजपताका और निशान थे। उसके पीछे उज्ज्वल परिधान पहने दासियां स्नान और पूजन की सामग्री लिए चल रही थीं। इसके पीछे अम्बपाली का कुसुम विमान था। उसे घेरकर वैशाली के सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र अम्बपाली पर पुष्प-गन्ध की वर्षा करते चल रहे थे। नगर-जन अपने-अपने मकानों से पुष्प- गन्ध फेंक रहे थे। चारों ओर रंगीन पताकाएं ही पताकाएं चमक रही थीं। सबके पीछे नागरिक जन चल रहे थे।

पुष्करिणी के अन्तर द्वार के इधर ही सब लोग रोक दिये गए। केवल सेट्ठिपुत्र और सामन्तपुत्र ही भीतर कमल-वन में आ सके। इसके बाद घाट पर उन्हें भी रोक दिया गया। केवल गण सदस्य ही वहां जा पाए। शोभा-यात्रा रुक गई। लोग जहां-तहां वृक्षों की छाया में बैठ कर गप्पें हांकने लगे। पुष्करिणी के घाट पर खड्गधारी भट पंक्तियां बांध कर खड़े थे। उन सब की पीठ पुष्करिणी की ओर थी। गणपति ने हाथ का सहारा देकर अम्बपाली को विमान से उतारा और धीरे-धीरे उसे पुष्करिणी की सीढ़ियों पर से उतार कर जल के निकट तक ले गए।

फिर उन्होंने पुष्करिणी का पवित्र जल हाथ में लेकर अम्बपाली की अंजली में दिया और कहा—'कहो देवी अम्बपाली, मैं वज्जी संघ के अधीन हूं।'

अम्बपाली ने ऐसा ही कहा। तब गणपति उसे जल में और एक सीढ़ी उतार कर घुटनों तक पानी में खड़े होकर बोले–'कहो अम्बपाली, मैं वैशाली के जनपद की हूं।'

अम्बपाली ने ऐसा ही कहा।

गणपति ने अब कमर तक जल में घुसकर कहा—'कहो देवी अम्बपाली, क्या तुम लिच्छवियों की सात मर्यादाओं का पालन करोगी ?'

अम्बपाली ने मृदु कण्ठ से स्वीकृति दी।

तब गणपति ने उच्च स्वर से पुकारकर कहा—'भन्ते, आयुष्मान् सब कोई सुनें। मैं अष्टकुल के वज्जीतन्त्र की ओर से घोषित करता हूं कि देवी अम्बपाली वैशाली की जनपद कल्याणी हैं। वह आज वैशाली की नगरवधू घोषित की गई।'

उन्होंने सुगन्धित तेल से अम्बपाली के सिर पर अभिषेक किया और फिर उसका मस्तक चूमा। इसके बाद वे जल से बाहर निकल आए। गण सदस्यों ने गन्धपुष्प अम्बपाली पर फेंके। सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र हर्षनाद करने लगे। अम्बपाली ने तीन डुबकियां लगाईं। महीन अन्तरवासक उसके स्वर्णगात्र से चिपक गया, उसका अंगसौष्ठव स्पष्ट दीख पड़ने लगा। केशराशि से मोतियों की बूंद के समान जलबिन्दु टपकने लगे। पुष्करिणी से अम्बपाली बाहर निकल आई।

विविध वाद्य बजने लगे। दासियों ने उसे नए अन्तरवासक और उत्तरीय पहिनाए। केशों को झाड़कर हवा में फैला दिया। भांति-भांति के गन्ध माल्य पहिनाए गए। तरुणों ने अम्बपाली पर गन्धपुष्प और अंगराग की वर्षा कर दी। फिर अम्बपाली को पारस्य देश के सुन्दर बिछावन पर बैठाया गया।

अब गणभोज प्रारम्भ हुआ। गण के प्रत्येक सदस्य ने अम्बपाली की पत्तल से कुछ खाया। नीलगाय, सूअर, पक्षियों के मांस निर्धूम्र आग पर भून-भून कर अम्बपाली के सम्मुख ढेर किए जा रहे थे। मेरेय के घट भर-भर कर उसके चारों ओर एकत्र हो रहे थे। अम्बपाली की दासियां उनमें से पात्र भर-भर कर तरुणों को और गण सदस्यों को दे रही थीं। वे लोग हंस-हंस कर अम्बपाली की कल्याण कामना कर-करके स्वच्छन्दता से खा-पी रहे थे।

अन्त में अम्बपाली रथ में सवार होकर सप्तभूमि प्रासाद की ओर चली। साथ ही सम्पूर्ण गणसदस्य, सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र एवं नागरिक थे। सप्तभूमि प्रासाद की सिंहपौर पर शोभायात्रा के पहुंचते ही प्रासाद की प्राचीर पर से सैकड़ों तूर्य बजाए गए। प्रासादपाल ने उपस्थित होकर

अश्व और खड्ग निवेदन किया। अम्बपाली ने रथ त्याग खड्ग छुआ और अश्व पर सवार होकर प्रासाद में चली गई। वैशाली का जनपद विविध वार्तालाप करता अपने-अपने घर लौटा।

५ : : पहिला अतिथि

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। पूर्वाकाश की पीत प्रभा पर शुक्र नक्षत्र हीरे की भाँति दिप रहा था। सप्तभूमि प्रासाद के प्रहरीगण अलसाई उनींदी आंखों को लिए विश्राम की तैयारी में थे। एकाध पक्षी जग गया था। एक तरुण धूलधूसरित मलिन वेश अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में धीरे-धीरे प्रासाद के बाहरी तोरण पर आ खड़ा हुआ। प्रहरी ने पूछा–'कौन है ?'

'मैं देवी अम्बपाली से मिलना चाहता हूं।'

'अभी देवी अम्बपाली शयनकक्ष में हैं, यह समय उनसे मिलने का नहीं है, अभी तुम जाओ।'

'मैं नहीं जा सकता, देवी के जागने तक मैं प्रतीक्षा करूंगा'। यह कह वह प्रहरी की अनुमति लिए बिना ही वहीं तोरण पर बैठ गया।

प्रहरी ने क्रुद्ध होकर कहा––'चले जाओ तरुण, यहां बैठने की आज्ञा नहीं है। देवी से सन्ध्या काल में मिलना होता है। इस समय नहीं।'

'कुछ हर्ज नहीं, मैं सन्ध्या काल तक प्रतीक्षा करूंगा।'

'नहीं, नहीं, भाई, चले जाओ तुम, यहां विक्षिप्तों के प्रवेश का निषेध है।'

'मुझे अनुमति मिल जायगी मित्र, मैं वैसा विक्षिप्त नहीं हूं।'

प्रहरी क्रुद्ध होकर बलपूर्वक उसे हटाने लगा, तो तरुण ने खड्ग खींच लिया। प्रहरी ने सहायता के लिए सैनिकों को पुकारा। इतने ही में ऊपर से किसी ने कहा––'इन्हें आने दो प्रहरी।'

प्रहरी और आगन्तुक दोनों ने देखा, स्वयं देवी अम्बपाली अलिन्द पर

खड़ी आदेश दे रही हैं। प्रहरी ने देवी का अभिवादन किया और पीछे हट गया। तरुण तीनों प्रांगण पार करके ऊपर शयनकक्ष में पहुंच गया।

अम्बपाली ने पूछा—'रात भर सोए नहीं हर्षदेव ?'

'तुम भी तो कदाचित् जगती ही रहीं, देवी अम्बपाली !'

'मेरी बात छोड़ो। परन्तु तुम क्या रात भर भटकते रहे हो ?'

'कहीं चैन नहीं मिला, यह हृदय जल रहा है। यह ज्वाला सही नहीं जाती अब।'

'एक तुम्हारा ही हृदय जल रहा है हर्षदेव ! परन्तु यदि यह सत्य है तो इसी ज्वाला से वैशाली के जनपद को फूंक दो। यह भस्म हो जाय। तुम बेचारे यदि अकेले जलकर नष्ट हो जाओगे तो उससे क्या लाभ होगा ?'

'परन्तु अम्बपाली, तुम क्या एकबारगी ही ऐसी निष्ठुर हो जाओगी ? क्या इस आवास में तुम मुझे आने की अनुमति नहीं दोगी ? मैं तुम्हारे बिना रहूंगा कैसे ? जीऊंगा कैसे ?'

'आओगे तुम इस आवास में ? यदि तुममें इतना साहस हो तो आओ और देखो कि तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी से वैशाली के तरुण सेट्ठिपुत्र और सामन्तपुत्र किस प्रकार प्रेम-प्रदर्शन करते हैं और वह किस कौशल से हृदय के एक-एक खण्ड का क्रय-विक्रय करती है। देखोगे तुम ? देख सकोगे ? तुम्हें मनाही किस बात की है। यह तो सार्वजनिक आवास है। यहां सभी आवेंगे, तुम भी आना। परन्तु इस प्रकार दीन-हीन पागल की भांति नहीं। दीन-हीन पुरुष का इस आवास में प्रवेश निषिद्ध है, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए कि यह वैशाली की नगरवधू देवी अम्बपाली का आवास है। जैसे और सब आते हैं, उसी भांति आओ तुम, सज-धज कर हीरे-मोती-स्वर्ण बखेरते हुए। होठों पर हास्य और पलकों पर विलास का नृत्य करते हुए। सबको देवी अम्बपाली से प्रेमाभिनय करते देखो। तुम भी वैसा ही प्रेमाभिनय करो, हंसो, बोलो, शुल्क दो,

और फिर छूछे हाथ, शून्य हृदय अपने घर चले जाओ। फिर आओ और फिर जाओ। जब तक पद-मर्यादा शेष रहे, जब तक हाथ में स्वर्ण-रत्न भरपूर हों, आते रहो, जाते रहो, लुटाते जाओ, लुटते जाओ, यह नगरवधू का घर है, यह नगरवधू का जीवन है, यह मत भूलो।'

अम्बपाली कहती ही चली गई। उसका चेहरा हिम के समान श्वेत हो रहा था। हर्षदेव पागल की भांति मुंह फाड़कर देखते रह गए। उनसे कुछ भी कहते न बन पड़ा। कुछ क्षण स्तब्ध रहकर अम्बपाली ने कहा—क्यों कर सकोगे ऐसा ?'

'नहीं, नहीं, मैं नहीं कर सकूंगा।'

'तब जाओ तुम। इधर भूलकर भी पैर न देना। इस नगरवधू के आवास में कभी आने का साहस न करना। तुम्हारी वाग्दत्ता स्त्री अम्बपाली मर गई। यह देवी अम्बपाली का सार्वजनिक आवास है। और यह वैशाली की नगरवधू है। यदि तुममें कुछ मनुष्यत्व है तो तुम जिस ज्वाला से मर रहे हो उसी से वैशाली के जनपद को जला दो। भस्म कर दो।'

हर्षदेव पागल की भांति चीत्कार कर उठा। उसने कहा—'ऐसा ही होगा। देवी अम्बपाली, मैं इसे भस्म करूंगा। वैशाली के इस जनपद की राख तुम देखोगी, सप्तभूमि प्रासाद की इन वैभवपूर्ण अट्टालिकाओं में अष्टकुल के वज्जी संघ की चिता धधकेगी और वह गणतंत्र का धिक्कृत कानून उसमें इस आवास के वैभव के साथ ही भस्म होगा।'

'तब जाओ, तुम अभी चले जाओ। मैं तुम्हारी जलाई हुई उस ज्वाला को उत्सुक नेत्रों से देखने की प्रतीक्षा करूंगी।'

हर्षदेव फिर ठहरे नहीं। उसी भांति उन्मत्त की भांति वे आवास से चले गए।

अम्बपाली पत्थर की प्रतिमा की भांति क्षण-क्षण में उदय होते हुए अपने नगरवधू जीवन के प्रथम प्रभात को देखती खड़ी रही।

६ : : उरुबेला तीर्थ

उन दिनों उरुबेला तीर्थ में निरंजना नदी के किनारे बहुत से तपस्वी तप किया करते थे। नदी किनारे दूर तक उनकी कुटियों के छप्पर दीख पडते थे, जिनमें अग्निहोत्र का धूम सदैव उठा करता था। वे तपस्वी विविध सम्प्रदायों को मानते और अपने शिष्यों सहित जत्थे बना कर रहते थे। उनमें से अनेक नगर में भिक्षा मांगते, अपने आश्रमों में पशु पालते और श्रद्धालु जनों से प्रचुर दान पाकर खूब सम्पन्न हालत में रहते थे। बहुत से बड़े-बड़े कठोर व्रत करते, कुछ कृच्छ्र चान्द्रायण करते, अर्थात् चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के साथ ही एक-एक ग्रास भोजन घटाते-बढ़ाते थे। इस प्रकार वे अमावस को उपवास रखकर प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो, इसी प्रकार पूर्णिमा तक पन्द्रह ग्रास भोजन कर फिर क्रमशः कम करते थे। बहुत से केवल दूध ही आहार करते, कितने ही एक पैर से खड़े होकर वृक्षों में लटक कर, आकण्ठ जल में खड़े होकर, शूल-शय्याओं पर पड़े रहकर, विविध भांति से शरीर को कष्ट देते। बहुत से शीत में, खुली हवा में, नंगे पड़े रहते और ग्रीष्म में पंचाग्नि तापते, बहुत से महीनों समाधिस्थ रहते। कितने ही नंगे दिगम्बर रहते, कितने ही जटिल और कितने ही मुण्डित। नदी तट से तनिक हटकर जो पर्वत शृंग हैं उसमें बहुत सी गुफाएं थीं। कुछ तपस्वी उन गुफाओं में एकान्त बन्द रहकर सप्ताहों और महीनों की समाधि लगाया करते थे। पर्वत-कन्दराओं में बहुत से तपस्वी निरीह दिगम्बर वेश में पड़े रहते। वे भूख, प्यास, शीत, ऊष्ण सब ईतियों और भीतियों से मुक्त थे। वे देह का सब मोह त्याग चुके थे। बहुत से तपस्वी

रातभर हठपूर्वक जागरण करते थे। बहुत से इनमें सर्वत्यागी थे। बहुत से अवधूत नंग-धड़ंग निर्भय विचरण करते, बहुत से कापालिक मुर्दों की खोपड़ी की मुण्डमाल गले में धारण कर पशु की ताजा रक्तचूती खाल अंग में लपेटे तन्त्रवाक्यों का उच्चारण करते घूमते, श्मशान में रात्रिवास करते, विविध कुत्सित और वीभत्स क्रियाएं और चेष्टाएं करते। वे यह दावा करते थे कि उन्होंने इन्द्रियों की वासनाओं को जीत लिया है और वे सिद्ध पुरुष हैं। बहुत तान्त्रिक-मारण-मोहन-उच्चाटन के अभिचार करते थे। उनसे लोग बहुत भय खाते थे। इन सब सन्तों में तीन जटिल बहुत प्रसिद्ध थे। वे जटाधारी होने से जटिल कहाते थे। उनके शिष्य भी मुण्डन नहीं करते थे। इनमें एक उरुवेल काश्यप थे, जिनके आधीन ५०० जटिल ब्रह्मचारी थे। दूसरे नदी काश्यप तीन सौ जटिलों के, और तीसरे गया काश्यप दो सौ जटिलों के स्वामी थे। ये तीनों महाकाश्यप के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके शास्त्रज्ञान, सिद्धि, तप और निष्ठा की बड़ी धूम थी। दूर-दूर के राजा और श्रीमन्त सेट्ठिगण विविध स्वर्ण-रत्न अन्न भेंट करके उसका प्रसाद ग्रहण करते थे। लोग उन्हें महाशक्तिसम्पन्न, महाचमत्कारी सिद्ध समझते थे और ये तीनों भी अपने को अर्हन्त कहते थे। ये महा-काश्यप बहुधा बड़े-बड़े यज्ञ किया करते थे, जिनमें वत्स, मगध, कौशल और अंगनिवासी श्रद्धापूर्वक अन्न, घृत, रत्न, कौशेय और मधु आदि लेकर आते थे। उस समय उरुवेला में पक्ष-पक्ष पर्यन्त बड़ा भारी मेला लगा रहता था।

आज उसी उरुवेला तीर्थ को बुद्धगया के नाम से लोग जानते हैं, और वह निरञ्जना नदी फल्गु के नाम से पुकारी जाती है। अब वहाँ भारत भर के हिन्दू श्रद्धापूर्वक अपने पितरों को पिण्ड-दान देते और बड़े-बड़े दान करते हैं। यहीं पर लोकविश्रुत बोधिवृक्ष और बुद्ध की अप्रतिम मूर्ति है। आज भी वहाँ के चारों ओर के वातावरण को देखकर कहा जा सकता है कि कभी अत्यन्त प्राचीन काल में यह स्थान भारी तीर्थ रहा होगा।

७ : : शाक्यपुत्र गौतम

उसी उरुवेला तीर्थ में उसी निरंजना नदी के किनारे एक विशाल वट वृक्ष के नीचे एक तरुण तपस्वी समाधिस्थ बैठे थे। अनाहार और कष्ट सहने से उनका शरीर कृश हो गया था, फिर भी उनकी कान्ति तप्त स्वर्ण के समान थी। उनके अंग पर कोई वस्त्र न था, केवल एक कौपीन कमर में बंधी थी। उनकी देह, नेत्र और श्वास तक अचल थी। ये कपिलवस्तु के राजकुमार शाक्यपुत्र गौतम थे, जिन्होंने अक्षय आनन्द की खोज में लोकोत्तर सुख-साधन त्याग दिए थे।

तरुण तपस्वी ने नेत्र खोले, सामने पीपल के वृक्ष के नीचे कई बालक बकरी चरा रहे थे। उनकी काली लाल सफेद बकरियाँ हरे-हरे मैदानों में उछल-कूद कर रही थीं। गौतम ने स्थिर दृष्टि से इन सबको देखा। बड़ा मनोहर प्रभात था, वैसाखी पूर्णिमा के दूसरे दिन का उदय था। स्वच्छाकाश से प्रभात सूर्य की सुनहरी किरणें हरे-भरे खेतों पर शोभा विस्तार कर रही थीं, गौतम को विश्व आशा और आनन्द से ओतप्रोत ज्ञात हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि उनके हृदय में एक प्रकाश की किरण उदय हुई है और वह सारे विश्व को ओतप्रोत कर रही है। विश्व उससे उज्जवल, आलोकित और पूत हो रहा है, उस आलोक में भय-व्याधि नहीं है, अमरत्व है, अमृत है, मुक्ति है, आनन्द है। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं बुद्ध हूँ। तथागत हूँ। अर्हत हूँ।

उसी समय उत्कल देश से दो बंजारे उधर आ निकले। वे इस तरुण कृश तपस्वी को देखकर कहने लगे—'भन्ते, यह मट्ठा और

मधुगोलक हैं, हम इससे आपका सत्कार करना चाहते हैं, इन्हें ग्रहण कीजिए।' गौतम ने स्निग्ध दृष्टि उन पर डाली और कहा—'मैं तथागत हूं, बुद्ध हूं, मैं बिना पात्र के भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता।' तब उन्होंने एक पत्थर के पात्र में उन्हें मट्ठा और मधुगोलक दिए। जब गौतम उन्हें खा चुके तो बंजारों ने कहा—'भन्ते, मेरा नाम भिल्लक और इसका तपस्सू है। आज से हम दोनों आपकी तथा धर्म की शरण हैं।'

संसार में वही दोनों दो वचनों से प्रथम उपासक हुए।

उनके जाने पर गौतम बहुत देर तक उस वट वृक्ष की ओर ममत्व से देखते रहे। फिर उसी आसन पर बैठकर उन्होंने प्रतीत्य, समुत्पाद का अनुलोम और प्रतिलोम मनन किया। अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम-रूप और नाम-रूप के कारण छै आयतन होते हैं। छै आयतनों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपदान, उपदान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति के कारण जरा, मरण, शोक, दुःख, चित्त, विकार और खेद उत्पन्न होता है। इस प्रकार संसार की उत्पत्ति है। अविद्या के विनाश से संस्कार का, संस्कार-नाश से विज्ञान का, विज्ञान-नाश से नाम-रूप का और नाम-रूप के नाश से ६ आयतनों का नाश होता है। छै आयतनों के नाश से स्पर्श का नाश होता है। स्पर्श के नाश से वेदना का नाश होता है। वेदना के नाश से तृष्णा का नाश होता है। तृष्णा-नाश से उपदान का नाश होता है। उपदान-नाश से भव का नाश होता है। भव-नाश से जाति का नाश होता है। जाति-नाश से जरा, मरण, शोक, दुःख और चित्त विकार नाश होता है। इस प्रकार दुःखपुञ्ज का नाश होता है, यही सत्य ज्ञान प्राप्त कर गौतम ने बुद्धत्व पद ग्रहण किया। वे समाधि से उठ कर आनन्दित हो कहने लगे—'मैंने गम्भीर, दुर्दर्शन, दुर्ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्क से अप्राप्य धर्मतत्व को जान लिया।' उनके अन्तस्थल में एक आवाज

उठी—'लोक नाश हो जायगा रे, यदि तथागत का सम्बुद्ध चित्त धर्म-प्रवर्तन न करेगा।' उन्होंने अपनी ही शुद्ध बुद्ध मुक्त आत्मा से कहा—'हे शोकरहित ! शोकनिमग्न और जन्म-जरा से पीड़ित जनता की ओर देख, उठ। हे संग्रामजित् ! हे सार्थवाह ! हे उऋण ऋण ! जग में विचर, धर्मचक्र प्रवर्तन कर।'

उन्होंने प्रबुद्ध चक्षु से लोक को देखा। जैसे सरोवर में बहुत से कमल जल के भीतर ही डूबकर पोषित हो रहे हैं, बहुत से जल के बराबर, बहुत से उत्पल पद्म पुण्डरीक जल से बहुत ऊपर खड़े हैं, इसी भांति अल्पमल, तीक्ष्ण बुद्धि, सुस्वभाव सुबोध्य प्राणी हैं जो परलोक और बुराई से भय खाते हैं।

बुद्ध ने निश्चय किया कि मैं विश्व-प्राणियों को अमृत का दान दूंगा और वे तब उरुबेला से काशी की ओर चल खड़े हुए। मार्ग में उन्हें उपक आजीवक मिला। उसने उस तेजस्वी, शान्त, तृप्त गौतम को देखकर कहा—'आयुष्मान् ! तेरी इन्द्रियां प्रसन्न हैं, तेरी क्रान्ति निर्मल है, तू किसे गुरु मानकर प्रव्रजित हुआ है ?'

गौतम ने कहा—'मैं सर्वज्ञय और सर्वज्ञ हूँ, निर्लेप हूं सर्वत्यागी हूँ, तृष्णा के क्षय से मुक्त हूं। मेरा गुरु नहीं है। मैं अर्हत् हूं, मैं सम्यक्, सम्बुद्ध, शान्ति तथा निर्वाण को प्राप्त हूं मैं धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए काशियों के नगर में जा रहा हूं।'

उपक ने कहा—'तब तो तू आयुष्मान्, जिन हो सकता है ?'

'मेरे चित्तमल नष्ट हो गए हैं, मैं जिन हूँ।'

'सम्भव है आयुष्मान्'—यह कहकर वह दिगम्बर उपक चला गया।

गौतम वाराणसी में ऋषिपत्तन मृगदाव में आ पहुंचे। पञ्चवर्गीय साधुओंने उन्हें देखकर पहचान लिया। गौतम उनके साथ कठिन तपश्चरण कर चुके थे। एक ने कहा—'अरे, वह साधनाभ्रष्ट जोरू-बटोरू श्रमण गौतम आ रहा है, इसे अभिवादन नहीं करना चाहिए, प्रत्युत्थान भी नहीं

देना चाहिए, न आगे बढ़कर इसका पात्र चीवर लेना चाहिए, केवल आसन रख देना चाहिए, बैठना हो तो बैठे।'

परन्तु गौतम के निकट आने पर एक ने उन्हें आसन दिया, एक ने उठकर पात्र चीवर लिए, एक ने पादोदक,पादपीठ, पादकठलिका पास ला रखी। गौतम ने पैर धोये, आसन पर बैठे, बैठकर कहा—'भिक्षुओ, मैंने जिस अमृत को पाया है, उसे मैं तुम्हें प्रदान करता हूं।'

पञ्चवर्गीय साधुओं ने कहा—'आवुस गौतम, हम जानते हैं, तुम उस साधना में, उस धारणा में, उस दुष्कर तपस्या में भी आर्यो के ज्ञान दर्शन की पराकाष्ठा को नही प्राप्त हो सके और अब साधनाभ्रष्ट हो·····।'

गौतम ने कहा—'भिक्षुओ, तथागत को आवुस कहकर मत पुकारो। तथागत अर्हत् सम्यग्सम्बुद्ध है। इधर कान दो, मैं तुम्हें अमृत प्रदान करता हूं, उस पर आचरण करके तुम इसी जन्म में अर्हत् पद प्राप्त करोगे।'

परन्तु पञ्च भिक्षुओं ने फिर भी उन्हें आवुस कहकर पुकारा। इस पर तथागत ने कहा—'भिक्षुओ, क्या मैंने पहिले भी कभी ऐसा कहा था ?'

'नही, भन्ते !'

'तब इधर कान दो भिक्षुओ ! साधु को दो अतियां नहीं सेवन करनी चाहिए। एक वह जो हीन, ग्राम्य, अनर्थयुक्त और काम-वासनाओं से लिप्त है और दूसरी जो दुःखमय, अनार्यसेवित है। भिक्षुओ, इन दोनों अतियों से बचकर तथागत के मध्यम मार्ग पर चलो, जो निर्वाण के लिए है। वह मध्यम मार्ग आर्य अष्टांगिक है। यथा ठीक दृष्टि, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति, ठीक समाधि। यही मध्य मार्ग है भिक्षुओ !

'दुख सत्य है। जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मरण दुःख है, अप्रिय संयोग दुःख है, प्रिय-वियोग दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना दुःख है।'

दुःख के कारण भी सत्य है। यह जो तृष्णा है फिर जन्मने की, सुख प्राप्ति की, रागसहित प्रसन्न होने की, ये तीनों काम-भव-विभव तृष्णा

दुःख है।

'और भिक्षुओ, यह दुःख-निरोध भी सत्य है। जिसमें तृष्णा का सर्वथा-विलय होकर त्याग और मुक्ति होती है। फिर दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपद् दुःख-निरोध की ओर जाने वाला मार्ग भी सत्य है।

'भिक्षुओ ! यही चार सत्य हैं। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है। इन चार सत्यों के तेहरा—इस प्रकार १२ प्रकार का शुद्ध ज्ञान दर्शन करके ही मैं बुद्ध हुआ हूं। मेरी मुक्ति अचल है, यह अंतिम जन्म है, फिर आवागमन नहीं है।'

तथागत के इस व्याख्यान को सुनकर पञ्चवर्गीय भिक्षुओं में से कौण्डिन्य ने कहा—'तव भन्ते, जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशवान् है ?

'सत्य है, सत्य है, आयुष्मान् कौण्डिन्य, तुम्हें विमल विरज धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह नाशवान् है, ओहो, कौण्डिन्य ने जान लिया, कौण्डिन्य ने जान लिया। आयुष्मान कौण्डिन्य आज से तुम 'कौण्डिन्य-आज्ञात' के नाम से प्रसिद्ध होओ।'

तव कौण्डिन्य ने प्रणिपात करके कहा—'भगवान्, मुझे प्रवज्ञा मिले। उपसम्पदा मिले।'

बुद्ध ने कहा—'तो कौण्डिन्य, तुम सत्य ही धर्म का साक्षात्कार करके संशयरहित, विवादरहित, बुद्धधर्म में विशारद और स्वतन्त्र होना चाहते हो ?'

कौण्डिन्य ने बद्धाञ्जलि कहा—'ऐसा ही है, भन्ते !'

'तव आओ भिक्षु, यह धर्म सुन्दर व्याख्यात है, दुःखनाश के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो। यही तुम्हारी उपसम्पदा हुई।'

तव भिक्षु वप्प और भद्दिय ने भी कहा—'भगवन्, जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशवान् है। भन्ते, हमें प्रवज्या मिलनी चाहिए, उपसम्पदा मिलनी चाहिए।'

'साधु भिक्षुओ, साधु ! तुम्हें विमल विरज धर्मनेत्र मिला। आओ धर्म सुव्याख्यात है, भली भाँति दुःख क्षय के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो।'

आयुष्मान् महानाभ और अश्वजित ने भी प्रणिपात कर निवेदन किया, 'भगवन्, हमने भी सत्य को जान लिया, हमें भी उपसम्पदा मिले। प्रवज्ञा मिले।' बुद्ध ने उन्हें ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश देते हुए कहा—'भिक्षुओ, सब भौतिक पदार्थ अन-आत्मा हैं। यदि इनकी आत्मा होती तो ये पीड़ादायक न होते। वेदना भी अन-आत्मा है। अभौतिक पदार्थ विज्ञान भी अन-आत्मा है क्योंकि वह पीड़ादायक है। तब, क्या मानते हो भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?'

'अनित्य भन्ते।'

'जो अनित्य है, वह दुःख है या सुख ?'

'दुःख, भन्ते।'

'जो अनित्य दुःख और विकार को प्राप्त होने वाला है क्या उसके लिए यह समझना उचित है कि यह पदार्थ मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?'

'नहीं, भन्ते।'

'तब क्या मानते हो भिक्षुओ। जो कुछ भी भूत-भविष्य-वर्तमान् सम्बन्धी, भीतर या बाहर ही, स्थूल या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या नजदीक का रूप है, वह न मेरा है, न मैं हूं, न मेरा आत्मा है—ऐसा समझना चाहिए।'

'सत्य है, भन्ते।'

'और इसी प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान भी, भिक्षुओ !'

'सत्य है भन्ते, हमने इस सत्य को समझ लिया।'

'तो भिक्षुओ ! विद्वान् आर्य को रूप से, वेदना से, संज्ञा से और विज्ञान से उदास रहना चाहिए। उदास रहने से इन पर विराग होगा, विराग से मुक्ति। मुक्ति से आवागमन छूट जायगा भिक्षुओ ! आवागमन नष्ट हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया। करना था सो कर लिया। अब कुछ करना शेष नहीं रहा।'

भाषण के अन्त में पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने तथागत को प्रणिपात किया और कहा—'भगवन् हमारा चित्त मलों से मुक्त हो गया है।'

'तब भिक्षुओ, अब इस लोक में कुल छै अर्हत हैं। एक मैं और पाँच तुम।' इतना कहकर तथागत वृक्ष के सहारे पीठ टेककर अन्तस्थ हो गए। भिक्षुगण प्रणिपात कर भिक्षाटन को गए।

८ :: कुलपुत्र यश

कुलपुत्र यश वाराणसी के नगरसेट्ठि का एकमात्र पुत्र था। वह सुन्दर युवक भावक और कोमल हृदय था। उसके तीन प्रासाद थे। एक हेमन्त का, दूसरा गीष्म का, तीसरा वर्षा का। जिस समय की बात हम कह रहे हैं वह वर्षा-कालिक प्रासाद में अपुरुषों से सेवित सुख लूट रहा था। श्रमण गौतम मृगदाव में आए हैं यह उसने सुना। यह श्रमण गौतम राज-सम्पदा और शाक्यों की प्रख्यात वंशपरम्परा त्याग, सुन्दरी पत्नी, नवजात पुत्र, सम्पन्न वैभव, वाहन और अनुचरों का आश्रय त्याग वाराणसी में पाँव पैदल, हाथ में भिक्षापात्र लिए, सद्गृहस्थों के द्वार पर नीची दृष्टि किए मौन भाव से भिक्षा माँगता फिरता है। उसने काशी के विश्रुत विद्वान् पञ्चजनों को उपसम्पदा दी है। यह गौतम किस सम्पदा से आप्यायित है? यह श्रमण किस अमृत से तृप्त है? यह श्रमण किस निधि से ओतप्रोत है? उस दिन यश बड़ी देर तक बैठा यही सोचता रहा।

अंधेरी रात थी। रिमझिम वर्षा हो रही थी। ठण्डी हवा बह रही थी। यश का वर्षा-प्रासाद गन्धदीपों के मन्द आलोक से आलोकित और गन्धद्रव्यों से सुरभित हो रहा था। रात गहन होती गई और यश और भी गहन मुद्रा से उसी श्रमण गौतम के विषय में सोचने लगा। प्रासाद

में मृदुल वाद्यों की झंकार पूरित थी। नूपुर और किंकण की ठुमकियाँ आ रही थीं। दासियों ने आकर निवेदन किया—'यह कुलपुत्र के शयन का समय है, यह अवमर्दक, पीठमर्द उपस्थित है, यह चरण दासियाँ हैं। कुलपुत्र विश्राम करें, शैयारूढ़ हों, हम चरण-सेवा करें। आज्ञा हो, नृत्य-वाद्य हो। वाराणसी की श्रेष्ठ सुन्दरी वेश्या कादम्बरी नृत्य के लिए प्रतीक्षा कर रही है।'

यश ने थकित भाव से कहा—'अभी ठहरो शुभे, मुझे कुछ सोचने दो। यही तो मैं नित्य देखता भोगता रहा हूं। सुन्दरियों के नृत्य, रूपसी का रूप, कोकिलकण्ठी का कलगान, तन्त्री की स्वरलहरी, नहीं, नहीं, अब मुझे इनसे तृप्ति नहीं होती। कौन है, वह श्रमण ? वह किस सम्पदा से सम्पन्न है ? यही तो सब कुछ इससे भी अधिक—बहुत अधिक वह त्याग चुका, इनसे विरत हो चुका ! फिर भी वह चिन्तारहित है, उद्वेगरहित है, विकाररहित है। वह पाँव प्यादा चलकर प्रत्येक गृहस्थ से भिक्षा लेता है और चला जाता है, पृथ्वी में दृष्टि दिए, शाँत, तृप्त, मौन !·····

नहीं, नहीं, अभी नहीं। नृत्य रहने दो, पीठमर्द और अवमर्दक से कह दो, वे शयन करें और तुम भी शुभे, शयन करो। अभी मुझे कुछ सोचने दो कुछ समझने दो। वह श्रमण, वह शाक्यपुत्र·····।'

दासियाँ चली गई। रात गम्भीर होती गई। नूपुर-ध्वनि बन्द हुई। प्रासाद में शाँति छा गई। सुगन्धित दीप जल रहे थे। स्निग्ध प्रकाश फैल रहा था। आकाश में काले अंधेरे बादल घूम रहे थे। नन्हीं-नन्हीं फुआर चल रही थीं। तभी यश की विचारधारा टूटी। वह धीरे-धीरे शयन-कक्ष में गया। देखा अपना परिजन—दासियां और सखियाँ इधर-उधर पड़ी सो रही थीं। किसी की बगल में वीणा थी, किसी के गले में मृदंग, किसी के बाल बिखर कर फैल गए थे, किसी के मुंह से लार निकल रही थी, कोई मुंह फैलाए कोई मुख को विकराल किए बेसुध पड़ी थीं।

यश ने कहा—'यही वह मोह है जिसे उस श्रमण ने त्याग दिया। पर वह सम्पदा क्या है ? जो उसने पाई है।' उसने एक बार परिजन

को सोते हुए देखा—फिर कहा—'अरे, मैं सन्तप्त हूँ, मैं पीड़ित हूं !!!'

उसने अपना सुनहरा जूता पहना और प्रथम घर के द्वार की ओर और फिर नगर-द्वार की ओर चल दिया। घोर अंधेरी रात थी। शीतल वायु वह रही थी, जनपद सो रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था। यश अपना सुनहरा जूता पहिने कीचड़ में अपने अनभ्यस्त पदचिन्ह बनाता आज कदाचित् अपने जीवन में पहली बार ही पाँवप्यादा उस पथ पर जा रहा था, जो मृगदाव ऋषि पतन की ओर जाता है।

गौतम उस समय भिनसार ही में उठकर खुले स्थान में टहल रहे थे। उन्होंने दूर से कुलपुत्र को अपनी ओर आते देखा तो टहलने के स्थान से हट कर आसन पर बैठे। तब कुलपुत्र ने निकट पहुँच कर कहा—'हाय, मैं संतप्त हूं, हाय, मैं पीड़ित हूं।'

गौतम ने कहा—'यश, यह तथागत असंतप्त है। अपीड़ित है। आ बैठ। मैं तुझे आनन्द का अमृत पान कराऊँगा। कुलपुत्र ने प्रसन्न होकर कहा—'भन्ते, क्या आप असंतप्त है, अपीड़ित है ?' वह जूता उतार कर गौतम के निकट गया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

गौतम ने तब यश को आनुपूर्वी कथा कही और काम-वासनाओं का दुष्परिणाम, अपकार दोष और निष्कामता का महात्म्य बताया। उन्होंने कुलपुत्र यश को भव्यचित्त, मृदुचित्त अनाच्छादितचित्त, आल्हादितचित्त और प्रसन्न देखा। तब उसे दुःख का कारण, उसका नाश और नाश के उपाय बताए। जैसे कालिमारहित शुद्ध वस्त्र अच्छा रंग पकड़ता है उसी प्रकार कुलपुत्र यश को उसी आसन पर उसी एक उपदेश से—'जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशवान् है' यह धर्मचक्षु प्राप्त हुआ।

यश कुलपुत्र की माता ने भोर होने पर सुना कि यश कुलपुत्र रात को शयनागार में सोए नहीं और प्रासाद में उपस्थित भी नही हैं, तो वह पुत्र प्रेम से विकल हो श्रेष्ठी गृहपति के पास गई। गृहपति सेट्ठि कुलपुत्र के सुनहले जूतों के चिन्ह खोजता हुआ ऋषि पतन मृगदाव तक

गया। वहाँ श्रमण गौतम को आसीन देखकर कहा—'भन्ते, क्या आपने कुलपुत्र यश को देखा है ?' गौतम ने कहा—'गृहपति, बैठ, तू भी उसे देखेगा।' गृहपति ने हर्षोत्फुल्ल हो भगवान् गौतम को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कही और गृहपति सेट्ठि को उसी स्थान पर धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

उसने कहा—'आश्चर्य भन्ते ! आश्चर्य ! जैसे ओंधे को सीधा कर दे, ढके को उघाड़ दे, भूले को रास्ता बता दे, अन्धकार में तेल का दीपक रख दे, जिससे आँख वाले रूप देखें; उसी भाँति भगवान् ने धर्म को प्रकाशित कर दिया। वह मैं, भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, संघ की शरण जाता हूँ। आप मुझे अञ्जलिबद्ध उपासक ग्रहण करें।'

तथागत ने जलद गम्भीर स्वर में कहा—'स्वस्ति सेट्ठि गृहपति, संसार में एक तू ही तीन वचनों वाला प्रथम उपासक हुआ।'

इसी समय कुलपुत्र यश पिता के सम्मुख आकर खड़ा हो गया, उसका मुख सत्य ज्ञान से दैदीप्यमान था और उसका चित्त अलिप्त और दोषों से मुक्त था।

गृहपति ने पुत्र को देखकर दीन भाव से कहा—'पुत्र यश ! तेरी मां शोक में पड़ी रोती है और पत्नि तेरे वियोग में मूर्छित है। अरे कुलपुत्र, तेरे बिना हमारा सब कुछ नष्ट है।'

तथागत गौतम ने कहा—'श्रेष्ठि गृहपति, जैसे तुमने अपूर्व ज्ञान और अपूर्व साक्षात्कार से धर्म को देखा, वैसे ही यश ने भी देखा है। देखे और जाने हुए को मनन करके प्रत्यवेक्षण करके उसका चित्त अलिप्त होकर मलों से शुद्ध हो गया है। सो गृहपति, अब यश क्या पहिले की भाँति गृहस्थ अवस्था की हीन स्थिति में रहकर गृहस्थ सुख भोगने योग्य है ?'

'नहीं भन्ते !'

'गृहपति, इसे तुम कैसा समझते हो ?'

'लाभ है भन्ते, यश कुलपुत्र को। सुलाभ किया भन्ते, यश कुलपुत्र ने, जो कि यश कुलपुत्र का चित्त अलिप्त हो मलों से मुक्त हो गया। भन्ते, भगवन् ! यश को अनुगामी भिक्षु बनाकर मेरा आज का भोजन स्वीकार कीजिए।' भगवान् ने मौन स्वीकृति दी। सेट्ठि गृहपति स्वीकृति समझ आसन से उठ भगवान् गौतम को प्रणाम कर प्रदक्षिणा कर चले गए।

तब यश कुलपुत्र ने सम्मुख आ प्रणाम कर गौतम से कहा—'भन्ते भगवन्, मुझे प्रवज्या दें, उपसम्पदा दें।'

गौतम तथागत ने कहा—'भिक्षु आओ, धर्म सुव्याख्यात है, अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो। तुम्हें उपसम्पदा प्राप्त हुई। अब इस समय तथागत सहित लोक में सात अर्हत हैं।'

९ :: धर्मचक्रप्रवर्त्तन

कासियों में बड़ी उत्तेजना फैल गई। वाराणसी की वीथिका में लोगों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि शाक्य पुत्र गौतम चीवर और भिक्षापात्र हाथ में लिए नीचा सिर किए अपने स्वर्ण समान दमकते हुए मुख को पृथ्वी की ओर झुकाए पाँव प्यादे जा रहे हैं। उनके पीछे-पीछे नगरजेट्ठक नगरसेट्ठि का कुलपुत्र यश उसी भाँति सिर मुण्डाए नंगे पैर चीवर और भिक्षापात्र हाथ में लिए नीची दृष्टि किए जा रहा है। किसी ने कहा—'अरे, यही वह शाक्य राजकुमार गौतम है जिसने पत्नि, पुत्र, राज्यसुख सब त्याग दिया है। जिसने मार को जीता है, जिसने अमृत प्राप्त किया है, जो अपने को सम्पूर्ण बुद्ध कहता है।' कोई कह रहा था—'देखो, देखो, यही कुलपुत्र यश है, जो कल तक सुनहरी जूते

पहन, कानों में हीरे के कुण्डल पहिने अपने रथ की स्वर्ण-घंटियों के घोष से वीथियों को गुञ्जायमान करते हुए नगर में आता था। आज वह नंगे पैर श्रमण गौतम का अनुगत हो भिक्षापात्र लिए अपने ही घर भिक्षान्न की याचना करने जा रहा है।'

किसी ने कहा—'अरे, कुलपुत्र यश के मुख का वैभव तो देखो! सुना है, उसे परम सम्पदा प्राप्त हुई है, उसे अमृततत्व मिला है।'

पौर वधुओं ने झरोखों में से झाँककर कहा—'बेचारे कुलपुत्र की नववधू का भाग्य कैसा है री? अरे, यह स्वर्णगात, यह मृदुल मनोहर गति, यह कामविमोहन रूप लेकर कैसे इसी वयस में यश कुलपुत्र भिक्षु बन गया?'

कोई कहती—'देखो री देखो, कुलपुत्र का भिक्षुवेश? अरे! इसने अपने चिक्कण घनकुंचित कुन्तल केश मुंडवा दिए। यह निराभरण होकर पाँव प्यादा चल कर भी कितना सुखी है, शांत है, तेज से व्याप्त है।'

रावने कहा—'उसने अमृत पाया है री! उसने उपसम्पदा प्राप्त की है।'

पौर जन कहने लगे—'काशी में यह श्रमण गौतम उदय हुआ है और वैशाली में वह अम्बपाली। अब इन दोनों के मारे जनपद में कोई युवक घर में नहीं रहने पाएगा। काशी के सब कुलपुत्रों को यह श्रमण गौतम भिक्षु बना डालेगा और वैशाली में अम्बपाली सब सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों को अपने रूप की हाट में खरीद लेगी।'

उस समय के सम्पूर्ण लोक में जो सात अर्हत थे, वे चुपचाप बढ़े चले जा रहे थे! उनकी दृष्टि पृथ्वी पर थी, कन्धों पर चीवर था, हाथ में भिक्षापात्र था, नेत्रों में धर्म-ज्योति, मुख पर ज्ञान-दीप्ति, अंग में उपसम्पदा की सुषमा, गति में त्याग और तृप्ति थी। लोग ससम्मान झुकते थे, परिक्रमा करते थे, अभिवादन करते थे, उंगली उठा-उठा कर एक-एक का बखान करते थे।

गृहपति ने आगे बढ़कर सातों अर्हतों का स्वागत किया। उन्हें आसन देकर पाद्य, पादपीठ और पाठकाष्ठ दिया। जब भगवान् बुद्ध स्वस्थ

होकर आसन पर बैठे, तब यश कुलपुत्र की माता और पत्नि आई और तथागत का पदबन्दन करके बैठ गईं। उनसे तथागत ने आनुपूर्वी कथा कही और जब भगवान् ने उन्हें भव्यचित्ता देखा तो जो बुद्धि को उठाने वाली देशता है—दुःख समुदय, निरोध और मार्ग, उसे प्रकाशित किया। उन दोनों को उसी आसन पर विमल विरज धर्मचक्षु उदय हुआ। उन्होंने कहा—'आश्चर्य भन्ते, आज से हमें अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासिकाएं जानें।'

तथागत ने उन्हें उपसम्पदा दी और विश्व में वही दोनों प्रथम तीन वचनों वाली प्रथम उपासिका बनीं।

इसके बाद सातों अर्हतों ने तृप्तिपूर्वक भोजन किया। फिर स्वस्थ हो भगवान ने उन्हें संदर्शन, समाज्ञापन समुत्तेजन, संप्रहर्षण प्रदान किया और आसन से उठे।

आगे-आगे तथागत, पीछे पञ्चजन भिक्षु और उनके पीछे यश कुलपुत्र उसी भाँति जब मृगदाव लौटे तो यश के चार परम मित्र यश के पीछे-पीछे हो लिए। एक ने कहा—'यह यश कैसे डाढ़ी मूंछ मुड़ा, काषाय वस्त्र पहिन एक बारगी ही घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया?' दूसरे ने कहा—'वह धर्मविनय छोटा न होगा, वह सन्यास छोटा न होगा, जिसमें कुलपुत्र यश सिर डाढ़ी मुड़ा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है।'

तब चारों मित्रों ने निश्चय किया कि हम भी कुलपुत्र यश की सम्पदा के भागी बनेंगे। जब सब कोई मृगदाव पहुँचे और अपने-अपने आसनों पर स्वस्थ होकर बैठे, तो चारों मित्र अभिवादन करके यश के एक ओर खड़े हो गए। उनमें एक ने कहा—'भन्ते, यश कुलपुत्र! हमें भी धर्मलाभ होने दो। हमें भी वह अमृत तत्त्व प्राप्त होने दो।'

यश उन्हें लेकर वहाँ पहुंचा, जहाँ तथागत बुद्धशान्त मुद्रा से स्थिर बैठे थे। यश ने कहा—'भगवन्, ये मेरे चार अन्तरंग गृही मित्र वाराणसी के श्रेष्ठी, अनुश्रेष्ठियों के कुलपुत्र हैं। इसका नाम सुबल, इसका सुबाहु, इसका पूर्णजित् और इसका गवाम्पति है। इन्हें भगवान अनुशासन करें।

तथागत ने उनसे आनुपूर्वी कथा कही और सत्य चतुष्टय का उपदेश दिया। तब वे सुव्याख्यात धर्म में विशारद् स्वतन्त्र हो बोले—'भगवान् हमें उपसम्पदा दें।'

भगवान् ने कहा—'भिक्षओ, आओ, धर्म सुव्याख्यात है। अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो।' यही उनकी उपसम्पदा हुई। तब भगवान् ने उनकी अनुशासना की, अब लोक में ग्यारह अर्हत थे।

आग की भाँति यह समाचार सारे काशी राज्य में फैल गया। यश के ग्रामवासी पूर्वज परिवारों के पुत्र, पचासगृही मित्रों ने सुना कि यश कुल पुत्र भिक्षु हो गया है, वे भी बुद्ध की शरण आए और प्रवज्ञा ले ली।

अब लोक में इकसठ अर्हत थे।

भगवान गौतम ने कहा—

'भिक्षुओ, अब तुम सब मानुष और दिव्य बन्धनों से मुक्त हो। बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अन्त में कल्याणकारक, इस धर्म का उपदेश करो। अर्थ सहित, व्यंजन सहित, परिपूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का सेवन करो। अल्पदोष वाले प्राणी भी हैं, कल्याणकारक धर्म के न सुनने से उनकी हानि होगी, सुनने से वे धर्म को जानेंगे। जाओ भिक्षुओ, दिशा-दिशा में जाओ। अनुमति देता हूँ, उन्हें प्रवज्ञा दो, उपसम्पदा प्रदान करो।'

१० : : वैशाली का स्वर्ग

वैशाली का सप्तभूमि प्रासाद उस युग के नन्दन वन की होड़ लगाता था। वहाँ की सम्पदा, सम्पन्नता, विभूति और सजावट देखकर सम्राटों को ईर्षा होती थी। यह समूचा महल श्वेत मर्मर का बना था, जिसमें सात खन्ड और सात ही प्राँगण थे। उसकी सब से ऊंची अट्टालिका पर लगे स्वर्ण कंगूरप्रभात की सुनहली धूप में चमकते हुए दूर तक बड़ी भारी शोभा विस्तार करते थे। यह प्रासाद बहुत विशाल था। उसके सभी द्वार तोरणों पर प्रत्येक सायंकाल को जूही, चम्पा, चम्पक, मालती और शतदल की मालाएं मोहक ढंग से टाँगी जाती थीं। ये मालाएं दूर-दूर के देशों के अधिपतियों और सेट्ठिकुवेरों की ओर से भेंट स्वरूप भेजी जाती थीं। अलिन्दों और प्रकोष्ठों में शुक, सारिका, मयूर, हंस, करण्ड, सारस, लाव, चित्तिर के निवास थे। प्रथम प्राँगण में विशाल मैदान था जहाँ सन्ध्या होने से पूर्व सुगन्धित जल छिड़क दिया जाता था, जो सन्ध्या होते ही नागरिकों, सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों के विविध वाहन, रथ, हाथी, शिविका, पालकी, सुखपाल आदि से खचाखच भर जाता था। दूसरे प्रकोष्ठ में अम्बपाली की सेना, अश्व, गज, रथ, मेष, गौ, पशु आदि का स्थान था। यहाँ भिन्न-भिन्न देशों के अद्भुत और लोकोत्तर पशुओं का संग्रह था, जिन्हें अम्बपाली की कृपादृष्टि पाने के लिए अंग, बंग, कलिंग, चम्पा, ताम्रलिप्त और राजगृह के सम्राट्, महाराज, एवम् सेट्ठिजन उपहार रूप भेजते रहते थे। तीसरे प्राँगण में सुनार, जड़िए, जौहरी, मूर्तिकार और अन्य कलाकार अपना-अपना कार्य करते थे। उनकी प्रचुर कला और मनोहर

कारीगरी से देवी अम्बपाली का वह अप्रतिम आवास और उसका दिव्य रूप शत सहस्र गुण दैदीप्यमान हो जाता था। चौथे प्रांगण में अन्न, वस्त्र, खाद्य, मेवा, फल और मिष्ठान्न का भंडार था। देश-देश के फलों, पक्वानों का वहां पाक होता था। बड़े-बड़े विद्वान्, अनुभवी वैद्यराज अनेक प्रकार के अर्क, आसव, मद्य और पौष्टिक पदार्थ बनाते रहते थे और उनकी सुगन्ध से यह प्रकोष्ठ सुगन्धित रहता था। यहाँ भाँति-भाँति के इत्र, गंध, सार और अंगराग भी तैयार कराए जाते थे। पाँचवें कोष्ठ में अम्बपाली का धन, रत्नकोष, वहीवट और प्रबन्ध व्यवस्था का खाता था, जहाँ बूढ़े करणिक, दण्डधर, कंचुकी और वाहक तत्परता से इधर-उधर घूमते, हिसाब लिखते, लेनदेन करते और स्वर्ण गणना करते थे। छठे प्रांगण के विशाल सुसज्जित प्रकोष्ठ में देवी अम्बपाली अपनी चेटिकाओं और दासियों को लेकर नागरिकों की अभ्यर्थना करती, उनका मनोरंजन करती और वहीं द्यूत, पान, नृत्य और गान होता था। अर्धरात्रि तक वह गन्धर्व नगरी जैसी, भूतल पर सर्वापेक्षा जाग्रत रहती थी। सातवें अलिन्द में देवी अम्बपाली स्वयं निवास करती थीं, वहाँ किसी भी आगन्तुक को प्रवेश का अधिकार न था। इस अलिन्द की दीवारों और स्फटिक स्तम्भों पर रत्न खचित किए गए थे, तथा छत पर स्वर्ण का बारीक रंगीन काम किया गया था। बड़े-बड़े सम्राट इस अलिन्द की शोभा एक बार देखने को लालायित रहते थे, पर वहाँ किसी का पहुंचना सम्भव नहीं था।

दिये जल चुके थे। सप्तभूमि प्रासाद का सिंहद्वार उन्मुक्त था। भीतर बाहर सर्वत्र सुगन्धित सहस्रदीपगुच्छ जल रहे थे। दासी, बांदी, चेटी और दण्डधर, प्रबन्ध व्यवस्था में व्यस्त बाहर भीतर आ जा रहे थे। सेट्ठिपुत्र और सामन्तपुत्र अपने-अपने वाहनों पर आ रहे थे। भृत्यगण दौड़-दौड़ कर उनके वाहनों की व्यवस्था कर रहे थे, वे आगन्तुक मित्रों के साथ गप्पें उड़ाते आ जा रहे थे। छठे अलिन्द के द्वार पर प्रतिहार उनका स्वागत करके उन्हें प्रमोद भवन के द्वार पर पहुँचा रहे थे जहाँ मदलेखा अपनी सहायक साथियों के साथ आगन्तुकों को

आदरपूर्वक ले जाकर उनकी पदमर्यादा के अनुसार भिन्न-भिन्न पीठिकाओं पर बैठाती थीं। पीठिकाओं पर धवल दुग्धफेन सम कोमल गद्दे और तकिये बिछे थे। वहां स्थान-स्थान पर करीने से आसंदी, पलंग, चित्रक, पटिक, पर्यंलक, तूलिका, विकतिक, उद्दलोमी, एकान्तलोमी, कटिस्स, कौशेय और समूरीमृग की खालों के कोमल कीमती बिछौने बिछे थे। जिन पर आकर सुकुमार सेट्ठिपुत्र और अलस सामन्तपुत्र अपने शरीर लुढ़का देते थे। दासीगण बात की बात में पानपात्र, मद्य, सोने के पांसे और दूसरे विनोद के साधन जुटा रहीं थीं। धूमधाम बढ़ती ही जा रही थी। बहुत लोग दल बाँधकर, द्यूत खेलने में लग गए। कुछ चुपचाप आराम से मद्य पीने लगे। कुमारी दासियां पार्श्व में बैठकर मद्य ढाल-ढाल कर देने लगीं। कुछ लोग भाँति-भाँति के वाद्य बजाने लगे। प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर नृत्य गान आरम्भ हुआ। सुन्दरी कुमारी किशोरियां रत्नावली कण्ठ में धारण कर, लोध्ररेणु से कपोल संस्कार कर, कमर में स्वर्ण करधनी और पैरों में जड़ाऊ पैंजनी पहन, आलक्तक पैरों को कुसुम स्तबक लाले उपानहों से सज्जित करके कोमलतन्तु वाद्य और गम्भीर घोष मृदंग की धमक पर शुद्ध स्वर ताल पर उठाने गिराने और भू पर आघात करने लगीं। उनकी नवीन केले के पत्ते के समान कोमल और सुन्दर देहयष्ठि पद पद पर बल खाने लगी। उनके नूपुरों की क्वथन ध्वनि ने प्रकोष्ठ के वातावरण को तरंगित कर दिया, उनके नूतन वक्ष और नितम्बों की शोभा ने मद्य की लाली में मद विस्तार कर दिया। उनके अंशुप्रान्त मे निकले हुए नग्न बाहु युगल विषधर सर्प की भांति लहरा-लहरा कर नृत्य-कला का विस्तार करने लगे। उनकी पतली पारदर्शी उंगलियों की नख-प्रभा मृणाल दण्ड की भांति हवा में तैरने लगी और फिर जब उनके प्रवाल के समान लाल-लाल उत्फुल्ल अधरोष्ठों के भीतर हीरक मणिखचित दन्त-पंक्ति को भेदकर अनुराग सागर की रस धार बहने लगी, तब सभी उपस्थित सेट्ठि, सामन्त, राजपुत्र, बन्धुल, विट, लम्पट उसी रंगभूमि में जैसे भूलोक नरलोक सब को भूलकर डूब गए। वे थिरक-थिरक कर

सावधानी और व्यवस्था से स्वर ताल पर पदाघात करके कामुक युवकों को मूर्छित सा करने लगीं। उनके गण्डस्थल की रक्तावदान कान्ति देख कर मदिरा रस से पूर्ण माणिक्य सुक्ति के सम्पुट की याद आने लगी। उनकी काली-काली, बड़ी-बड़ी अलसाई आंखें कमलवद्ध भ्रमर की शोभा विस्तार करने लगीं। भ्रूलतायें मत्त गजराज की मदराजी की भांति तरंगित होने लगीं। उनके श्वेत रजत भाल पर मनः शिला का लाल विन्दु अनुराग प्रदीप की भांति जलता दीख रहा था। उनके माणिक्य कुण्डलों में गण्डस्थल पर लगे पाण्डुर लोध्ररेणु उड़-उड़ कर लगने लगे। ललाट मणि की लाल किरणों से प्रतिविम्बित हुए उनके केशपाश सान्ध्य मेघाडम्वर की शोभा विस्तीर्ण करने लगे। इस प्रकार एक अतर्कित अकल्पित मदधारा लोचन जगत को हठात् विह्वल करने लगी।

इसके वाद संगीत सुधा का वर्षण हुआ तो जैसे सभी उपस्थित पौरगण का पौरुष विगलित होकर उसमें वह गया।

धीरे-धीरे अर्ध रात्रि व्यतीत हो चली। अव देवी अम्वपाली ने हंसते हुए प्रमोद प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। प्रत्येक कामुक पर उसने लीला कटाक्षपात करके उन्हें निहाल किया। इस समय उसने वक्षस्थल को मकड़ी के जाले के समान महीन वस्त्र मे ढाँप रखा था। कण्ठ में महा तेजस्वी हीरों का एक हार था। हीरों के ही मकर-कुण्डल कपोलों पर डोलायमान हो रहे थे। वक्ष के ऊपर का श्वेत निर्दोष भाग विलकुल खुला था। कटिप्रदेश के नीचे का भाग स्वर्ण मण्डित रत्नखचित पाटम्बर से ढांपा गया था। परन्तु उसके नीचे गुल्फ और अरुण चरणों की शोभा पृथक् विकीर्ण हो रही थी। उसकी अनिंद्य सुन्दर देहयष्ठि, तेजपूर्ण दृष्टि, मोहक मन्द मुस्कान, मराल की सी गति, सिंहनी की सी उठान सब कुछ अलौकिक थी। उस प्रमोद कानन में मुस्कान बखेरती हुई, नागरिकों को मन्द मुस्कान से निहाल करती हुई धीरे-धीरे वह एक अति सुसज्जित स्वर्ण पीठ की ओर बढ़ी। वहाँ तीन युवक सामन्तपुत्र उपधानों के सहारे पड़े मद्यपान कर रहे थे। मदलेखा स्वयं उन्हें मद्य ढाल-

ढाल कर पिला रही थी।

मदलेखा एक षोड़शी बाला थी। उसकी लाज भरी बड़ी बड़ी आंखें, उसके उन्मत्त यौवन को जैसे उभरने नहीं देती थीं। वह पद्मराग की गढ़ी हुई पुतली के समान सौन्दर्य की खान थी। व्यासपीठ पर पड़े युवक की ओर उसने लाल मद्यसे भरा स्वर्ण पात्र बढ़ाया। स्वर्ण पात्र को छूती हुई किशोरी मदलेखा की चम्पक कली के समान उंगलियों को अपने हाथ में लेकर मदमत्त युवक सामन्त ने कहा—'मदलेखा, इतनी लाज का भार लेकर जीवन पथ कैसे पार करोगी भला ? तनिक और निकट आओ,' उसने किशोरी की उङ्गली की पोर पकड़कर अपनी ओर खींचा।

किशोरी कण्टकित हो उठी। उसने मूक कटाक्ष से युवक की ओर देखा, फिर मन्द कोमल स्वर से कहा—'देवी आ रही हैं, छोड़दीजिए।'

युवक ने मद विह्वल नेत्र फैलाकर देखा–देवी अम्बपाली साक्षात् रति मूर्ति की भाँति खड़ी बंकिम कटाक्ष करके मुस्करा रही है। युवक ससंभ्रम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—'अब इतनी देर बाद यह सुधा वर्षण हुआ ?'

'हुआ तो,'—देवी ने कुटिल भ्रू भंग करके कहा—'किन्तु तुम्हारा सौदा पटा नहीं क्या, युवराज ?'

'कैसा सौदा ?' युवक ने आश्चर्य मुद्रा से कहा !

अम्बपाली ने मदलेखा को संकेत किया, वह भीतर चली गई।

अम्बपाली ने पीठिका पर बैठते हुए कहा—'मदलेखा से कुछ व्यापार चल रहा था न ?'

युवराज ने झेंपते हुए कहा—'देवी को निश्चय ही भ्रम हुआ।'

'भ्रम विभ्रम कुछ नहीं।' उसने एक मन्द हास्य करके कहा—'मेरे ये दोनों मित्र इस सौदे के साक्षी हैं। मित्र जयराज और सूर्यमल्ल, कह सकते हो, युवराज स्वर्णसेन कुछ सौदा नहीं पटा रहे थे ?'

जयराज ने हंसकर कहा—'देवी प्रसन्न हों। जब तक कोई सौदा हो नहीं जाता, तब तक वह सौदा नहीं कहला सकता।' अम्बपाली खिल-

खिला कर हंस पड़ी। उसने तीन पात्र मद्य से भरकर अपने हाथ से तीनों मित्रों को अर्पण किए और कहा—'मेरे सर्वश्रेष्ठ तीनों मित्रों की स्वास्थ्य मङ्गल-कामना से ये तीनों पात्र परिपूर्ण हैं।'

फिर उसने युवराज स्वर्णसेन के और निकट खिसक कर कहा—'युवराज, क्या मैं तुम्हारा कुछ प्रिय कर सकती हूँ?'

युवराज ने तृषित नेत्रों से उसे देखते हुए कहा—'केवल इन प्राणों को—इस खण्डित हृदय को अपने निकट ले जाकर।'

अम्बपाली ने मुस्कुराकर कहा—'युवराज का यह प्रणय निवेदन विचारणीय है, मेरे प्रति भी और मदलेखा के प्रति भी।'

वह उठ खड़ी हुई। उसने हंसकर तीनों युवकों का हाथ पकड़कर कहा, 'युवराज स्वर्णसेन, जयराज और मित्र सूर्यमल्ल, अब जाओ—तुम्हारी रात्रि सुखनिद्रा और सुखस्वप्नों की रात्रि हो।'

वह आनन्द बखेरती हुई, किसी को मुस्कराकर, किसी की ओर मृदु दृष्टिपात करती हुई, किसी से एकाध बात करती हुई भीतरी अलिन्द की ओर चली गई। तीनों मित्र अतृप्त से खड़े रह गए। धीरे-धीरे सब लोग कक्ष से बाहर निकलने लगे और कुछ देर में कक्ष शून्य हो गया। खाली मद्यपात्र, अस्तव्यस्त उपाधान, दलित कुसुम, गन्ध और बिखरे हुए पासे यहाँ वहाँ पड़े रह गए थे, चेटियाँ व्यवस्था व्यस्त थीं और दण्डधर सावधानी से दीप गुच्छों को बुझा रहे थे। तीनों मित्र शून्य हृदय में कसक लेकर बाहर आए। दूर तक उच्च सप्तभूमि प्रासाद के सातवें अलिन्द के गवाक्षों में से रंगीन प्रकाश छन-छन कर राजपथ पर यत्र तत्र आलोक बखेर रहा था।

११ : : राजगृह

अति रमणीय हरितवसना पर्वतस्थली को पहाड़ी नदी सदानीरा अर्धचन्द्राकार काट रही थी। उसी के बाँयें तटपर अवस्थित शैल पर कुशल शिल्पियों ने मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह का निर्माण किया था। दूर तक इस मनोरम सुन्दर नगरी को हरीभरी पर्वत शृङ्खला ने ढाँप रखा था। उत्तर और पूर्व की ओर दुर्लघ्य पर्वत श्रेणियाँ थीं, जो दक्षिण की ओर दूर तक फैली थीं। पच्छिम की ओर मीलों तक बड़े-बड़े पत्थरों की मोटी अजेय दीवारें बनाई गई थीं। पर्वत का जलवायु स्वास्थ्यकर था और वहाँ स्थान-स्थान पर गर्म जल के स्रोत थे। बहुत सी पर्वत कन्दराओं को काट-काटकर गुफाएं बनाई गई थीं, जिन्हें प्रासादों की भाँति चित्रित एवं विभूषित किया गया था। नगर की शोभा अलौकिक थी, तथा उसका कोट दुर्लघ्य था। राजमहालय में पीढ़ियों की सम्पदा एकत्र थी। नगर के बाहर अनेक बौद्धविहार बन गए थे। सम्राट् बिम्बसार स्वयं तथागत गौतम के उपासक बन चुके थे। सम्राट् के अनुरोध से गौतम राजगृह में आ चुके थे। राजगृह के विश्वविद्यालय की भारी प्रतिष्ठा थी। उस समय तक नालन्द के विश्वविद्यालय को भी उतनी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हुई थी। राजगृह के जगद्विख्यात विश्वविद्यालय में दूर-दूर के नागरिक, उपाध्याय, बटु प्रकाण्ड विद्वानों के चरणतल में बैठकर अपनी-अपनी ज्ञानपिपासा शांत करते थे। वहाँ सुदूर चीन के लम्बी चोटी वाले, पीतमुख और छोटी आँखों वाले मङ्गोल तिब्बत, भूटान के ठिगने गठीले, भावुक तरुण, दीर्घ, गौरवर्ण, नीलनेत्र, एवम् स्वर्णकेशी पारसीक और यवन तरुण, सिंहल के उज्ज्वल, श्यामवर्ण

चमकीली आँखों में प्रतिभा भरे, स्वर्णद्वीप, यवद्वीप, ताम्रपर्णी, चम्पा, कम्बोज और ब्रह्मदेशीय तरुण वटुकों के साथ बैठकर अपनी ज्ञानपिपासा मिटाते थे। कपिशा, उद्यान, तुषार कूचा के पिंगल पुरुष भी वहाँ थे। उन दिनों मगध साम्राज्य का केन्द्र राजगृह विश्व की तत्कालीन जातियों का संगम हो रहा था।

कोशल के अधिपति प्रसेनजित ने मगध सम्राट् बिम्बसार को अपनी बहिन कोशलदेवी ब्याही थी और उसके दहेज में काशी का राज्य दे दिया था। इस समय काशी पर बिम्बसार के आधीन ब्रह्मदत्त शासन करता था। बिम्बसार की दूसरी राजमहिषी विदेह कुमारी कूकिना थी। जिसके विषय में प्रसिद्ध था कि वह ब्रह्मविद्या की पारंगत पण्डिता है। इन दिनों सम्पूर्ण भारत में चार राज्य ही प्रमुख थे—मगध, बत्स, कोशल और अवन्ती। इन चारों राज्यों में परस्पर संघर्ष रहता था, कोशल से सम्बन्ध होने पर भी मगध सम्राट् की महत्वाकांक्षा ने कोशल और मगध में सदैव संघर्ष रखा। जिस समय की बात हम कर रहे हैं उस समय मगध सम्राट् बिम्बसार ने स्वयं कोशल पर चढ़ाई की थी और उसके महान् सेनापति भद्रिकचण्ड ने चम्पा का घेरा डाला हुआ था, जिसे आठ मास बीत चुके थे। चम्पा और कोशल के इस अभियान का उद्देश्य यह था कि भारत के पूर्वीय और पश्चिमी वाणिज्य द्वार सर्वतोभावेन मागधों के हाथ में रहें। चम्पा उन दिनों सम्पूर्ण पूर्वी द्वीप समूहों का एकमात्र वाणिज्य मुख था। इस समय मगधराज की राजधानी राजगृह में प्रसिद्ध मगध आमात्य वर्षकार, जिनकी बुद्धि कौशल की उपमा वृहस्पति और शुक्रा- चार्य्य से ही दी जा सकती थी, बैठे शासन चक्र चला रहे थे।

आर्यों के बोए वर्णसंकरत्व के विष-वृक्ष का पहिला फल मगध साम्राज्य था। जिसने असुरवंशियों से रक्त सम्बन्ध स्थापित करके शीघ्र ही भारत भूमि से आर्य राजवंशों को हतप्रभ कर दिया था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने इतर जाति की युवतियों को अपने उपभोग में लेकर उनकी सन्तानों को अपने कुल गोत्र एवं सम्पत्ति से च्युत करके उनकी

जो नवीन संकर जाति बना दी थी, इनमें तीन प्रधान थीं। जिनमें मागध प्रमुख थे। इन्हीं मागधों ने राजगृह की राजधानी बसाई। मागध सम्राट् जरासन्ध ने महाभारत काल में अपने दामाद कंस का वध हुआ सुन कर बीस अक्षौहिणी सैन्य लेकर मथुरा पर १८ बार चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई में उसकी कमान के नीचे कारुष के राजा दन्तवक्र, चेदि के शिशुपाल, कलिंगपति, शाल्व, पुण्ड्र के महाराजा पौण्ड्रवर्धन, कैषिक के क्रवि, संकृति तथा भीष्मक, रुक्मी, वेणुदार, श्रुतस्सु, क्राथ, अंशुमान, अंग, वंग, कोशल, काशी, दशार्ह और सुह्म के राजागण एकत्र हुए थे। विदेहपति, मद्रपति, त्रिगर्तराज, दरद, यवन, भगदत्त, सौवीर का शैव्य, गंधार का सुबल, पाण्ड, नग्नजित्, काश्मीर का गोनंद, हस्तिनापुर का दुर्योधन, बलख का चेकितान तथा प्रतापी कालयवन आदि भरतखण्ड के कितने ही नरपति उसके आधीन लड़े थे। इनमें भगदत्त और काल-यवन महाप्रतापी राजे थे। भगदत्त का हाथी एरावत के कुल का था और उसकी सेना में चीन और तातार के असंख्य हूण थे। कलिंगपति शाल्व के पास आकाशचारी विमान था। जरासन्ध ने उसे दूत बनाकर कालयवन के पास युद्ध में निमन्त्रण देने भेजा था। जरासन्ध के इस दूत का कालयवन ने मन्त्रियों सहित आगे आकर सत्कार किया था और जरासन्ध के विषय में ये शब्द कहे थे कि—'जिन महाराज जरासन्ध की कृपा से हम सब राजे भयहीन हैं, उनकी हमारे लिए क्या आज्ञा है ?'

ऐसा ही जरासन्ध का प्रताप था जिसके भय से यादवों को लेकर श्रीकृष्ण अट्ठारह वर्ष तक इधर उधर भटकते फिरे और अंत में ब्रजभूमि त्याग द्वारिका में उन्हें शरण लेनी पड़ी। महाभारत से प्रथम भीम ने द्वन्द युद्ध में जरासन्ध को कौशल से मारा। उसके बाद निरन्तर इस साम्राज्य पर अनेक संकरवंश के राजा बैठते रहे। हम जिस समय का यह वर्णन कर रहे हैं उस समय मगध साम्राज्य के अधिपति शिशुनाग वंशी सम्राट् का शासन था। सम्राट् बिम्बसार की आयु पचास वर्ष की थी। उनका रंग उज्ज्वल गौरवर्ण था, आंखें बड़ी-बड़ी और काली थीं, क़द

लम्बा था, व्यक्तित्व प्रभावशाली था। परन्तु उनके चित्त में दृढ़ता न थी, स्वभाव कोमल और हठी था। फिर भी वे एक विचारशील और वीर पुरुष थे और उन्होंने अपने साम्राज्य को बहुत समृद्ध किया था। इस समय मगध साम्राज्य में अस्सी हजार ग्राम लगते थे और राजगृह एशिया के प्रसिद्ध छै महासमृद्ध नगरों में से एक था। यह साम्राज्य विध्याचल, गंगा, चम्पा और सोन नदियों के बीच फैला हुआ था, जो ३०० योजन के विस्तृत भूखण्ड की आय का था। इस साम्राज्य के अन्तर्गत १८ करोड़ जनपद था।

१२ : : रहस्यमयी भेंट

एक पहर रात जा चुकी थी। राजगृह के प्रान्त भाग सुनसान थे। उन्हीं सूनी और अंधेरी गलियों में एक तरुण अश्वारोही चुपचाप आगे बढ़ता जा रहा था। उसका सारा शरीर काले लबादे से ढका था, उसके शरीर और वस्त्रों पर गर्द छा रही थी। तरुण का मुख प्रभावशाली था, उसके गौरवर्ण मुख में तेज काली आँखें चमक रही थीं, उसके लबादे के नीचे भारी-भारी अस्त्र अनायास ही दीख पड़ते थे, तरुण का अश्व भी एक असाधारण सिंधु देश का अश्व था। अश्व और आरोही दोनों थके हुए थे। परन्तु तरुण नगर के पूर्वी भाग की ओर बढ़ता जा रहा था, उधर ही उसे किसी अभीष्ट स्थान पर पहुँचना था, उसी की खोज में वह अटकता इधर-उधर देखता चुपचाप उन टेढ़ी तिरछी गलियों को पारकर नगर के बिल्कुल बाहरी भाग पर आ पहुँचा, यहाँ न तो राजपथ पर लालटेनें थीं, न कोई आदमी ही दीख पड़ता था, जिससे वह अपने अभीष्ट स्थान का पता पूछे। एक चौराहे पर वह इसी असमंजस में

खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा।

उसने देखा, एक पुराने बड़े भारी मकान के आगे सीढ़ियों पर कोई सो रहा है, तरुण ने उसके निकट जाकर उसे पुकार कर जगाया। जग कर सामने सशस्त्र योद्धा को देखकर वह पुरुष डर गया। डर कर उसने कहा—'दुहाई, मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है, मैं अति दीन भिक्षुक हूँ, आज भीख में कुछ भी नहीं मिला, इससे इस गृहस्थ के द्वार पर थककर पड़ रहा हूँ, आप जानते हैं कि यह कोई अपराध नहीं है।'

युवक ने हंसकर कहा—'नहीं, यह कोई अपराध नहीं है, परन्तु तुम यदि आज भूखे ही यहां सो रहे हो तो यह वस्तु तुम्हारे काम आ सकती है, आगे बढ़ो और हाथ में लेकर देखो।'

बूढ़ा कांपता हुआ उठा। तरुण ने उसके हाथ पर जो वस्तु रख दी वह सोने का एक सिक्का था। उस अंधेरे में भी वह चमक रहा था। उसे देख और प्रसन्न होकर वृद्ध ने हाथ उठाकर कहा—'मैं ब्राह्मण हूँ, आपको शत सहस्र आशीर्वाद देता हूँ, अपराध क्षमा हो। मैंने समझा, आप दस्यु हैं, दरिद्र को लूटा चाहते हैं इसी से।' दरिद्र ब्राह्मण की बात काटकर तरुण ने कहा—'तो ब्राह्मण, तुम यदि थोड़ा मेरा काम करदो तो तुम्हें स्वर्ण का ऐसा ही एक और निष्क मिल सकता है, जो तुम्हारे बहुत काम आएगा।'

'साधु, साधु, मैं समझ गया। आप अवश्य कहीं के राजकुमार हैं। आपकी जय हो, कहिये क्या करना होगा।'

तरुण ने कहा—'तनिक मेरे साथ चलो और आचार्य शाम्बव्य काश्यप का मठ किधर है, यह मुझे दिखा दो।'

आचार्य शाम्बव्य काश्यप का नाम सुन कर बूढ़े ब्राह्मण की घिग्घी बंध गई। उसने भय और सन्देह से तरुण को देखकर कांपते-कांपते कहा—'किन्तु इस समय·····'

'कुछ भय नहीं ब्राह्मण, तुम केवल दूर से वह स्थान मुझे दिखा दो।'

'परन्तु राजकुमार, आपको इस समय वहां नहीं जाना चाहिए। वहां तो इस समय भूत प्रेत वैतालों का नृत्यभोज हो रहा होगा।'

'तो मालूम होता है तुम यह स्वर्ण निष्क नहीं लेना चाहते ?'

'ओह, उसकी मुझे अत्यन्त आवश्यकता है भन्ते, परन्तु आप नहीं जानते आचार्य पाद भूत प्रेत वैतालों के स्वामी हैं।'

'कोई चिन्ता नहीं ब्राह्मण, तुम वह स्थान दिखा दो और यह निष्क लो।'

युवक ने निष्क ब्राह्मण की हथेली पर धर दिया। उसे भलीभांति टेंट में छिपाकर उसने कहा—'तब चलिए, परन्तु मैं दूर से वह स्थान दिखा दूँगा।'

आगे-आगे वह ब्राह्मण और पीछे-पीछे अश्वारोही उस अन्धकार में चलने लगे।

वस्ती से अलग वृक्षों के झुरमुट में एक अशुभ सा मकान अन्धकार में भूत की भांति दीख रहा था। वृद्ध ब्राह्मण ने कांपते स्वर में कहा—'वही है भन्ते, बस अब मैं आगे नहीं जाऊंगा और मैं आपसे भी कहता हूं इस समय वहां मत जाइए।' ब्राह्मण की दृष्टि और वाणी में बहुत भय था, पर तरुण ने उस पर विचार नहीं किया। अश्व को बढ़ाकर वह अन्धकार में विलीन हो गया।

मठ बहुत बड़ा था। तरुण ने एक बार उसके चारों ओर चक्कर लगाया। मठ में कोई जीवित व्यक्ति है या नहीं, इसका पता नहीं लग रहा था, उसका प्रवेश द्वार भी नहीं दीख रहा था। एक बार उसने फिर उस मठ के चारों ओर परिक्रमा दी। इस बार उसे एक कोने में छोटा सा द्वार दिखाई दिया। उसी को खूब जोर से खटखटाकर तरुण ने पुकारना प्रारम्भ किया। इस पर कुछ आशा का संचार हुआ। मकान की खिड़की में प्रकाश की झलक दीख पड़ी। किसी ने आकर खिड़की में झांककर बाहर खड़े अश्वारोही को देखकर कर्कश स्वर में कहा—'कौन है ?'

'मैं अतिथि हूं। आचार्य पाद शाम्वव्य काश्यप से मुझे काम है।'

'आए कहाँ से हो ?'

'गान्धार से !'

'किसके पास से ?'

'तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व के पास से।'

'क्या तुम सोमप्रभ हो ?'

'जी हाँ।'

'तब ठीक है।'

वह सिर भीतर घुस गया। थोड़ी देर में उसी व्यक्ति ने आकर द्वार खोल दिया। उसके हाथ में दीपक था। उसी के प्रकाश में तरुण ने उस व्यक्ति का चेहरा देखा, देखकर साहसी होने पर भी वह भय से काँप गया। चेहरे पर माँस का नाम न था। सिर्फ गोल-गोल दो आंखें गहरे गढ़ों में स्थिर चमक रहीं थीं। चेहरे पर खिचड़ी डाढ़ी मूछों का अस्त-व्यस्त गुलझट था। सिर के बड़े-बड़े रूखे बाल उलझे हुए और खड़े थे। गालों की हड्डियां ऊपर को उठी हुई थीं और नाक बीच से धनुष की भांति उभरी हुई थी। वह व्यक्ति असाधारण ऊंचा था। उसका वह हाथ, जिसमें वह दीया थामे था, एक कंकाल का हाथ दीख रहा था।

उसने थोड़ी देर दीपक उठाकर तरुण को गौर से देखा, फिर उसके पतले सफेद होठों पर मुस्कान आई। उसने यथासाध्य अपनी वाणी को कोमल बना कर कहा—'अश्व को सामने उस गोवाट् में बाँध दो, वहाँ एक बालक सो रहा है उसे जगा दो—वह उसकी, सब व्यवस्था कर देगा और तुम भीतर आओ।'

तरुण घोड़े से उतर पड़ा। उसने उस व्यक्ति के कहे अनुसार अश्व की व्यवस्था करके घर में प्रवेश किया। घर में प्रवेश करते ही वह सिहर उठा। एक विचित्र गन्ध उसमें भर रही थी। वहाँ का वातावरण ही अद्भुत था। भीतर एक बड़ा भारी खुला मैदान था। उसमें अन्धकार फैला हुआ था। कहीं भी जीवित व्यक्ति का चिन्ह नहीं दीख रहा था।

वही दीर्घकाय अस्थिकंकाल सा पुरुष दीपक हाथ में लिए आगे आगे चल रहा था और उसके पीछे-पीछे भय और उद्वेग से विमोहित सा वह तरुण जा रहा था। उनके चलने का शब्द उन्हें ही चौंका रहा था। मठ के पश्चिम प्रान्त भाग में कुछ घर बने थे। उन्हीं की ओर वे जा रहे थे। निकट आने पर उसने उच्च स्वर से पुकारा—'सुन्दरम्।'

एक तरुण बटुक आँख मलता हुआ सामने की कुटीर से निकला। तरुण सुन्दर बलिष्ठ और नवयुवक था। उसकी कमर में पीताम्बर और गले में स्वच्छ जनेऊ था। सिर पर बड़ी सी चुटिया थी। युवक के हाथ में दीपक देकर दीर्घकाय व्यक्ति ने कहा–'इस आयुष्मान् की शयन व्यवस्था यज्ञशाला में कर दो।' फिर उसने आगन्तुका की ओर घूमकर कहा–'प्रभात में और बात होगी। अभी मैं बहुत व्यस्त हूँ।' इतना कह वह तेजी से अन्धकार में विलीन हो गया।

बटुक ने युवक से कहा—'आओ मित्र, इधर से।'

तरुण चुपचाप बटुक के पीछे-पीछे यज्ञशाला में गया। वहाँ एक मृगचर्म की ओर संकेत करके उसने कहा—'यह यथेष्ट होगा मित्र ?'

'यथेष्ट होगा।'

बटुक जल्दी से एक ओर चला गया। थोड़ी देर में एक पात्र दूध से भरा तथा थोड़े मधुगोलक लेकर आया। उन्हें तरुण के सम्मुख रखकर कहा–'वहाँ पात्रमें जल है, हाथ मुंह धोलो, वस्त्र उतार डालो और यह थोड़ा आहार कर लो। बलि माँस भी है, इच्छा हो तो लाऊं ?'

'नहीं मित्र, यही यथेष्ट है। मैं बलि माँस नहीं खाता।'

'तो मित्र, और कुछ चाहिए।'

'कुछ नहीं, धन्यवाद।'

बटुक चला गया और युवक ने अन्यमनस्क होकर वस्त्र उतारे, शस्त्रों को खूंटी पर टाँग दिया। मधुगोलक खाकर दूध पिया और मृगचर्म पर बैठकर चुपचाप उस अन्धकार को देखने लगा। उसे अपने बालकाल की विस्मृत स्मृतियाँ याद आने लगीं। आठ वर्ष की अवस्था

में उसने यहीं से तक्षशिला को एक सार्थवाह के साथ प्रस्थान किया था। तब से अब तक १८ वर्ष निरन्तर उसने तक्षशिला के विश्वविश्रुत विद्यालय में विविध शस्त्र-शास्त्रों का अध्ययन किया था। वह अतीत काल की बहुत सी बातों को सोचने लगा। इन १८ वर्षों में उसने केवल शस्त्राभ्यास और अध्ययन ही नहीं किया, पार्शपुर, यवन देश तथा उत्तर कुरु तक यात्रा भी की। देवासुर संग्राम में सक्रिय भाग लिया। पार्शपुर के शासानुशास मे सिन्धुनद पर लोहा लिया। इसके बाद लगभग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की यात्रा कर डाली। अब यह राजगृह का वह पुरातन मठ न मालूम उसे कैसा कुछ अशुभ, तुच्छ और अप्रिय सा लग रहा था। इस दीर्घ काल में आचार्य की तो आकृति ही बदल गई थी।

अकस्मात्, एक अस्पष्ट चीत्कार से वह चौंक उठा। जैसे गहरी वेदना से कोई दबे कण्ठ से चिल्ला उठा हो। भय और आशंका से वह चंचल हो उठा। उसने खूंटी से खड्ग लिया और चुपचाप दीवार से कान लगा कर सुनने लगा। उस ओर कुछ हो रहा था। ऐसा उसे प्रतीत हुआ कि कहीं कुछ अनैतिक कार्य किया जा रहा है। उसने दीवार टटोल कर देखा—शीघ्र ही एक छोटा सा द्वार उसे दीख गया। यत्न करने से वह खुल गया। परन्तु द्वार खुलने पर भी अन्धकार के सिवा और कुछ उसे नहीं प्रतीत हुआ। फिर भी किसी के बोलने का अस्फुट स्वर उसे कुछ और साफ सुनाई पड़ने लगा। उसने साहस करके हाथ में खड्ग लेकर उस द्वार के भीतर अन्धकार में कदम बढ़ाया। टटोल कर उसने देखा तो वह एक पतली गलियारी सी मालुम हुई। आगे चलकर वह गलियारी कुछ घूम गई। घूमने पर प्रकाश की एक क्षीण रेखा उसे दीख पड़ी। तरुण और भी साहस करके आगे बढ़ा। सामने नीचे उतरने की सीढ़ियाँ थीं। तरुण ने देखा वह एक गर्भगृह का द्वार है, शब्द और प्रकाश दोनों वहीं से आ रहे हैं। वह चुपके से सीढ़ी उतर कर गर्भगृह की ओर अग्रसर हुआ। सामने पुरानी किवाड़ों की दरार से प्रकाश आ रहा था। उसी में से झाँक कर जो कुछ उसने देखा, देखकर उसकी हड्डियाँ काँप

उठीं। गर्भगृह अधिक बड़ा न था। उसमें दीपक का धीमा प्रकाश हो रहा था। आचार्य एक व्याघ्रचर्म पर स्थिर बैठे थे। उनके सन्मुख कोई राजपुरुष वीरासन से दूसरे व्याघ्रचर्म पर बैठे थे। इनकी आयु भी साठ के लगभग होगी। इनका शरीर माँसल, कद ठिगना, सिर और दाढ़ी मूछें मुड़ी हुई, बड़ी-बड़ी तेज पूर्ण आँखें, दृढ़ सम्पुटित ओठ। उनके पास लम्बा नग्न खड्ग रखा था। वे एक बहुमूल्य कौशेय उत्तरीय पहने थे। उनके कण्ठ में बहुमूल्य मणिमाल थी और कानों में हीरक कुण्डल थे। उनके पास ही बगल में एक अतिसुन्दरी बाला अधोमुखी बैठी थी। उसका शरीर लगभग नग्न था। उसकी सुडौल गौर भुजलता अनावृत्त थी। काली लटें चाँदी के समान श्वेत मस्तक पर लहरा रही थीं। पीठ पर पदतल चुम्बी चोटी लटक रही थी। उसका गौर वक्ष अनावृत्त था, सिर्फ विल्वस्तन कौशेय पट्ट से बंधे थे। कमर में मणिजटित करधनी थी जिससे अधोवस्त्र कसा हुआ था। इस सुन्दरी के नेत्रों में अद्भुत मद था। कुछ देर उसकी ओर देखने ही से जैसे नशा आ जाता था। उसके विम्बाफल जैसे ओष्ठ इतने सरस और आग्रही प्रतीत हो रहे थे कि उन्हें देखकर मनुष्य का काम अनायास ही जाग्रत हो जाता था। इस तरुणी की आयु कोई बीस वर्ष की होगी। इस समय वह अति उदास एवं भीत हो रही थी। तरुण ने झाँक कर देखा—तरुणी कह रही थी—'नहीं पिता, अब नहीं, मैं सहन न कर सकूंगी।' आचार्य ने कठोर मुद्रा से उसकी ओर ज्वाला नेत्रों से देखा—'सावधान कुण्डनी, मुझे क्रुद्ध न कर।' उन्होंने हाथ में चमड़े का एक चाबुक हिला कर रुक्ष हिंस्र भाव से कहा—'दंश ले।'

बाला ने एक बार असहाय दृष्टि से आचार्य की ओर, फिर उस राजपुरुष की ओर देख कर पास रखे हुऐ पिटक का ढकना उठाया। एक भीमकाय काला नाग फुफकार मार और फन उठा कर हाथ भर ऊंचा खड़ा हो गया। राजपुरुष भय से तनिक पीछे हट गए। बाला ने अनायास ही नाग का मुंह पकड़ कर कण्ठ में लपेट लिया। एक बार फिर उसने करुण दृष्टि से आचार्य की ओर देखा और फिर अपने सुन्दर लाल अधरों

के निकट सर्प का फन ले जाकर अपनी जीभ बाहर निकाली और नाग की चुटकी ढीली कर दी । नाग ने फूं करके बाला की जीभ पर दंश किया और उलट गया ।

आचार्य ने सन्तोष की दृष्टि से राजपुरुष की ओर देखा । बाला ने सर्प को अपने गले से खींच कर दूर फेंक दिया । वह क्रुद्ध दृष्टि से आचार्य को देखती रही । सर्प निस्तेज होकर एक कोने में पड़ा रहा । बाला के मस्तक पर स्वेद बिन्दु झलकने लगे । यह देख कर तरुण का सारा शरीर भय से शीतल हो गया ।

आचार्य ने एक लम्बी लौह शलाका से सर्प को अर्धमूर्छित अवस्था में उठा कर पिटक में बन्द कर दिया और मद्यपात्र आगे सरका कर स्नेह के स्वर में कहा—'मद्य पीले कुण्डनी ।' बाला ने मद्यपात्र मुंह से लगाकर गटागट सारा मद्य पी लिया ।

राजपुरुष ने अब मुंह खोला । उन्होंने कहा—'ठीक है आचार्य, मैं कल प्रातःकाल ही कुण्डनी को चम्पा भेजने की व्यवस्था करूंगा, परन्तु यदि आप जाते तो·····'

'नहीं, नहीं, राजकार्य राजपुरुषों का है—मेरा नहीं ।' आचार्य ने रूखे स्वर से कहा । फिर युवती की ओर लक्ष्य करके कहा—

'कुण्डनी, तुझे अंगराज दधिवाहन पर अपने प्रयोग करने होंगे, पुत्री !'

कुण्डनी विष की ज्वाला से लहरा रही थी । उसने सर्पिणी की भाँति होठों पर जीभ का पुचारा फेरते हुए भ्रांत नेत्रों से आचार्य की ओर देखकर कहा—'मैं नहीं जाऊँगी पिता, मुझ पर दया करो ।'

आचार्य ने कठोर स्वर में कहा—'मूर्ख लड़की, क्या तू राजकाज का विरोध करेगी ?'

'तो आप मार डालिए पिता, मैं नहीं जाऊंगी ।'

आचार्य ने फिर चाबुक उठाया । तरुण अब अपने को आपे में नहीं रख सका । खड्ग ऊंचा करके धड़धड़ाता गर्भगृह में घुस गया । उसने कहा—'आचार्य पाद, यह घोर अन्याय है, यह मैं नहीं देख सकता ।'

आचार्य और राजपुरुष दोनों ही अवाक् रह गए । वे हड़बड़ा कर खड़े हो गए राजपुरुष ने खड्ग उठाकर कहा—

'तू कौन है रे, छिद्रान्वेशी ? तूने यदि हमारी बात सुन ली है तो तुझे अभी मरना होगा ।'

उन्होंने ताली बजाई और चार सशस्त्र योद्धा गर्भगृह में आ उपस्थित हुए । राजपुरुष ने कहा—'इसे बन्दी करो ।'

युवक ने खड्ग ऊंचा करके कहा—'कदापि नहीं ।'

आचार्य ने कड़ी दृष्टि से युवक को ताक कर उच्च स्वर से कहा—'खड्ग रख दो, आज्ञा देता हूँ ।'

एक अतर्कित अनुशासन के वशीभूत होकर युवक ने खड्ग रख दिया । सैनिकों ने उसे बाँध लिया ।

राजपुरुष ने कहा—'इसे बाहर ले जाकर तुरन्त वध कर दो ।'

आचार्य ने कहा—'नहीं, अभी बन्दी करो ।'

राजपुरुष ने आचार्य की बात रख ली । सैनिक तरुण को ले गए । आचार्य ने राजपुरुष के कान में कुछ कहा, उसे सुनकर वे चौंक पड़े । उनका चेहरा पत्थर की भाँति कठोर हो गया ।

आचार्य ने मुस्कराकर कहा—'चिन्ता की कोई बात नहीं । मैं उसे ठीक कर लूंगा । मेरे विचार में कुण्डनी के साथ इसी का चम्पा जाना ठीक होगा ।'

राजपुरुष विचार में पड़ गए । आचार्य ने कहा—'द्विविधा की कोई बात नहीं है ।'

'जैसा आपका मत हो, परन्तु अभी उसे उसका तथा कुण्डनी का परिचय नहीं दिया जाना चाहिए ।'

'किन्तु आर्या मातंगी से उसे भेंट करनी होगी ।'

'क्यों ?'

'आवश्यकता है, मैंने आर्या को वचन दिया है ।'

'नहीं, नहीं, आचार्य, ऐसा नहीं हो सकता ।'

आचार्य ने रूखे नेत्रों से राजपुरुष को देखकर कहा—'चाहे जो भी हो, मैं निर्मम नीरस वैज्ञानिक हूँ, फिर भी आर्या का कष्ट अब नहीं देख सकता। आप राजपुरुष मुझ वैज्ञानिक से भी अधिक कठोर और निर्दय हैं।

'किन्तु आर्या जब तक उस रहस्य का उद्घाटन नहीं करतीं···।'

'उन पर बल प्रयोग का आपको अधिकार नहीं है।'

'किन्तु सम्राट की आज्ञा····।'

'अब मैं उनकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता, मैं सम्राट् से समझ लूंगा, आप जाइए। कुण्डनी प्रातः आप के पास पहुँच जायगी।'

'अरे वह·····वह खैर, वह तरुण भी ?'

आचार्य हँस दिये। उन्होंने कहा—'उसका नाम सोमप्रभ है, वह भी सेवा में पहुँच जायगा।'

राजपुरुष का सिर नीचा हो गया। वे किसी गहन चिन्ता के मन में उदय होने के कारण व्यथित दृष्टि से आचार्य की ओर देखने लगे। आचार्य ने करुण स्वर में कहा—

'जाइए आप, विश्राम कीजिए, दुःस्वप्नों की स्मृति से कोई लाभ नहीं है।'

राजपुरुष ने एक दीर्घश्वास ली और अन्धकार में विलीन हो गए। शस्त्रधारी शरीर-रक्षक उसी अन्धकार में उन्हें घेर कर चलने लगे।

१३ : : बन्दी की मुक्ति

बहुत देर तक राजगृह का वह अद्भुत वैज्ञानिक उस एकांत भयानक कुंज में चुपचाप अकेला टहलता रहा। वह होठों ही होठों में गुनगुना

रहा था। कभी-कभी उसके हाथों की मुट्ठियाँ बंध जातीं और वह बहुत उत्तेजित हो जाता। सम्भवत: वह अतीत की अति कटु और वेदनापूर्ण स्मृतियों को विस्मृत करने की चेष्टा कर रहा था। थोडी देर में वह शाँत होकर एक व्याघ्रचर्म पर बैठ गया। बहुत देर तक वह ध्यानस्थ वहीं बैठा रहा। फिर वह उठा, कक्ष का द्वार सावधानी से बन्द करके वह उसी अन्धकारपूर्ण गर्भगृह में टेढ़ी तिरछी सुरंगों में चलता रहा, एक जलती हुई मशाल उसके हाथ में थी। अन्त में वह एक गर्भ-गृह के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। प्रहरियों ने उसका प्रणिपातपूर्वक अभिवादन किया। प्रहरी से उसने कहा—

'क्या बन्दी सो रहा है ?'

'नहीं जग रहा है।'

'तब ठीक है, द्वार खोल दो।'

प्रहरी ने द्वार खोल दिया। वज्रानिक ने भीतर जाकर देखा, युवक एक अशांत मुद्रा से एक काष्ठ फलक पर बैठा है। आचार्य ने स्निग्ध स्वर में कहा—'तुम्हारा ऐसा अविनय आयुष्मान्।'

'किन्तु मैं·····'

'चुप, एक शब्द भी नहीं—मेरे पीछे आओ।' आचार्य ने द्वार की ओर मुँह किया। पीछे-पीछे युवक था। वे उन्हीं टेढ़ी-तिरछी सुरंगों में चलते गए। अन्त में एक कक्ष के द्वार पर आकर वे रुके। वह एक प्रशस्त कक्ष था। एक दीपक वहां जल रहा था। बहुत से मृतक पशु पक्षियों के शरीर वहां लटक रहे थे। अनेक जडी बूटियाँ थैलियों में भरी हुई थीं। बहुत सी पिटक, भाण्ड और काँच की शीशियों में रसायन द्रव्य भरे थे। यह सब देख कर युवक भय और घबराहट से भौंचक रह गया। एक शिला-पीठ पर बैठ कर आचार्य ने तरुण को भी निकट बैठने का संकेत किया। वे कुछ देर उसके नेत्रों की ओर देख कर बोले—'तुम्हें अपने बाल्यकाल की कुछ स्मृति है ?'

'बहुत कम आचार्यपाद।'

'तुम आठ वर्ष की अवस्था तक मेरे पास यहीं रहे हो। स्मरण है ?'

'कुछ कुछ।'

'अब, जब तुम तक्षशिला से चले थे—तब वयस्य बहुलाश्व ने तुम से मेरे विषय में कुछ कहा था ?'

'कहा था आचार्य। आचार्य बहुलाश्व ने कहा था—'सोम, तुम्हें मैंने शस्त्र और शास्त्रों का पूर्ण अध्ययन करा दिया, तुम्हारी बुद्धि प्रखर कर दी। १८ वर्षों में तुम एक अजेय योद्धा, रणपण्डित और सर्व शास्त्र निष्णात पण्डित हो गए। अब इस शौर्य और प्रखर बुद्धि का उपयोग तुम्हें राजगृह के समर्थ सिद्ध योगेश्वर वयस्य शाम्बव्य काश्यप बताएंगे।'

'बस इतना ही कहा था ?'

'और भी कहा था। कहा था, तुम सीधे उन्हीं के पास जाना, वे जो कुछ कहें वही करना। तुम पूर्वीय भारत के एक महान् साम्राज्य के महारथी सूत्रधार होगे। तुम्हारा दायित्व बहुत भारी होगा।'

'ठीक है, परन्तु अभी तुमने अविनय ही नहीं किया, गुरुतर अपराध भी किया है, जिसका दण्ड मृत्यु है, परन्तु इस बार तो मैंने तुम्हे बचा लिया, पर मैं सोच रहा हूँ कि कहीं वयस्य बहुलाश्व ने तुम्हारे बुद्धिवाद के सम्बन्ध में धोखा तो नही खाया। गुरुजन के क्रिया-कलाप पर इस प्रकार उत्तेजित हो जाना बड़ी ही मूर्खता की बात है।'

तरुण लज्जित हो गया। उसने कहा–'आचार्यपाद, मुझे क्षमा कीजिए, मैंने समझा एक निरीह अबला पर अत्याचार हो रहा है।'

आचार्य ने क्रुद्ध होकर कहा—'वत्स, अत्याचार तुम्हारे जैसे अविवेकी तरुण करते हैं, न कि हमारे जैसे विरक्त, जिन्होंने विश्व में अपने लिए घृणा, भय, विरक्ति और अशौच ही प्राप्त किया है। तुम्हें अभी यह जानना शेष है कि राजतन्त्र शस्त्र-विद्या और बुद्धि-बल पर ही नहीं चलता। यदि ऐसा होता तो योद्धा लोग ही सम्राट् बन जाते। वत्स, राजतन्त्र के बड़े जटिल ताने-बाने हैं, उनके अनेक रूप बड़े कुत्सित, बड़े वीभत्स और अप्रिय हैं। राजवर्गी पुरुष को वे सब करने पड़ते हैं, जो सत्य है, शिव है

वही सुन्दर नहीं है आयुष्मान्, नहीं तो मानव समाज सदैव लोहू की नदी बहाना ही अपना परम पुरुषार्थ न समझता ।'

यह कहते-कहते आचार्य उत्तेजना के मारे काँपने लगे । उनका पीला भयानक अस्थिकंकाल जैसा शरीर एक प्रेत के समान दीखने लगा और उनकी वाणी प्रेतलोक से प्रेरित सी होने लगी ।

युवक भय और आचार्य के विचित्र प्रभाव से ऐसा अभिभूत हुआ कि कुछ बोल ही न सका । आचार्य एकाएक उठ खड़े हुए । उन्होंने कहा—'जाओ, अब तुम विश्राम करो, कल प्रातः तुम्हें आर्य वर्षकार की सेवा में उपस्थित होकर तुमने अब तक जो सीखा है, उसका यथावत् परिचय आर्य वर्षकार को देना होगा ।'

आचार्य ने अपनी सूखी कांपती हुई उँगली उठाई । तीखी चितवन से देखा और युवक को जाने का संकेत किया । तरुण ने उठकर आचार्य को नमस्कार किया और कहा—'एक निवेदन और है । मुझे अभी तक मेरे माता पिता का नाम नहीं मालूम है, मेरा क्या कुलगोत्र है यह भी मैं नहीं जानता हूँ, क्या आचार्यपाद मुझे मेरे माता पिता और कुलगोत्र से परिचित कर सकेंगे ?'

'वयस्य बहुलाश्व ने क्या कहा था ?'

'उन्होंने कहा था—तुम्हारा आत्मपरिचय संसार में केवल तीन व्यक्ति जानते हैं, उनमें एक आचार्य शाम्बव्य काश्यप हैं । शेष दो का नाम नहीं बताया । इसी से मैंने आचार्यपाद से निवेदन किया ।'

'वह समय पर जानोगे ।'

और वे तेज चाल से एक ओर जाकर अंधकार में विलीन हो गए । उस भयानक स्थान में तरुण अकेला ठहरने का क्षण भर भी साहस न कर सका । वह शीघ्रता से यज्ञशाला में चला आया । उस अद्भुत वैज्ञानिक का विचित्र प्रभाव और उस आनन्द सुन्दरी बाला का वह अप्रतिमरूप और वह सर्पदंश उसके मस्तक में तूफान उठाने लगा ।

१४ : : राजगृह का वैज्ञानिक

'रात में सो नहीं पाए आयुष्मान्, तुम्हारी आँखे भारी हो रही हैं ?'

'आचार्य, नहीं ही सो सका ।'

'ठीक है अकस्मात् ही तुम्हें अतर्कित तथ्य देखना पड़ा । परन्तु क्या तुमने मेरी प्रयोगशाला देखी ?'

'अभी मित्र सुन्दरम् ने जो यत्किंचित् दिखाई, वही ।'

'अधिक तो समय समय पर जानोगे सोम, ये सब विविध जन्तुओं के पित्त, रक्त और आँतों के रस, विविध द्रव्य गुण विपाक वाली वनस्पति, अमोघ सामर्थ्यवान् रस रसायन, जो इन पिटकों और भाण्डों एवं कांच-कूप्यकों में देख रहे हो, वास्तव में इनमें जीवन और मृत्यु बन्द है ।'

'जीवन और मृत्यु ? इसका क्या अभिप्राय है आचार्य ?'

'अभिप्राय है राजतन्त्र, तुमने योद्धा का कार्य किया है, तुम जानते हो, युद्ध करना और युद्ध में विजय पाना दोनों भिन्न-भिन्न कार्य हैं और दोनों का मूल्य बहुत अधिक है । अपरिमित धन जन नाश करके ही युद्ध किए जाते हैं और युद्ध जय किए जाते हैं ।'

'यह तो सत्य है आचार्य ।'

'परन्तु इन कांचकूप्यकों में बन्द रसायन उस कठिनाई को कम कर देते हैं । बहुत धन जन का क्षय बच जाता है तथा जय निश्चित मिल जाती है ।'

'किस प्रकार आचार्य ?'

'इनमें बहुतों में ऐसे हलाहल विष हैं जिन्हें कूप, तालाब और

जलाशयों में डाल देने से, उसके जल को पीने ही से शत्रुपक्ष में महामारी फैल जाती है। बहुत से ऐसे रसायन हैं कि शत्रु सैन्य विविध रोग में ग्रसित हो जाता है। वायु विपरीत हो जाती है, ऋतु विपर्यय हो जाती है। इनमें कुछ ऐसे द्रव्य हैं कि यदि उन्हें हवा के रुख पर उड़ा दिया जाय तो शत्रु सैन्य के सम्पूर्ण अश्व, गज अन्धे हो जायं। सैनिक मूक, वधिर और जड़ हो जायं।'

'परन्तु यह तो अति भयानक है, आचार्य ?'

'फिर भी युद्ध से अधिक नहीं ! युद्ध तो जीवन की अपरिहार्य घटना है आयुष्मान्। युद्ध ही मानव सभ्यता का इतिहास है। युद्ध ही मानवता का विकास है, तुमने यही तो अपने जीवन में सीखा है ?'

'मैंने और भी कुछ सीखा है आर्य।'

'और क्या सीखा है, आयुष्मान् ?'

'मैंने सीखा है, ये युद्ध मानवता के प्रतीक नहीं, पशुता के प्रतीक हैं। मनुष्य में ज्यों-ज्यों पशुत्व कम होकर मानवता का विकास होगा वह युद्ध नहीं करेगा। जब वह पूर्ण मानव होगा तो उसमें से युद्ध-भावना नष्ट हो जायगी। वह रोषहीन संतृप्त मानव होगा।'

'अरे, यह तूने उस शाक्य श्रमण गौतम से ही सीखा है न आयुष्मान्, जो आर्यधर्म का प्रबल विरोधी है। वह वेद प्रतिपादित श्रेणी विभाग को नहीं मानता है। वह आर्य अनार्य को समान पद देता है। वह ब्राह्मणों के उत्कर्ष का विरोधी है। यज्ञों को हेय बताता है और स्त्रियों को निर्वाण का अधिकार देता है।'

'परन्तु आचार्य, मनुष्य तो जन्मतः विभागरहित है। आचरण और बुद्धि के विकास से ही तो सौष्ठव होता है, रहे वे यज्ञ जो मूक पशुओं के रुधिर में डूबे हुए हैं, वे झूठे देवताओं के नाम पर भारी ढोंग हैं।'

'शान्तं पापं, यह ब्राह्मण-विद्रोह है सौम्य, सम्राट् भी यही कहते हैं। वे भी उसी गौतम के शिष्य हो गए हैं। शारिपुत्र मौद्गलायन, अश्वजित्, आचार्य महाकाश्यप और उनके भाई जो प्रख्यात विद्वान् कर्मकाण्डी ब्राह्मण

थे, सब उसके शिष्य बन गए हैं। मगध के सेट्ठि शतकोट्याधिप यश सभी अपने चारों मित्रों के सहित उसके शिष्य बन गए हैं और तुम भी आयुष्मान्·····'

'किन्तु आचार्य, यह छल कपट·····'

'यह कौशल है तात, अपनी हानि न कर शत्रु का सर्वनाश करना। सम्मुख युद्ध करके समान खतरा उठाना पशुबुद्धि है और कौशल से शत्रु को नष्ट कर देना तथा स्वयं सुरक्षित रहना मनुष्यबुद्धि है। यही कूटनीति है।'

'तो आचार्य आपकी इन कांचकूप्यकों में सब कौशल ही कौशल बन्द हैं ?'

'अधिक वही है, कहना चाहिए। इन कांचकूप्यकों के रसायन को छूकर, खाकर, देखकर मनुष्य और जनपद अन्धा, बहरा, उन्मत्त, नपुंसक, मूर्च्छित तथा मृतक हो जाता है, वत्स !'

'ओह, कितना दुस्सह है आचार्य ?'

'पर उससे अधिक नहीं। जब तुम स्वस्थ पुरुष के कलेजे में दयाभाव-हीन होकर खड्ग घुसेड़ देते हो, तुम्हारे बाण निरीह व्यक्तियों की पसलियों में बलात् घुस जाते हैं, जब तुम जीवित, आशापूर्ण हृदय रखने वाले तरुण का अनायास ही सिरच्छेद कर डालते हो। रणोन्माद में यही तो करना पड़ता है तुम्हें।'

'पर वह युद्ध है आचार्य।'

'यह भी वही है वत्स, उसमें शौर्य चाहिए इसमें बुद्धि-कौशल। राजतन्त्र की धवल अट्टालिकाएं और राजमहलों के मोहक वैभव ऐसे ही कदर्य कार्यों से प्राप्त होते हैं। तुम देखोगे वत्स, कि जिस विजय का सेहरा तुम्हारी सेना के सिर बंधता है, वह इन्हीं पिटकों और कांचकूप्यकों से प्राप्त होती है। परन्तु अधिक वितण्डा से क्या, तुम्हें अभी आर्य वर्ष-कार के निकट जाना है। स्मरण रखो, तुम भरतखण्ड के एक महान् व्यक्तित्व के सामने जा रहे हो। आज पृथ्वी पर दो ही राजतन्त्री पुरुष

जीवित हैं। एक कौशाम्बी में यौगन्धरायण और दूसरे राजगृह में वर्षकार।'

'यौगन्धरायण को देख चुका हूँ। आचार्य, कौशाम्बीपति उदयन के साथ मैं देवासुर-संग्राम में सम्मिलित हुआ हूँ। तभी आर्य यौगन्धरायण का कौशल देखा है।'

'तो अब आर्य वर्षकार को देखो आयुष्मान्। परन्तु एक बात याद रखना, मगध साम्राज्य के प्रति एकान्त, एकनिष्ठ रहना और दो व्यक्तियों के प्रति अविनय न करना, एक सम्राट् के प्रति, दूसरे वर्षकार के प्रति।'

'और आचार्यपाद ?'

'मैं तुम्हें अभय देता हूँ, मेरे लिए तुम वही आठ वर्ष के बालक हो।'

'आचार्यपाद का यह आदेश याद रखूंगा, अनुग्रह भी।'

'तो तुम अभी कुण्डनी को लेकर वयस्य वर्षकार के पास जाओ और उनके आदेश का यत्नपूर्वक पालन करो।'

'कुण्डनी कौन ?'

'कल रात जिसे देखा था।'

'वह कौन है ?'

'तुम्हारी भगिनी।'

'इस अज्ञात कुलशील भाग्यहीन की कोई भगिनी भी है ?'

'कहा तो, है। परन्तु इससे अधिक जानने की चेष्टा न करो। गुरुजन के आदेशों पर कौतूहल ठीक नहीं, एक वचन दो सोम।'

'आचार्य की क्या आज्ञा है ?'

'यदि वयस्य वर्षकार तुम्हें किसी अभियान पर कुण्डनी के साथ भेजें तो .....'

'अभियान पर कुण्डनी के साथ ?'

'छी, छी, मैंने कहा था। गुरुजन के आदेश पर कौतूहल नहीं प्रकट करना चाहिए।'

'भूल हुई आचार्य, इस बार क्षमा करें।'

'मैं कह रहा था यदि कुण्डनी के साथ तुम्हें यात्रा करनी पड़े तो प्राण देकर कुण्डनी की रक्षा करना।'

'ऐसा ही होगा आचार्य, किन्तु इस समय राजगृह पर मालवराज चण्डमहासेन के अभियान का भय है। मैं समझता था, यहां मेरी सेवाओं की आवश्यकता होगी।'

'यह मगध महामात्य के विचार का विषय है भद्र।' आचार्य ने उपेक्षा से कहा। फिर आचार्य ने उच्च स्वर से कुण्डनी को पुकारा। कुछ ही क्षण में वही रात वाली बाला आ खड़ी हुई। इस समय वह एक काले लम्बे वस्त्र से अपने को आवेष्ठित किए हुए थी। उसका चम्पे की कली के समान पीतप्रभ मुख, उस पर वही विलासपूर्ण मदभरी आंखें और लालसा से लबालब होंठ, कुंचित भृकुटी विलास, सब कुछ वही रात वाला था। देखकर युवक ने आंखें नीची कर लीं।

आचार्य ने कहा—'सो तुम बिल्कुल तैयार हो? यह तुम्हारा भाई और रक्षक सोम है, इस पर विश्वास करना पुत्री! और यह लो, इसे अत्यन्त सावधानी से प्रयोग करना।' इतना कह कर एक हाथी दांत के मूंठ की छोटी सी किन्तु अति सुन्दर कटार उसे पकड़ा दी। फिर उन्होंने दोनों हाथ उठाकर कहा—'शुभास्ते पन्थानः स्युः।' वे कुछ देर चुप रहे।

मालूम होता है, कहीं से आर्द्रभाव उनके नेत्रों में आगया। उसे क्षण-भर ही में रोक कर कहा—

'सौम्य सोम, तुम्हें एक और आवश्यक काम करना होगा, महामात्य से आदेश लेकर जब राजगृह से प्रस्थान करने लगो, तब प्रस्थान से पूर्व तुम एक बार आर्या मातंगी से साक्षात् करना।'

'आर्या मातंगी कौन?'

आचार्य ने क्रुद्ध नेत्रों से सोम की ओर ताक कर कहा—'फिर कौतूहल? क्या तुमने मेरा आदेश नहीं सुना।'

सोम ने नतशिर होकर कहा—'क्षमा आचार्य, मेरी भूल हुई।'

'तुम्हारे अश्व बाहर तैयार हैं। आचार्य ने रुखाई से कहा—'अब जाओ तुम।'

कुण्डनी ने कटार को वेणी में छिपा कर भूमि में गिर कर आचार्य को प्रणिपात किया। फिर दृढ़ स्वर में कहा—'चलो सोम।'

सोम ने पाषाण कंकाल के समान खड़े आचार्य का अभिवादन किया और मन्त्रप्रेरित सा कुण्डनी के पीछे चल दिया।

१५ :: मगध महामात्य आर्य वर्षकार

मगध महामात्य के सौध, सौष्ठव और वैभव को देखकर सोम हतबुद्धि हो गया। उसने कुभा, कपिशा, काम्बोज, पार्शुक, यवन, पाँचाल, अवन्ती और कौशाम्बी के राजवैभव देखे थे। कोसल की राजनगरी श्रावस्ती और साकेत भी देखी थी, पर इस समय जब उसने कुण्डनी के साथ राजगृह के अन्तरायण के अभूतपूर्व वैभव को देखते हुए महामात्य के सौध के सम्मुख आकर वहाँ का विराट् रूप देखा तो वह समझ ही न सका कि वह जाग्रत है या स्वप्न देख रहा है।

प्रतीक्षा-गृह में बहुत से राजवर्गी और अर्थी नागरिक बैठे थे। दण्डधर और प्रतीहार दौड़-धूप कर रहे थे। राजकर्मचारी अपने-अपने कार्य में रत थे। सोम के वहाँ पहुँचते ही एक दण्डधर ने उसके निकट आकर पूछा—'भन्ते, यदि आप आचार्य शाम्बव्य काश्यप के यहाँ से आ रहे हैं तो आमात्य-चरण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'निस्संदेह मित्र, मैं वहीं से आया हूँ, मेरा नाम सोमप्रभ है।'

'तो भन्ते, इधर से आइए।'

दण्डधर उसे भीतर लेगया। अनेक अलिन्दों और प्रकोष्ठों को पार

कर जब वह आमात्य के कक्ष में पहुँचा तो देखा, आमात्य रजत-पीठ पर झुके हुए कुछ लिख रहे हैं। सोम को एक स्थान पर खड़ा कर दण्डधर चला गया। थोड़ी देर में लेख समाप्त कर आमात्य ने ज्यों ही सिर उठाया, उसे देखते ही सोमप्रभ भयभीत होकर दो कदम पीछे हट गया। उसने देखा—महामात्य और कोई नहीं, रात में आचार्य के गर्भगृह में जिन राज-पुरुष को देखा था वही है।

आमात्य भी सोम को देखकर एकदम विचलित हो उठे। वे हठात् आसन छोड़कर उठ खड़े हुए, परन्तु तत्क्षण ही वे संयत होकर आसन पर आ बैठे।

सोम ने आत्मसंवरण करके खड्ग कोश से निकाल कर उष्णीष से लगा आमात्य को सैनिक-पद्धति से अभिवादन किया। आमात्य पीठ पर निश्चल बैठे और कठोर दृष्टि से उसकी ओर कुछ देर देखते रहे। फिर भृकुटी में बल डालकर बोले—

'अच्छा, तुम्हीं वह उद्धत युवक हो, जिसे छिद्रान्वेषण की गन्दी आदत है।'

'आर्य, मैं अनजान में अविनय और गुरुतर अपराध कर बैठा, किन्तु मेरा अभिप्राय बुरा न था।'

'तुमने तक्षशिला में शस्त्र शास्त्र और राजनीति की शिक्षा पाई है न ?'

'आर्य का अनुमान सत्य है।'

'तब तो तुम्हारे इस अपराध का गौरव बहुत बढ़ जाता है।'

'किन्तु आचार्य ने मेरी मनःशुद्धि को जानकर मेरा अपराध क्षमा कर दिया है, अब मैं आर्य से क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।'

आमात्य बड़ी देर तक होंठ चबाते और दोनों हाथों की उंगलिया ऐंठते रहे, फिर एक मर्मभेदिनी दृष्टि युवक पर डालकर कहा—

'हुआ, परन्तु क्या तुम अपने दायित्व को समझने में समर्थ हो ?'

'मैं आर्य का अनुगत हूँ।'

'क्या कहा तुमने ?'

'मैं सोमप्रभ, मगध महामात्य का अनुगत सेवक हूँ।'

'और मगध साम्राज्य का भी ?'

'अवश्य आर्य, मैं सम्राट् के प्रति भी अपना एकनिष्ठ सेवा-भाव निवेदन करता हूँ।'

आमात्य ने घृणा से होठ सिकोड़ कर कहा—'यह तो मैंने नहीं पूछा, परन्तु जब तुमने निवेदन किया है तो पूछता हूँ—यदि सम्राट् और साम्राज्य में मतभेद हो तो तुम किस के अनुगत होगे ?'

'साम्राज्य के आर्य।'

आमात्य ने मुस्करा कर कहा—'और यदि आमात्य और साम्राज्य में मतभेद हुआ तब ?'

क्षण भर सोमप्रभ विचलित हुआ, फिर उसने दृढ़ स्वर में किन्तु विनम्र भाव से कहा—

'साम्राज्य के आर्य।'

आमात्य की भृकुटी में बल पड़ गए। उन्होंने रूखे स्वर में कहा—

'किन्तु युवक, तुम अज्ञात कुलशील हो।'

'तो मगध महामात्य मेरी सेवाओं को अमान्य कर सकते हैं और अनुमति दे सकते हैं कि मैं आचार्य बहुलाश्व और आचार्यपाद काश्यप से की गई प्रतिज्ञाओं से मुक्त हो जाऊं ?'

'अपने आचार्यों से तुमने क्या प्रतिज्ञाएं की है आयुष्मान् ?'

'मगध के प्रति एकनिष्ठ रहने की, आर्य !'

'क्यों ?'

'क्योंकि मैं मागध हूँ। तक्षशिला से चलते समय बहुलाश्व आचार्यपाद ने कहा था कि तुम मगध साम्राज्य के प्रति प्राण देकर भी एकनिष्ठ रहना और आचार्यपाद काश्यप ने कहा था—महामात्य के आदेश का पनला प्रत्येक मूल्य पर करना।'

'आचार्य ने ऐसा कहा था ?' आमात्य ने मुस्कुरा कर कहा। फिर

कुछ ठहर कर धीमे स्वर से बोले—

'यह यथेष्ट है आयुष्मान् कि तुम मागध हो, अच्छा तो तुम याद रखो—मगध साम्राज्य और मगध आमात्य के तुम एक सेवक हो।'

'निश्चय आर्य।'

'ठीक है, कुण्डनी से तुम परिचित हुए ?'

'वह मेरी भगिनी है आर्य।'

'और वयस्य काश्यप ने तुम्हें उसका रक्षक नियत किया हे।'

'जी हाँ आर्य।'

'मैं तुम्हें अभी एक गुरुतर भार देता हूँ। तुम्हें इसी क्षण एक जोखिम पूर्ण और अति गोपनीय यात्रा करनी होगी।'

'मैं प्रस्तुत हूँ।'

'तो तुम इसी क्षण कुण्डनी को लेकर चम्पा को प्रस्थान करो। तुम्हारे साथ केवल ५ योद्धा रहेंगे। वे मैंने चुन दिए हैं। सभी जीवट के आदमी हैं, वे बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु तुम्हारी यात्रा कोई जान न पाएगा, तथा तुम्हें कुण्डनी की रक्षा भी करनी होगी। उससे भी अधिक और एक वस्तु की।'

'वह क्या आर्य ?'

'यह', वर्षकार ने एक पत्र सोमप्रभ को देकर कहा—'इसे जल्द से जल्द सेनापति चण्डभद्रिक को पहुँचाना होगा। पत्र निरापद उनके हाथ में पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है।'

'आर्य निश्चिन्त रहें।'

'परन्तु यह सहज नहीं है आयुष्मान, राह में दस्यु और असुरों के जनपद हैं। फिर तुम्हें मैं अधिक सैनिक भी नहीं ले जाने देता।'

'वचन देता हूँ, पत्र और कुण्डनी ठीक समय पर सेनापति के पास पहुँच जाएँगे।'

'कुण्डनी नहीं, केवल पत्र। कुण्डनी सेनापति के पास नहीं जायगी। सेनापति को उसकी सूचना भी नहीं होनी चाहिए।'

'ऐसा ही होगा आर्य, किन्तु कुण्डनी को किसके सुपुर्द करना होगा ?'

'यह तुम्हें चम्पा पहुँचने पर मालूम हो जायगा ।'

'जो आज्ञा आर्य !'

आमात्य ने दण्डधर को कुण्डनी को भेज देने का संकेत किया । कुण्डनी ने आमात्य के निकट आकर उनके चरणों में प्रणाम किया । आमात्य ने उसके मस्तक पर हाथ धर कर कहा—

'कुण्डनी ।'

कुण्डनी ने विह्वल नेत्रों से आमात्य की ओर देखा ।

आमात्य ने कहा—'सम्राट के लिए ।'

कुण्डनी उसी भांति स्थिर रही । आमात्य ने फिर कहा—'साम्राज्य के लिये ।'

कुण्डनी फिर भी स्तब्ध रही । आमात्य ने कहा—'मागध जनपद के लिए ।'

कुण्डनी अब भी अचल रही । आमात्य ने कहा—'हाथ दो कुण्डनी ।'

कुण्डनी ने अपना दक्षिण हाथ आमात्य के हाथ में दे दिया ।

आमात्य ने कहा—'काँप क्यों रही हो कुण्डनी ?'

कुण्डनी बोली नहीं । आमात्य ने उसके मस्तक पर हाथ धर कर कहा—'सोम की रक्षा करना, सोम तुम्हारी रक्षा करेगा, जाओ ।'

कुण्डनी ने एक शब्द भी बिना कहे भूमि में गिरकर प्रणाम किया ।

आमात्य ने एक बहुमूल्य रत्नजटित खड्ग तरुण को देकर कहा—'सोम, इसे धारण करो । आज से तुम मगध महामात्य की अंगरक्षिणी सेना के अधिनायक हुए ।'

सोम ने झुककर खड्ग दोनों हाथों में लेकर आमात्य का अभिवादन किया और दोनों व्यक्ति पीठ फेरकर चल दिए ।

आमात्य के मुख पर एक स्याही की रेखा फैल गई । उन्हें प्राचीन स्मृतियाँ व्यथित करने लगीं और वे अधीर भाव से कक्ष में टहलने लगे ।

बाहर आकर सोम ने कहा—'कुण्डनी, अभी मुझे एक मुहूर्त भर राजगृह में और काम है।'

'आर्या मातंगी के दर्शन न ?'

'हाँ, क्या तुम उन्हें जानती हो ?'

'जानती हूँ।'

'तो तुम कह सकती हो वे कौन हैं ?'

'क्या तुम भूल गए सोम, राजनीति में कौतूहलाक्रान्त नहीं होना चाहिए।'

'ओह, मैं बारम्बार भूल करता हूँ। पर क्या तुम भी साथ चलोगी ?'

'नहीं, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति का जाना निषिद्ध है।'

'तब मैं कैसे जाऊंगा ?'

'पिता ने कुछ व्यवस्था कर दी होगी।'

'तब तुम सैनिकों को लेकर दक्षिण तोरण पर मेरी प्रतीक्षा करो और, वहीं मैं आर्या मातंगी के दर्शन करके आता हूँ।'

दोनों ने दो दिशाओं में अपने अश्व फेरे।

सोम आर्या मातंगी के मठ की ओर और कुण्डनी सैनिकों के साथ नगर के दक्षिण तोरण की ओर चल दिए।

१६ :: आर्या मातंगी

नगर के बाहर एक बहुत पुराना सूना मठ था। वह मठ गोविन्द स्वामी के मठ के नाम से प्रसिद्ध था। गोविन्द स्वामी अब नहीं हैं, केवल उनकी गद्दी है। राजगृह के आबाल वृद्ध उस गद्दी की आज भी पूजा करते हैं। गोविन्द स्वामी वेदपाठी ब्राह्मण थे और उनके तप और दिव्य ज्ञान

की बहुत गाथाएं राजगृह में प्रसिद्ध हैं। यह मठ बहुत विस्तार में था। कहते हैं कि जब राजगृह विद्यापीठ की स्थापना नहीं हुई थी तब इसी मठ में रह कर देश-देश के बटुक षड्ंग वेद का अध्ययन करते थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान सम्राट् बिम्बसार के पिता को इन्हीं गोविन्द स्वामी ने अश्वमेघ यज्ञ करा कर सम्राट् की उपाधि दी थी। यह भी कहा जाता है कि राजगृह का शिशुनाग वंश असुरों का है। उन्हें आर्य धर्म में गोविन्द स्वामी ही ने प्रतिष्ठित किया और सर्वप्रथम 'सम्राटेऽयमिति सम्राटोऽयमिति' घोषित करके शिशुनाग वंशी राजा को देवपद दिया। तभी से मगध के सम्राट को 'देव' कहकर पुकारते हैं। सम्राट् के पिता गोविन्द स्वामी की बहुत पूजा अर्चना तथा सम्मान करते थे। वे सदैव पांव-प्यादे उनसे मिलने जाते थे। उन्हीं के जीवन-काल में गोविन्द स्वामी की मृत्यु हुई। उस समय उन्होंने एक अबोध आठ वर्ष की बालिका अपने पीछे छोड़ी। उसे सम्राट के हाथ में सौंप कर कहा—'सम्राट् इसकी रक्षा का भार लें' और सम्राट् ने कहा था—'मेरे पुत्र बिम्बसार के बाद यही कन्या मेरी पुत्री है। राजपुत्री की भांति ही उसका लालन-पालन होगा।' परन्तु गोविन्द स्वामी ने कहा—'नहीं, नहीं सम्राट् ! मातंगी का लालन-पालन ब्राह्मण कन्या की ही भाँति होना चाहिए और उसकी शिक्षा भी उसी प्रकार होनी चाहिए।' गोविन्द स्वामी की इस पुत्री के अतिरिक्त उनका एक शिष्य ब्राह्मण-कुमार था। वह किसका पुत्र था यह कोई नहीं जानता। सभी जानते थे कि गोनिन्द स्वामी के किसी अतिप्रिय स्वजन का वह बालक है। गोविन्द स्वामी के पास वह बहुत छोटी अवस्था से था। उसका नाम वर्षकार था। वर्षकार और मातंगी साथ ही साथ बालकाल में रहे। गोविन्द स्वामी ने बालक वर्षकार को भी, जो उस समय ११ वर्ष का था, सम्राट् को सौंप कर कहा था—'यह मेरे एक अति-प्रिय आत्मीय का पुत्र है, इसके लक्षण राजपुरुषों के हैं और एक दिन यह बालक तुम्हारे साम्राज्य का कर्णधार होगा। इसकी शिक्षा-दीक्षा देखभाल कर सावधानी से करना और इसे मगध का महामात्य बनाना।' परन्तु

गोविन्द स्वामी ने अत्यन्त सतर्कता , से सम्राट् से वचन ले लिया था कि वर्षकार और मातंगी दोंनों ही अन्ततः इसी मठ में उस समय तक रहें, जब तक दोनों का विवाह उपर्युक्त समय पर उपयुक्त पात्रों से न हो जाय। सम्राट् के संदेह करने पर गोविन्द स्वामी ने यह भी कह दिया था कि मातंगी के साथ कदापि वर्षकार का विवाह नहीं हो सकता। परन्तु मातंगी का विवाह उसके वयस्क होने पर उसकी स्वीकृति से ही किया जाना चाहिए।

गोविन्द स्वामी मर गए और सम्राट् ने भृत्यों और उपाध्यायों की व्यवस्था करके वर्षकार और मातंगी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। इस बालक वर्षकार के सम्बन्ध में केवल एक पागल अपवाद करता सुना गया था। वह कभी राजगृह में दिखाई दे जाता और पुकार-पुकार कर कहता—'देखो देखो इस पाखण्डी गोविन्द स्वामी को—इस बालक का मुंह इससे कितना मिलता है।' इसके बाद वह उन्मुक्त हास हँसता कहीं को भाग जाता था। गोविन्द स्वामी इस पागल से बहुत डरते थे। वह राजगृह में आया है, यह सुनकर वे बहुधा विचलित हो जाते थे। बहुत लोग सन्देह करने लगे थे कि हो न हो, इस पागल से इस बालक का कुछ सम्बन्ध अवश्य है। एक बार तो यह अपवाद इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि इसी पागल की परिणीता पत्नी से गोविन्द स्वामी ने जार करके यह पुत्र उत्पन्न किया है। इस पर क्रुद्ध होकर उसने पत्नी को मार डाला है और स्वयं पागल हो गया है। जो हो, सत्य बात कोई नहीं जानता था। मरने के समय जो गोविंद स्वामी ने मातंगी से वर्षकार के विवाह का निषेध किया—इससे लोगों में यह शंका और घर कर गई। परन्तु गोविन्द स्वामी ने सम्राट् से अति गोपनीय रीति से वह बात कही थी, इसी से वह बालक बालिका दोनों ने सुनी भी नहीं। वही आठ वर्ष की बालिका मातंगी और ग्यारह वर्ष का बालक वर्षकार बाल-लीला समाप्त कर किशोर हुए और यौवन के प्रांगण में आ पहुँचे। युवक वर्षकार की तीक्ष्ण बुद्धि, प्रबल धारणा और बलिष्ठ देह, शस्त्र और शास्त्र में उसकी एकनिष्ठ सत्ता देख सभी उसका आदर करते थे। सम्राट् उसे पुत्रवत् समझते और राजवर्गी लोग उसकी अभ्यर्थना

करते। युवराज विम्बसार उसके अन्तरंग मित्र हो गए थे। दोनों बहुधा अश्व पर आखेट के लिए जाते, तथा भाँति भाँति की क्रीड़ा करते। परन्तु उधर भीतर ही भीतर अनंग रंग जमा रहा था। देवी मातंगी का यौवन विकास पा रहा था और दोनों बालसखा परस्पर दूसरे ही भाव से एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो रहे थे। यह देखकर सम्राट् की चिन्ता बढ़ गई। परन्तु उसने युवक युवती से कुछ कहना ठीक नहीं समझा। केवल वर्षकार को राजकाज सीखने के बहाने मठ से हटाकर राजमहालय में बुला कर रख लिया। वर्षकार महालय में रहने लगे, परन्तु इससे दोनों ही प्राणी वियोग विदग्ध रहने लगे। देवी मातंगी का रूप यौवन असाधारण था। निराभरणा तापसी के वेश में उसका शरीर तप्त काँचन की भाँति दमकता था। युवराज विम्बसार भी उस पर मन ही मन विमोहित हो, मठ में अधिक आने जाने लगे थे। परन्तु शीघ्र ही वर्षकार ने ये आँखें ताड़ लीं और एक बार उन्होंने खड्ग नंगा करके कहा—'वयस्य युवराज, मगध का सम्पूर्ण साम्राज्य तुम्हारा है, केवल मातंगी मेरी है, इस पर दृष्टि मत देना। नहीं तो मेरे तुम्हारे बीच यह खड्ग है।' बिम्बसार ने हंसकर और मित्र का हाथ पकड़ कर कहा—'नहीं मित्र, मातंगी तुम्हारी ही रहे। चिन्ता न करो।' पीछे जब वर्षकार को सम्राट् ने राजमहालय में बुला कर रखा, तो युवराज को मातंगी के एकान्त साहचर्य का अधिक अवसर मिल गया। उनके ही अनुग्रह से वर्षकार भी अत्यन्त गुप्तभाव से मातंगी से मिलते रहते थे।

अकस्मात् मातंगी ने देखा कि वह गर्भवती है। वह अत्यन्त भयभीत हो गई। परन्तु गर्भ युवराज और वर्षकार दोनों में से किसके औरस से था, मातंगी ने यह भेद दोनों पर प्रकट नहीं किया। वर्षकार और युवराज दोनों ने मिलकर इस अवस्था को सम्राट् से छिपा लिया और जब शिशु का जन्म हुआ तो वर्षकार ने उसे हठ करके दासी द्वारा कूड़े के ढेर पर फेंक आने को कहा। उसे संदेह था कि वह उसका पुत्र नहीं है। मातंगी ने बहुत निषेध किया, रोई, पीटी। पर वर्षकार ने एक न सुनी।

दासी एक सूप में नवजात शिशु को लेकर कूड़े पर फेंक आई। दैवयोग से उधर ही से राजगृह के महा वैज्ञानिक सिद्ध शाम्बव्य काश्यप जा रहे थे। घूरे पर लाल वस्तु में लपेटी कोई वस्तु पड़ी देखकर और उस पर कौओं को मंडराता देख, उनके मन में यह जानने की जिज्ञासा हुई कि यह क्या है ? निकट जाकर देखा, एक सद्योजात शिशु मुंह में अंगूठा डालकर चूस रहा है, निकट ही स्वर्ण दम्म से भरी एक चमड़े की थैली भी पड़ी है। आचार्य ने शिशु को उठा लिया और उत्तरीय से ढांप कर अपने मठ ले आए, तथा लालन-पालन करने लगे। उन्हें शीघ्र ही यह भी पता लग गया कि वह आर्या मातंगी का पुत्र है, उन्होंने उन पर और युवराज पर यह बात प्रकट भी कर दी। युवराज भयभीत हुए, परन्तु आचार्य ने आश्वासन दिलाया कि चिन्ता न करो। वे यह भेद न खोलेंगे। बालक का भी अनिष्ट न होगा। युवराज बिम्बसार ने आचार्य को बहुत सा स्वर्ण देकर सन्तुष्ट कर दिया। परन्तु वर्षकार के इस ईर्षा-पूर्ण क्रूर कृत्य से मातंगी का हृदय फट गया। उसकी कोमल भावनाओं पर बड़ा आघात हुआ और वह एकान्त में उदासीन भाव से रहने लगी। युवराज भी वर्षकार से भयभीत रहने लगे, क्योंकि उसे युवराज पर अब पूरा सन्देह था। इसी बीच सम्राट् की मृत्यु हो गई। मरने के समय उन्होंने युवराज बिम्बसार और वर्षकार को मृत्यु-शैया के निकट बुलाकर दो बात कहीं। एक यह कि वर्षकार बिम्बसार के महामात्य होंगे। दूसरे अपने राज्य के तीसरे वर्ष बिम्बसार देवी मातंगी का उनकी पसन्द के वर से विवाह करके उन्हें आजीविका को अस्सी ग्राम दे दें। साथ ही एक पत्र गुप्तभाव से युवराज को देकर कहा—इसे तुम अपने राज्यारोहण के तीन वर्ष बाद खोलना। तब मातंगी का विवाह करना।

सम्राट् मर गए। बिम्बसार सम्राट् और वर्षकार उनके महामात्य हुए। वर्षकार अब खुल्लमखुल्ला मठ में जाकर देवी मातंगी से मिलने लगे। मातंगी ने वर्षकार से विवाह करने का आग्रह किया। परन्तु वर्षकार ने कहा—'स्वर्गीय सम्राट् ने हमारे पूज्य पिता गोविन्द स्वामी के

आदेश से यह व्यवस्था की है, कि सम्राट् बिम्बसार अपने राज्यारोहण के तीसरे वर्ष विवाह व्यवस्था करेंगे।' मातंगी मन मारकर रहने लगी। परन्तु उसका चित्त उचाट् रहने लगा। तीन वर्ष बीत गए और अपने राज्यारोहण की तीसरी वर्षगाँठ के दिन सम्राट् ने वह गुप्त पत्र खोला। उसमें लिखा था कि मातंगी वर्षकार की भगिनी है। उन दोनों का परस्पर विवाह नहीं हो सकता। किन्तु मातंगी की सहमति से सम्राट् उपयुक्त पात्र से उसका विवाह कर दें और अस्सी ग्राम उसकी आजीविका को दे दें।

वर्षकार और बिम्बसार दोनों ही भीतचकित रह गए। भय का सबसे बड़ा कारण यह था कि मातंगी इस समय फिर गर्भवती थी और यह स्पष्ट था कि यह गर्भ वर्षकार का था। अतः इस दारुण और हृदय-विदारक समाचार को उसे सुनाना सम्राट् ने ठीक नहीं समझा और उन्हें समझा-बुझा कर जलवायु-परिवर्तन के लिए वैशाली भेज दिया। कुछ दिन बाद एक कन्या को गुप्त रूप से जन्म देकर और स्वस्थ होकर मातंगी राजगृह में आईं और तभी उन्हें सत्य बात का पता चला। सुनकर वे एक बारगी ही विक्षिप्त हो गईं। उन्होंने मठ के सभी राजसेवकों को पृथक् कर दिया और कठोर एकान्तवास ग्रहण किया। वर्षकार का मठ में आना निषिद्ध करार दे दिया गया। सम्राट् बिम्बसार से भी मिलने से उन्होंने इन्कार कर दिया, तथा अपने विवाह से भी। तब से किसी ने भी देवी मातंगी के दर्शन नहीं किए, किसी ने भी उन्हें नहीं देखा, तथापि उनका नाम अब भी राजगृह में आर्या मातंगी के नाम से घर-घर सम्मान के साथ लिया जाता था। वे एक पूर्ण ब्रह्मचारिणी तपस्विनी प्रसिद्ध थीं।

वर्षकार ने भी ग्लानि के मारे विवाह नहीं किया। आज आर्य वर्षकार की आयु साठ वर्ष की हो गई, तथा देवी मातंगी भी पचास को पार कर चुकीं। वर्षकार का तेज प्रताप दिगन्त में व्याप्त हो गया। वे मगध के प्रतापी महामात्य और विश्व के अप्रतिम राजनीति-विशारद प्रसिद्ध हुए। साथ ही किसी ने उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य पर भी सन्देह नहीं किया। देवी

मातंगी के साथ उनके तथा सम्राट् के सम्बन्ध की बात तथा उनके एक पुत्र और एक पुत्री की गुप्त जन्मकथा आचार्य शाम्बव्य काश्यप को छोड़ कर और कोई जानता भी नहीं। सोमप्रभ मातंगी के गर्भ से जन्मे अवैध पुत्र हैं, यह बात आचार्य काश्यप, सम्राट् और स्वयं वे ही जानते हैं। परन्तु वे सम्राट् के पुत्र हैं या वर्षकार के, यह केवल मातंगी ही जानती है। मातंगी की पुत्री कौन है, कहां है, यह बात एकमात्र आर्य वर्षकार ही जानते हैं, दूसरे नहीं। आर्य वर्षकार ने देवी मातंगी से एक बार मिलने का बहुत अनुनय-विनय किया था, परन्तु मातंगी ने भेंट करना स्वीकार नहीं किया। लाचार वर्षकार मन मारकर बैठे रहे। जो ग्राम देवी मातंगी को राज्य से दिए गए थे, उनकी आय सार्वजनिक कार्यों में खर्च करने की उन्होंने व्यवस्था की और स्वयं अत्यन्त निरीह भाव से रहने लगीं।

सोमप्रभ ज्योंही मठ के द्वार को पार कर भीतर जाने लगे, वहाँ का सुनसानपन और निर्जन भाव देखकर उनका मन कैसा कुछ होने लगा। जैसे शताब्दियों से यहाँ कोई नहीं रह रहा हो। वे लता-गुल्मों से भरी टेढ़ी तिरछी वीथियों को पार कर अन्ततः एक पुष्करिणी के किनारे जा पहुँचे। पुष्करिणी में शतदल कमल खिला था, उसकी भीनी सुगन्ध वहाँ व्याप्त हो रही थी। पुष्करिणी के किनारे पर सघन वृक्षों की छाया थी, उसी शीतल छाया में क्षण भर सोमप्रभ चुपचाप खड़े रहे। वे सोच रहे थे, किसलिए आचार्यपाद ने मुझे आर्या मातंगी के पास भेजा है।

एकाएक पीछे से पदशब्द सुनकर वे चमक उठे, उन्होंने देखा एक वृद्धा स्त्री जल का खड़ा लिए आ रही है। उसने युवक को देखकर आश्चर्यचकित होकर कहा—'तुम कौन हो और यहां कैसे चले आए? क्या तुम नहीं जानते, आर्या मातंगी की आज्ञा से यहाँ किसी भी मनुष्य का आना निषिद्ध है?'

'जानता हूं भद्रे, परन्तु मैं इच्छापूर्वक ही आया हूं। मैं आर्या मातंगी के दर्शन किया चाहता हूं।'

'यह सम्भव नहीं, आर्या किसी को दर्शन नहीं देतीं।'

'परन्तु भद्रे, मैं आचार्यपाद काश्यप की आज्ञा से आया हूं, मेरा नाम सोमप्रभ है।'

दासी ने अवाक् होकर क्षण भर युवक को देखा, फिर उसने भयभीत दृष्टि से युवक को देखकर कहा—'आचार्य काश्यप ने ! तब ठहरो भद्र, मैं देवी से जाकर निवेदन कर दूं।' वह बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा किए चली गई।

सोमप्रभ एक शिलाखण्ड पर बैठकर कुछ सोचने लगे—वे सोच रहे थे, यह कैसा रहस्य है।

कुछ क्षणों बाद ही दासी ने आकर कहा—'आर्या, तुमसे भेंट करेंगी, मेरे साथ आओ।' सोमप्रभ धीरे-धीरे वृद्धा के पीछे-पीछे चले। सामने एक स्वच्छ छोटा सा कुटीर था, उसी में एक चटाई पर आर्या मातंगी अधोमुखी बैठी थीं। पदशब्द सुनते ही उन्होंने आँख उठाकर देखा, उनके होठ कम्पित हुए, उन्होंने दोनों हाथों से आँखों की धुन्ध पोंछी, फिर अस्फुट स्वर से आप ही आप कहा—'कौन तुम, सोम···वही हो, वही, पहचानती हूं मेरे वच्चे।' और वे उसी प्रकार युवक की ओर दौड़ी जैसे गाय वछड़े की ओर दौड़ती है। उन्होंने युवक को छाती से लगा लिया। उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा वह चली।

सोमप्रभ हतप्रभ होकर विमूढ़ हो गए। एक अचिन्तनीय आनन्द ने उनके नेत्रों को भी प्लावित कर दिया उन्होंने प्रकृतिस्थ होकर कहा—

'आर्या मातंगी, अकिञ्चन सोम आपका अभिवादन करता है।'

'नहीं, नहीं, आर्या मातंगी नहीं, मां कहो वत्स !'

सोमप्रभ ने अटकते हुए कहा—'किन्तु आर्ये·····'

'मां कहो वत्स, मां कहो।'

'आर्ये, हतभाग्य सोम अज्ञात कुलशील, अज्ञात कुलगोत्र है। कल्याणी मातंगी उसे इतना गौरव क्यों दे रहीं हैं ?'

'मां कहो, प्रिय मां कहो। जीवन के इस छोर से उस छोर तक मैं यह शब्द सुनने को तरस रही हूँ।' मातंगी के स्वर, भावभंगी और करुण

वाणी से विवश हो अनायास ही वरवस सोम के मूंह से निकल गया··· मां·····'

'आप्यायित हो गई मैं, मरकर जी गई मैं, वत्स सोम अभी और कुछ देर हृदय से लगे रहो। अरे, मैंने २४ वर्ष तुम्हारी प्रतीक्षा की है भद्र !'

'किन्तु आर्ये।'

'मैं कौन हूं, यही जानना चाहते हो ? वच्चे, मैं अभागिनी तुम्हारी मां हूँ।'

'आप आर्ये मातंगी ? देवपूजित द्विज गोविन्द स्वामी की महाभागा पुत्री, देवी मातंगी मुझ भाग्यहीन की मां हैं ?'

'निश्चय वत्स, यह ध्रुव सत्य है, क्या आचार्य ने कहा नहीं ?'

'नहीं, उन्होंने केवल इतना ही कहा था, कि देवी के दर्शन करना अवश्य।'

'अभी मुहूर्त भर प्रथम उन्होंने मुझे संदेश भेजा था, कि तुम्हारा पुत्र आया है। वह तुमसे मिलने आ रहा है। सो सोम, तनिक मैं तुम्हें देखूं। मेरे सामने खड़े तो हो जाओ प्रिय !' और मातंगी अवोध वालक के समान सोम के सम्पूर्ण शरीर पर हाथ फेरने लगीं।

सोम ने धीरे-धीरे झुककर मस्तक मां के चरणों में टेककर कहा—

'माँ, आज मैं सनाथ हुआ। परन्तु मुझे अधिक समय नहीं है, मुझे एक दुरूह यात्रा करनी है। इतना वता दो मेरे पिता कौन हैं ?'

'पिता ?' मातंगी के होठ भय से सफेद हो गए और उनका चेहरा पत्थर की भाँति भावहीन हो गया। उन्होंने डूवती वाणी से कहा—'पुत्र, उनका नाम लेना निषिद्ध है।'

'क्यों माँ ?'

'क्या तुमने मेरे आजन्म एकान्तवास को नहीं सुना ?'

'सुन चुका हूँ आर्ये ?'

'तो बस यही यथेष्ठ है।'

'मैं क्या उनके विषय में कुछ भी नहीं जान सकता ?'

'क्या जानना चाहते हो वत्स ?'

'उनकी पद-मर्यादा ।'

'वे विश्वविश्रुत विभूति के अधिकारी हैं ।'

'जीवित हैं ?'

'हाँ !'

'तो अभी यही यथेष्ठ है, माँ, शेष सब मैं अपने कौशल से जान लूंगा ।'

'परन्तु पुत्र मेरा आदेश मानना । इधर उद्योग मत करना, इसमे तुम्हारा अनिष्ट होगा ।'

'माता की जैसी आज्ञा, पर अब मैं जाऊंगा आर्ये ।'

'क्या इतनी जल्दी भद्र, अभी तो मैंने तुम्हें देखा भी नहीं ।'

'शीघ्र ही मैं लौटूंगा आर्ये ।'

'अभी कुछ दिन रहो पुत्र !'

'नहीं रह सकता, आदेश है ।'

'किसका भद्र ?'

'आर्य वर्षकार का ।'

मातंगी चौंककर दो कदम हट गई । उसने कहा—'अच्छा, अच्छा, समझी । तो तुम वहाँ तक पहुँच चुके ?'

'आर्ये, आज प्रातः ही मुझे उनका दर्शनलाभ हुआ ।'

'तो अब कहाँ जा रहे हो भद्र ?'

'चम्पा ।'

'एकाकी ही ?'

'नहीं, भगिनी भी है मां, आप तो जानती हैं, मेरी एक भगिनी भी है ।'

मातंगी ने काँपकर कहा—'किसने कहा भद्र ?'

'आचार्यपाद ने ।'

'कौन है वह ?'

'कुण्डनी।'

'कुण्डनी ? सर्वनाश। तुम उसके साथ जा रहे हो पुत्र, ऐसा नहीं हो सकेगा।'

'क्यों मां, क्या बात है ?'

'नहीं, वह मैं नहीं कह सकूंगी, कहते ही शिरच्छेद होगा। किसने तुझे कुण्डनी के साथ जाने को कहा है ?'

'आर्य वर्षकार ने।'

'इन्कार कर दो। कह दो देवी मातंगी की आज्ञा है।'

'आपकी आज्ञा क्या मगध महामात्य वर्षकार सुनेंगे ?'

'उन्हें सुननी होगी। नहीं तो मैं स्वयं आज २८ वर्ष बाद पुष्करिणी के उस पार·····'

'देवी मातंगी !' सामने से किसी ने पुकारा। दोनों ने देखा आचार्य काश्यप हैं। उन्होंने कहा—'कोई भय नहीं है, देवी मातंगी ! उसे जाने दो।'

'तुमने आचार्य उसे कुण्डनी के सुपुर्द किया है ?'

'नहीं, मातंगी आर्ये, कुण्डनी राजकार्य से केवल उनकी सुरक्षा में चम्पा जा रही है।'

'सोम क्या जानता है कि कुण्डनी कौन है ?'

'वह जानता है कि वह उसकी भगिनी है।'

'यह क्या यथेष्ठ है ?'

'है, आप निश्चिन्त रहिए।' फिर उन्होंने घूमकर कहा—'जाओ सोम, विलम्ब मत करो।'

आर्या ने आकुल नेत्रों से पुत्र को देखकर कहा—

'एक क्षण ठहरो, क्या तुमने महामात्य से कुछ प्रतिज्ञा भी की है ?'

'की है, आर्ये।'

'कैसी ?'

'एकनिष्ठ रहने की।'

'किसके प्रति ?'

'साम्राज्य के ।'
'और'
'मगध महामात्य के ।'
'और ?'
'और किसी के प्रति नही ।'
'और किसी के प्रति नहीं ?'
'नहीं ।'
'सम्राट् के प्रति नहीं ?'
'नहीं ।'

आर्या के नेत्रों में भय की भावना दौड़ गई, उनके होठ काँपे। आचार्य के रूखे होठों पर मुसकान फैल गई, उन्होंने आगे बढ़कर कहा—'बस, अब और अधिक नहीं, देवी मातंगी किसी अनिष्ट की आशंका न करें। जाओ, तुम सोमभद्र ।'

१७ : : महा मिलन

अम्बपाली अपने उपवन के लताकुंज में बैठी गहन चिन्तन में व्यस्त थी। वह सोच रही थी-जीवन के तत्व को। सप्तभूमि प्रासाद में आकर, वहाँ की अतुल सम्पदा, कोमल सुखसाधन, सान्ध्यवेला में आने वाले कामुक तरुणों के गर्मागर्म प्रेम-सम्भाषण, उनके प्रति अपने अनुराग का प्रदर्शन, हर्षदेव का प्रेमोन्माद और अपने पूर्ण जीवन का सम्पूर्ण वैशाली के प्रति विद्रोह। वह प्रत्यक्ष देख रही थी कि प्रारम्भ में जिस सुख-सज्जा को तुच्छ समझा था, वह उसके जीवन की अब अनिवार्य सामग्री होगई है। उसके रूप की दोपहरी खिली थी और इसी अल्पकाल में उसके तेज,

माधुर्य, विलास और अलौकिक बुद्धि-वैचित्र्य की कहानियाँ देश देशान्तरों में फैल चुकी थीं। उसकी आंखों के सामने अब अपने बाल्यकाल का वह चित्र कभी-कभी आ जाता था, जब वह एक साधारण कंचुक के लिए रोई थी। वह अपने पिता के अकपट स्नेह की याद कर बहुधा आँसू बहाती। परन्तु आज उसके अंग यौवन के अमृत से स्नात होकर ऐसी सुषमा बखेर रहे थे, कि बूढ़े और युवा, नगर के चौकीदार, चाण्डाल और कर्मकर से लेकर परिषद् के संभ्रान्त सदस्य, तरुण सामन्तपुत्र और सेट्ठि-पुत्र, नागरिक, देश देशान्तर के श्रीमन्त, नरपति और सम्राट् जिसे एक आँख देखने भर के लिए प्राण न्यौछावर करने को तैयार थे। अपनी इस विजय पर उसे गर्व था। वह जब शिविका पर सवार हो, राजपथ पर निकलती, तो नागरिक उत्सव मनाते। नित्य प्रातःकाल से सन्ध्या तक, देश देशान्तरों से आए हुए विदेशी और वैशाली के नागरिक उसके प्रति अपना उत्कट प्रेम प्रकट करने के लिए सप्तभूमि प्रासाद के तोरण पर बहुमूल्य सुगन्धित पुष्पों की जो मालाएं चढ़ाते थे, उससे नित्य तोरण पट जाता था। अपने प्रेमियों से उसे जो अतुल धन मिलने लगा था, उसका गिनना असम्भव था। उसके कोषरक्षक तराजू से स्वर्ण तोला करते थे। कृपण वृद्ध सेट्ठियों और सम्राटों की जीवन भर की संचित सम्पदा उसके ऊपर लुटाई जाती थी। प्रेमियों के प्रेम-संदेश और मिलने वालों की प्रार्थनाओं से उसे सांस लेने का अवकाश न था। वह सोचने लगती—वह क्या से क्या हो गई। वह कभी-कभी अपने प्रेमियों की बात सोचने लगती, जिनमें से प्रत्येक उसे आकर्षित करने में असमर्थ सिद्ध हुआ था।

उसने देवताओं, प्रेतों, तान्त्रिकों, सिद्ध और योगियों के विषय में बहुत कुछ सुना था। वह इन विषयों पर सोचती रहती। कभी-कभी मित्रों से वार्तालाप करती। मारण, उच्चाटन, वशीकरण के प्रति कौतूहल प्रकट करती। अन्त में सबसे विरक्त हो, अनमनी हो, वह एकान्त में इसी कुंज में आ आत्मचिन्तन करती। उसके यहाँ ओझे सयाने,

तांत्रिक बहुधा आते, भविष्य वर्णन करते। वह स्वयं कभी-कभी प्रसिद्ध सिद्धों से मिलने, भविष्य पूछने जाती। बहुत लोग उससे कहते—जीवन का उद्देश्य सुख भोग है। आओ जीवन की बहार लूटें। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने वाली ज्ञान-अनुभूति ही सत्य है और सब असत्य है। मिथ्या है। परन्तु इन विचारों से, ऐसे लोगों से वह शीघ्र ही ऊब जाती। उनका तिरस्कार कर बैठती। जीवन के रहस्यों को समझने के लिए उसने दर्शनों और उसके तत्त्वों का अध्ययन किया था, पर उनसे उसे शान्ति नहीं मिली थी। उसका सर्वप्रिय विषय उसकी बाल्यावस्था की स्मृति थी, जो दिन-दिन उससे दूर होती जाती थी और अब सत्य यह था कि उसके अधर धधकती अग्नि के समान दाहक और मधुर से मधु थे। इन्हीं सब बातों पर विचार करते-करते वह कभी-कभी उत्तेजित होकर चिल्लाने लगती—'नहीं नहीं, मैं किसी से प्रेम नहीं करती, नहीं कर सकती, किसी व्यक्ति से भी नहीं। मैं उन सबसे घृणा करती हूँ जो आनन्दभोगी हैं। यह सप्तभूमि प्रासाद मेरे जीवन पर बोझ है। यह सान्ध्यमित्र मेरे हृदय पर रेंगने वाले घृणित कीट हैं, वह उनके स्त्रैण चरित्र और स्त्रैण वेशभूषा को स्मरण कर घृणा से होठ सिकोड़ लेती। कभी-कभी विचलित होकर चिल्ला उठती।

फिर उसका ध्यान अपने अप्रतिम अंग—सौष्ठव पर जाता, वह अपने अद्भुत रूप को पुष्करिणी के स्वच्छ जल में निहार कर कभी-कभी बहुत प्रसन्न हो जाती। उस समय वे सब वासनाएं, जिनकी उसे चाट पड़ गई थी, एक-एक उसके निकट आकर उसके अंग-प्रत्यङ्ग में पैठ जाती थीं और वह मन्द मुस्कान के साथ कहती—कोई हानि नहीं—इसी रूप की ज्वाला में, मैं विश्व को भस्म करूंगी। इस अछूते रूप को सदा अछूता रखूंगी, इस सुषमा की खान गात्र को किसी को छूने भी न दूंगी, विश्व इसे भोग न सकेगा, वह इसकी पूजा ही करे। उसका हृदय गर्व और तेज से भर जाता। वह अब उन कवियों, चित्रकारों और कलाकारों का स्मरण करती, जिनकी कृति से वह प्रभावित हो चुकी थी और उन पर एक

संतोष की विचारधारा दौड़ा कर बहुधा उसी लताकुञ्ज में उसी श्वेत मर्मर की श्वेत शीतल पटिया पर वह सो जाती।

उपवन में देश-विदेश के बहुत से वृक्ष लगे थे। उन्हें देश-देशान्तरों से लाने, उनकी प्रकृति के अनुकूल जलवायु में उन्हें पालने में बहुत द्रव्य खर्च हुआ था। उनकी सिंचाई के लिए निर्मल मीठे जल की एक कृत्रिम उपकुल्लिका पुष्करिणी से निकल कर उपवन के चारों ओर बहाई गई थी। कामपुष्करिणी में कुशल शिल्पियों ने कई एक कृत्रिम पहाड़ियों, स्तम्भचिन्हों और कला की प्रतीक मूर्तियों का सर्जन किया था, जिनका प्रतिविम्ब पुष्करिणी के मोती के समान जल में भव्य प्रतीत होता था। जिस लताकुञ्ज में अम्बपाली बैठी थीं, उसमें जो प्रकाश आता था, वह पानी की पतली चादर से छन कर मद्धिम और रंगीन छटा धारण करता था। कुंज में एक हाथी दाँत का महार्घ छपरखट भी था जिसकी दुग्धफेन सम शैया पर कभी-कभी अम्बपाली सुख नींद लेती थी। रत्नजटित स्वर्ण के धूपदानों में वहाँ कीमती सुगन्ध द्रव्य सदा जलते रहते थे। बड़े-बड़े आधारों में दुर्लभ रंग विरंगे पौदे सजाकर रखे गए थे। कुछ के फूल ऊदे रंग के थे, कुछ के पीत और कुछ के नील वर्ण। ऐसा ही वह अद्भुत लताकुञ्ज और उपवन था।

एकाएक आँख खुलने पर उसने देखा—उस सुरक्षित लताकुञ्ज में एक प्रभावशाली पुरुष उसके सम्मुख खड़ा है। उसकी अवस्था तरुणाई को उलंघन करने लगी है—परन्तु उसका गौर वर्ण, तेजस्वी मुख सूर्य के समान देदीप्यमान है। उसके सघन काले बाल काकपक्ष के रूप में पीछे को संवारे हुए हैं। प्रशस्त वक्ष और प्रलम्ब पुष्ट बाहु बहुमूल्य दुकूल से आवृत है। अधोअंग में एक कोमल पीत कौशेय सुशोभित है। उसकी सघन काली मूंछें उसके दर्शनीय मुख पर अद्भुत शोभा विस्तार कर रहीं हैं। कानों में हीरक कुण्डल और कण्ठ में गुलाबी आभा के असाधारण दुर्लभ मुक्ता सुशोभायमान हैं। उसके बड़े-बड़े काले चमकीले नेत्रों और उत्फुल्ल सरस ओष्ठों से आनन्द विलास और प्रेम की अटूट धारा प्रवाहित हो रही है।

उसके एक हाथ में महार्घ अप्रतिम वीणा है। अम्बपाली हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसने आश्चर्यचकित होकर उस पुरुषपुंगव की ओर देखा। अनायास ही उस पर उस पुरुष का प्रभाव छा गया। वह अम्बपाली, जो आज तक किसी पुरुष से प्रभावित नहीं हुई थी, इस पुरुष को देख कर क्षण भर जड़-स्तम्भित रह गई। पुरुष ने ही पहले कहा—

'जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली प्रसन्न हों। क्या मैंने तुम्हारे इस एकान्त विश्राम में व्याघात करके तुम्हें रुष्ट कर दिया है ?'

'नहीं, नहीं। परन्तु आप भन्ते, यहां इस सुरक्षित कोष्ठ में विना अनुमति आ कैसे पहुंचे ? क्या प्रहरी सो गए हैं ? या आपने उन्हें अपनी माया से विमोहित कर दिया है ?'

पुरुष ने हँसकर कहा—'नहीं कल्याणी, मैं अदृश्य होकर आकाशमार्ग से आया हूँ। वेचारे प्रहरी मुझे देख नहीं सके।'

अम्बपाली आश्चर्य मूढ़ होकर बोली—'किन्तु आप हैं कौन भन्ते ? क्या आप गन्धर्व हैं ?'

'नहीं भद्रे, मैं मनुष्य हूँ।'

'परन्तु आपका ऐसा आगमन ?'

'मुझे सिद्धियां प्राप्त हैं। मैं लोपाञ्जन विद्या और खेचर विद्या जानता हूँ।'

अम्बपाली खड़ी हो गई। उसने पूछा—'आप साधारण पुरुष नहीं हैं महानुभाव, आप क्या कोई देव, दानव, यक्ष मुझे ठगने आए हैं ?'

'नहीं, जनपद कल्याणी, मैंने तुम्हारे अप्रतिम रूप, लावण्य, असह्य तेज, दर्प और लोकोत्तर प्रतिभा की चर्चा अपने देश में सुनी थी। इसी से, केवल तुम्हें देखने मैं वहुत दूर से छद्मवेश में आया हूं। अव मैंने जाना कि सुनी हुई वातों से भी प्रत्यक्ष वहुत वढ़कर है। तुम सी रूपसी वाला कदाचित् विश्व में दूसरी नहीं है। अम्बपाली का कौतूहल कुछ कम हो गया था और उसका साहस लौट आया था। उसने अपने रूप-लावण्य की प्रशंसा सुन कहा—भन्ते, औरों की प्रशंसा करने और अपना

गुप्त प्रेम प्रदर्शन करने में आप वैसे ही कुशल हैं, जैसे अदृश्यरूप से आकाश मार्ग द्वारा किसी स्त्री के एकान्त-आवास में पहुँच जाने में। किन्तु……'

'किन्तु भद्रे अम्बपाली, मेरे हृदय में तुम्हारा असाधारण प्रेम बहुत प्रथम घर कर गया था। तुम मुझे जीवन और आत्मा से भी अधिक प्रिय हो।'

'भन्ते, जरा सम्हल कर इस प्रेम-मार्ग पर कदम रखिए। कदाचित् वहां आपकी खेचर सिद्धि और लोपाञ्जन माया काम न दे सकेगी।'

'भद्रे, प्रेम के सत्य मार्ग में सारी ही सिद्धियाँ तुच्छ हैं। किन्तु मेरा प्रेम वासना की आग में जलता हुआ नहीं है। मैं तुम्हें फलों की सुवासित मदिरा की अपेक्षा अधिक नित्य, अमर और अखण्ड समझता हूं, देवी अम्बपाली।

'ओह, तो भन्ते! आपका यह प्रेम कुछ अलौकिक सा प्रतीत होता है।' अम्बपाली ने मुस्कराकर कहा। 'भन्ते, इस कोरी प्रशंसा से मेरे हाथ क्या आएगा?'

'प्रेम।'

'प्रेम का व्यवसाय करते यद्यपि मुझे अधिक काल नहीं बीता, फिर भी मैं अब और किसी नवीनता की आशा नहीं करती। आपकी बातें दार्शनिकों जैसी हैं, किन्तु भन्ते, प्रेम का रहस्य दार्शनिकों की अपेक्षा प्रेमीजन ही अधिक जानते हैं।'

'वैशाली की जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली से मैं ऐसे ही प्रत्युत्तर की आशा करता था। परन्तु भद्रे, तुम्हें वशीभूत करने की एक और वस्तु मेरे पास है।'

'वह क्या भन्ते?'

भद्र पुरुष ने महार्घ वीणा का आवरण उठाया। उस पर आश्चर्यजनक हाथी-दाँत का काम हो रहा था और वह दिव्य वीणा साधारण वीणाओं से अद्भुत थी। अम्बपाली ने आश्चर्यचकित होकर कहा—

'निश्चय यह वीणा अद्भुत है। परन्तु भन्ते, आप मेरा मूल्य इससे आँकने का दुस्साहस मत कीजिए।'

'इसका तो अभी फैसला होगा, जब इस वीणावादन के साथ देवी अम्बपाली को अवश नृत्य करना होगा।'

'अवश नृत्य ?'

'निश्चय।'

'असम्भव।'

'निश्चय।'

आगन्तुक रहस्यमय पुरुष वहीं श्वेतमर्मर की पीठ पर बैठ गए। उन्होंने वीणा को झंकृत किया। अम्बपाली मूढ़वत् बैठी रही। एक ग्राम, दो ग्राम पर जब उस आश्चर्य पुरुष की उंगलियाँ नृत्य करने लगीं और वातावरण में वीणा का स्वर भर गया—तो अम्बपाली जैसे मत होने लगी। उसे अपने चारों ओर एक मूर्तिमान् संगीत, एक प्रिय सुखस्पर्शी घोष, एक सुषमा से ओतप्रोत वातावरण प्रतीत होने लगा।

वीणा बज रही थी। उसकी गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। अम्बपाली को ऐसा प्रतीत हो रहा था—तंतुवाद्य के कम्पन से जो स्वर-लहरी उत्पन्न हो रही है, वह उसके चर्मकूपों को भेद कर उसके रक्त में प्रविष्ट हो रक्त को उत्तप्त कर रही है। उसका मुंह लाल हो गया, नेत्रों में मद छा गया, गात्र कांपने लगा। वह अपनी सम्पूर्ण सावधानता से उस पुरुषपुंगव के असाधारण वीणावादन को विस्फारित नेत्रों से देखती रही।

एकाएक ही वादक ने उंगलियों की गति में हेरफेर किया और तब अम्बपाली ने मूढ़ होकर देखा—वीणा एक ही काल में तीन ग्रामों में बज रही है। ऐसा तो न देखा, न सुना था। कुछ ही क्षणों में अम्बपाली विवश हो गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उसके शरीर में रक्त के स्थान पर जलती हुई मदिरा बह रही है और अब वह स्थिर नहीं रह सकती। वह टकटकी बांधकर वीणा पर विद्युत् वेग से थिरकती उंगलियों को देखते-देखते अचेत सी हो गई। अब उसे ऐसा प्रतीत हुआ, उसका

मृदुल गात्र ही वीणा के रूप में झंकृत हो रहा है। उसी अचेतावस्था में उसने उठकर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। पहले मन्द, फिर तीव्र, फिर तीव्रतर और अब उन उंगलियों में और उन चरणों में प्रगति की होड़ बदी थी। नृत्य और वादन एकीभूत हो गया था। वादक की उंगलियाँ और नर्तकी के चरण-चाप एक मूर्त हो गए थे। कौन नृत्य कर रहा है, कौन वीणावादन और कौन उस अलौकिक दृश्य को देख सुन रहा है, यह नहीं कहा जासकता था। धीरे-धीरे अम्बपाली अवश होने लगी और वादक की उंगलियां भी विराम पर आने लगीं। अम्बपाली धीरे से एक लतागुल्म पर झुक गई और महापुरुष ने महार्घ वीणा रख कर उसे हाथों ही में उठा कर श्वेत मर्मर की पीठिका पर लिटा दिया।

धीरे-धीरे अम्बपाली ने आंखें खोलीं। आगन्तुक महापुरुषों ने मुस्करा कर कहा—'देवी अम्बपाली की जय हो।'

'मैं परास्त हो गई, भन्ते।'

'भद्रे, प्रेम में जय पराजय नहीं होती। वहां तो दो का भेद नष्ट होकर एकीकरण हो जाता है।'

'किन्तु भन्ते, जो कुछ अनुभूति मुझे इस समय हुई, वह अभूतपूर्व है। क्या आप स्वयं गन्धर्वराज चित्ररथ अलकापुरी से मुझे कृत-कृत्य करने पधारे हैं?'

'भद्रे, मैं उदयन हूँ।'

'आप कौशाम्बीपति महाराज उदयन हैं? देव, अज्ञान में हुई मेरी अविनय को क्षमा करें।'

'सत्य प्रेम में अविनय विनय नहीं होता है, भद्रे।'

'देव, कैसे तीन ग्रामों में एक ही काल में वीणावादन करने में समर्थ हैं। ऐसा त्रिलोकी में कोई पुरुष नहीं कर सकता है।'

'और न त्रिलोकी में कोई जीवधारी वैशाली की जनपद कल्याणी अम्बपाली के समान तीन ग्रामों की ताल पर नृत्य कर सकता है।'

'किन्तु देव, वह नृत्य मैंने अवश अवस्था में किया है। क्या अब मैं फिर वैसा ही नृत्य कर सकती हूँ ?'

'यदि फिर वैसा ही वीणावादन हो तो।'

'किन्तु देव, इस वीणा से तो जड़ जंगम सभी अवश हो जाते है।'

'तुम्हारे अप्रतिम नृत्य से भी कल्याणी।'

'तो देव, आपको छोड़कर और भी कोई मनुष्य इस प्रकार वीणा वादन कर सकता है ?'

'केवल गन्धर्वराज चित्ररथ, जिन्होंने यह वीणा अपनी सम्पूर्ण निधा सहित मुझे दी थी।'

'देव, कौशाम्बीपति, क्या मैं फिर एक बार आपसे वैसी ही वीणा-वादन की प्रार्थना कर सकती हूँ ?'

'नहीं भद्रे, परन्तु अब तुम दिव्य नृत्य कभी न भूलोगी। जब भी तीन ग्राम में यह वीणा कोई बजाएगा, तुम ऐसा ही अलौकिक नृत्य कर सकोगी।'

'तो देव, आप क्या अपनी शिष्या अम्बपाली का आज आतिथ्य ग्रहण करेंगे ?'

'नहीं भद्रे, मैं जैसे आया था, वैसे ही गुप्त भाव से चला जाऊंगा।'

'क्या अम्बपाली आपका कोई प्रिय कर सकती है ?'

'वह कर चुकी। मैं अपना प्राप्तव्य पा चुका।'

'किन्तु देव·····।'

'ओह भद्रे, क्या मैंने नहीं कहा था, कि मेरा प्रेम वासना की अग्नि से जलता हुआ नहीं है। मैंने तुम्हें देखकर नेत्र सार्थक किए और तुम्हारा वह देवदुर्लभ नृत्य अपनी वीणाध्वनि के साथ अंगीभूत कर लिया।'

'देव कौशाम्बीपति, जब सम्पूर्ण जनपद मेरे चरणों में आँखें बिछाता है, लाखों प्राणधारी इन चरणों का चुम्बन करने को अपने प्राण भेंट देने को उत्सुक हैं, मेरी प्राप्ति के लिए जनपद में होड़, ईर्षा, निराशा और

अभिलाषा का इतना संघर्ष हुआ है, कि इसके बोझ में पर्वत भी घसक जायगा, तब क्या मैं आपका कुछ भी प्रिय नहीं कर सकती ?'

'क्यों नहीं भद्रे अम्बपाली, यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो, तो मेरी यह साधारण स्नेह-भेंट स्वीकार करो, जिसे एक बार तुम अस्वीकार कर चुकी हो ।'

यह कहकर महाराज उदयन ने अपने कण्ठ से वह अलौकिक मोतियों की माला उतारकर अम्बपाली के गले में डाल दी ।

अम्बपाली ने कहा—'अनुगृहीत हुई, किन्तु क्या मैं अपना कौतूहल निवेदन करूं ?'

'कहो भद्रे ।'

'क्या मुझसी कोई स्त्री आपने देखी है ?'

'देखी है, पर तुमसे श्रेष्ठ नहीं कल्याणी ।'

'कौन है वह ?'

'गान्धार कन्या कलिंगसेना ।'

'उसमें त्रुटि क्या है ?'

'तीन ग्रामों पर वह नृत्य नहीं कर सकती ।'

'क्या वह देव के सान्निध्य में है ?'

'नहीं भद्रे, मैं उसे प्राप्त करके भी प्राप्त न कर सका ।'

'प्राप्त करके भी प्राप्त न कर सके ? देव !'

'ऐसा ही हुआ भद्रे ।'

'कैसे देव, क्या देवी कलिंगसेना द्वितीय कामदेव के समान सुन्दर महाराज उदयन को प्यार नहीं कर सकीं—या तक्षशिला के महाराज ने इन्द्र के मित्र वत्सनरेश सहस्त्रानीक के पुत्र को ही अयोग्य समझा, जिसके लिए देवराज इन्द्र अपना रथ भेजता था ।'

'ऐसा नहीं हुआ भद्रे, इसमें कुछ कौतुक हुआ ।'

'यदि देव कौतुक वर्णन करें तो अच्छा ।'

'कहता हूँ सुनो । विगलित यौवन कौशल नरेश प्रसेनजित् ने गान्धार-

पति कलिंगसेन से उसे माँगा था। गान्धारपति राजतन्त्र के स्वार्थवश प्रसेनजित् को अप्रसन्न नहीं कर सकते थे। उन्होंने कौशलपति को कन्या देना स्वीकार कर लिया था। भाग्यविधि से कलिंगसेना की मित्रता मयासुर की कन्या सोभप्रभा से हो गई थी। उसी ने सखी के कल्याण की कामना से उससे कहा था कि—हेमन्त ऋतु की कमलिनी के समान तुम, उस चमेली के मुर्झाये हुए पुष्प प्रसेनजित् के योग्य नहीं हो। उसी ने उससे मेरा सत्यासत्य वर्णन करके उसे मेरे प्रति आकर्षित कर दिया था। मुझे भी इसकी सूचना मिल चुकी थी। परन्तु देवी अम्बपाली, मैं अवन्तीनरेश चण्डमहासेन को अप्रसन्न नहीं कर सकता था, इसी से गान्धारपति कलिंगसेन से मैंने उनकी दिव्य पुत्री नहीं माँगी।'

अम्बपाली ने हंसकर कहा—'देव को महादेवी वासवदत्ता का भी तो लिहाज करना उचित था, जिन्होंने शकुन्तला और ऊषा से भी बढ़कर साहस किया है। परन्तु क्या सुश्री कलिंगसेना बहुत सुन्दरी हैं?'

'भद्रे अम्बपाली, विश्व की स्त्रियों में तुम्हीं उसकी होड़ ले सकती हो। केवल नृत्य को छोड़कर, जिसमें तुम उससे बढ़ गई। परन्तु मय असुर की कन्या की मित्रता से वह अक्षय यौवना हो गई है। असुरनन्दिनी ने उसे विन्ध्य गर्भ में स्थित मायापुरी में ले जाकर दिव्यौषध भक्षण कराया है, तथा माया के यन्त्रों से भरा पिटक भी दिया है। इससे वह अद्भुत कर्मिणी हो गई है। एक दिन वह अपनी सखी असुरनन्दिनी की सहायता से इन्हीं यन्त्रों के विमान पर चढ़कर कौशाम्बी में आ गई।'

'तो देव, घर बैठे गंगा आई।'

'हुआ ऐसा ही भद्रे, किन्तु राजसम्पदा भी कैसा दुर्भाग्य है।'

'राजसम्पदा ने बाधा दी महाराज?'

'ज्योंही मैंने सुना कि गान्धार कन्या कलिंगसेना स्वयंवर की इच्छा से आई हैं, मैंने आर्य यौगन्धरायण को उसका सत्कार करने और विवाह का मुहूर्त देखने को कहा। परन्तु आर्य यौगन्धरायण ने सोचा कि त्रैलोक्य सुन्दरी कलिंगसेना पर आसक्त होकर राजा मोह में फंस जायगा, देवी

वासवदत्ता संतप्त हो शोक में प्राण दे देंगी। पद्मावती भी उनके बिना न रह सकेंगी, इससे चण्डमहासेन और महाराज प्रद्योत दोनों ही शत्रु हो जाएंगे। इन सब बातों को विचार कर उन्होंने देवी कलिंगसेना के सत्कार निवास का तो समुचित प्रबन्ध कर दिया, परन्तु विवाह में टालटूल करते रहे।'

'उन्होंने कौशलपति और गान्धारराज दोनों ही को इसकी सूचना दे दी। कौशलपति ने सैन्य भेज कर गान्धारराज को विवश कर दिया। कौशलपति को नाराज करने की सामर्थ्य गान्धारपति में नहीं थी। वे न उसकी सैन्य का सामना कर सकते थे और न सुदूरपूर्व के व्यापार वाणिज्य का मार्ग बन्द होना ही सहन कर सकते थे। उन्होंने पुत्री को अपनी कठिनाइयाँ बताई, तो देवी कलिंगसेना ने पिता और जनपद के स्वार्थरक्षण के लिए अपनी बलि दे दी और विगलित यौवन प्रसेनजित् से विवाह करना अंगीकार करके वे श्रावस्ती चली गईं।'

'पूजार्ह हैं देवी कलिंगसेना, देव।'

'पूजार्ह ही हैं भद्रे, परन्तु जनपद के लिए आत्मबलि देने वाली पूजार्ह अकेली देवी कलिंगसेना ही नहीं हैं, देवी अम्बपाली भी है।'

'देव कौशाम्बीपति के इस अनुग्रह वचन से आप्यायित हुई।'

'तो भद्रे, अब मैं जाता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। मेरा यह अनुरोध रखना, कि किसी मनुष्य के सम्मुख दिव्य नृत्य न करना, जब तक कि तीन ग्रामों में वीणावादन करने वाला कोई पुरुष न मिल जाय।'

'ऐसा ही होगा महाराज।'

उदयन तत्क्षण अन्तर्धान हो गए। अम्बपाली विमूढ़ भाव से आश्चर्य-चकित हो उसी श्वेत मर्मर की पीठ पर बैठी देखती रही।

१८ :: ज्ञातिपुत्र सिंह

ज्ञातिपुत्र सिंह तक्षशिला के विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय में वहाँ के दिशाप्रमुख युद्धविद्या के एकान्त आचार्य बहुलाश्व से रणचातुरी और राजनीति का अध्ययन कर ससम्मान स्नातक हो, दस वर्ष बाद वैशाली में लौटे थे। विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए उन्होंने पर्शुपुरी के शासानुशास के साथ हुए विकट युद्धों में अपने धैर्य, प्रत्युत्पन्नमति और चातुरी का बड़ा भारी परिचय दिया था और उनके शौर्य पर मुग्ध हो आचार्य बहुलाश्व ने अपनी एकलौती पुत्री रोहिणी उन्हें ब्याह दी थी। सो ज्ञातिपुत्र बहुत सामान, बहुत सा यश और चन्द्रकिरण के समान दिव्य देवांगना पत्नी को संग ले वैशाली आए थे। इससे वैशाली में उनके स्वागत-सत्कार की धूम मच गई थी। उनके साथ पाँच और लिच्छवि तरुण विविध विद्याओं में पारंगत हो तक्षशिला के स्नातक की प्रतिष्ठा सहित वैशाली लौटे थे। तथा गांधारपति ने वैशालीगणतन्त्र से मैत्री बन्धन दृढ़ करने के अभिप्राय से गान्धार के दश नागरिकों का एक शिष्टदल, दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपानय सामग्री देकर भेजा था। इस दल का नायक एक वीर गांधार तरुण था। यह वही वीर योद्धा था, जिसने उत्तर कुरु के देवासुर संग्राम में देवराज इन्द्र के आमन्त्रण पर असाधारण सहायता देकर असुरों को पद-दलित किया था और देवराज इन्द्र ने जिसे अपने हाथों से पारिजात पुष्पों की अम्लान दिव्यमाला भेंटकर देवों के समान सम्मानित किया था।

इन सम्पूर्ण बहुमान्य अतिथियों के सम्मान में गणपति सुनन्द ने एक उद्यान-भोज और पानगोष्टी का आयोजन किया था। इस समारोह में सम्मिलित होने के लिए वैशाली के अनेक प्रमुख लिच्छवि और अलिच्छवि नागरिक और महिलायें आमन्त्रित की गई थीं। गण उद्यान रंगीन पताकाओं और स्वस्तिकों से खूब सजाया गया था, तथा विशेष प्रकार से रोशनी की व्यवस्था की गई थी। सुगन्धित तेलों से भरे हुए दीप और शलाकाएं स्थान-स्थान पर आधारों में जल रहे थे।

ज्ञातिपुत्र सिंह ने एथेन्स का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था। यह तोगा यवन राजा ने उन्हें उस समय भेंट किया था, जब उन्होंने एथेन्स के वीरों के साथ मिलकर पर्शुपुरी के शासानुशास से युद्ध करके असाधारण शौर्य प्रकट किया था। उनके पैरों में एक पुटबद्ध लाल रंग का उपानत था और सिर पर लाल रंग के कमलों की एक माला यावनीक पद्धति से बाँधी गई थी, जो उनके सुन्दर चमकदार केशों पर खूब सज रही थी। इस सज्जा में वे एक सम्पन्न यवन तरुण से दीख पड़ रहे थे।

उनकी गान्धारी पत्नी रोहिणी ने सुरुचिसम्पन्न काशिक कौशेय का उत्तरीय, अन्तरवासक और कंचुकी धारण की थी। उसके सुनहरे केशों को ताजे फूलों से सजाया गया था—जिसमें अद्भुत कला का प्रदर्शन था। चेहरे पर हल्का वर्ण चूर्ण था। कानों में हीरक कुण्डल और कण्ठ में केवल एक मुक्तामाला थी। उसकी लम्बी छरहरी देहयष्टि अत्यन्त गौर, स्वच्छ, संगमर्मर सा चिकना गात्र, कमल के समान मुख और बहुमूल्य नीलम के समान पानीदार आँखें उसे दुनियाँ की लाखों करोड़ों स्त्रियों से पृथक् कर रही थीं। उस असाधारण तेज रूप और गरिमामयी रमणी की ओर उस पानगोष्ठी में अनगिनत आँखें उठकर अपलक रह जाती थीं। अन्य स्नातकों ने और गान्धार शिष्टदल के सदस्यों ने भी अपनी-अपनी रुचि और समय के अनुकूल परिधान धारण किया था और वे सब बहुत ही शोभायमान हो रहे थे। वे जिधर से जाते—नागरिक

स्त्री पुरुष उनका ससम्मान स्वागत कर रहे थे ।

वैशाली के नागरिकों में महावलाधिकृत सुमन थे, जिनकी श्वेत लम्बी दाढ़ी और गम्भीर चितवन उनके अधिकार और गौरव को प्रकट करती थी। नौवलाध्यक्ष चन्द्रभद्र अपने स्थूल किन्तु फुर्तीले शरीर के साथ उपस्थित थे । उनकी आयु साठ साल को पार कर गई थी, उनका चेहरा रुआबदार था । उस पर श्वेत गलमुच्छे और छोटी-छोटी चमकीली आँखें उन्हें सबसे पृथक् कर रही थीं । वे जन्मजात सेनापति मालूम देते थे । वे फक्कड़, हँसमुख और मिलनसार थे और इधर उधर चुहुल करते फिर रहे थे । इस समय वे खूब भड़कीली पोशाक पहने थे । श्रोत्रीय आश्वलायन भी इस गोष्ठी की शोभा बढ़ा रहे थे । ये प्रसिद्ध गृहसूत्रों के निर्माता कर्म-काण्डी ब्राह्मण थे । ये पाटम्बर कमर में पहिने और कन्धे पर काशी का बहुमूल्य शाल डाले, लम्बी चुटिया फटकारे, बढ़-बढ़ कर बातें बना रहे थे और बात बात पर अपने गृहसूत्रों का ही राग गा रहे थे । इनकी कमर में श्वेत जनेऊ था । इनकी खोपड़ी गंजी, चेहरा सफाचट और दाँत कुछ गायब, कुछ सड़े हुए । शरीर लम्बा, दुबला, जैसे हड्डियों पर खोल चढ़ा दी हो, अपनी मिचमिची आँखों से घूर-घूर कर सुन्दरियों को ताक रहे थे ।

इनकी बगल में उपनायक शूरसेन अपने ठिगने गोल मटोल शरीर को विविध शस्त्रों और आभरणों से सजाए किसी अभिनयकर्ता से कम नहीं प्रतीत होते थे । ये बड़े विनोदी पुरुष थे और संगीत की इन्हें सनक थी। इनके संगीत की प्रशंसा करने पर इनसे सब कुछ लिया जा सकता था ।

ब्राह्मण मठ के आचार्य महापण्डित भारद्वाज अपनी लम्बी चुटिया फटकारे, ताम्बे के समान चमकदार शरीर पर स्वच्छ जनेऊ धारण किए, महाज्ञानी दार्शनिक गोपाल से उलझ रहे थे । दार्शनिक गोपाल हँस-हँस कर अपना तर्क भी करते जाते थे और गोल-गोल ललचाई आँखों से सुन्दरियों की रूप-सुधा का पान भी करते जाते थे । उनके इस आचरण पर कुछ मुग्धा झेंप रही थीं और कुछ प्रौढ़ा मुस्करा रही थीं ।

परन्तु एक व्यक्ति इन सबसे अलग-अलग मानों सब को अपने से तुच्छ समझता हुआ, सबको बारीकी से निरीक्षण करता हुआ, कुछ मुस्कराता, कुछ गुनगुनाता घूम रहा था। इसके वस्त्र बहुमूल्य, पर अस्तव्यस्त थे। उसकी आयु का कुछ पता नहीं लगता था कि कितनी है। शरीर ऐसा सुगठित दीख रहा था कि कदाचित वह एक मजबूत साँढ़ को भी गिरा दे। कुछ लोग उससे बात किया चाहते थे, पर वह किसी को मुँह नहीं लगाता था। लोग उसकी ओर संकेत करके बहुत भाँति की बातें करते थे। कुछ चमत्कृत नेत्रों से और कुछ संदिग्ध भाव से उसकी ओर ताक रहे थे। वास्तव में यह वैशाली का प्रसिद्ध कीमियागर वैज्ञानिक सिद्ध गौड़पाद था, जिसकी बाबत प्रसिद्ध था कि उसके पास पारसमणि है और वह पर्वत को भी स्वर्ण कर सकता है तथा उसकी आयु सैकड़ों वर्ष की है।

तरुण मण्डल में युवराज स्वर्णसेन, उनके मित्र संधिविग्राहिक जयराज और अट्टवी-रक्षक महायुद्धवीर युवक सूर्यमल्ल का एक गुट्ट था, जो हँस-हँस कर तरुणीजनों की व्याख्या, खास कर रोहिणी की रूप ज्योति की अम्बपाली से तुलना करने में व्यस्त था। नगरपाल सौभद्र और उपनायक अजित ये दो तरुण घुसपुस अलग कुछ बातें कर रहे थे।

महिलाओं में उल्काचेल के शौल्किक की पत्नी रम्भा सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। वह बसन्त की दोपहरी की भाँति खिली हुई सुन्दरी थी। उसके हास्य भरे होंठ, कटाक्ष भरे नेत्र और मदभरी चाल मन को मोहे बिना छोड़ती न थी। वह बड़ी मुंहफट, हाजिरजवाब और चपला थी। एक प्रकार से जितनी लिच्छवि तरुणियाँ वहाँ उपस्थित थीं, वह उन सबकी नेत्री होकर गांधारी बहु रोहिणी को घेरे बैठी थी। उसके कारण क्षण-क्षण में तरुणी मण्डली से एक हँसी का ठहाका उठता था और गोष्ठी के लोग उधर देखने को विवश हो जाते थे। इसमें संदेह नहीं कि रोहिणी एक दिव्यांगना थी और रूपच्छटा उसकी अद्वितीय थी, परन्तु एक और असाधारण बाला यहाँ इस तरुणी मण्डल में थी, जो लाज

नवाई चुपचाप बैठी थी और कभी-कभी सिर्फ मुस्करा देती थी। उसकी लुनाई रोहिणी से बिल्कुल ही भिन्न थी। उसकी आँखें गहरी काली और ऐसी कटीली थीं कि उनके सामने आकर बिना घायल हुए बचने का कोई उपाय ही नहीं था। उसके केश अत्यन्त घने, काले और खूब चमकीले थे। गात्र का रंग नवीन केले के पत्ते के समान और चेहरा ताजे सेव के समान रंगीन था। उसका उत्सुक यौवन, कोकिल कण्ठ, मस्तानी चाल यह सब ऐसी थी जिनकी उपमा नहीं थी। पर इन सबसे अपूर्व सुषमा की खान उसकी व्रीड़ा थी। वह ओस से भरे हुए एक बड़े ताजे गुलाब के फूल की भाँति थी, जो अपने ही भार से नीचे झुक गया हो। इस भुवनमोहिनी कुमारी बाला का नाम मधु था और यह महाबलाधिकृत सुमन की एकलौती पुत्री थी।

इतने सम्मान्य अतिथिगण उद्यान में आ चुके थे और एक प्रहर रात्रि भी जा चुकी थी। भोज का समय लगभग हो चुका था, परन्तु एक असाधारण अतिथि नहीं आया था जिसकी प्रतीक्षा छोटे बड़े सभी को थी—वह थी देवी अम्बपाली। लोग कह रहे थे, आज यहाँ रूप का त्रिवेणी-संगम होगा।

सिंह को सम्मुख देखते ही नौबलाधिकृत चन्द्रभद्र दोनों हाथ फैला कर आगे बढ़े। उन्होंने कहा—'स्वागत सिंह, वैशाली में तुम्हारा स्वागत है और गान्धारी स्नुषा का भी। आज आयुष्मान, तुझे देख कर बहुत पुरानी बात याद आ गई। उस बात को आज बीस वर्ष बीत गए। पुत्र तुम्हारे पिता अर्जुन तब महाबलाधिकृत थे और मैं उनका उपनायक था। उन्होंने किस प्रकार कमल द्वार पर सारी मगध सेना के हथियार रखवाए थे और एक नीच मागध बन्दी ने—जिसे तुम्हारे पिता ने कृपा कर जीवन-दान दिया था, धोखे से रात को मार डाला था। उस दिन हर्ष-विषाद के झूले में वैशाली झूली थी, पुत्र! वही मागध आज फिर अपनी लोलुप राज्यलिप्सा से हमारे गण को विषदृष्टि से देख रहे हैं।' सिंह ने हाथ उठाकर वृद्ध सेनापति का अभिवादन करके कहा—'भन्ते सेनापति, मैं

प्रतिज्ञा करता हूँ कि मागधों से पिता के प्राणों का मूल्य लूंगा, अपने रक्त की प्रत्येक बूंद देकर भी, एक सच्चे लिच्छवि तरुण की भांति।'

'साधु सिंह, साधु, तो अब मुझे वृद्ध होने का खेद नहीं, परन्तु···

'परन्तु क्या भन्ते ?'

'आयुष्मान्, तेरा यह वेश तो बिल्कुल ही पराया है ?'

'भन्ते सेनापति, आचार्य बहुलाश्व ने जब मुझे तक्षशिला से विदा किया था, तब दो बहुमूल्य वस्तु मुझे दी थीं —एक अपनी एकलौती पुत्री रोहिणी और दूसरी यह बात कि—पुत्र, विश्व के मानवों में पराएपन का भाव मत रखना।'

इस पर रम्भा ने हंसकर नटखटपने से कहा—'तो सिंह कुमार, इन दोनों बहुमूल्य वस्तुओं में से एक रोहिणी को तो मैं पसन्द करती हूँ।'

'और दूसरी को मैं। आयुष्मान तुम रम्भा से सुलझो, मैं तब तक और अतिथियों को देखूं।' वह हँसते हुए आगे बढ़ गए।

सेनापति चन्द्रभद्र ने श्रोत्रीय आश्वलायन को दूर से देखा, तो हर्ष से चिल्लाते हुए उनके पास दौड़े आए और कहा—'स्वागत मित्र आश्वलायन खूब आए। कभी-कभी तो मिला करो। कहो कैसे रहे मित्र !'

'परन्तु सेनापति, गृहसूत्रों के रचने से समय मिले तब तो। मैं चाहता हूँ कि गृहस्थों की व्यवस्था स्थापित हो जाय और उनमें षोड़श संस्कारों का प्रचलन हो जाय।'

'यह तो बहुत अच्छा है, परन्तु क्या रात दिन सूत्र ही रचते रहते हो, कभी अवकाश ही नहीं पाते ?'

'पाता क्यों नहीं सेनापति, पर अवकाश के समय ब्राह्मणी जो भुजंगिनी सी लिपटती है। अरे ! क्या कहूं सेनापति, ज्यों-ज्यों वह बूढ़ी होती है, उसका चाव शृंगार बढ़ता ही जाता है। देखोगे तो·····।'

'समझ गया, समझ गया। परन्तु आज कैसे ब्राह्मणी से अवकाश मिल गया मित्र ?'

'अरे उस पापिष्ठा अम्बपाली को देखने का कौतूहल खींच लाया।

उसके आवास में तो हीरे मोती बखेरने वाले ही जा सकते हैं, मेरे जैसे दरिद्र ब्राह्मण नहीं ।'

'अच्छा, यह बात है ? मित्र आश्वलायन, किन्तु क्या ब्राह्मणी से यह बात कह आए हो ?'

'अरे नहीं, नहीं । कहता तो क्या आ पाता ? जानते हैं सेनापति, डायन इतनी ईर्षा करती है, इतना सन्देह करती है कि क्या कहूं ? तनिक किसी दासी ने हंस कर देखा कि बिना उसे बेचे चैन नहीं लेगी । उस दिन एक चम्पकवर्णा तरुणी दासी को चालीस निष्क पर बेच डाला । वह कभी-कभी इस बूढ़े ब्राह्मण की चरणसेवा कर दिया करती थी । सेनापति, कृत्या है, कृत्या ।'

'तो मित्र आश्वलायन, उस पापिष्ठा अम्बपाली को देखने के लिए इतनी जोखिम क्यों उठा रहे हो ?'

'यों ही सेनापति, विश्व में पाप पुण्य दोनों ही को स्पर्श करना चाहिए ।'

'तो मित्र खूब मजे में स्पर्श-आलिंगन करो, यहाँ ब्राह्मणी की बाधा नहीं है ।'

ब्राह्मण खूब जोर से हंस पड़ा । इससे उसके कुत्सित गन्दे दांत बाहर दीख पड़े । उन्होंने कहा—'आपका कल्याण हो सेनापति, पर क्या वह पापिष्ठा आएगी तो ?'

'अवश्य आयेगी मित्र, आयुष्मान् सिंह और उससे अधिक उसकी गान्धारी पत्नी को देखने के लिए देवी अम्बपाली बहुत उत्सुक है ।'

'यह किसलिए सेनापति ?'

'उसने सुना है कि सिंह और उसके तरुण मित्रों ने उसकी उपेक्षा की है । देखते नहीं, वह गान्धारीकन्या देवकन्या सी, ऐसी अप्रतिम रूप-ज्योति लेकर वैशाली में आई है, जिससे अम्बपाली को ईर्षा हो सकती है ।'

'ऐसा, है, तब तो सेनापति, उस गांधारीकन्या को भी भलीभांति देखना होगा ।'

'सब कुछ देखो मित्र, आज यहां रूप की हाट लग रही है।'

'यह देखो, वे नायक सूरसेन और महापंडित भारद्वाज इधर ही को आ रहे हैं। खूब आए सूरसेन, आओ, मैं मित्र आश्वलायन श्रोत्रीय से तुम्हारा परिचय·····।'

'हुआ, परन्तु सेनापति, अम्बपाली अभी तक क्यों नहीं आई—कह सकते हैं ?'

'नहीं, नायक।'

'परन्तु वह आयेंगी तो ?'

'अवश्य आयेंगी नायक सूरसेन, पर तुम उनके लिए इतने उत्सुक क्यों हो ?'

सूरसेन ने ही-ही-ही हंसते हुए कहा—'देखूंगा—एक बार देखूंगा। सुना है, उसने कौशल प्रसेनजित् को निराश कर दिया है।'

महापंडित भारद्वाज ने हाथ उठाकर नाटकीय ढंग से कहा—

'अरे वह वैशाली की यक्षिणी है। मैं उसे मन्त्रबल से बद्ध करूंगा।'

गणित और ज्योतिष के उद्भट ज्ञाता त्रिकालदर्शी सूर्यभट्ट ने अपने बड़े डीलडौल को पीछे से हिला कर कहा—'मैं कहता हूँ महापंडित जन्मजन्मांतर से उस यक्षिणी से आवेशित हैं।'

सबने लोट कर देखा सूर्यभट्ट और महादार्शनिक गोपाल पीछे गंभीर मुद्रा से खड़े हैं। सूर्यभट्ट की बात सुनकर दार्शनिक और तार्किक गोपाल बोले—'हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है यह नहीं—कि नहीं हो सकता है।' इस पर सब हंस पड़े।

इन महार्घ पुरुषों के सामने ही एक स्फटिक शिला पर युवराज स्वर्णसेन, सूर्यमल्ल, संधिविग्रहक जयराज और आगार-कोष्ठक सौभद्र बैठे थे।

युवराज ने कहा—'क्यों सौभद्र, क्या कारण है कि तुम कल रात मेरी पानगोष्ठी में नहीं आये और यहाँ अभी से उपस्थित हो ?'

'इसका कारण तो स्पष्ट है, वहाँ देवी अम्बपाली के आने की कोई संभावना नहीं थी और यहाँ अवश्य उनका दर्शन—लाभ होगा।'

'यह बात है ? तो तुम कब से देवी अम्बपाली की कृपा के भिखारी बन गए ?'

'कौन मैं ? मैं तो जन्म-जन्म से देवी की कृपा का भिखारी रहा हूँ।'

उन्होंने सामने खड़े सूर्यभट्ट की ओर देखकर मुस्करा कर कहा—'परन्तु युवराज, हम उचित नहीं कर रहे हैं। हमें ज्ञातिपुत्र सिंह और उनकी पत्नी का अभिनन्दन करना चाहिए।'

'चाहिए तो, परन्तु अब समय कहाँ है ? वह देवी अम्बपाली का आगमन हो रहा है।'

सबने चकित होकर कहने वाले की ओर घूम कर देखा, आचार्य गौड़पाद भावहीन रीति से मुस्करा रहे है। तरुणों ने उनकी उपस्थिति से अप्रतिभ होकर कहा—

'नहीं नहीं, अभी भी समय है। पान अभी आरम्भ नहीं हुआ। चलो हम लोग सिंह के पास चलें।' तीनों तरुण तेजी से उधर चल दिए-जहाँ तरुण मंडल से घिरे सिंह उनके विविध प्रश्नों के उत्तर में उनके कौतूहल को दूर कर उनका मनोरंजन कर रहे थे।

देवी अम्बपाली अपनी दो दासियों के साथ आई थीं। उन्होंने अपना प्रिय श्वेत कोशेय का उत्तरीय और लाल अन्तरवासक पहिना था। वे उदयन कौशाम्बीपति के दिए हुए गुलाबी रंग की दुर्लभ मुक्ताओं की माला धारण किए थीं। उनकी दृष्टि में गर्व, चाल में मस्ती और उठान में सुषमा थी। अम्बपाली को देखते ही लोगों में विविध कौतूहल फैल गया। क्षण भर को उनकी बातचीत रुक गई और वे आश्चर्यचकित हो उस रूपज्वाला की अप्रतिम देहयष्ठि को देखने लगे।

पान प्रारम्भ हो गया। दास-दासी दौड़-दौड़ कर मेहमानों कोमैरेय, माध्वीक और दाक्षा देने लगे।

अम्बपाली हंसती हुई उनके बीच राजहंसिनी की भाँति घूमने और कहने लगी—'मित्रों ! अभिनन्दन करती हूँ और अभिलाषा करती हूँ, खूब पिओ।'

वह मन्द गति से घूमती हुई वहाँ पहुँची जहाँ तरुण-तरुणियों से घिरे हुए सिंह अपने संगियों के साथ हँस-हँस कर विविध वार्तालाप कर रहे थे। उसने रोहिणी के निकट पहुँच कर कहा—'गान्धारकन्या का वज्जी भूमि पर स्वागत। सिंह ज्ञातिपुत्र, तुम्हारा भी और तुम्हारे सब साथियों का भी।' फिर उसने हंसकर रोहिणी से कहा—

'वैशाली कैसी लगी बहिन ?'

'शुभे, क्या कहूँ ? अभी बारह घड़ी भी इस भूमि पर आए नहीं हुई। इसी बीच में इतनी आत्मीयता देख रही हूँ। देखिए, रम्भा भाभी को, इनके स्पर्श मात्र से ही मार्ग के तीन मास की थकान मिट गई।'

'स्वस्ति रम्भा बहिन, तुम्हारी प्रशंसा पर ईर्षा करती हूँ।'

'देवी अम्बपाली की ईर्षा मेरे अभिमान का विषय है।'

अम्बपाली ने मुस्कुरा कर सिंह से कहा—'मित्र सिंह, तुम्हें मैं तक्षशिला से ऐसी अनुपम निधि ले आने पर बधाई देती हूँ।' फिर रोहिणी की ओर देख कर कहा—'भद्रे रोहिणी, वज्जीभूमि क्या तुम्हें गान्धार सी ही दीखती है ? कुछ नयापन तो नहीं दीखता ?'

'ओह, एक बात मैं वज्जीभूमि में सहन नहीं कर सकती हूँ ?'

'वह क्या बहिन ?'

'ये दास !'

उसने एक कोने में विनयावनत खड़ी अम्बपाली की दोनों दासियों की ओर संकेत करके कहा—'कैसे आप मनुष्यों को भेड़ बकरियों की भाँति खरीदते बेचते हैं ? और कैसे उनपर अबाध शासन करते हैं ?' वह शरच्चन्द्र की कौमुदी में निर्मल पुष्करिणी में खिली कुमुदिनी की भाँति स्निग्ध शीतल सुषमा बखेरने वाली अम्बपाली की यवनी दासी मदलेखा के निकट आई, उसकी लज्जा से झुकी हुई ठोड़ी उठाई और कहा—'कैसे इतना सहती हो बहिन, जब हम सब बातें करते हैं, हंसते हैं, विनोद करते हैं, तुम मूक-बधिर सी चुपचाप खड़ी कैसे रह सकती हो ? निर्मम, पाषाण-प्रतिमा सी। यही विनय तुम्हें सिखाया गया है ?

ओह ! तुम हमारे हास्य में हंसती नहीं और हमारे विलास से प्रभावित भी नहीं होती ?' रोहिणी ने आँखों में आँसू भर कर मदलेखा को छाती से लगा लिया। फिर पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है, हला ?' मदलेखा ने घुटनों तक धरती में झुककर रोहिणी का अभिवादन किया और कहा—'देवी, दासी का नाम मदलेखा है ।'

'दासी नहीं, हला । अच्छा देवी अम्बपाली, जब तक हम यहाँ हैं, कुछ क्षणों के लिए मदलेखा और उसकी संगिनी को—'क्या नाम है उसका ?'

'हज्जे-चन्द्रभागा ।'

'सुन्दर, मदलेखा और चन्द्रभागा को स्वच्छन्द इस पानगोष्ठी में भाग लेने और आमोद-प्रमोद करने की स्वाधीनता दे दी जाय ।'

'जिसमें गान्धार-कुमारी का प्रसाद हो ।' अम्बपाली ने हँसते हुए कहा। फिर उसने स्वर्णसेन की ओर संकेत करके कहा—

'युवराज, क्यों नहीं तुम वज्जी में दासों को अदास कर देते हो ?'

रोहिणी ने कहा—'क्या युवराज ऐसा करने की क्षमता रखते हैं ?'

'नहीं भद्रे, मुझ में यह क्षमता नहीं है। इन दासों की संख्या अधिक है। फिर वज्जीभूमि में अलिच्छवियों के दास ही अधिक हैं ।'

'वज्जी में अलिच्छवि ?'

'हाँ भद्रे, वे लिच्छवियों से कुछ ही कम हैं। वे सब कर्मकर ही नहीं हैं, आर्य हैं। उनमें ब्राह्मण हैं, वैश्य हैं। उन्हें वज्जी-शासन में अधिकार नहीं है, पर उनमें बहुत से भारी भारी धनकुबेर हैं। उनके पास बहुत धरती है, लाखों करोड़ों का व्यापार है, जो देश-देशान्तरों में फैला हुआ है। उनके ऊपर किसी प्रकार का राजभार नहीं, न वे युद्ध करते हैं। वे स्वतन्त्र और समृद्ध जीवन बिताते हैं। उन्हें नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकार वज्जीभूमि में प्राप्त है। उनका बिना दासों के काम चल ही नहीं सकता । फिर यवन, काम्बोज, कौशल और मगध के राज्यों से बिकने को निरन्तर दास वज्जीभूमि में आते रहते हैं।

'परन्तु युवराज, वे कर्मकर जनों से वेतन शुल्क देकर अपना काम करा सकते हैं।'

'असंभव है शुभे, इन अलिच्छवियों की गुत्थियाँ हमारे सामने बहुत टेढ़ी है। ये आचार्य आश्वलायन यहाँ विराजमान हैं। इन्हीं से पूछिए, ये श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं और अलिच्छवियों के मुखिया हैं।' आर्य आश्वलायन अपनी मिचमिची आँखों से इन सुन्दरियों की रूप-सुधा पी रहे थे, अब उन्होंने उनकी कमल जैसी आँखें अपनी ओर उठती देखकर कहा—'शान्तं पापं, शान्तं पापं, भद्रे, दास-दास हैं और आर्य-आर्य हैं। मैं श्रोत्रिय ब्राह्मण हूँ, नित्य षोड़शोपचार सहित षड्कर्म करता हूँ। षडंग वेदों का ज्ञाता हूँ, दर्शनों पर मैंने व्याख्या की है और गृहसूत्रों का निर्माण किया है। सो ये अधम क्रीतदास क्या मेरे समान हो सकते हैं? आर्यों के समान हो सकते हैं?'

उन्होंने अपने नेत्रों को तनिक और विस्तार से फैला कर और अपने गन्दे गलित दांतों को निपोर कर मैरेय के घड़े में से सुरा-चषक भरते हुए तरुण काले दास की ओर रोषपूर्ण ढङ्ग से देखा।

देवी अम्बपाली खिलखिला कर हंस पड़ीं। उन्होंने अपनी सुन्दरी दासी मदलेखा की ओर संकेत करके कहा—'और आर्य उस नवनीत कोमलांगी यवनी के सम्बन्ध में क्या राय रखते हैं?'

आर्य आश्वलायन का रोष तुरन्त ठण्डा हो गया। उन्होंने नेत्रों में अनुराग और होठों में हास्य भर कर कहा—'उसकी बात जुदा है, देवी अम्बपाली, पर फिर भी दास-दास हैं और आर्य-आर्य।'

'किन्तु आर्य, यह तो अत्यन्त निष्ठुरता है, अन्याय है। कैसे आप यह कर पाते हैं और कैसे इसे वे सहन करते हैं? इस विनय, संस्कृति, शोभा और सौष्ठव की मूर्ति मदलेखा को 'हज्जे' कह कर पुकारने में आपको कष्ट नहीं होता?' रोहिणी ने कहा।

'किन्तु भद्रे, हम उन दासों के साथ अत्यन्त कृपा करते हैं, फिर वज्जी के नियम भी उनके लिए उदार हैं, वज्जी के दास बाहर बेचे नहीं जाते।'

'किन्तु आर्य, समाज में सब मनुष्य समान है।

'नहीं भद्रे, मैं समाज का नियन्ता हूँ, समाज में सब समान नहीं हो सकते। इसी वज्जी में ये लिच्छवि हैं, जिनके अष्टकुल पृथक्-पृथक् हैं। ये किसी अलिच्छवि माता-पिता की संतान को लिच्छवि नहीं मानते। अभिषेक पुष्करिणी में वही लिच्छवि स्नान कर पाता है—जिसके माता-पिता दोनों ही लिच्छवि हों और उसका गौर वर्ण हो, इसके लिए इन लिच्छवियों के नियम बहुत कड़े हैं। फिर हम श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं, शुद्ध आर्य गृहपति वैश्य हैं, जो सोलह संस्कार करते हैं और पञ्च महायज्ञ करते हैं। अधगोरे कर्मकर हैं और काले दास भी हैं, जो मगध, चम्पा, ताम्रपर्णी से लेकर तुर्क और काकेशस एवं यवन तक से वज्जीभूमि में बिकने आते हैं। भद्रे, इन सब में समानता कैसे हो सकती है? सब की भाषा भिन्न, रङ्ग भिन्न, संस्कृति भिन्न और रक्त भिन्न है।'

'किन्तु आर्य, हमारे गान्धार में ऐसा नहीं है, वहाँ सब का एक ही रङ्ग, एक ही भाषा, एक ही रक्त है। वहाँ हमारा सम्पूर्ण एक राष्ट्र है। ओह, कैसा अच्छा होता आर्य, यदि यहां भी ऐसा ही होता।'

'ऐसा हो नहीं सकता बहिन', अम्बपाली ने हंसकर कहा। अब तुम गान्धार के स्वतन्त्र वातावरण का सुखस्वप्न भूल जाओ। वज्जी संघ को आत्मसात् करो, जहाँ युवराज स्वर्णसेन जैसे लिच्छवि तरुण और आर्य आश्वलायन जैसे श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते हैं, जिन्हें बड़े बना रहना ही होगा। इन्हें दास चाहिए, दासी चाहिए और भोग चाहिए। किन्तु क्या बातों में ही रहेंगी शुभे गान्धारपुत्री? अब थोड़ा पान करो। हज्जे मदलेखा, गांधारी देवी को मद्य दे।'

'नहीं, नहीं, सौम्ये, तुम यहां आकर मेरे निकट बैठो, मदलेखा!'

'तो ऐसा ही हो, भद्रे! मदलेखा, गान्धारी देवी जैसा कहें वैसा ही कर।'

'जेदु भट्टिनी, दासी·····।'

'दासी नहीं, हला, यहां बैठो, हां अब ठीक है। युवराज स्वर्णसेन, आपको कुछ आपत्ति तो नहीं?'

'नहीं भद्रे, आपकी उदारता प्रशसनीय है, परन्तु मुझे भय है इस से आप उनका कुछ भी भला न कर सकेंगे।'

'कैसे दुःख की बात है प्रिय, गान्धार से आते हुए मैंने जब प्राची के समृद्ध नगरों की पण्य वीथियों में पड़े हुए स्वर्ण-रत्न और ठसाठस साधन-सामग्री देखी, तो मुझे बड़ा आल्हाद हुआ। मैं स्वीकार करती हूँ कि हम गान्धार गण इतना ठाटबाट नहीं रखते, पर जब दासों, चाण्डालों और कर्मकरों के टूटे फूटे झोंपड़े और उनके घृणास्पद उच्छिष्ट आहार तथा उनपर पशुओं की भाँति आर्य नागरिकों का शासन देखा तो मेरा हृदय दुःख से भर गया। दासता और दारिद्र्य का यह दायित्व किस पर है प्रिय ?' गान्धारी ने सिंह से कहा।'

सिंह ने हंस कर पत्नी से कहा—'कदाचित् उस बूढ़े राजा पर, जिसे तुमने कल्मापदम्ब में देखा था, जिसके झुर्री भरे मुंह पर अशोभनीय दाढ़ी थी और पिलपिले सिर पर एक भारी मुकुट था, जिसमें सेरों सोना हीरा मोती जड़ा हुआ था।

'उस पर क्यों प्रिय ?'

'क्योंकि वह अधिकार को बहुत महत्व देता है, वह अपने राज्य का सबसे धनी, सबसे बड़ा और सबसे स्वच्छन्द व्यक्ति है। उसके पास बिना ही कोई काम किए दुनिया भर की दौलत चली आती है, राज्य भर में फैले हुए दास, कर्मकर और प्रजावर्गीय जन उसी की सम्पत्ति है। वह दासों का तो अधिपति है ही, प्रजा के सर्वस्व का भी स्वामी है। वह उनकी युवती पुत्रियों को अपनी विलास-कामना के लिए अपने अन्तःपुर में जितनी चाहे भर सकता है, उनके तरुण पुत्रों को अपने अकारण युद्धों में मरवा सकता है, वह प्रजा की पसीने की कमाई को बड़े-बड़े महल बनवाने और उन्हें भांति-भांति के सुख-स्वप्नों से भरपूर करने में खर्च कर सकता है, उसकी आज्ञा सर्वोपरि है।'

'छिः छिः कैसे लोग यह सहन करते हैं, प्रिय ?'

'यह तो अभ्यास की बात है। तुमने देखा नहीं, पश्चिम गान्धार

कैसे पर्शुपुरी के शासानुशास का शासन मान रहा है, कैसे उसने कलिंग-सेना जैसी नारी को प्रसेनजित के अन्तःपुर में भेज दिया ? फिर वह सावधान और भयभीत भी तो रहता है, वह अनेकों विधिविधानों से अपने को सुरक्षित रखता है।'

अम्बपाली ने हंस कर कहा—'कदाचित् गांधारपुत्री पर यह विदित नहीं है कि उनके जल को, ताम्बूल को, आहार को, जब तक कोई चख न ले, वे नहीं खाते पीते।'

'यह किसलिए ?'

'अपने प्राणनाश का जो उन्हें भय रहता है, सम्पूर्ण प्रजा का भार उन्हीं पर लदा रहता है, उनके बहुत गुप्त और प्रकट शत्रु होते हैं।

'ओह, तो उन पर केवल उनके शरीर पर लदे हीरे मोतियों ही का बोझ नहीं है, जीवन का भी बोझ है। फिर ये भाग्यहीन उन बोझ को लादे क्यों फिरते हैं ? अपने जीवन में ये रज्जुले इतने भयभीत और भारवाही होने पर भी अन्य देशों को विजित करने की लिप्सा नहीं छोड़ सकते ?'

'यही तो प्रिय, राजसत्ता और गणतन्त्र में मूलभेद है। गणतन्त्र तो एक जनतन्त्र तक सीमित है। उसका शासन अधिकार के सिद्धान्त पर नहीं, कर्तव्य के सिद्धान्त पर है। वह शासन करने के लिए नहीं, जन में सुव्यवस्था और सामूहिक सामञ्जस्य बनाए रखने के लिए है। परन्तु ये रज्जुले तो अधिकार के लिए हैं। उनकी नीति ही यह है कि उन्हें शासन करने को ऐसे अनेक राष्ट्र दरकार है, जो एक दूसरे के विरुद्ध समय-समय पर उसकी सहायता करते रहें। फिर इन राजाओं की यह भी नीति है कि राष्ट्रों में फूट डालते रहें। आर्यों ही के राज्यों को ले लो। देखा नहीं तुमने प्रिय, हस्तिनापुर, काम्पिल्य, कान्यकुब्ज, कौशल और प्रतिष्ठान, जहां-जहां आर्यों के रज्जुले हैं, वहां राष्ट्र टूटा-फूटा है। वहां ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, वैश्य हैं और कर्मकर हैं, ये सब अपने को दूसरे से भिन्न समझते हैं। ये सभी बातें राजाओं की स्वेच्छाचारिता में बड़ी

सहायक हैं। परन्तु गण शासन की बड़ी बाधा है। यहाँ वैशाली ही को लो। लिच्छवि सब एक हैं, पर अलिच्छवि आर्य और कर्मकर राजशासन में अधिकार न रखते हुए भी इसी भिन्नता के कारण हमारी बहुत बड़ी बाधाएं हैं।'

रम्भा ने इन बातों से ऊब कर कहा—'किन्तु स्नुषा गान्धारी, इस गहरी राजनीति से अपने हाथ कुछ न आएगा। कुछ खाओ पिओ भी।'

पान भोजन प्रारम्भ हुआ। मैरेय, शूकर मार्दव, मृग, गवय, ओदन और मधुगोलक आदि भोजन-सामग्री परसी जाने लगी। देवी अम्बपाली धर्मध्वज मण्डली से चुहल कर रही थीं। किन्तु उसकी सुन्दर दासियों को गान्धारी रोहिणी ने नहीं छोड़ा था—वे उसके पास बैठी महिला-मण्डली के साथ खा पी रही थीं। भोजन की समाप्ति पर सब नर नारियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार नृत्य किया और अर्द्ध-रात्रि व्यतीत होने पर यह समारोह समाप्त हुआ।

१९ : : मल्लदम्पति

वसन्त की मस्ती वातावरण में भर रही थी। शाल वृक्षों पर लदे सफेद फूलों की सुगन्ध वन को सुरभित कर रही थी। एक तरुण और एक तरुणी अश्व पर सवार उस सुरभित वायु का आनन्द लेते, धीरे-धीरे बातें करते चले जा रहे थे। तरुणी का घुटने तक लटकने वाला अन्तर्वासक हवा में फड़फड़ा रहा था और उसके कुञ्चित काली नागिन से उन्मुक्त केश नागिन की भांति हवा में लहरा रहे थे। तरुण ने अपने घोड़े की रास खींचते हुए और अपने सुन्दर दाँतों की छटा दिखाते हुए कहा—'वाह, क्या बढ़िया आखेट है। वह देखो, पुष्करिणी के तीर पर वह सुअर

अपनी थूथन कीचड़ में गड़ा-गड़ा कर क्या मजे में मोथे की जड़ खा रहा है।'

'तो मैं अपना बाण सीधा करूं प्रिय ?'

'ठहरो प्रिये, वह देखो, एक और मोटा वाराह इधर ही को आ रहा है, हृदय पर बाण-संधान करना।'

तरुणी ने बाण धनुष पर चढ़ा कर अश्व को घुमाया।

तरुण ने भी फुर्ती से बाण को धनुष पर चढ़ा लिया। फिर उसने तरुणी के बराबर अश्व लाकर कहा—'सावधान रहना, यदि लक्ष्य च्युत हुआ तो पशु सीधा अश्व पर आएगा। हाँ, अब बाण छोड़ो।'

तरुणी ने कान तक खींच कर बाण छोड़ दिया। बाण सन्न से जाकर वाराह की पसलियों में अटक गया। पशु ने वेदना से चीत्कार किया और क्रुद्ध हो घुर्र-घुर्र शब्द करता हुआ सीधा तरुणी के अश्व पर टूटा।

तरुण ने इसी बीच तान कर एक बाण चलाया, वह उसकी आँख फोडता हुआ गर्दन के पार निकल गया, पशु भूमि पर गिरकर छटपटाने लगा।

तरुणी ही-ही करके हंसने लगी। तरुण घोडे से उतर पडा। वह पशु को खींचकर एक वृक्ष के नीचे ले गया। तरुणी ने भी घोड़े से उतर दोनों घोड़ों को बागडोर से बाँध दिया। फिर तरुण ने पशु की खाल निकाली, मांस खण्ड किए, तरुणी सूखी लकड़ियाँ बीन लाई और फिर उन्होंने मांस खण्ड भून-भून कर खाना प्रारम्भ किया

तरुणी ने सुराचषक तरुण के मुंह से लगाते हुए कहा–'प्रिय, कितना स्वाद है इसमें, कहो तो ?'

'निस्सन्देह, विशेषतः इसलिए कि इसमें हमारी स्वतन्त्रता भी समावेशित है।'

'यही तो, परन्तु प्रिय, कुशीनारा छोड़ते मेरी छाती फटती है। क्या कुशीनारा को बंधुलमल्ल की आवश्यकता ही नहीं है ?'

नहीं है प्रिये मल्लिके, तभी तो जब मैंने स्नातक होकर तक्षशिला को

छोड़ा था, तो गुरुपद ने कहा था—यह आयुष्मान् जा रहा है, समस्त हस्तलाघव और राजकौशल सीख कर, मल्लों के गौरव की वृद्धि करने। और मेरा हस्त-लाघव क्या कुशीनारा ने चार साल में देखा नही ? गण-पति ने इन चार वर्षों में जो गुरुतर राजकाज मुझे सौंपा, मैंने उसे सम्यक् पूर्ण किया, परन्तु गण-संथा का मुझ पर सन्देह बना ही रहा प्रिये, मल्लों का सन्निपात जब जब हुआ, गणसदस्यों ने ईर्षावश बाधा दी और मुझे उपसेना-पति का पद भी मल्लों ने नहीं दिया। सदैव काली छन्द शला-काओं ही का बाहुल्य रहा सन्निपात में।'

मल्लिका ने सुराचषक भरा और कुरकुरा मांस खण्ड भूनकर उसे पति को देते हुए कहा—'प्रिय, जाने दो, अमर्ष करने मे क्या होगा। परन्तु कुशीनारा अपनी जन्मभूमि है।'

'जन्मभूमि ? अपनी मां है, उसी से मेरा शरीर बना है। परन्तु कुशीनारा में तो मैं अब नहीं रहूंगा प्रिये, मेरी तो यहां आवश्यकता ही नहीं है। कितने ही सम्भ्रान्त मल्ल मुझसे डाह करते हैं, क्योंकि उन्होंने मुझे सर्वप्रिय होते देखा है।'

'परन्तु इससे तो उन्हें प्रसन्न होना चाहिए था, उन पर तुम्हारे सभी अलौकिक गुण प्रकट हैं, क्या और भी किसी मल्ल ने तक्षशिला में इतना सम्मान पाया है ?'

'नहीं, बन्धुल ने प्याला खाली करके एक ओर रख दिया और उदास दृष्टि से वह मल्लिका की ओर देखकर बोला—'मैंने इच्छा की थी, कि मल्लों को मगध की लोलुप दृष्टि से अभय करूंगा, परन्तु अब नहीं।'

'तो फिर प्रिय, रज्जुले की श्रावस्ती ही क्यों ? लिच्छवियों की वैशाली क्यों नहीं ? महाली लिच्छवी तो तुम्हारा परम मित्र है, तक्ष-शिला में वह तुम्हारा सहपाठी भी रहा है। वह उस दिन आया था तो तुम्हारे गुणों का बखान करते थकता न था। सुना है वह वैशाली के नगर-द्वार रक्षकों का अध्यक्ष है।'

'जानता हूं प्रिये, परन्तु महाली तो सदैव ही बन्धुल की कृपा का

भिखारी रहा है। आज बन्धुल अपनी लाज खोकर उसके पास नहीं जायगा। फिर लिच्छवियों का गण आज अम्बपाली के स्त्रैण युवकों का गण है, वहाँ सुरा-सुन्दरी ही प्रधान हैं, उसका संगठन भी नष्ट हो रहा है, उसका विनाश होगा प्रिये !'

'ऐसा न कहो प्रिय, यहां रज्जूलों के बीच जो हमारे दो चार छोटे-छोटे गण हैं, उनमें वैशाली के लिच्छवियों ही का गण समृद्ध है।'

'परन्तु स्थाई नहीं प्रिये, इससे तो श्रावस्ती ही ठीक है, कोशल के राजा प्रसेनजित के बहुत लेख आ चुके हैं। वह हमारा आदर करेगा। हम दस वर्ष तक्षशिला में साथ-साथ पढ़े हैं ! वह मेरे गुणों और शक्ति को जानता है और उसे मेरी आवश्यकता है।'

'किन्तु प्रिय, तुम्हीं ने तो कहा—मल्लों ने तुम्हारे गुणों ही से ईर्षा की है, तुम वहां भी क्या ईर्षा से बचे रहोगे ? गुणी और सर्वप्रिय होना जैसा अभ्युदय का कारण है, वैसा ही ईर्षा का भी। फिर, वह पराया जनपद, वह भी रज्जुलों का, जहाँ हम गणपद के स्वतन्त्र जनों की थोड़ी भी आस्था नहीं है।'

तुम्हारा कहना यथार्थ है। ईर्षा होगी तो फिर यह खड्ग तो है। पर अभी श्रावस्ती ही चलना श्रेयकर है। कोशलपति पाँच महाराज्यों का अधिपति है। वह मूर्ख आलसी और कामुक है। शत्रुओं से घिरा है। उसे एक विश्वस्त और वीर सेनापति की आवश्यकता है। आशा है, वह हमारा समादर करेगा ?'

'ऐसा ही सही प्रिय, बहुत विलम्ब हुआ, बहुत सुस्ता लिए, अब चलें।'

दोनों ने अपने-अपने अश्व सम्हाले और आगे बढ़े। सूर्य ढलने लगा। दोनों यात्रियों की पीठ पर उसकी पीली धूप पड़ रही थी। मल्लिका ने कहा—'रात्रि कहाँ व्यतीत होगी, प्रिय ?

'ब्राह्मणों के मल्लिग्राम में, वहाँ मेरे मित्र सांकृत्य ब्राह्मण हैं, जो मल्ल जनपद में ख्यातिप्राप्त योद्धा हैं। वे हमारा सत्कार करेंगे। वह सामने

अचिरावती की श्वेत धार दीख रही है प्रिये, उसी के तट पर उन सघन वृक्षों के झुरमुट के पीछे मल्लिग्राम है। घोड़े को बढ़ाओ, हम एक मुहूर्त में वहाँ पहुँच जाते हैं।'

दोनों ने अपने-अपने अश्व फेंके। असील जानवर अपने-अपने अधिरोहियों का संकेत पा हवा में तैरने लगे। सान्ध्य समीर और कोमल होकर उनकी पीठ पर थपकियां दे रहा था।

ग्राम सामने आगया। अचिरावती की श्वेत धारा रजत सिकताकणों में मन्द प्रवाह से वह रही थी। अश्वारोहियों ने अपने-अपने घोड़ों की लगाम ढीली की। अश्व तृप्त होकर शीतल जल पीने लगे।

एक तरुणी मशक पीठ पर लिए नदी तीर पर आई। उसके पिंगल केश हवा में लहरा रहे थे। कन्धों पर होकर श्वेत ऊनी कम्बल वक्ष को ढाँप रहा था। कमर में लाल दुकूल था। यात्रियों को देखकर तरुणी ने कहा—

'कहाँ से आ रहे हैं, प्रिय अतिथियो !'

'कुशीनारा से।'

'जहां बन्धुलमल्ल रहते हैं ?'

'मैं बन्धुलमल्ल हूँ।'

'तुम ? तो ये श्रीमती मल्लिका हैं, स्वागत बहिन, मैं सांकृत्य गौतम की पुत्री हूँ।'

'तू लोमड़ी गोपा है ?' बन्धुल हंसते हुए घोड़े से उतर पड़े।

'मैं जल भर लूं तब चलें, पिता घर पर ही हैं, देख कर प्रसन्न होंगे।'

'तू अश्व को थाम, मैं जल भरता हूँ।'

'ऐसा ही सही।' गोपा ने मशक बन्धुल को दे दी। बन्धुल ने मशक भर कर कन्धे पर रखी। गोपा घोड़े की रास थामे पैदल चली। मल्लिका अश्व पर सवार रही।

'आज किधर भूल पड़े बन्धुल ?'

'भूल नहीं पड़ा, इच्छा से आया हूँ।'

'बहुत दिन बाद !'

'सचमुच, तब तू बहुत छोटी थी ।'

'पर मैं तुम्हें याद करती थी बन्धु । देवी मल्लिका, अब कितने दिन मेरे पास रहेगी ?'

'आज रात भर गोपा, तुझे सोने न दूंगी, खूब गप्पें होंगी । क्यों ?'

'मित्र गौतम करते क्या हैं ?'

'वही सूत्र रचते हैं । हंसी आती है बन्धु, सूत्र में एक मात्रा कम कर पाते हैं तो खूब हंसते हैं ।'

'और अहल्या रोकती नहीं ?'

'मां की वे परवा कहां करते हैं,? मैं ही उन्हें समय पर स्नान आन्हिक कराती हूँ । वह सामने घर आ गया । पिता जी द्वार पर खड़े हैं । पिता जी, देखो तो मैं किसे ले आई हूँ ?'

बन्धुल को देख कर गौतम सांकृत्य बाहर आकर बोले—'अरे मित्र बन्धुल, स्वस्ति, स्वस्ति ।'

'स्वस्ति मित्र गौतम, कहो न्याय-दर्शन पूरा हुआ या नहीं ?'

'अभी नहीं मित्र, इस धूर्त बौधायन को–मैं कहता हूँ मसल डालूंगा । मैंने धर्म-सूत्र रचे हैं बन्धुल !'

'सच, तो मित्र गौतम सांकृत्य, योद्धा, दार्शनिक और धर्माचार्य हैं ?'

'ये दुष्ट द्रविड़ कुछ करने दें तब न ? अनार्य संस्कृति को आर्य संस्कृति में घुसेड़ रहे हैं । उधर यह ज्ञातिपुत्र महावीर, परन्तु अरे, मल्लिका देवी का स्वागत करना तो मैं भूल ही गया ।'

'घर मैं स्वागत कैसा मित्र, फिर, गोपा ने नदी-तीर पर ही यह शिष्टाचार पूरा कर दिया ।'

'बहुत याद करती है गोपा तुम्हें बन्धुल ! तुम्हारे उस आखेट की उसे याद है, जब उस मृगया को एक ही बाण से तुमने मारा था । किन्तु हाँ, 'बेटी गोपा, जैमिनी कहाँ गया ?'

'समिधा लाने गया था, वह आ रहा है ।'

'जैमिनि, ये हमारे मित्र मल्ल बन्धुल आए हैं, मल्लिका भी हैं, एक वत्सतरी को लाकर काट तो मेरे द्वार पर वत्स इन सम्मान्य अतिथियों के सम्मान में। क्यों मित्र, कोमल वत्सतरी का मांस, ओदन और मधु कैसा रहेगा ?'

'बहुत बढिया, मित्र गौतम !'

'तो बेटी गोपा, देवी मल्लिका को भीतर लेजा और बन्धुल के लिए अर्घपाद्य ला। क्यों मित्र, यहीं देवद्रुम की छाया में बैठा जाय ?'

'यहीं अच्छा है। मित्र गौतम, बौधायन की क्या बात कह रहे थे ?'

'कह रहा था, किन्तु ठहरो। गोपा, थोड़ा, शूकर मार्दव आग पर भून ला और पुरानी मैरेय भर ला, बन्धुल थका हुआ है।'

'आग तैयार है, मैं अभी भून लाती हूँ। सोमक के हाथ मैरेय भेज रही हूँ।'

'बैठ मित्र, हाँ बौधायन नास्तिक कहता है—स्त्री के साथ अथवा यज्ञोपवीत विना किए बालकों के साथ भोजन करने में दोष नहीं है बासी खाना भी बुरा नहीं है और मामा फूफू की कन्या से विवाह भी विहित है। वह भारत के तीन खन्ड करता है और गंगा यमुना के मध्य देश को सर्वोत्तम कहता है। वह भारत के आरट्ट, दक्षिण के कारस्कर, उत्पल के पुण्ड्र, तथा बंग, कलिंग के सौवीरों को प्रायश्चित्त विधान कहता है।'

'परन्तु मित्र गौतम, ऐसा दीखता है कि तुम्हारा न्यायदर्शन अब धरा रह जायगा।'

'ऐसा क्यों मित्र !'

'तुमने क्या शाक्यपुत्र गौतम का नाम नहीं सुना ?'

'सुना क्यों नहीं, वह क्या आजकल काशी में है ?'

'नहीं, राजगृह गया है, परन्तु उसका धर्म आग की भाँति फैल रहा है। उसके आगे तेरा धर्मसूत्र और न्यायदर्शन कुछ न कर पायेगा।'

'देखा जायगा मित्र, ले मैरेय पी । ला गोपा, गर्म-गर्म भुने कुरकुरे मांस-खण्ड दे । कह, कैसे हैं मित्र !'

'बड़े स्वादिष्ट, मुझे नमक के साथ भुने कुरकुरे मांस में बहुत स्वाद आता है ।'

'तो यथेच्छ खा मित्र !'

'खूब खा रहा हूँ । परन्तु मित्र गौतम, तुम जो ब्राह्मणों को अन्य जातियों से उत्कर्ष देते हो यह ठीक नहीं है ।'

'वाह, ठीक क्यों नहीं है ? देखते नहीं, इन रज्जुलों ने ब्रह्मवाद को लेकर परिषद् प्रारम्भ की है और उसमें वे गुरुपद धारण किए बैठे हैं । वे ब्राह्मणों को हीन बनाना चाहते हैं । देखा नहीं, उस अश्वपति कैकेय ने मेरे साथ कैसा नीच व्यवहार किया था । मेरे पुत्र ही के सामने मेरा अपमान किया और मुझे समित्पाणि होकर उसके आगे जाना पड़ा । उसने गर्व से कहा—'बैठ गौतम, ब्राह्मणों में सबसे प्रथम मैं तुझे यह ब्रह्मविद्या बताता हूँ, आज से प्रथम किसी ब्राह्मण को यह विद्या नहीं आती थी ।'

'फिर वह गुह्य विद्या तो तुम सीख आए मित्र !'

'खाक सीख आया । अरे कुछ विद्या भी हो, छल है छल । कोरा-पाखण्ड । यज्ञ के ब्रह्मा को बना दिया ब्रह्म ! पहिले ब्रह्मा को लूट के माल में काफ़ी हिस्सा देना पड़ता था, उनके आधीन रहना पड़ता था, उनके द्वारा यज्ञ अनुष्ठान कराकर महाराज और सम्राट् की उपाधि ली जाती थी । पर अब तो वे ब्रह्म को जान गए, ब्रह्मज्ञानी हो गए । अरे मित्र बन्धुल, इस ब्रह्म के ढकोसले को मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ ।'

'तो मुझे भी तो समझा मित्र गौतम ।'

'सीधी बात है मित्र, यज्ञों में देवताओं के नाम पर गन्ध-शाली का भात, वत्सतरी का मांस और कौशेय, दासदासी, हिरण्य-सुवर्ण, वड़वा रथ दिया जाता था और समझा जाता था—यह देवता की कृपा से है; पर तुम जानते हो मित्र, ये भाग्यहीन देवता भी पूरे ढकोसले ही थे । इनमें से किसी एक को भी आज तक किसी ने देखा नहीं । अब लोग यह संदेह न करेंगे

कि ये देवता सचमुच हैं भी या नहीं। बस, इन सबों ने बैठे ठाले ब्रह्म की कल्पना कर ली। उसे देखने की कोई इच्छा ही नहीं कर सकता। वह आकाश की भाँति देखने सुनने का विषय ही नहीं।'

गौतम खूब ठठाकर हँसने लगे। बन्धुल ने भी हँसकर कहा—'तो इसी में आरुणि जैसे ब्राह्मण भी भटक गए।'

'यही तो मजा है और उस याज्ञवल्क्य को देखो, इन विदेहों के पीछे कैसे गुड़ का चिऊँटा बनकर चिपटा है पट्ठा, उनके ब्रह्म की ऐसी गम्भीर व्याख्या करता है कि मित्र, देखकर हँसी आती है।'

'तो तुम हँसा करो गौतम! क्योंकि तुम मूर्ख हो मित्र, ऐसा न करे तो वह सहस्र स्वर्ण काषार्पण और सहस्र गौ कहाँ से पाए! तू भी यदि उनकी हाँ में हाँ मिलाए तो कदाचित् कौशल्या कोशेय पहने।'

'उसकी मुझे आवश्यकता नहीं मित्र, यह रज्जुलों के कौशल है, राज-भोग को भोगने के लिए यह आवश्यक है, कि जो सन्देह करे उनकी बुद्धि को कुण्ठित कर दिया जाय; कुछ को उत्तम आहार खाने को, उत्तम प्रासाद रहने को और सुन्दरी दासियाँ भोगने को दे दी जायं। वे उन्हीं का गीत गाएंगे।'

'सच कहते हो मित्र गौतम!'

'अरे मैंने, वह नियम बनाये हैं मित्र, कि तू भी क्या कहेगा। यदि शूद्र किसी द्विज को गाली दे या मारे तो उसका वही अंग काट डाला जाय उसने वेद-पाठ सुना हो तो कान में टीन या शीशा पिघला कर भर दिया जाय। वेद पढ़ा हो तो उसकी जीभ काट काट कर टुकड़े कर दिए जायं।'

'अरे बाहु मित्र गौतम, अनर्थ किया तूने। बेचारे शूद्रों और·····'

'तो और उपाय ही क्या है भाई, देखते नहीं, ब्राह्मणों का कैसा ह्रास हो रहा है।'

'अच्छा फिर, देखूं कब तक तेरा सूत्र सम्पूर्ण होगा। अभी तो विश्राम करना चाहिए।'

'तो विश्राम कर मित्र, शैया तैयार है।'

२० :: साकेत

कौशल-नरेश प्रसेनजित साकेत में ठहरे थे, वे सेठी मृगार के पुत्र पुण्ड्र-वर्धन के व्याह में सदलबल साकेत आए थे। राजधानी श्रावस्ती यहाँ से छै योजन पर थी। सरयू तट पर बसा यहनग रउस समय प्राची से उत्तरा-पथ के सार्थ पथ पर बसा होने के कारण स्थल व्यापार और नौ व्यापार दोनों ही का मुख केन्द्र था। उन दिनों सरयू आज के समान ऐसी क्षीणकाय न थी, उसका विस्तार डेढ़ मील में था और उसमें बड़े-बड़े पोत चलते थे। उस समय साकेत भारत के छै प्रमुख नगरों में एक था।

प्रसेनजित का यहाँ एक दुर्ग और हर्म्य था; उसी में महाराज प्रसेनजित अवस्थित थे। आम बौरा रहे थे और उनकी सुगन्ध से मत्त भौरों के गुंजन वातावरण में गूंज रहे थे। वृक्षों ने नवीन कोमल और मृदुल परिधान धारण किया था, शीत कम हो गया था। सान्ध्यक्षण मनोरम था, अस्तंग सूर्य की लाल लाल किरणें नव कुसुमित वृक्षों पर लोहित प्रभा बखेर रही थीं। साकेतवासी तरुण-तरुणियाँ स्वच्छन्द सान्ध्य-समीरण का आनन्द लेने सरयू-तट पर इकट्ठे थे। बहुत रजतसिकता पर नंगे पैर चल कर विनोद कर रहे थे। बहुत नंगे बदन तैराकी प्रतियोगिता की होड़ लगा रहे थे। तरु-णियों में अनेक कोमल नवीन केले के मनोहर वर्णवाली आर्य ललनाएं थीं। बहुत चम्पकवर्णी रूप-यौवन भार से लदी विश तरुणियाँ थीं। कितनी ही कर्पूर सम उज्ज्वलवर्णा यवनियाँ थीं, जिनका सुगौर, चिक्कण, सुडौल गात्र मर्मर प्रस्तर-निर्मित मूर्ति-सा प्रतीत होता था, उनकी नीलवर्ण आँखें और पिंगल केश उनके व्यक्तित्व को प्रकट कर रहे थे। बहुत-सी स्वर्ण-केशी, स्वर्ण-वर्णा ब्राह्मण-कुमारियां थीं। कितनी घन-केशपाश वाली घनश्याम कोमल

गात्रवाली गोधूमवर्णी वैश्य-तरुणियां थीं, जिनका तारुण्य अति मादक था। नाना कुलों के तरुण भी अपने-अपने वस्त्र उतार कर सरयू तट पर कुछ आकटि और कुछ आकण्ठ जल में जल-क्रीड़ा कर रहे थे। उनके व्यायामपुष्ट सुडौल शरीर, उन्नत नासिका, विशाल वक्ष और प्रशस्त मस्तक उनके कुलीन होने के साक्षी थे। कोई प्रणयकलह में, कोई सामोद क्रीड़ा में, कोई हस्त-लाघव और व्यायाम में लीन था। तरुण-तरुणियां यहां स्वच्छन्द विहार कर रहे थे। बहुत युगल जोड़े नाव पर चढ़कर उस पार जा जल में कूद पड़ते; बहुत जोड़े होड़ बदकर जल में डुबकी लगाते। उनके मृणाल-सम सुनहरी भुजाएं और स्वर्ण गात, नील, घनश्याम केशराशि जल के अमल भीतरी स्तर से मोहक दीख रही थीं। सैकड़ों छोटी नौकाएं जल में तैर रहीं थीं और युवक-युवती थक कर कभी-कभी उनका आश्रय लेकर सुस्ता लेते थे। बहुत नौकाओं पर मैरेय, माध्वीक, भुने हुए मांस और विविध फल बिक रहे थे। तैरते हुए युवक खरीद-खरीद कर आकण्ठ जलमग्न हो खा पी रहे थे।

ऐसे ही समय बन्धुलमल्ल और मल्लिका अपने थके हुए अश्वों को लिए सरयू-तीर पर आ पहुँचे। मल्लिका ने प्रफुल्ल होकर कहा—'साकेत में जीवन है! प्रिय, रज्जुलों के अधिकार में भी जनपद इतना प्रसन्न हो सकता है, यह मैंने सोचा भी नहीं था।'

'आओ प्रिये, हम भी स्नान करके शरीर की थकान मिटा लें। हवा बड़ी सुन्दर चल रही है।'

'ऐसा ही हो प्रिये!' मल्लिका ने कहा। बन्धुल घोड़े से कूद पड़ा और हाथ का सहारा देकर उसने मल्लिका को उतारा। एक दास को संकेत से निकट बुलाकर कहा—

'अश्वों को मल दल कर ठीक कर दे मित्र, ये चार निष्क ले, मैरेय के लिए।'

दास ने हंसकर रजत-खण्ड हाथ में लिए और अश्वों की रास सम्हाली।

दोनों यात्रियों ने वस्त्र उतारे और वे अनायास ही जल-राशि में घुंस

गए । उनके हस्त-लाघव और कुशल तैयारी से सभी आश्चर्य करने लगे। उन्होंने तैरने वालों को ललकारा–'बढ़ो मित्रो, जो कोई उस तट पर पहिले पहुँचेगा उसे मित्रों सहित भरपेट मैरेय पीने को मिलेगा ।' बहुत तरुण-तरुणियाँ हंसकर उनके पीछे हाथ मारने लगे । किनारे के लोग हर्षोत्फुल्ल होकर चिल्लाने लगे । सबसे आगे बन्धुल दम्पति थे, सबसे पहले उन्होंने तट स्पर्श किया । मल्लिका हाँफती हुई हंसने लगी । लोगों ने हर्ष-ध्वनि की। एक सम्पन्न युवक ने अपनी नौका पास लाकर कहा–'स्वागत मित्र, मेरी यह नौका सेवा में उपस्थित है, इस पर चढ़कर मेरी प्रतिष्ठा-वृद्धि करें।'

बन्धुल ने हाथ के सहारे से मल्लिका को नौका पर चढ़ाते हुए कहा–

'हम लोग अभी-अभी साकेत आ रहे हैं ।'

'कहाँ से मित्र !'

'कुसीनारा से ।'

'अच्छा, बन्धुलमल्ल की कुसीनारा से ।'

'मित्र, मैं ही बन्धुलमल्ल हूँ ।'

'तेरी जय हो मित्र !' फिर उसने हाथ उठाकर पुकार कर कहा—'कुसीनारा के मल्ल बन्धुल मित्र का साकेत में स्वागत है ।'

बहुत लोग नौका के पास उमड़ आए। बहुतों ने दम्पति पर पुष्पों की वर्षा की । नौका के स्वामी ने हंसकर कहा—'मैं हिरण्यनाभ कौशल्य हूँ मित्र, साकेत का क्षत्रप, बन्धुल के शौर्य से मैं परिचित हूँ ।'

'हिरण्यनाभ कौशल्य की गरिमा से मैं भी अविदित नहीं हूँ क्षत्रप, तक्षशिला में गुरुपद से मैंने आपका नाम सुना था ।'

'और मैंने भी मित्र, महाराजाधिराज से तेरी गुण-गरिमा सुनी है । अब इधर किधर ?'

'महाराज के दर्शन हेतु ।'

'साधु, महाराज आजकल यहीं है, कल दर्शन हो जाएंगे । परन्तु आज मेरे अतिथि रहो मित्र !'

'मल्लिका, ये महाक्षत्रप महाराज हिरण्यनाभ कौशल्य हैं, गुरुपद

ने कहा था, ये अवन्ति गुरुकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक हैं और ज्ञानगरिमा में काशी के सम्पूर्ण राजाओं से बढ़कर हैं।'

'मैं अपने पति का अभिनन्दन करती हूँ, ऐसे गौरवशाली मित्र के प्राप्त होने पर।'

'और मल्लिका, हम अपने मित्र के अतिथि होने जा रहे है।'

'प्रिय, यह असाधारण सौभाग्य है, परन्तु महाक्षत्रप, महाराज को क्या इनकी स्मृति है ? इनका कहना है—महाराज दस वर्ष साथ पढ़े हैं, तक्षशिला में।'

'महाराज भी यही कहते हैं देवी, वे कहते हैं—बन्धुल-सा एक मित्र कहीं मिले तो जीवन का सूनापन ही दूर हो जाय।'

'ऐसा कहते हैं ? तब तो महाक्षत्रप, महाराज को मित्र का बहुत ध्यान है।'

'किन्तु मल्लिका देवी, तुम्हारे पति क्या ऐसे वैसे है ? मैंने अवन्तिका में गुरुपद से सुना था कि राजनीति और रण-नीति में बन्धुल का कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है।'

'और जल में तैरने में महाक्षत्रप ?'

'आज देखा हमने प्रतिस्पर्धी, देवी मल्लिका को।'

महाक्षत्रप हंस दिए। मल्लिका भी हंस दी। बन्धुल ने कहा—'यहीं हमारे अश्व हैं।'

'वे पहुँच जाएंगे मित्र, नौका हमें क्रीड़ोद्यान के नीचे पहुंचा देगी।'

इसके बाद क्षत्रप ने एक दास को अश्व ले आने के लिए भेज दिया। उन्होंने मल्लिका को सम्बोधन करके कहा—'वह मेरे उद्यान का घाट दीख रहा है देवी मल्लिका !'

'देख रही हूँ महाक्षत्रप, अभी हमें आये कुछ क्षण ही बीते हैं, पर ऐसा दीख रहा है, घर ही में हूँ।'

'घर ही में तो हो देवी मल्लिका, हम आ गए मित्र, उतरो तुम और क्षण भर ठहरो, तब तक मैं आवश्यक व्यवस्था कर दूँ।'

२१ : : कोशलेश प्रसेनजित

महाराज प्रसेनजित हिमश्वेत कोमल गद्दे पर बैठे थे। दो यवनी दासियाँ पीछे खड़ी चंवर ढल रही थीं। उनका शरीर अत्यन्त गौरवर्ण था आयु पैंसठ से भी अधिक हो गई थी, उनके खिचड़ी बाल बीच में चीर कर द्विफालवद्ध किए गए थे। बड़ी-बड़ी मूछें यत्न से संवारी गई थीं और वे कान तक फैल रही थीं। वे कोमल फूलदार कौशेय पहिने थे और कण्ठ भुजा और मणिबन्ध पर बहुमूल्य रत्नाभरण पहिने थे। इस समय उनका मन प्रसन्न नहीं था, वे कुछ उद्विग्न से बैठे थे। कंचुकी ने राजपुत्र विदूडभ के आने की सूचना दी।

महाराज ने संकेत से आने को कहा।

विदूडभ ने बिना ही प्रणाम किए, आते ही पूछा—'महाराज ने मुझे स्मरण किया था ?'

'किया था।'

'किसलिए ?'

'परामर्श के लिए।'

'इसके लिए महाराज के सचिव और आचार्य माण्डव्य क्या यथेष्ट नहीं है ?'

'किन्तु मैं तुम्हें कुछ परामर्श दिया चाहता हूँ विदूडभ !'

'मुझे ? महाराज के परामर्श की मुझे आवश्यकता ही नहीं है।' राजपुत्र ने घृणा व्यक्त करते हुए कहा।

महाराज प्रसेनजित गम्भीर बने रहे। उन्होंने कहा—'किन्तु रोगी की

इच्छा से औषध नहीं दी जाती राजपुत्र !'

'तो मैं रोगी और आप वैद्य हैं महाराज ?'

'ऐसा ही है । यौवन, अधिकार और अविवेक ने तुम्हें धृष्ट कर दिया है विदूडभ !'

'परन्तु महाराज को उचित है, कि वे धृष्टता का अवसर न दें ।'

'तुम कौशलपति से बात कर रहे हो विदूडभ !'

'आप कौशल के भावी अधिपति से बात कर रहे हैं महाराज !'

क्षण भर स्तब्ध रहकर महाराज ने मृदु कण्ठ से कहा—'पुत्र, विचार करके देखो तुम्हें क्या ऐसा अविवेकी होना चाहिए ? मैं कहता हूँ–तुमने मेरी आज्ञा बिना शाक्यों पर सैन्य क्यों भेजी है ?'

'मैं कपिलवस्तु को निःशाक्य करूंगा, यह मेरा प्रण है ।'

'किसलिए ? सुनूं तो ।'

'आप के पाप के लिए महाराज !'

'मेरा पाप, धृष्ट लड़के ! तू सावधानी से बोल !'

'मुझे सावधान करने की कोई आवश्यकता नहीं है महाराज, मैं आपके पाप के कलंक को शाक्यों के गर्म रक्त से धोऊंगा ।'

'मेरा पाप कह तो ।'

'कहता हूँ सुनिए, परन्तु आपके पापों का अन्त नहीं है, एक ही कहता हूँ, कि आपने मुझे दासी से क्यों उत्पन्न किया ? क्या मुझे जीवन नहीं प्राप्त हुआ, क्या मैं समाज में पद-प्रतिष्ठा के योग्य नहीं ?'

'किसने तेरा मान भंग किया ?'

'आपने शाक्यों के यहाँ मुझे किसलिए भेजा था ?'

'शाक्य अपने करद हैं । पच्छिम में वत्सराज उदयन कौशल पर सेना तैयार कर रहा है । पूर्व में मगध सम्राट् बिम्बसार । वैशाली के लिच्छवि अलग खार खाए बैठे हैं । ऐसी अवस्था में शाक्यों का प्रेम और साहाय्य प्राप्त करना था, इसीलिए और किसी को न भेजकर कपिलवस्तु तुझे ही भेजा था, तू मेरा प्रिय पुत्र है और शाक्यों का दौहित्र ।'

विदूडभ ने अवज्ञा की हंसी हंसकर कहा—'शाक्यों का दोहित्र या दासीपुत्र ? आप जानते हैं वहाँ क्या हुआ ?'

'क्या हुआ ?'

'सुनेंगे आप ? घमण्डी और नीच शाक्यों ने संथागार में विमन होकर मेरा स्वागत किया, अथवा उन्हें स्वागत करना पड़ा। पर पीछे संथागार को और आसनों को उन्होंने दूध से धोया।'

प्रसेनजित का मुंह क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने चिल्लाकर कहा—'क्षुद्र शाक्यों ने यह किया ?'

'मुझे मालूम भी न होता, मेरा एक सामन्त अपना भाला वहां भूल आया था, वह उसे लेने गया, तब जो दास-दासी दूध से संथागार को धो रहे थे, उनमें एक दासी मुझे गालियाँ दे रही थी, कह रही थी—दासी पुत्र की धृष्टता तो देखो, रज्जुले का वेश धारण करके आया है। संथागार को अधम ने अपवित्र कर दिया।'

'शाक्यों के वंश का मैं नाश करूंगा।'

'आप क्यों ? आपका उन्होंने क्या बिगाड़ा है ? आपको शाक्यों की राजकुमारी से व्याह का शौक चढ़ा था, क्योंकि आप राजमद से अन्धे थे। पर आप जैसे बूढ़े, अशक्त और रोगी को शाक्य अपनी पुत्री देना नहीं चाहते थे, खासकर इसलिए कि आपके रनवास में कोई कुलीन स्त्री है ही नहीं। आपने माली की लड़की को पट्टराजमहिषी पद पर अभिषिक्त किया है। शाक्य अपनी ऊँची नाक रखते थे, पर आपकी सेना से डरते भी थे। उन्होंने दासी की लड़की से आपका व्याह कर दिया।'

'यह शाक्यों का भयानक छल था; किन्तु .....।'

'किन्तु पाप तो नहीं, जैसा कि आपने किया। उसी दासी में इन्द्रिय-वासना के वशीभूत हो आपने मुझे पैदा किया; आपको साहस नहीं कि मुझे आप अपना पुत्र और युवराज घोषित करें। आप आर्यों की यह पुरानी नीचता है। सभी धूर्त कामुक आर्य अपनी काम-वासना पूर्ति के लिए इतर जातियों की स्त्रियों के रेवड़ों को घर में भर रखते हैं। लालच लोभ देकर

कुमारियों को खरीद लेना, छलबल से उन्हें वश कर लेना, रोती कलपती कन्याओं को बलात् हरण करना, मूर्छिता, मदबेहोशों का कौमार्य भंग करना यह सब इन धूर्त आर्यों ने विवाहों में सम्मिलित कर लिया। फिर बिना ही विवाह के दासी रखने में भी बाधा नहीं। आप क्षत्रिय लोग लड़कर, जीतकर, खरीदकर खिराज के रूप में देश भर की सुन्दरी कुमारियों को एकत्रित करते हैं और ये कायर पाजी ब्राह्मण पुरोहित आपके लिए यज्ञ पाखण्ड करके दान और दक्षिणा में इन स्त्रियों से उत्पन्न राजकुमारियों और दासियों को बटोरते हैं। ऐसे धूर्त हैं आप आर्य लोग। उस दिन विदेहराज ने परिषद् बुलाई थी। एक बूढ़े ब्राह्मण को हजारों गायों के सींगों में मुहरें बाँध कर और सौ दासियां स्वर्ण आभरण पहना कर दान करदीं। वह नीच ब्राह्मण गायों को बेचकर स्वर्ण घर लेगया। पर दासियों को संग लेगया। वे सब तरुणी और सुन्दरी थीं। फिर क्या उन स्त्रियों के सन्तान न होगी? उन्हें आप आर्यों ने मजे में वर्णसंकर घोषित कर दिया। उनकी जात और श्रेणी अलग कर दी। ऐसा ही वर्णसंकर मैं भी हूँ, दासी पुत्र हूँ। मेरे पैर रखने से शाक्यों का संथागार अपवित्र होता है और मेरे जन्म लेने से कौशल राजवंश कलंकित होता है। महाराज, मैं यह सह नहीं सकता; मैं शाक्यवंश का नाश करूँगा और इसी तलवार के बल पर कौशल के सिंहासन पर आसीन होऊंगा। अब आर्यों के दिन गए। पाखण्डी ब्राह्मणों की भी समाप्ति आई। आज आर्यावर्त में नाम के आर्य राजे रह गए हैं। सभी राज्य हम लोगों ने, जिन्हें आप घृणा से वर्ण-संकर कहते हैं, अधिकृत कर लिए हैं। मैं कौशल, काशी, शाक्य और मगध राज्य को भी आक्रान्त करूं तो ही असल दासी पुत्र विदूडभ।'

प्रसेनजित के हाथ की तलवार नीची हो गई। उसकी गर्दन भी झुक गई। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—'किन्तु विदूडभ राजपुत्र, यह तो परम्परा है, कुछ मेरे बस की बात नहीं। तुम्हें सभी तो राजोचित भोग प्राप्त हैं।'

'अवश्य हैं महाराज, केवल सामाजिक सम्मान नहीं प्राप्त है। आप

का औरस पुत्र होने पर भी कौशल की गद्दी का अधिकार नहीं प्राप्त है। वही मैं छलबल और कौशल से प्राप्त करूँगा।'

प्रसेनजित क्रोध से तन कर गद्दी पर बैठ गए। उन्होंने कहा—'विदूडभ, यह राजद्रोह है।'

'मैं राजद्रोही हूँ महाराज !'

'इसका दण्ड प्राणदण्ड है, जानते हो राजधर्म कठोर है।'

'आत्मसम्मान उससे भी कठोर है महाराज !'

'पर वह वैयक्तिक है।'

'हम सब दासीपुत्र, वर्णसंकर बन्धु, जो आप कुलीन किन्तु कदाचारी आर्यों से घृणा करते हैं, उसे सार्वजनिक बनाएंगे। हम आर्यों के समस्त अधिकार, समस्त राज्य, समस्त सत्ताएं छीन लेंगे।'

'मैं तुम्हें बन्दी करने की आज्ञा देता हूँ, कोई है ?'

राजा ने दस्तक दी। दो यवनी प्रहरिकाएं खड्ग लिए आ उपस्थित हुई।

विदूडभ ने खड्ग ऊंचा करके कहा—'और मैं अभी आपका सिर धड़ से जुदा करता हूँ।'

विदूडभ की भावभंगी और खड्ग उठाने से वृद्ध प्रसेनजित आतंकित हो अपना खड्ग उठा खड़े हो गए। अकस्मात् विदूडभ का खड्ग झन्न से उसके हाथ से छूट कर दूर जा गिरा।

प्रसेनजित ने आश्चर्यचकित हो आगन्तुक की ओर देखकर कहा—

'यह किसका उपकार मुझ पर हुआ ?'

'कुशीनारा के मल्ल बन्धुल का।' महाक्षत्रप कौशल्य हिरण्यनाभ ने पीछे से आगे बढ़ कर कहा।

प्रसेनजित ने दोनों हाथ फैला कर कहा—'क्या मेरा मित्र बन्धुलमल्ल आया है ?'

'महाराज की जय हो, मुझे हर्ष है महाराज, मैं ठीक समय पर आ पहुँचा।' बन्धुल ने आगे बढ़ कर कहा।

'निश्चय ! नहीं तो यह दासीपुत्र मेरा हनन ही कर चुका था। क्षत्रप हिरण्यनाभ, इसे बन्दी कर लो।'

बन्धुल ने कहा—'महाराज प्रसन्न हों, इस बार राजपुत्र क्षमा कर दिया जाय। मैं समझता हूँ, वे अपने अविवेक को समझ लेंगे।'

राजा ने कहा—'कोशल में तेरा स्वागत है मित्र बन्धुल, विदूडभ के विषय में तेरा ही वचन रहे।'

'कृतार्थ हुआ महाराज, तो राजपुत्र, अब तुम स्वतन्त्र हो मित्र।' विदूडभ चुपचाप चला गया।

बन्धुल ने कहा—'महाराज को याद होगा, तक्षशिला में आपने इच्छा की थी, कि यदि आप राजा हुए तो मुझे सेनापति बनना होगा।'

'याद क्यों नहीं है मित्र, मैंने तो तुझे बहुत लेख लिखे, तेरी कौशल को भी जरूरत है और मुझे भी। कौशाम्बीपति उदयन की धृष्टता तूने नहीं सुनी, गान्धारराज कलिंगदत्त ने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी पुत्री कलिंग-सेना मुझे दी है, तो उदयन उसी बहाने श्रावस्ती पर चढ़ने की तैयारी कर रहा है। इधर मगधसम्राट् बिम्बसार पुराने सम्बन्ध की परवाह न करके कोशल को हड़पने के लिए कोशल पर अभियान कर रहे हैं। अन्य शत्रु भी कम नहीं हैं। बन्धुल मित्र, कोशल को तेरी कितनी आव-श्यकता है और मुझे भी, वह तो तूने देख ही ली।'

'तो मैं आ गया हूँ महाराज, पर मेरी कुछ शर्तें हैं।'

'कह मित्र, मैं स्वीकार करूँगा।'

'मैं, मल्ल वंश में हूँ।'

'समझ गया, तुझे कभी मल्लों पर अभिमान न करना होगा। मैं राज्य-विस्तार नहीं चाहता। जो है वही रखना चाहता हूँ। मित्र, कह और भी कुछ तेरा प्रिय कर सकता हूँ।'

'बस महाराज।'

'तो कौशल्य हिरण्यनाभ, मित्र बन्धुल का सब प्रबन्ध कर दो। जब तक हम साकेत में हैं। बन्धुल सुख से रहें।'

'ऐसा ही होगा महाराज !'

'और श्रावस्ती जाकर तुझे मैं सेनापति के पद पर अभिषिक्त करूँगा। तेरा कल्याण हो। जा, अब विश्राम कर।'

२२ : : माण्डव्य-उपरिचर

महाराज प्रसेनजित दीर्घिका के शुभ्र मर्मर सोपान पर बैठे थे। स्वच्छ जल में रंग-बिरंगी मछलियाँ क्रीड़ा कर रही थीं। प्रभात का सुखद समीर नए पत्तों से लदे वृक्षों को मन्द-मन्द हिला रहा था। बड़ा ही मनोहर वसंत का प्रभात था वह। महाराज की आँखें उनींदी और शरीर अलस हो रहा था। वे चुपचाप बैठे जल की तरंगों को देख रहे थे।

एक वेत्रवती ने निवेदन किया—'आचार्य माण्डव्य-उपरिचर आए हैं।'

'यहीं ले आ उन्हें।'

माण्डव्य आचार्य की आयु का कोई पता ही नहीं लगता था, उनका चेहरा भाव हीन, नेत्र अतिरिक्त भ्रमित से, भौंहे बहुत बड़ी-बड़ी, कान नीचे तक लटकते हुए, शरीर रोमश और रंग अति काला था। उनकी कमर पर लाल रंग का कौशेय था। ऊपर की पीठ और वक्ष बिलकुल खुला था। मस्तक पर रक्त चन्दन का लेप और पैरों में मृगचर्म का उपानत था। उनकी दन्तावलि सुदृढ़ थी। नेत्रों की कोर से कभी-कभी चमक निकलती थी। चेहरा श्मश्रु से भरा था। उनका शरीर लौह-निर्मित मालूम होता था। कण्ठ में स्वच्छ जनेऊ था। हाथ में एक मोटा दण्ड था। चलने का ढंग मतवालों जैसा था।

उन्होंने कर्कश वाणी से हाथ उठाकर महाराज को आशीर्वाद दिया।

'आचार्य, मैं बड़ी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'किसलिए महाराज, रात को सुखद नींद लाती है न ?'

'आचार्य, रात की बात क्या कहते हैं, जीवन अब घिस-सा गया है। सोचता हूँ, कुछ परलोक चिन्तन करूँ।'

'महाराज की बातें लोक-परलोक, सुख-दुख, पाप-पुण्य, आचार-दुराचार, देव-देवता, ये सब तो बाल-कल्पनाएं हैं राजन्, क्या आप भी उस मूर्ख प्रवाहण की मुक्ति, पुनर्जन्म और आत्मा के मायाजाल में फंसे हैं।'

'परन्तु जीवन तो मिथ्या नहीं है आचार्य।'

'जीवन सत्य है। तो फिर नक़द छोड़कर उधार के पीछे क्यों दौड़ते हैं ?'

'अरे आचार्य ! नक़द सामने रहते जो टुकुर-टुकुर ताकना पड़ता है सो ?'

आचार्य हंसकर वहीं शिलाखण्ड पर बैठ गए। उन्होंने कहा—'क्या यहाँ तक महाराज !'

'सत्य ही आचार्य, नग्न रूप और यौवन भी मेरे गलित काम को नहीं जगाता। पुराण द्राक्षा की सुवास अब नेत्रों में रक्त आभा नहीं प्रकट कर सकती, कभी उसके रंग में जगत रंगीला दीखता था।'

'तब महाराज सिद्ध योगी हो गए प्रतीत होते हैं।'

'योगी को फिर देश-विदेश से लाई सुन्दरियों का क्या लाभ है ?'

'बाँट दीजिए महाराज, तरुणों को उनकी आवश्यकता है। एक यज्ञ रचकर सुपात्र ऋत्विज ब्राह्मणों को उन्हें दान कर दीजिए।'

'किन्तु ये स्वार्थी लोलुप ब्राह्मण इधर सुन्दरी दासियों को ले जाते हैं, उधर उनके रत्नाभरण उतार कर पाँच-पाँच निष्क में बूढ़ों को बेच देते हैं।'

'इसमें बूढ़ों का प्रत्युपकार भी तो होता है महाराज, उन्हें तरुणियों की अत्यधिक आवश्यकता है।'

'फिर इस बूढ़े की ओर आचार्य क्यों नहीं ध्यान देते ? क्या आप को विदित नहीं कि गान्धार कन्या कलिंगसेना अन्तःपुर में आ रही हैं। आपकी अमोघ रसायन-विद्या फिर किस काम आएगी ?'

'क्यों ? क्या तक्षशिला के उस तरुण मागध वैद्य का बाजीकरण

व्यर्थ गया ?'

'जीवक कौमारभृत्य की बात कहते हैं आचार्य ?'

'यही तो उसका नाम है ।'

'बिलकुल व्यर्थ । आचार्य, सुना था वह तक्षशिला से चिकित्सा में पारंगत होकर आया है । मैंने बड़ी आशा की थी ।'

'परन्तु अब बिल्कुल आशा नहीं रही, महाराज ।'

'आचार्यपाद जब तक हैं, तब तक तो आशा है । मुनि बृहस्पति के फिर आप शिष्य कैसे ?'

'तब यह लीजिए महाराज, रसायन देता हूँ ।'

यह कह कर एक छोटा सा बिल्वफल आचार्य ने महाराज के हाथ पर रख कर कहा—'इसमें एक ही मात्रा रसायन है । यह देह सिद्धि तथा लोह सिद्धि दोनों ही कार्य करेगी । इससे चाहे तो सामने के सम्पूर्ण पर्वत को स्वर्ण का बनालें महाराज, चाहे अपने इस गलित वृद्ध शरीर को वज्र के समान दृढ़ बनालें और स्वच्छन्द नव विकसित अनिन्द्य गान्धार पुत्री के सौन्दर्य का आनन्द लूटें ।'

'आचार्य का बड़ा अनुग्रह है । स्वर्ण राशि की मेरे कोष में कमी नहीं । यह देह उपलब्ध सुख साधनों के भोगने में समर्थ हो, यही चाहता हूँ ।'

'तो राजन्, चिरकाल तक उन सुख साधनों का भोग कीजिए । मैं आशीर्वाद देता हूँ ।'

आचार्य हंसते हुए चले गए । महाराज उत्साहित हो धीरे-धीरे दो युवतियों के कन्धों पर हाथ रख महल में लौटे । धूप तेज हो गई थी ।

*

२३ : : जीवक कौमारभृत्य

'तुम्हीं वह वैद्य हो ?'

'वैद्य तो मैं हूँ। परन्तु 'वह' हूँ या नहीं, नहीं कह सकता।'

'कहाँ के ?'

'राजगृह का हूँ। पर शिक्षा तक्षशिला में पाई है।'

'आचार्य आत्रेय के शिष्य तुम्हीं हो ?'

'मैं ही हूँ।'

'तब ठीक।' राजकुमार विदूडभ ने थोड़ा नम्र होकर कहा—'बैठ जाओ मित्र।'

युवक वैद्य चुपचाप बैठ गया। उसकी आयु कोई २६ वर्ष की थी। उसका रंग गौर, नेत्र काले-उज्ज्वल, माथा चौड़ा, बाल सघन काले और चिबुक मोटी थी। वह एक महार्घ दुशाला कमर में बाँधे था। उस पर सुनहरा कमरबंद बंधा था, एक मूल्यवान् उत्तरीय उसके कन्धे पर बेपरवाही से पड़ा था। पैरों में सुनहरी काम के जूते थे।

विदूडभ ने कुछ देर घूर-घूर कर तरुण वैद्य को देखा। फिर कहा—'तुम्हारी जन्मभूमि क्या राजगृह ही है ?'

'जी हाँ, जहाँ तक मुझे स्मरण है।'

'राजगृह बड़ा मनोहर नगर है मित्र, परन्तु राजगृह से तुम क्या बहुत दिनों से बाहर हो ?'

'प्रायः सोलह वर्ष से।'

'तो तुम तक्षशिला में भगवान् आत्रेय के प्रधान शिष्य रहे ?'

'मैं उनका एक नगण्य शिष्य हूँ। वास्तव में मैं 'कौमारभृत्य' हूँ।'

'मैंने तुम्हारी प्रशंसा सुनी है मित्र, तुम तरुण अवश्य हो पर तारुण्य गुणों का विरोधी तो नहीं होता।'

'क्या मैं युवराज की कोई सेवा कर सकता हूँ ?'

'मैं वैद्यों के अधिकार से परे हूँ मित्र, देखते हो मेरा शरीर हर तरह दृढ़ और निरोग है। फिर भी मैं तुम्हारी मित्रता चाहता हूँ।'

'मेरी सेवाएँ उपस्थित है।'

'क्या तुम्हें मित्र, पिता के स्वर्ण रत्न का बहुत मोह है।'

'स्वर्ण रत्न का मुझे कभी भी मोह नहीं हुआ।'

'यह अच्छा है और एक सच्चे मित्र का ?'

'उसकी मुझे बड़ी आवश्यकता है युवराज।'

'तो तुम मुझे आज से अपना मित्र स्वीकार करोगे, अन्तरंग मित्र ?'

'परन्तु मैं दरिद्र वैद्य हूँ, जिस पर राज नियमों से अपरिचित हूँ।'

'तुम एक उत्तम युवक हो और मनुष्य के सब गुणों से परिपूर्ण हो।' युवराज ने अपनी बहुमूल्य मुक्ता माल उतार कर वैद्य के कण्ठ में डाल कर कहा—'यह स्नेह उपहार स्वीकार करो मित्र।'

वैद्य ने धीरे से माला हाथ में लेकर कहा, 'यह उत्कोच है राजपुत्र, आपकी ऐसी ही इच्छा है तो कोई साधारण सा उपहार दे दीजिए।'

'नहीं, नहीं मित्र, अस्वीकार न करो। यह अति साधारण है।'

'तब जैसी राजपुत्र की इच्छा।'

'तो मित्र, कहो—क्या पिता जी को तुम कुछ लाभ पहुँचा सके ?'

'तनिक भी नहीं राजपुत्र, मैंने उनसे प्रथम ही कह दिया था कि उनकी यौवन ग्रन्थियाँ और चुल्लक ग्रन्थियाँ निष्क्रिय हो गई हैं। हृदय पर बहुत मेद चढ़ गया है। यदि वे कोई वाजीकरण सेवन करेंगे तो उनके जीवन-नाश का भय हो जायगा।'

'फिर भी उन्होंने वाजीकरण भक्षण किया ?'

'तीन तीन बार राजपुत्र।'

'और तीनों वार निष्फल ।'

'यह तो होना ही था । औषध केवल शारीर यन्त्र ही को तो क्रिया-शील करती है और इन्द्रिय व्यापार उसी से चलता है । इस प्राकृत नियम का क्या किया जाय ?'

'वास्तव में आचार्य माण्डव्य ने पिता जी को कामुक और अन्धा वना रक्खा है । परन्तु क्या आचार्य के इस रसायन में कुछ तत्व है ?'

'मैंने उसका अध्ययन नहीं किया राजपुत्र, परन्तु रसायन तत्व सत्य है । आचार्य माण्डव्य मुनि वृहस्पति के शिष्य हैं, जिनका चार्वाक मत आजकल खूव प्रचार पर है । उनका तो यह सिद्धान्त ही है कि शरीर को कष्ट मत दो । भाग्य नहीं, पुरुषार्थ ही मुख्य है । अपने पर निर्भर रहो । परमेश्वर कुछ नहीं है, परलोक नहीं हैं, वेद धोखे की टट्टी है, बुद्धि ही सव कुछ है । आत्मा पंचतत्व से वना है । प्रत्यक्ष ही सत्य प्रमाण है । वह गौतम के न्याय का भी विरोध करते हैं और ब्राह्मणों के यज्ञों का भी । शूद्र और संकर सभी ने उनके मत को पसन्द किया है । इससे ब्राह्मणों का प्रभुत्व तो नष्ट हुआ है, पर अनाचार वहुत वढ़ा है । इन वंचक आर्यों को भी तो इससे वहुत सहारा मिला है । अव वे खुल्लमखुल्ला दासियों और रखेलियों को भेड़ वकरियों के रेवड़ की भाँति अन्तःपुर में भर रहे हैं और उनकी संतानों को कुत्तों और जानवरों की भाँति समाज और संगठन से च्युत कर संकर बना देते हैं ।'

'यह सत्य है । परन्तु सबसे बुरा प्रभाव तो वैश्यों पर पड़ा है । बेचारे वैश्य प्रतिलोम विवाह कर नहीं सकते । वे केवल अपनी और शूद्रों की ही स्त्रियों को घरों में डाल सकते हैं । उनका काम कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य है, जिसमें शूद्र और अतिशूद्र कर्मकर ही उनके सम्पर्क में रहते हैं । अतः उन्हीं में उनका रक्त मिल जाने से वे आर्यों से अति हीन, कुरूप और कुत्सित होते जा रहे हैं ।'

'परन्तु इसका उपाय ही क्या है, जव तक आर्यों का समूल उच्छेद न हो ।'

'वह होने का भी समय आगया है, राजपुत्र। सर्वजित् निर्ग्रन्थ महावीर और शाक्यपुत्र गौतम ने आर्यों के धर्म का आमूल नाश प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने नया धर्मचक्र प्रवर्त्तन किया है, जहाँ वेद नहीं है, वेद का कर्त्ता ईश्वर नहीं है, बड़ी-बड़ी दक्षिणा लेकर राजाओं के पापों का समर्थन करने वाले ब्राह्मण नहीं हैं। ब्रह्म और आत्मा का पाखण्ड नहीं है। उन्होंने जीवन का सत्य देखा है, वे इसी का लोक में प्रचार कर रहे हैं। उधर अनार्य अश्वग्रीव और हिरण्यकशिपु ने वेद पढ़ना, सुनना और यज्ञ करना अपराध घोषित कर दिया है। उसका दण्ड प्राण-दण्ड नियत है।'

'जितनी जल्दी आर्यों का नाश हो—उतना ही अच्छा है वैद्यराज।'

'बेचारे शूद्रों को भारी विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है।'

'वह क्यों ?'

'उन्हें उच्च वर्ण की स्त्री लेने का अधिकार नहीं। उनकी युवती और सुन्दरी कन्याओं को ये आर्य युवा होने से प्रथम ही या तो खरीद लेते हैं, या हरण कर लेते हैं और वह द्रविड़ों, दस्युओं तथा असुरों से स्त्रियाँ जैसे तैसे जुटा पाते हैं। आर्यों के घरों में जहाँ स्त्रियों की फौज भरी रहती है, वहाँ इन बेचारों के अनेक तरुण कुमार ही रह जाते हैं। इन्हें आजीवन स्त्री नहीं मिलती। एक-एक स्त्री के लिए वे खून खराबी तक करते हैं।'

'किन्तु मित्र, क्या आर्यों का नाश होने पर कोई महा अनिष्ट आ खड़ा होगा ?'

'कुछ भी नहीं मित्र, सार्यत्त्व का घमण्ड ही थोथा है। रक्त की शुद्धता का तो पाखण्ड ही पाखण्ड है। दस्यु, द्रविड़ और शूद्र पर्यन्त रक्त उनकी नाड़ियों में है। फिर जिन्हें वह अनार्य या शंकर कहते हैं, उनमें उन्हीं का तो रक्त है। वास्तव में विश्व के मनुष्यों की एक ही सार्वभौम जाति होनी चाहिए।'

'किन्तु मित्र, शताब्दियों से रूढ़िबद्ध ये आर्य, केवल वर्णों ही में बद्ध नहीं। इस ब्राह्मणत्त्व और राजत्त्व में बड़ी भारी भोग लिप्सा भी है।'

'ऐसा तो है ही राजपुत्र, इसी से तथागत ने इस वर्ण व्यवस्था की जड़

पर प्रथम कुठाराघात किया है। उन्होंने लोहे के खड्ग से नहीं—ज्ञानतर्क और सत्य के खड्ग से ब्राह्मणों और क्षत्रों के सम्पूर्ण मायाजाल को छिन्न-भिन्न कर दिया है। आप देखते नहीं हैं कि जिन देश के बाहर से आए हुए यवन, शक, गुर्जर और आभीरों को ये ब्राह्मण म्लेच्छ कह कर घृणा करते थे, उन्हें ही तथागत ने अपने संघशासन में ले लिया है और उन्हें मनुष्यता के अधिकार दिए हैं। तुम देखोगे कि बहुत शीघ्र भारत से जाति भेद और उँच नीच के भेद मिट जाएगे। तथागत को जाति वर्ण भेद उठाते देख ब्राह्मणों ने अब वर्ण बहिष्कृत लोगों को ऊंचे-ऊंचे वर्ण देने शुरू कर दिए हैं, पर इस फन्दे से क्या ?'

विदूडभ कुछ देर सोचते रहे। तरुण वैद्य ने कहा—'आप विचार तो कीजिए कि किस भाँति इन लालची ब्राह्मणों ने अपने को राजाओं के हाथ बेच रखा है। एक दिन था मित्र, मैं भी इस वर्णव्यवस्था के मायाजाल में था। जब मैं उज्जयिनी में वेद, व्याकरण निरुक्त और काव्य पढ़ रहा था। अपने सहपाठी नागरों और यौधेयों को भुझार और विश कह कर ब्राह्मण बटुक चिढ़ाया करते थे, पर जब मैंने भरुकच्छ में जाकर असली समृद्ध यवनों और उनके वैभव को देखा, लाट, सौराष्ट्र और उज्जयिनी के शक, आभीर महाक्षत्रपों के वैभव और शौर्य को देखा, पक्व नारंगी के समान गालों वाले श्मश्रुहीन मुख और गोल-गोल आंखों वाले निर्बुद्ध किन्तु दुर्धर्ष योद्धा हूणों को देखा, तो मुझ पर इन आर्यों के आधाररूप ब्राह्मणों और उनके हथियार वेदों तथा क्षत्रियों और उनके हथियार पुनर्जन्म और ब्रह्म की कलई खुल गई। जो शताब्दियों तक मूर्ख जनता को शांत और निरुपाय अनुगत बनाने का एकमात्र उपाय था।

'इसी कोशल में देखो मित्र, एक ओर ये सेट्ठियों की और महाराजों की गगन चुम्बी अट्टालिकाएं हैं, जो स्वर्ण रत्न और सुखद साज से भरी पूरी हैं। दूसरी ओर वे निरीह कर्मकर, शिल्पी और कृषक हैं जो अति दीन हीन हैं। क्या इन असंख्य प्रतिभाशाली, परिश्रमी जनों की भयानक दरिद्रता का कारण ये इन्द्र भवन तुल्य प्रासाद नहीं हैं ? कोशल में भी देखा गया

है और मगध साम्राज्य में भी देखा है। नगरों में, निगमों में, गाँवों में भी चतुर शिल्पी भाँति-भाँति की वस्तु तैयार करते, तन्तुवाय, स्वर्णकार, ताम्रकार, लोहकार, रथकार, स्थापत्य इन सभी के हस्त कौशल से ये प्रासाद बनते हैं। परन्तु उनके हाथ से बनाए ये सम्पूर्ण अलौकिक पदार्थ तैयार होते ही उनके हाथ से निकल कर इन्हीं राजाओं, उनके सामन्तों, सेट्ठियों एवं ब्राह्मणों के हाथ में पहुँच जाते हैं। उनके लिए वे सुपने की माया हैं। वे सब तैयार वस्तुएं गाँवों से-निगमों से नगरों में, वहाँ से पाण्यागारों में, सौधों और प्रासादों में संचित हो जाती है। उनका बहुत सा भाग पारस्य या मिश्र को चला जाता है, बहुत सा ताम्रलिप्त, सुवर्ण द्वीप पहुँच जाता है और उससे लाभ किनको ? इन राजाओं को, जो भारी कर लेते हैं, या उन सेट्ठियों को, जो इन गरीबों की असहायावस्था से पूरा लाभ उठाते हैं। या इन ब्राह्मणों को, जिन्हें सर्वश्रेष्ठ वस्तु दान करना ये मूर्ख राजा अपना सबसे बड़ा पुण्य समझते हैं।'

युवराज की आँखें चमकने लगीं। उसने कहा—'तुम एक रहस्य पर पहुंच गए हो मित्र, तुम्हारी मित्रता पाकर मैं कृतार्थ हुआ हूँ। मित्र, एक-बार, मैं तथागत गौतम को देखना चाहता हूँ। यद्यपि मैं भी शाक्य रक्त से हूँ, पर शाक्यों का मैं परम शत्रु हूँ।'

'तथागत को शत्रु मित्र समान हैं राजपुत्र, देखोगे तो जानोगे। कलन्दक निवाय के उस बूढ़े काले भिक्षु को जानते हैं आप ?'

'क्या महास्थविर धर्मबन्धु की ओर संकेत है मित्र, जिन्होंने काशी से आकर यहाँ साकेत में संघ स्थापना की है ?'

'हाँ, वे चाण्डाल कुल के हैं। वे साकेत के सभी भिक्षुओं के प्रधान हैं। समृद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण स्वर्णाक्षी पुत्र भरद्वाज और सुमन्त उनके सामने उकड़ू बैठकर प्रणाम करते हैं। उन दोनों ने उन्हीं से प्रवज्या और उपसम्पदा ली है।'

'यह मैंने सुना है मित्र, पर वे बड़े भारी विद्वान् भी तो हैं।'

'पर ब्राह्मणों की चलती तो विद्वान् हो सकते थे ? आज वे देवपद

प्राप्त दिव्य पुरुष हैं। तथागत अपने संघ को समुद्र कहते हैं। जहाँ सभी नदी अपना नाम रूप छोड़कर समुद्र हो जाती हैं।'

'परन्तु कलन्दकनिवाय को छोड़ इसी साकेत में तो ऊँच नीच के भेदभाव हैं।' विदूडभ ने उदास होकर कहा।

'सो तो है ही; और जब तक मोटे बछड़ों का मांस खाने वाले और सुन्दरी दासियों को दक्षिणा में लेने वाले ब्राह्मण रहेंगे और रहेंगे उन्हें अभयदान देने वाले ये राजा लोग, तब तक ऐसा ही रहेगा मित्र। ये तो स्वर्ण, दासी और मांस के लिए कोई भी ऐसा काम, जिससे इनके आश्रय-दाता राजा और सामन्त प्रसन्न हों, खुशी से करने को तैयार हैं। देखा नहीं, कात्यायन, वररुचि, शौनक और वशिष्ठ ने अपनी-अपनी स्मृतियाँ बनाई हैं और उनमें दिल खोल कर अपने और अपने मालिकों के अधि-कारों का डंका पीटा है।'

'तो मित्र, मैं तुझे पाकर बहुत सुखी हुआ।'

'परन्तु राजपुत्र, कदाचित् मेरा कोशल में रहना नहीं होगा।'

'यह क्यों मित्र ?'

'मेरे बाजीकरण की विफलता से महाराज बहुत असन्तुष्ट हुए हैं, मैंने उनसे राजगृह जाने की अनुमति ले ली है। मैं शीघ्र राजगृह जाना चाहता हूँ।'

'नहीं, नहीं, अभी नहीं मित्र, जब मैं कहूँ तब जाना। अभी कोशल में रहने का मैं तुम्हें निमन्त्रण देता हूँ।'

'तो फिर राजपुत्र की जैसी इच्छा।'

२४ : : नियुक्त

हर्षदेव विक्षिप्तावस्था में देश विदेश की खाक छानता हुआ वीतीभय नगरी में जा पहुँचा। उन दिनों इस नगर में उद्रायण नाम के राजा का राज्य था। हर्षदेव की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। उसके वस्त्र गन्दे और फट कर चिथड़े हो गए थे। सिर और डाढ़ी के बाल बढ़ कर परस्पर उलझ गए थे। उसकी दशा एक पागल भिखारी के समान थी। वैशाली को विध्वंस करके अम्बपाली को हस्तगत करने की तीव्र प्रतिहिंसा उसके मन और नेत्रों में व्याप्त थी, परन्तु इस महत्कार्य को करने योग्य उनमें न तो चरित्र बल ही था, न योग्यता। वह यों ही अस्तव्यस्त भटक रहा था।

भूख और थकान से जर्जर हर्षदेव ने नगर के बाहर एक चैत्य में आकर विश्राम किया। सघन वृक्षों की शीतल छाया में लेटते ही उसे गहरी नींद आ गई। उसी समय एक वृद्धा स्त्री ने उसे देखा। वह एक ऐसे ही अनाथ पुरुष की खोज में थी। हर्षदेव को अनाथ जान कर वह बहुत प्रसन्न हुई, जब उसने देखा कि वह स्वस्थ-सुन्दर और तरुण है तो वह और भी संतुष्ट हुई और संतोष की दृष्टि से उसे देखती वहीं बैठ गई, तथा उसके जागने की प्रतीक्षा करने लगी।

थोड़ी देर बाद हर्षदेव ने जाग कर वृद्धा को अपने सम्मुख बैठे देखा और कहा—'मात, क्या मैं तेरा कुछ प्रिय कर सकता हूँ ?'

'कृतपुण्य होकर, जात।'

'कृतपुण्य कौन है ?'

'वह मेरा इकलौता बेटा था।'

'वह कहाँ है ?'

'वह अपने तीन जहाज भरकर ताम्रपर्णी की ओर सार्थवाही जनों के साथ गया था। अब सार्थवाही जनों ने लौट कर बताया है कि मार्ग में उसके जहाज तूफान में फंस कर डूब गए। उन्हीं के साथ मेरा वह प्रिय पुत्र भी डूब गया। जात, वह इस नगर के प्रसिद्ध सेट्ठि धनावह का एक-लौता बेटा था और मैं भाग्यहीना उसकी माता हूँ।'

'दुःख है माता, पर यदि मेरे पुत्र बनने से तेरा कुछ उपकार होता हो, तो मैं तेरा पुत्र हूँ।'

'उपकार बहुत हो सकता है पुत्त, मैं पुत्रहीना स्त्री हूँ। यदि राज्य सेवकों को यह खबर लग जाय, तो वे मेरा सब धन राजकोष में उठा ले जाएंगे। इसीलिए पुत्त, तू मेरा पुत्र बन कर मुझे कृतार्थ कर।'

'किन्तु माता, मैं कृत संकल्प हूँ।'

'कोई हानि नहीं, तू मेरा मनोरथ पूर्ण करके अपना संकल्प पूरा कर लेना।'

'तेरा मनोरथ क्या है, माता।'

'मेरे पुत्र की चार वधूटियां हैं। चारों ही कुलीना, सुन्दरी और तरुणी हैं। मैं तुझे नियुक्त करती हूँ, तू उन चारों में धर्म पूर्वक एक-एक क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करने तक मेरा पुत्र बनकर मेरे घर रह। मैं तुझे शुल्क दूंगी।'

हर्षदेव ने कुछ विचार कर कहा—'तो ऐसा ही हो माता। मैं तेरा प्रिय करूंगा। परन्तु शुल्क इच्छानुसार लूंगा।'

'मेरा पति धनावह सेट्ठि सहस्रभार स्वर्ण का अधिपति था और उसके सात सार्थवाह देश विदेश में चलते थे। सो तू शुल्क की चिन्ता न कर। मैं तुझे यथेच्छ शुल्क दूंगी।'

'तो माता, मैं तेरा पुत्र कृतपुण्य हूँ।'

वृद्धा उसे घर ले आई। वीथिका में घुसते ही उसने जोर-जोर से रोना चिल्लाना आरम्भ किया, 'अरे लोगो, मेरा भाग्य देखो, मेरा मरा पुत्र जी

उठा है। अरे मेरा पुत्र आया है। मेरा पुत्र कृतपुण्य, अहा मेरे घर का उजाला, यह मेरा कृतपुण्य है।'

बुढ़िया का रोना चिल्लाना सुन कर गली मुहल्ले के बहुत जन स्त्री पुरुष एकत्र हो गए। वे उन दोनों को घेर कर चलने लगे। वृद्धा कृतपुण्य का हाथ थाम अपने घर के द्वार पर आकर और जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगी। 'हाय, हाय, यह मेरे पुत्र की दुरवस्था देखो रे लोगो, सेठ्ठि धनावह के इकलौते पुत्र ने कितना दुःख पाया है।'

बहुत लोगों ने बहुत भाँति सान्त्वना दी। बहुत कौतुक और आश्चर्य से हर्षदेव के उस जघन्य रूप को देखते रहे। वृद्धा ने सेवकों को एक के बाद दूसरी आज्ञा देना प्रारम्भ किया। 'नाहपित को बुलाओ, मेरा पुत्र क्षौर करे! जल गर्म करो, उसे सुवासित करो, अवमर्दक और पीठमर्द को बुलाओ, पुत्र का अंग संस्कार करो।'

देखते ही देखते दास दासियों और सगे सम्बन्धियों की दौड़ धूप से हर्षदेव क्षौर करा, स्नान उबटन करा, बहुमूल्य कौशेय धारण कर उपाधान के सहारे नगर पौर जनों से घिरा सुवासित पान के बीड़े कचरने और अपने भूत भविष्य पर विचार करने लगा। घर में विविध पकवान पकने की सुगन्ध फैल गई। वृद्धा ने चारों बहुओं को उबटन लगा, नख-सिख से शृङ्गार कर पाटम्बर धारण करने का आदेश दिया।

वधुओं में जो ज्येष्ठा थी, उसने एक बार अच्छी तरह झाँक कर पति को देखा। देखकर उसका मुख सूख गया। उसका नाम प्रभावती था। उसने सौतों को बुलाकर भयपूर्ण स्वर से कहा—

'अब्भुमे, अब्भुमे, यह कौन है रे? यह तो सेठ का पुत्र नहीं है।'

सबने गवाक्ष में से झाँक कर देखा। सबने कहा—'अब्भुमे नहीं है, यह हमारा पति नहीं, यह कोई धूर्त वञ्चक है।'

'तो चलो, माता से कह दें।'

चारों जनी सास के पास पहुँची।

वृद्धा ने उन्हें देखकर कहा—'अरे यह क्या! तुम लोगों ने अभी तक

शृङ्गार नहीं किया ? सांध्य वेला तो हो गई ? मेरा पुत्र·····।'

'किन्तु माता, यह तुम्हारा पुत्र नहीं है, कोई धूर्त वञ्चक है' ज्येष्ठा ने वृद्धा की बात काट कर कहा। वृद्धा ने भृकुटी में बल डालकर कहा—

'मेरे पुत्र को तुम क्या मुझसे अधिक जानती हो ? यही मेरा पुत्र कृतपुण्य है।'

'यह नहीं है माता', चारों वधूटियों ने दृढ़ वाणी से कहा।

'परन्तु जब मैं कहती हूँ, तब तुम्हें भी यही कहना चाहिए।'

'परन्तु हमने उसे भली भाँति देख लिया है।'

'चुप, मैंने इसे 'नियुक्त' किया है।'

वधुओं का मुंह सूख गया—और उनकी वाणी कण्ठ में अटक गई। वे भयभीत होकर सास का मुंह देखने लगीं।

वृद्धा ने कहा—'देखो, तुम समझदार और बुद्धिमती हो, मूर्खता करके बने बनाए खेल को मत बिगाड़ देना। तुमने देख ही लिया है वह सुन्दर, स्वस्थ और कुलीन है। तुम और मैं पुत्रहीना स्त्रियाँ हैं, ऐसी अवस्था में देश के कानून के आधार पर राजपुरुषों को ज्यों ही इस बात का पता लग जायगा कि हम पुत्रहीना स्त्रियाँ हैं, तो राजपुरुष हमारी सारी सम्पत्ति को हरण करके राजकोष में मिला देंगे। तब हमें अपना सब स्वर्ण रत्न घर बार खोकर पथ की भिखारिणी होकर रहना होगा। परन्तु इस नियुक्त पुरुष के द्वारा तुम चारों एक एक क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कर लोगी तो वे ही हमारी इस अतुल सम्पदा के भोक्ता होंगे और तुम कुल वधू बन कर रहोगी। सब भोगों को भोगोगी। यह कोई अधर्म की बात नहीं है। प्राचीन आर्यों के धर्म की रीति है। शान्तनु के धर्मात्मा पुत्र भीष्म ने इसी धर्म को अपना कर कुरुवंश की रक्षा की थी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। इससे—मैं तुम्हारे सुख कल्याण के लिए जैसा कहती हूँ, तुम उसी प्रकार आचरण करो। इसी में तुम्हारा कल्याण होगा।'

बुढ़िया की बातें अन्ततः वधूटियों के मन में घर कर गईं और उन्होंने उसके आदेश के अनुसार इस नियुक्त पुरुष को पति भाव से स्वीकार कर

लिया। इस प्रकार हर्षदेव अपने संकल्प को भूल, धन, सम्पदा, ऐश्वर्य और सुन्दरी युवती स्त्रियों के सुख में डूब गया। कृतपुण्य होकर वह सेट्ठि पुत्र का सम्पूर्ण अभिनय करने लगा। किसी को भी उस पर सन्देह नहीं हुआ, जिन्होंने संदेह किया, उन्हें वृद्धिया ने साम, दाम, दण्ड, भेद से वश में कर लिया।

२५ : : नियुक्त की शुल्क

इस प्रकार उस नगर में रहते हुए हर्षदेव को तीन वर्ष बीत गए। इन तीन वर्षों में उसने सेट्ठिपुत्र की चारों वधूटियों में तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। अपने घर को शिशुओं से आल्हादित और प्रसादित देखकर वृद्धा बहुत प्रसन्न रहने लगी। बालक बड़े ही स्वस्थ और सुन्दर थे। वे बुद्धिमान भी थे। जैसा कि संकर रक्त की संतान होती ही है। पहले हर्षदेव अपने को मात्र नियुक्त समझ कर इन सबसे उदासीन रहता था, बीच-बीच में वह देवी अम्बपाली का भी ध्यान करता था, परन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, उसने सोचा क्यों न मैं अब सब बातों को भूल कर कृतपुण्य रह कर ही जीवन व्यतीत करूँ। चारों बहुएं भी अब उससे प्रेम करने लगी थीं। खास कर तृतीया की उस पर अधिक आसक्ति थी। वह सब वधूटियों में चतुरा, प्रगल्भा, बुद्धिमती और सुन्दरी भी थी। उसका पिता चम्पा का एक धनी सेट्ठि सार्थवाह था।

परन्तु बुढ़िया की योजना विशुद्ध वैधानिक थी। अब वह सोचने लगी थी, मेरा काम हो चुका। जो करना था कर लिया। मेरे पुत्र के पुत्र हो गए, मेरा वंश चल गया। मेरी सम्पत्ति और मेरे कुल की रक्षा हो गई। अब यह नियुक्त मोघ पुरुष जाय। वह इस सम्बन्ध में हर्षदेव से बातचीत करने

का अवसर ढूँढ़ने लगी। उसके मन से उसका आदर भाव बहुत कम हो गया। उसका घर में स्वामी की भाँति रहना, उसका पुत्र वधुओं के प्रति पति भाव से व्यवहार करना स्वच्छन्दता से भीतर बाहर आना जाना, मनमाना द्रव्य खर्च करना, सब उसे अखरने लगा। वह उसे घर से निकाल बाहर करने की युक्ति सोचने लगी।

एक दिन उसे अवसर भी मिल गया। कपिशाकाम्पिल्य के कुछ सार्थ-वाह नगर में आए थे। उनके साथ कुछ उत्तम अजानीय अश्व थे। उनसे हर्षदेव ने अपने लिए एक अश्व सहस्र स्वर्ण में खरीद लिया। अन्ततः वह सामन्त पुत्र था। अश्व पर चढ़ कर चलने और शस्त्र धारण करने का वह अभ्यस्त था। सेट्ठि पुत्र के अलस अभिनय से कभी-कभी ऊब कर वह अश्व पर शस्त्र लेकर मृगया करने और भुना हुआ शूकर शूल्य खाने को छटपटा उठता था। कृतपुण्य का सेट्ठि परिवार श्रावक था। अतः यहाँ उसे मांस नहीं मिल रहा था।

सो अश्व खरीद कर और नए अश्व पर सवार होकर वह प्रसन्न होता हुआ घर पहुँचा और उपास्था को पुकार कर कहा—'कि वह सार्थवाहक को सहस्र स्वर्ण दे दे। जो उसके साथ-साथ ही आया था। बुढ़िया को अवसर मिल गया। वह क्रुद्ध होकर बाहर आई, उसने कहा—'कैसा सहस्र स्वर्ण ?'

'मैंने अश्व खरीदा है मातः।'

'परन्तु किस लिए ?'

'मैं कभी-कभी बन विहार को जाया करूंगा ?'

'तो तू निरन्तर बन विहार कर, मेरी तरफ से तुझे छुट्टी है।'

'इसका क्या मतलब है ?'

'अरे मोघपुरुष, तू मतलब पूछता है ? क्या तू नहीं जानता कि तू नियुक्त है, जा तेरी नियुक्ति समाप्त हुई। मेरा कार्य पूरा हुआ। तूने कहा था कि तू कृत संकल्प है जा अपना संकल्प पूर्ण कर।'

'तो क्या मैं अब तेरा कृतपुण्य पुत्र नहीं ?'

'नहीं रे मोघ पुरुष, नहीं !'

'तो मैं राजद्वार में अभियोग उपस्थित करता हूँ कि तू मुझ पुत्र को वंचित करती है, मैं कृतपुण्य हूँ। यह सभी जानते हैं।'

'तो तू अभियोग उपस्थित कर, मैं कहूँगी इस वंचक ने मेरा पुत्र बनकर मुझे ठगा है मेरा कुल कलंकित किया है, तुझे सूली मिलेगी। अरे मोघपुरुष, तू कब मेरा पुत्र कृतपुण्य था ?'

मध्यमा ने आकर कहा—'मातः, यह विवाद ठीक नहीं है। इसमें कुल कलंकित होगा। तथा तेरे पौत्र अवैधानिक प्रमाणित होंगे और सम्पत्ति उन्हें नहीं मिलेगी।'

'तो तू क्या कहती है कि मैं इस धूर्त को जीवन भर गिर पर लादे फिरूं ? और यह मेरे पुत्र और पति की सम्पत्ति और मेरी वधुओं का आजीवन भोक्ता बना रहे ?'

'तो उसे शुल्क देकर विदा कर दो।'

'कैसी शुल्क ?'

हर्षदेव ने क्रुद्ध होकर कहा—

'क्या तूने शुल्क देने का वचन नहीं दिया था ?'

'पर तूने खाया पीया भी तो है, अरे भिक्षुक मोघपुरुष, स्मरण कर उस दिन को, जब तू चीथड़े पहने जंगल में भटक रहा था। तीन वर्षों में कितना खाया है रे पेटू, तनिक हिसाब तो लगा ?'

'अरी कृत्या, तू अब मेरा पेट नापती है, नही जानती मैं सामन्त हूँ। अभी खड्ग से तेरा शिरच्छेद करूंगा।' हर्षदेव क्रुद्ध होकर खड्ग निकालने लगा।'

बुढ़िया डर गई। वह जोर-जोर से रोने लगी। मध्यमा ने कहा—'मातः, अभी सब वीथिवासी आ जाएंगे, भेद खुल जायगा, तेरा कुल दूषित होगा।'

'तो यह मोघपुरुष अभी मेरे घर से चला जाय।'

'हर्षदेव ने कहा—'अभी जाता हूँ, परन्तु तुझ कुट्टनी की प्रतिष्ठा के

लिए नहीं, अपनी प्रतिष्ठा के लिए।' इसके बाद उसने सार्थवाह से कहा—'हन्त मित्र, मैं तुम्हारा अश्व इस समय नहीं खरीद सकता, अश्व ले जाओ और तुम्हें जो कष्ट हुआ उसके लिए यह मुद्रिका ले लो।'

इसके बाद हर्षदेव सब बहुमूल्य वस्त्रालंकार उतार-उतार कर फेंकने लगा। केवल एक प्रावार अंग से लपेटकर चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

चारों वधूटियां आँखों में आँसू भरे खड़ी देखती रहीं। मध्यमा ने आगे बढ़कर कहा—'भद्र यों नहीं, यह कुल मर्यादा के विपरीत है। एक मुहूर्त भर ठहरो, मैं पाथेय तैयार करती हूँ। पाथेय साथ लेकर जाना।'

बुढ़िया ने बाधा नहीं दी और हर्षदेव ने भी मौन स्वीकृति दी। मध्यमा ने बहुत सा घी-चीनी डालकर दो बड़े-बड़े मधुगोलक बनाए। उनमें से एक में मुट्ठी भर रत्न मणि भर दिए। पाथेय हर्षदेव के हाथ में देकर हौले से कहा—'भद्र, चम्पा जाना, वहाँ पिता के यहाँ रहकर मेरी प्रतीक्षा करना।'

इतना कह वह हर्म्य में चली गई और हर्षदेव डाल से टूटे पत्ते की भाँति फिर निराश्रय हो पथ पर आगे बढ़ा।

२६ : : चम्पारण्य में

दोपहर ढल गया था, पर्वत की सुदूर उपत्यकाओं में गहरी काली रेखाएं दीख पडने लगी थीं। किन्तु पर्वत शृंग के वृक्ष सुनहरी धूप में चमक रहे थे। सामने एक सघन घाटी थी, उसी की ओर सात अश्वारोही बड़े सतर्क भाव से अग्रसर हो रहे थे। उनके अश्व थक गए थे और पथरीली ऊबड़ खाबड़ धरती पर रह-रह कर ठोकरें खाते जाते थे। आगे के दो अश्वों पर कुण्डनी और सोम थे, उनके पीछे पाँच भट सावधानी से इधर-उधर ताकते अपने अश्वों को सम्हालते हुए चल रहे थे।

बहुत देर तक सन्नाटा रहा। घाटी के मुहाने पर पहुँच कर सोमप्रभ ने कहा—'तनिक अश्व को बढ़ाए चलो, कुण्डनी। हमें जो कुछ बताया गया है, यदि वह सत्य है तो इस घाटी के उस पार ही हमें एक हरा-भरा मैदान मिलेगा और उसके बाद चम्पा नगरी की प्राचीर दीख जायगी।'

'परन्तु सोम यही घाटी तो सब से अधिक विकट है, तुम क्या भूल गए यहीं कहीं उस असुर राजा की गढ़ी है, जिसके सम्बन्ध में बहुत सी अद्‌भुत बातें प्रसिद्ध हैं। उसके फन्दे में फंस कर कोई यात्री जीवित नहीं आता। सुना है देवता को वह नित्य नरबलि देता है और उसकी आयु सैकड़ों वर्ष की है। पिता ने कहा था कि वे उसे देख चुके हैं—वह अलौकिक आसुरी विद्याओं का ज्ञाता है और उसके शरीर में दस हाथियों का बल है।'

'परन्तु क्या हम उसकी आँखों में धूल नहीं झोंक सकते? जिस प्रकार आज चार दिन से हम निर्विघ्न चले आ रहे हैं उसी प्रकार इस घाटी को भी पार कर लेंगे। भय मत करो कुण्डनी, परन्तु सूर्य अस्त होने में अब विलम्ब नहीं है, हमें सूर्यास्त से प्रथम ही यह अशुभ घाटी पार कर लेनी चाहिए।'

'खूब सावधानी की आवश्यकता है सोम, जैसे बने इस अशुभ घाटी को हम जल्द पार कर जाँय। न जाने मेरा मन कैसा हो रहा है।'

'पार तो करेंगे ही कुण्डनी, क्या तुम्हें सोम के बाहुबल पर विश्वास नहीं है?'

'नहीं, नहीं, सोम, मैं तुम्हें सावधान किए देती हूँ। यदि दुर्भाग्य से उस असुर का सामना करना ही पड़ा; तो शरीर के बल पर भरोसा न करना। उससे बुद्धि कोशल ही से निस्तार पाना होगा।'

सोम ने हँस कर कहा—'तो कुण्डनी, तुम मेरी पथप्रदर्शिका रहीं।'

कुण्डनी हंसी नहीं, उसने एक मार्मिक दृष्टि साथी पर डाली और कहा—'यही सही।'

सोम ने अश्व को बढ़ा कर कुण्डनी के बराबर किया, फिर कहा—

'कुण्डनी, आचार्यपाद ने कहा था कि तुम मेरी भगिनी हो, क्या यह सच है ?'

'तुम क्या समझते हो, पिता झूठ बोलेंगे ?'

'क्यों नहीं, यदि उचित और आवश्यक हुआ तो ?'

'और तुम ?'

'मैं भी । झूठ से मूर्ख ही भय खाते हैं, जो उसका उपयोग नहीं जानते, जैसे शस्त्र से अनाड़ी डरते हैं ।'

'तो तुम्हारी राय में झूठ भी एक शस्त्र है ।'

'बड़ा प्रभावशाली ।'

इस बार कुण्डनी हँसी, उसने कहा—'तुम्हारा तर्क तो काटने के योग्य नहीं है, परन्तु पिता ने सत्य कहा था ।'

'नहीं, नहीं कुण्डनी आर्या मातंगी ने कहा था—'तुम्हारी एक भगिनी है—पर वह कुण्डनी नहीं है ।'

'सोम, शत्रु को छोड़ कर मैं प्रत्येक पुरुष की भगिनी हूँ ।'

'इसका क्या अर्थ है ? यह तो गूढ़ बात है ?'

'मेरे पिता जैसे गूढ़ पुरुष हैं, वैसे ही उनकी पुत्री भी । तुम उसको समझने की चेष्टा न करो ।'

'किन्तु मैं कुण्डनी.....।'

सोम की बात मुँह ही में रही, एक तीर सनसनाता हुआ कुण्डनी के कान के पास से निकल गया ।'

कुण्डनी ने चीत्कार करके कहा—'सावधान ! शत्रु निकट है !'

परन्तु इससे प्रथम ही सोम ने अपना भारी वर्छा सामने की झाड़ी को लक्ष्य करके फेंका । झाड़ी हिली और एक क्रन्दन सुनाई दिया । सोम खड्ग खींच झाड़ी के पास पहुँचा । कुण्डनी और पाँचों भटों ने भी खड्ग खींच लिए—सबने झाड़ी को घेर लिया ।

उन्होंने देखा, वर्छा एक पुरुष की पसलियों में पार होकर उसके फेफड़े में अटक रहा है । जो आहत हुआ है उनका रंग काजल सा काला है, खोपड़ी छोटी और चपटी है, कद नाटा है, नंगा शरीर है, केवल कमर में एक चर्म

वंधा है, उस पर स्वर्ण की एक करधनी है, जिस पर कोई खास चिन्ह है। उसके घाव और मुख से खून वह रहा था और वह जल्दी-जल्दी साँस ले रहा था। उसके साथ वैसा ही एक दूसरा युवक था। उसने भीत मुद्रा से पृथ्वी पर लेट कर सोम को प्रणिपात किया। फिर दोनों हाथ उठाकर प्राण-भिक्षा माँगने लगा।

सोम ने उसे संकेत से अभय दिया। फिर संकेत ही से कहा—'क्या वह असुर है ?'

असुर ने स्वीकार किया। इस पर सोम ने आसुरी भाषा में कहा—'वह अपने साथी को देखे—मर गया या जीवित है।'

युवक अपनी ही भाषा बोलते सुनकर आश्वस्त हुआ। फिर उसने साथी को झाड़ी से निकाल कर चित्त लिटा दिया। सोम ने देखा—जीवित है, पर बच नहीं सकता। उसने एक सैनिक को उसके मुंह में जल डालने को कहा—सैनिक ने जल डाला। पर इसी समय एक हिचकी के साथ उसके प्राण निकल गए।

सोम ने अब दूसरे तरुण को अच्छी तरह देखा, उसकी करधनी ठोस सोने की थी; तथा उसकी आँखों में खास तरह की चमक थी। सोम-प्रभ ने उससे पूछा—'क्या वह असुरराज शम्बर का आदमी है ?'

शम्बर के नाम पर वह झुका, उसने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

सोम ने पूछा—'क्या तुम अपने प्राणों के मूल्य पर हमें चम्पा का मार्ग प्रदर्शन कर सकते हो ?'

युवक ने स्वीकृति दी। परन्तु अत्यन्त भयभीत होकर घाटी की ओर हाथ उठाकर दो तीन वार 'शम्बर' नाम को जोर-जोर से उच्चारण किया।

सोम ने कहा—'क्या उधर जाने में खतरा है।'

'हाँ'

'चम्पा जाने का क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है ?'

'है, किन्तु बहुत लम्बा है।'

'कितना समय लगेगा ?'

'एक सप्ताह ।'

'और इस घाटी के मार्ग से ?'

'एक दिन ।'

सोम ने कुण्डनी से कहा—'लाचारी है ! हमें खतरा उठाना ही पड़ेगा । हम एक सप्ताह तक रुक नहीं सकते ।' उसने तरुण से कहा—

'हमें घाटी का मार्ग दिखाओ ।'

तरुण असुर ने अत्यन्त भयमुद्रा दिखाकर उंगली गर्दन पर फेरी । सोम ने अपना खड्ग ऊंचा करके कहा—'चिन्ता मत करो ।' असुर ने कहा—'खड्ग से आप बच नहीं सकेंगे ।'

परन्तु सोम ने उधर ध्यान नहीं दिया । वे अश्व पर सवार हुए । कुण्डनी को भी सवार कराया और आगे-आगे युवक को करके घाटी की ओर अग्रसर हुए एक बार उन्होंने तरुण असुर की छाती पर बर्छा रख कर कहा—'यदि दगा की तो मारे जाओगे ।'

तरुण ने नेत्रों में करुण मुद्रा भरकर प्रणिपात किया, फिर स्वर्ण करधनी का चिन्ह छूकर प्राणान्त सेवा का वचन दिया ।

आगे-आगे तरुण, पीछे अश्व पर सोम और कुण्डनी और उनके पीछे पांचों सैनिक द्रुत गति से आगे बढ़ने लगे । पर ज्यों-ज्यों घाटी के नीचे उतरते गए, उनका भय, आतंक बढ़ता ही गया । उन्हें एक अशुभ भावना का आभास होने लगा । सोम ने धीरे से कहा—'कुण्डनी, क्या हम खतरे के मुंह में जा रहे हैं ?'

'मालूम तो ऐसा ही होता है ।'

'तब क्या लौट चलें ?'

'अब सम्भव नहीं है ।'

'क्या तुम भयभीत हो ?'

'व्यर्थ है'

और बातें नहीं हुई । कुछ देर चुपचाप सब चलते रहे । घाटी में अंधकार बढ़ता गया । तरुण ने एक झरना दिखाकर कहा—'अब आज

इससे आगे जाना ठीक नहीं।'

सोम ने भी यही ठीक समझा। सब घोड़ों से उतर पड़े। घोड़े रास के सहारे बाँध दिए गए। वे हरी-हरी घास चरने लगे। सोम ने तरुण असुर से कहा—'यहाँ आखेट है ?'

वह कुछ मुस्कराता हुआ सिर हिलाता हुआ कहीं चला गया और थोड़ी देर में बहुत सी जड़ें और कुछ जंगली फल उठा लाया। सबने वही खाया। फिर बारी-बारी से एक-एक सैनिक को पहरे पर तैनात कर दोनों सो गए। थकान के कारण उन्हें तुरन्त ही गहरी नींद आ गई।

२७ : : शम्बर असुर की नगरी में

अकस्मात् जैसे हृदय में धक्का खाकर सोमप्रभ की आँखें खुल गईं। उसने देखा, उसके हाथ पाँव कसकर बंधे हैं और एक असुर तरुण स्वप्निल सा कुण्डनी के हाथ पांव बाँध रहा है और वह बेसुध है पाँचो सैनिकों की भी वही दशा है, वे सब के सब बेसुध पड़े हैं। उसने इधर-उधर देखा, सामने कोई दस गज के अन्तर पर एक विशेष प्रकार की आग जल रही थी, जिसमें से नीली और बैंगनी रंग की लौ निकल रही थी। उसमें से विचित्र सी गन्ध निकल कर हवा में फैल रही थी। उस हवा में श्वास लेने से सोमप्रभ को ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसके शरीर से जीवन-शक्ति का लोप हो गया हो। उसने यह भी देखा कि उसके सम्पूर्ण शस्त्र उसके अंग पर ही हैं, पर वह उनका कोई उपयोग नहीं कर सकता। उसने जोर से चिल्ला कर कुण्डनी को पुकारना चाहा, पर उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। इस बीच में तरुण असुर कुण्डनी को बाँध चुका था। अकस्मात् उसके हृदय में एक ऐसी तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि वह चुपचाप उठकर एक ओर को

चल दिया। एक बार पीछे फिर कर यह देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कुण्डनी चुपचाप स्वप्निल व्यक्ति की भाँति पीछे चली आ रही है। यही दशा उसके अश्वों और भटों की भी थी। उन्हें वही तरुण लिए आ रहा था। उसने अब भी बोलने, कुण्डनी से बातचीत करने और कहाँ जा रहा है, यह विचारने की चेष्टा की पर सब बेकार। वह मन्त्र प्रेरित सा आगे बढ़ा चला जा रहा था और उसके पीछे कुण्डनी और उसके अश्व और भट चले आ रहे थे। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कोई रस्सी से बाँधकर इन्हें खींचे लिए जा रहा है।

पीछे वही तरुण था। वह रुक-रुक कर कुछ शब्द कहता जाता था। कभी-कभी वन के बीच उपत्यका को प्रतिध्वनित करती हुई एक रोमाञ्च-कारी ध्वनि आती थी और उसी ध्वनि के उत्तर में वह तरुण असुर कोई अस्पष्ट शब्द उच्च स्वर से, मानों चीखकर, किन्तु बेबसी की हालत में उच्चारण कर रहा था।

पूर्व में सफेदी फैलने लगी और तारे धुंधले हो गए। ये यात्री चलते ही गए। अब किसी अदृश्य प्रेरणा से प्रेरित हो उन्होंने एक गहन गुफा में प्रवेश किया। गुफा में बिल्कुल अन्धकार था। पर तरुण असुर ने क्षण भर में वैसा ही नीला और बैंगनी रंग का प्रकाश उत्पन्न कर दिया। उसी के क्षीण प्रकाश में उन्होंने देखा, गुफा खूब लम्बी चौड़ी और बड़ी है। वे उसमें भीतर ही भीतर चलते चले गए। बहुत देर चलने के बाद जब गुफा का दूसरा छोर आया, तो सोमप्रभ को ऐसा मालूम हुआ जैसे अकस्मात् गहरी नींद से जाग पड़ा हो। उसने देखा-दिन भली भाँति निकल आया है। सूर्य की मनोरम स्वर्ण किरणें चारों ओर फैल रही है और उसकी आँखों के सामने एक खूब समथर हराभरा चौड़ा मैदान है, जो चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इस मैदान में एक स्वच्छ, सुन्दर और कलापूर्ण अच्छा-खासा गाँव बसा हुआ है। घर सब गारे-पत्थर के हैं। उन पर गोल बांधकर छप्पर छाया गया है। बाँसों को गाड़कर अहाते बनाए गए हैं। सड़कें खूब चौड़ी और साफ हैं, पशु पुष्ट और उनके गवाट कलापूर्ण ढंग से

बने है। असुर तरुणियाँ सुर्मे के रंग की चमकती देह पर लाल मूगे तथा हिमधवल मोतियों की माला धारण किए, चर्म के लहंगे पहने और कमर में स्वर्ण की करधनी तथा हाथों में स्वर्ण के मोटे-मोटे कड़े पहने कौतूहल से इन विवश बंदियों का आगमन देख रही थीं। असुर बालक उन्हें क्रीड़ा और मनोरंजन की सामग्री समझ रहे थे। रूपसी कुण्डनी सम्पूर्ण असुर बालाओं और युवती जनों की स्पर्धा की वस्तु हो रही थी। वह लाल शाल कमर में बाँधे तथा उत्तरी वासक को वक्ष में लपेटे सर्पिणी के समान लहराते सघन केशों को चांदी के समान उज्ज्वल मस्तक पर धारण किए साक्षात् वन-देवी सी प्रतीत हो रही थी। सोमप्रभ के निकट आकर उसने उसके कान में कहा—'सोम, जिस असुरपुरी की चर्चा लोग कहानियों में कहते थे, वह आज हम परम सौभाग्य से अपनी आंखों से देख रहे हैं। यह तो बड़ी मनोरम, शान्त और स्वच्छ छोटी सी नगरी है। सोम, क्या तुम्हें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता ?'

'मुझे तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि कुण्डनी इस असुरपुरी में कैसी निर्भय और विनोदी भाव से प्रवेश कर रही है।'

'भय क्या है सोम ?'

'यह तो अभी पता लग जायगा, जब शम्बर आज रात को हमें देवता पर बलि चढ़ाएगा।'

'क्या उसकी ऐसी सामर्थ्य है सोम ?'

'उसकी सामर्थ्य क्या अभी तुमने देखी ही नहीं ? नगर में घुसने के पूर्व तक हम लोग कैसे मूढ़ बने से माया से वशीभूत इस असुरपुरी में खिचे चले आए !'

'सच ही तो, यहाँ हम आ कैसे गए ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है !'

'उसी आसुरी माया के बल पर। शायद सूर्योदय होने पर वह माया नष्ट हो गई।'

'ऊंह, पर अब तो मैं पूर्ण सावधान हूँ और जब तक सावधान, मैं हूँ

शत्रु से डर नहीं डरती ।'

'ऐसी वीरांगना को संगिनी पाकर मैं कृतार्थ हुआ कुण्डनी । अफसोस यही है कि तुम्हें जीवनसंगिनी कदाचित् न बना सकूं ।'

कुण्डनी ने विषादपूर्ण हंसी हंसकर कहा—'यदि आज ही रात को असुर हमें देवता पर बलि चढ़ा दे, तब तो तुम्हारी साध पूरी हो जायगी। तुम मुझे जीवनसंगिनी ही समझ लेना । परन्तु सोम, क्या तुम बहुत भयभीत हो ?'

'क्या भय की कोई बात नहीं है कुण्डनी ?'

'हम शत्रुपुरी में हैं और विवश हैं, यही तो ? इसीसे साहस खो बैठे ? तक्षशिला में तुमने इतना ही पुरुषार्थ संचय किया था सोम ?'

सोम एकटक कुण्डनी के तेजपूर्ण मुख को ताकने लगा । उसने इसके मदभरे उनीदे नेत्रों में प्यासी चितवन फैककर कहा—'यह कौनसी सामर्थ्य तुम्हारे भीतर से बोल रही है कुण्डनी ?'

कुण्डनी ने हंसकर कहा—'सोम, तुम भी तो एक समर्थ पुरुष हो ।'

'यदि मेरे हाथ पैर बन्धन मुक्त हों और मेरा खड्ग मेरे पास हो तो मुझे इन असुरों की परवा नहीं ।'

'ओह, फिर वही शारीरिक बल की बात कह रहे हो, सोम । याद रखो, यहाँ बुद्धि-बल से विजय पाना होगा । मस्तिष्क को ठण्डा रखो और निर्भय आगे बढ़ो । देखें तो उस असुर का राजवैभव ।'

इतने ही में बहुत से वाद्य एकसाथ बजने लगे । तुरही, भेरी, मुरज, मृदंग और ढोल । दोनों ने आँख उठाकर देखा, सामने लाल पत्थर का एक प्रसस्त दुर्ग है । उसके गोखों से असुर योद्धा सिर निकाल-निकाल कर बन्दियों को देख रहे हैं । गढ़ के फाटक बहुत मोटी लकड़ी के हैं । उन्हें रस्सियों से खींचकर खोला जा रहा है । उसी के ऊपरी खण्ड में ये सब वाद्य बज रहे थे । फाटक पर बहुत से असुर तरुण नंगे शरीर कमर में खाल लपेटे, स्वर्ण-करधनी पहिने, विशाल भाले हाथ में लिए खड़े थे । उनके कज्जलगिरि जैसे शरीर शीशे के समान चमक रहे थे ।

कुण्डनी ने धीरे से सोमप्रभ से कहा—'तुमने आसुरी भाषा कहां सीखी सोम ?'

'मैंने गान्धार में अभ्यास किया था। देवासुर-संग्राम में भी बहुत अवसर मिला। वहां असुर बन्दियों से मैं आसुरी भाषा ही में बोलता था।'

'तो सोम, उच्च स्वर से इन असुरों ही के समान असुरराज शम्बर का जयजयकार करो।'

सोम ने यही किया। जयजयकार का असुरों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी हाथ उठाकर जयजयकार में योग दिया।

दुर्ग में प्रविष्ट होकर वे पत्थर की बड़ी सड़क पर कुछ देर चलकर एक बड़े दालान में पहुंचे। यह दालान आधा पहाड़ में गुफा की भांति खोद कर और आधा पकी इटों से चुनकर बनाया गया था। उसके बीचों-बीच पत्थर का एक ऊंचा सिंहासन रखा था। उस पर एक बाघम्बर बिछा था, जिसमें बाघ का विकराल मुख खुला दीख रहा था और उसकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें चमक रही थीं। उसी पर शम्बर पद्मासन से बैठा था। उसका शरीर बहुत विशाल था। रंग अत्यन्त काला। अवस्था का पता नहीं चलता था। परन्तु अंग अत्यंत दृढ़ था। कण्ड में मुक्ताओं और मूगों की कई छोटी बड़ी मालाएं पड़ी थी। भुजबन्द में स्वर्णमण्डित सूअर के दाँत मढ़े थे। सिर खुला था। उसके बाल कुछ-कुछ लाल, घुंघराले और खूब घने थे। उन पर स्वर्णपट्ट में जड़े किसी पशु के दो पैने सींग मढ़े हुए थे। मुँह भारी और रुआबदार था। उस पर खिचड़ी गलमुच्छा था। मस्तक पर रक्त चन्दन का लेप था। सम्पूर्ण वक्ष स्वर्ण की ढाल जैसे किसी आभूषण से छिपा था। उसके सिंहासन के दोनों ओर दो विशाल बर्छे गड़े थे। सिंहासन के पीछे चार तरुणी असुरकुमारिकाएं खड़ी मोरछल और चामर डुला रही थीं। एक मद्यपात्र लिए निकट खड़ी थी। दो के हाथ में गन्धदीप था, जिसमें से सुगन्धित धुँआ उठ रहा था। सिंहासन के सामने वेदी थी, जिसमें वैसी ही बैंगनी और नीली आँच जल रही थी। सिंहासन के पीछे पत्थर की दीवार पर किसी अति भयानक विकराल जन्तु की तस्वीर खुदी

हुई थी। शम्बर के हाथों में भी मोटे-मोटे स्वर्ण के कड़े थे, तथा हाथ में एक मोटा स्वर्णदण्ड था, जो ठोस मालूम होता था। उसकी आँखें गहरी काली और चितवन बड़ी तेज और मर्मभेदिनी थी। दो बूढ़े असुर, जिनकी वेशभूषा लगभग राजा ही के समान थी, सिंहासन के नीचे व्याघ्र-चर्म पर बैठे थे।

सोम ने एक बार भलीभाँति असुरराज के दरबार को देखा और धीरे से कुण्डनी के कान में कहा—'इस असुर के पास तो स्वर्ण का बड़ा भण्डार देख पड़ता है।'

'चुप ! उच्च स्वर से असुर का अभिनन्दन करो।'

कुण्डनी का संकेत पाकर सोम ने आसुरी भाषा में कहा—'जिस असुर-राज शम्बर की अमोघ शक्ति और महान् वैभव की कहानियाँ मनुष्य, देव और गन्धर्व घर-घर कहते नहीं अघाते, उनका मैं सोमप्रभ अभिनन्दन करता हूँ।'

यह सुनकर असुरराज ने मुस्कुरा कर वृद्ध मन्त्रियों से कुछ कहा। फिर सोम की ओर देखकर कहा—'गन्धर्व है या मनुष्य ?'

'मनुष्य।'

'कहाँ का ?'

'मगध का।'

'मगध के सेनिय बिम्बसार को मैं जानता हूँ। परन्तु वह मेरा मित्र नहीं है। तू मेरे राज्य की सीमा में क्यों घुसा ? जानता है, यह अक्षम्य अपराध है और उसका दण्ड है मृत्यु।'

'महा सामर्थ्यवान् शम्बर का यह नियम शत्रु के लिए है, मित्र के लिए नहीं। प्रतापी मगध सम्राट् बिम्बसार असुरराज से मैत्री करना चाहते हैं।'

असुर ने फिर झुककर मन्त्रियों से परामर्श किया। फिर उसने कहा—'मागध बिम्बसार दनुकुल का था। अब वह मनुकुल में चला गया है, तथा मनुष्य-धर्म का पालन कर रहा है। इसीसे वह मेरा मित्र नहीं है। मनुकुल सदैव देवकुल का मित्र होता है, दनुकुल का नहीं।'

'परन्तु मागध बिम्बसार दनुकुल-भूषण सामर्थ्यवान् शम्बर की मित्रता

चाहता है । उसका मैत्री-संदेश ही मैं लाया हूँ ।'

शम्बर ने मंत्रियों से फिर परामर्श किया और कहा—'इसका प्रमाण क्या है ?'

'यही, कि मैं विजयिनी मागध सैन्य साथ न लाकर एकाकी ही यहाँ चला आया हूँ । मुझे विश्वास था कि महान् शम्बर मित्रवत् हमारा स्वागत करेगा ।'

इस पर शम्बर ने बड़ी देर तक मन्त्रियों से विचार-विमर्श किया और फिर कुण्डनी की ओर संकेत करके कहा—'वह कौन सुन्दरी है ?'

'वह भी मागधी है ।'

'तब सैनिय बिम्बसार ऐसी सौ सुन्दरी मुझे दे, तो मैं बिम्बसार का मित्र हूँ ।'

सोमप्रभ का मुंह क्रोध से लाल हो गया । कुण्डनी ने उस पर लक्ष्य करके कहा—'बेवकूफी मत करना सोम । वह क्या कह रहा है ?'

'वह तुम्हारी जैसी सौ सुन्दरी मित्रता के शुल्क में माँग रहा है ?'

'उससे कहो, मागधी तरुणी विद्युत्प्रभ होती है । असुर उन्हें भोग नहीं सकते । उन्हें छूते ही असुर की मृत्यु हो जायगी ।'

शम्बर ने कहा—'वह सुन्दरी बाला क्या कह रही है ?'

'वह कहती है, मगध के सम्राट् सामर्थ्यवान् शम्बर की यह शर्त पूरी कर सकते हैं, परन्तु बाधा यह है कि मागधी तरुणियाँ विद्युतप्रभ होती है । उन्हें भोगने की सामर्थ्य असुरों में नहीं है । उन्हें छूते ही असुर की मृत्यु हो जायगी ।'

मैंने अपने यौवन में लोक-भ्रमण किया है । गान्धार, पर्शुपुरी, स्वर्णद्वीप और गन्धर्वलोक देखा है । देव कन्याओं तथा गन्धर्व-तरुणियों का हरण किया है । ऐसा हरण हमारा कुलधर्म है । इन सभी देव-गन्धर्व-बालाओं को भोगने में हम असुर समर्थ हैं । तब मागधी बाला को क्यों नहीं ?'

सोमप्रभ को इधर-उधर करते देख कुण्डनी ने कहा—'अब वह क्या कहता है ?'

असुर का अभिप्राय जान कुण्डनी ने कहा–'उससे कहो, मागधी बाला को दैवीवर है। वह असुरों के लिए अगम्य और अस्पर्श्य है।'

यही बात सोम ने कह दी। तब असुर ने कहा–'अच्छा फिर यहाँ एक मागधी तरुणी है ही। इस पर असुरों की परीक्षा कर ली जायगी।'

सोमप्रभ लाल-लाल आँखें करके शम्बर की ओर देखने लगा। कुण्डनी ने कहा—'अब उसने क्या कहा सोम ?'

'वह पाजी कहता है, इस तरुणी पर असुरों की परीक्षा कर ली जायगी।'

कुण्डनी ने तनिक हंसकर कहा—'क्रुद्ध मत हो। उससे कहो, वह नागपत्नी है। यदि असुर इस परीक्षा में प्राण-संकट का खतरा उठाना चाहें, तो ऐसा ही हो।'

शम्बर ने क्रुद्ध होकर कहा—'वह बाला हंसकर क्या कह रही है रे मनुष्य।'

सोम ने कहा–'वह कह रही है, कि यदि असुर प्राण-संकट का खतरा उठाकर यह परीक्षण किया चाहते हों, तो ऐसा ही हो। परन्तु वह नागपत्नी है और स्वयं नागराज वासुकी उसकी रक्षा करते है।'

असुरराज ने मन्त्रियों से सलाह करके कहा—'इसकी जल्दी नहीं है मनुष्य। इस पर फिर विचार कर लिया जायगा। अभी तू असुरपुरी में हमारा अतिथि रह।'

फिर उसने मन्त्रियों को संबोधित करके कहा–'आज इन मनुष्यों के लिए नृत्य-पानोत्सव हो। सब पौरों को खबर हो। ढोल पीटे जाँय।'

फिर उसने सोम की ओर घूमकर कहा–'तुझे भय नहीं है; किन्तु यदि मागध बिम्बसार मित्रता की शर्त पूरी नहीं करेगा, तो प्रथम इस मागधी सुन्दरी को और फिर तेरी देवता के सामने बलि दूंगा। अभी तू जाकर आहार-विश्राम कर।'

उसने बाण के समान पैनी दृष्टि से सोम को देखा और उंगली उठाई। फिर असुर तरुणों से कहा—'इन मनुष्यों के शस्त्र हरण करके बन्धन खोल दो।'

असुरराज यह कहकर आसन से उठकर भीतर चला गया। वन्दीगण भी अपने आश्रय-स्थल को लौटे।

२८ : : कुण्डनी का अभियान

इस असुरपुरी में जितनी स्वतन्त्रता सोम को प्राप्त थी, उस सबका सम्पूर्ण उपभोग करके सूर्यास्ति के समय अत्यन्त थकित और निराश भाव से उसने उस गुफाद्वार में जब पैर रखा, जहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था थी, तो वहाँ का दृश्य देख वह एकबारगी ही चीत्कार कर उठा। कुण्डनी गुफा के मध्य में एक शिलाखण्ड पर बिछे बाघम्बर पर बैठी थी। उसके हाथ में उसका पूर्वपरिचित वही विषधर नाग था। नाग उसके कण्ठ में लिपट रहा था और उसका हाथ भर चौड़ा फन कुण्डनी के हाथ में था। कुण्डनी की आँखों से आज जैसे मद की ज्वाला निकल रही थी। वे जैसे अगम सागर पर तरणी की भाँति तैर रही थी। सर्प की हरी मरकत मणि जैसी आँखें उन आँखों से युद्ध कर रही थीं। इसी अभूतपूर्व और अतर्कित नेत्र-युद्ध को देख कर ही सोम चीत्कार कर उठा था। परन्तु उसके चीत्कार करते ही कुण्डनी ने चुटकी ढीली कर दी। सर्प ने उसके मृदुल ओठों पर दंश दिया। सोम ने झपट कर सर्प को उसके हाथ से छीन कर दूर फेंक दिया और हाँफते-हाँफते कहा—'यह तुमने क्या किया कुण्डनी ?'

'तुम बड़े मूर्ख सोम। अगर नाग मर गया तो ? यह तक्षक जाति का महाविषधर नाग है। पिता इसे कम्बोज के वन से लाए थे। पृथ्वी पर ऐसा विषधर अब और नहीं है। तुमने उसे आघात पहुँचा दिया हो तो ?'

वह लहराती हुई उठी, नाग को बड़े प्यार से उठा कर हृदय से लगाया। नाग इस समय सिकुड़ कर निर्जीव हो रहा था। उसका तेज दर्प

जाता रहा था।

सोम ने कहा—'कुण्डनी, तुम्हारा अभिप्राय मैं समझ नहीं सका। आचार्य ने मुझे तुम्हारा रक्षक बनाया है।'

'तो रक्षक ही रहो सोम। अभिप्राय जानने की चेष्टा न करो।' कुण्डनी ने भ्रूकुंचित करके कहा।

'तो तुम यह क्या कर रही थीं, कहो ?'

'जो उचित था वही।'

'क्या आत्मघात ?'

'दंश से क्या मेरा घात होता है। उस दिन देखा नहीं था ?'

'तुम कौन हो कुण्डनी ?' सोम ने घोर संदेह में भर कर कहा।'

'पिता ने कहा तो था, तुम्हारी भगिनी। अब और अधिक न पूछो।'

'अवश्य पूछूंगा कुण्डनी। हम घोर संकट में हैं। मैंने तमाम दिन इधर-उधर घूमने और भाग निकलने की युक्ति सोचने में लगाया है। पर सब व्यर्थ प्रतीत होता है। कहने को शम्बर असुर ने हमें स्वतन्त्रता दी है, पर हम पूरे बन्दी हैं कुण्डनी।'

'सो बन्दी तो हैं ही। तुम दिन भर भटकते क्यों फिरे ? तुम्हें विश्राम करना चाहिए था। गुफा में काफी ठण्ड थी, खूब नींद ले सकते थे।'

'इस विपत्ति में नींद किसे आ सकती थी कुण्डनी ?'

'पर विपत्ति की सम्भावना तो रात्रि ही को थी न भोज के बाद !'

'और तब तक हमें पैर फैला कर सोना चाहिए था ?'

'निश्चय। उससे अब तुम स्वस्थ, ताजा और फुर्तीले हो जाते और भय का बुद्धिपूर्वक सामना करते।'

'तुम अद्भुत हो कुण्डनी। कदाचित् तुम्हें असुर का भय नहीं है।'

'असुर से भय करने ही को क्या कुण्डनी बनी हूँ ?'

'तुम क्या करना चाहती हो कुण्डनी, मुझसे कहो।'

'इसमें कहना क्या है ? शम्बर या तो हमारे मैत्री-संदेश को स्वीकार करे, नहीं तो आज सब असुरों सहित मरे।'

'उसे कौन मारेगा ?'

'क्यों ? कुण्डनी ।'

सोम अवज्ञा की हँसी हंसा । पर तुरन्त ही गम्भीर होकर बोला—'मैं तुम्हारे रहस्य जानना नहीं चाहता । परन्तु तुम्हारी योजना क्या है, कुछ मुझे भी तो बताओ, ताकि सहायता कर सकूं ।'

'सोम, तुम युवक हो और योद्धा हो । तथाच गुरुतर राजकार्य में नियुक्त हो । मैं तुम्हारी अपेक्षा अल्पवयस्का एवं स्त्री हूँ । फिर भी सोम, इस समय तुम मुझ पर निर्भर रहो । शान्त, प्रत्युत्पन्नमति और तत्पर । तुमने जिसे अपघात समझा है, वह शत्रुनाश की तैयारी है सोम ।'

'परन्तु किस प्रकार ?'

'यह समय पर देखना । अभी मुझे बहुत काम है । तुम थोड़ा सो लो फिर हमें विकट साहस प्रदर्शन करना होगा, मैं जानती हूँ, असुर अर्धरात्रि से प्रथम भोजन नहीं करते ।'

'तो तुम मुझे बिल्कुल निष्क्रिय रहने को कहती हो ?'

'कहा तो मैंने भाई, शान्त रहो, तत्पर रहो और प्रत्युत्पन्नमति रहो । फिर निष्क्रिय कैसे ?'

'पर मेरे शस्त्र ?'

'वे छिन गए हैं तो क्या हुआ ? बुद्धि तो है ।'

'कदाचित् है ।' सोम खिन्न होकर एक भैंसे की खाल पर चुपचाप पड़ रहा । थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गई । बहुत देर बाद जब कुण्डनी ने उसे जगाया तो उसने देखा, कई असुर योद्धा गुफा के द्वार पर खड़े हैं । अनेकों के हाथ में मशाल है और बहुतों के हाथ में विविध वाद्य हैं । एक असुर जो प्रौढ़ था, वक्ष पर स्वर्ण की एक ढाल बाँधे, लम्बा भाला लिए सबसे आगे था ।

मशाल के प्रकाश में आज सोम कुण्डनी का वह त्रिभुवनमोहन रूप देखकर अवाक् रह गया । उसकी सघन श्याम केशराशि मनोहर ढंग से चाँदी जैसे उज्ज्वल मस्तक पर सुशोभित थी । उसने माँग में मोती गूंथे थे । लम्बी

चोटी नागिन के समान चरण-चुम्बन कर रही थी। बिल्व स्तनों को रक्त कौशेय से बाँधकर उस पर उसने नील मणि की कंचुकी पहनी थी। कमर में लाल दुकूल और उस पर बड़े-बड़े पन्नों की कसी पेटी उसकी क्षीण कटि ही की नहीं, पीन नितम्ब और सुन्दर उरोजों के सौन्दर्य की भी अधिक वृद्धि कर रही थी। उसने पैरों में नूपुर पहने थे, जिनकी झनकार उसके प्रत्येक पाद-विक्षेप से हृदय को हिलाती थी।

सोम ने कहा—'कुण्डनी, क्या आज असुरों को मोहने साक्षात् मोहिनी अवतरित हुई है ?'

'हुई तो है। इससे तुम्हें क्या, असुरों का भाग्य। तो अब झटपट तैयार हो जाओ।' कुण्डनी ने मुस्करा कर कहा।

सोम ने झटपट वस्त्र बदले। कुण्डनी ने सामने पड़े एक व्याघ्र-चर्म को दिखाकर कहा, 'इसे वक्ष में लपेट लो, काफी रक्षा करेगा।'

'किन्तु कुण्डनी, हम शस्त्रहीन शत्रु के निकट जा रहे हैं।'

'मैंने जिन तीन शस्त्रों की बात कही थी, उन्हें यत्न से रखना सोम, फिर कोई भय नहीं है।'

'अर्थात् शान्त, तत्पर और प्रत्युत्पन्नमति रहना।'

'बस यही।'

'तो कुण्डनी, तुम आज की मुहिम की सेनानायिका हो।'

'ऐसा ही हो सोम। अब चलें।'

कुण्डनी बाहर आई। उसने अधिकारपूर्ण स्वर में साफ मागधी भाषा में असुर-सरदार को आज्ञा दी—'सैनिकों से कह, बाजा और मशाल लेकर आगे-आगे चलें।'

कुण्डनी के संकेत से कुण्डनी की आज्ञा सोम ने असुर सरदार् को सुना दी।

उस रूप के तेज से तप्त असुर-सरदार ने विनयावत हो कुण्डनी की आज्ञा का पालन किया। कुण्डनी ने फिर सोम के द्वारा उनसे कहलाया—'तुम सब हमारे पीछे-पीछे आओ।'

और वह छम से घूंगरू बजाती विद्युत् प्रभा की साक्षात् मूर्ति सी उस मार्ग को प्रकाशित करती असुरपुरी के राजमार्ग पर आगे बढ़ी। पीछे सैकड़ों असुर तरुण-तरुणियां उत्सुक होकर साथ हो लिए। सोम ने धीरे से कहा—'मायाविनी कुण्डनी, इस समय तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुम्हीं इस असुर-निकेतन की स्वामिनी हो।'

'और सम्पूर्ण असुरों के प्राणों की भी।' उसने कुटिल मुस्कान से हास्य किया।

२९ :: असुर-भोज

दुर्ग के बीचोबीच जो मैदान था, उसी में भोज की बड़ी भारी तैयारियां हुई थीं। बीचोबीच एक बड़े भारी अग्निकुण्ड में महा चिता के समान आग जल रही थी और उस पर एक समूचा भैंसा भूना जा रहा था। बहुत-से असुर बालक, बालिका, तरुणियां, वृद्धाएं और वृद्ध असुर शोर करते आग के इधर-उधर घूम रहे थे। असुर सैनिक हाथ में भाले लिए सफ बांध कर खड़े थे। बहुत-सी तरुण-तरुणियां विविध वाद्य लिए नृत्य गान की तैयारी कर के दलबद्ध आ रहे थे। ज्योंही कुण्डनी ने सोमप्रभ का हाथ पकड़ कर रंगमंच में प्रवेश किया, चारों ओर कोलाहल मच गया। मंच पर बीचोबीच एक ऊंचे शिलाखण्ड पर व्याघ्रचर्म बिछा था। यह सम्भवतः शम्बर के लिए था। परन्तु कुण्डनी असीम साहस करके सोम का हाथ पकड़ उसी शिलाखण्ड पर जा बैठी। असुर सुन्दरियां और मन्त्रीगण घबरा गए। शम्बर क्या यह सहन कर सकेगा? असुर अपने राजा का बल और क्रोध जानते थे पर कुण्डनी उसकी दुर्बलता जान गई थी।

उसने सोम से कहा—'असुरों से कहो सोम, सुरा-भाण्ड यहाँ

ले आएं।'

सोम के कहने पर कई असुर तरुण सुरा-भाण्ड वहीं ले आए। इसी बीच जोर से बाजे बजने लगे। असुरों ने भीत होकर देखा, शम्बर खूब ठाठ का शृङ्गार किए चला आ रहा है। उसने स्वर्ण का मुकुट धारण किया था। उसका सम्पूर्ण वक्ष नाभि प्रदेश तक स्वर्ण से ढका था। कमर में नया चर्म लपेटा था और भुजदण्डों पर भी स्वर्ण-वलय पहिने था। कण्ठ में बड़े-बड़े मोती और मूगों की लड़े पड़ी थीं। मुकुट के दोनों ओर स्वर्ण-मण्डित दो पशुओं के तीक्ष्ण सींग लगे हुए थे।

सोम ने कहा—'कुण्डनी, असुरराज का सिंहासन छोड़ दे।'

कुण्डनी ने सोम की बात पर ध्यान न दे, उससे एक वाक्य आसुरी भाषा में झटपट सीखकर, ज्यों ही शम्बर सीढ़ी चढ़ रंगभूमि में प्रविष्ठ हुआ, शिलाखण्ड पर खड़ी हो चिल्ला कर कहा—'महासामर्थ्यवान् शम्बर के स्वास्थ्य और दीर्घायु के नाम पर' और उसने प्याले भर-भर कर असुरों को देने प्रारम्भ किए। तरुण और वृद्ध असुर उस अनिन्द्य सुन्दरी मानुषी बाला के हाथ से मद्य पी-पीकर उच्च स्वर से चिल्लाने लगे—'महासामर्थ्यवान् शम्बर के स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन के नाम पर।'

क्षण भर खड़े रह कर असुरराज ने यह दृश्य देखा और फिर वह मुस्कुरा कर अपना स्वर्णदण्ड ऊंचा उठाए आगे बढ़ा। उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—'मुझे भी दे मानुषी, एक भाण्ड मद्य। मुझे भी अपने हाथों से दे।'

कुण्डनी खट से शिलाखण्ड से कूद पड़ी। उसके हाथ में मद्यभरा पात्र था। उसने नृत्य करके नेत्रों की लीला विस्तार करते और भांति-भांति की भावभंगी दिखाते हुए शम्बर के चारों ओर घूम-घूम कर नृत्य करना प्रारम्भ किया। उसका वह मदभरा यौवन, वह उज्ज्वल मोहक रूप, उसकी वह अद्भुत भावभंगी, इन सबको देख शम्बर काम विमोहित हो गया। उसने कहा—'दे मानुषी, मुझे भी एक भाण्ड दे।'

पर कुण्डनी ने और भी विलास प्रकट किया। वह मद्य-भाण्ड को शम्बर

के ओठों तक ले गई और फिर बिजली की तरह तड़प कर वह भाण्डे बूढ़े असुर सचिव के मुंह से लगा दिया। बूढ़ा असुर चपचप करके सब मद्य पी गया और ही-ही करके हँसने लगा। कुण्डनी का संकेत पाकर सोम ने दूसरा भाण्ड कुण्डनी के हाथ में दिया। शम्बर उसके लिए विह्वल हो जीभ चटकारता हुआ आगे बढ़ा। पर कुण्डनी ने फिर वही कौशल किया और भाण्ड एक तरुण असुर के ओठों से लगा दिया। सब असुर कुण्डनी को घेरकर नाचने लगे। शम्बर अत्यन्त विमोहित हो उसके चारों ओर नाचने और बारबार मद्य मांगने लगा। कुण्डनी ने इस बार एक पूरा घड़ा मद्य का हाथ में उठा लिया। उसे कभी सिर और कभी कन्धे तथा कभी वक्ष पर लगा कर उसने ऐसा अद्भुत नृत्य-कौशल दिखाया कि सम्पूर्ण असुरमण्डल उन्मत्त हो गया। फिर उसने सोम के कान में कहा—'इन मूर्खों से चिल्ला कर कहो—खूब मद्य पियो मित्रो, स्वयं ढालकर, सामर्थ्यवान् शम्बर के नाम पर।'

सोम ने यह कहते ही—'सामर्थ्यवान् शम्बर के नाम पर' यही शब्द उच्चारण करके सारे असुरदल ने सुरा-भाण्डों में मुंह लगा दिया। कोई चषक में ढालकर और कोई भाण्ड ही में मुंह लगाकर गटागट मद्य पीने लगे। कुण्डनी ने हंसते-हंसते सुराभाण्ड शम्बर के मूंह से लगा दिया। उसे दोनों हाथों से पकड़कर शम्बर भी गटागट पूरा घड़ा मद्य कण्ठ से उतार गया।

कुण्डनी ने संतोष की दृष्टि से सोम की ओर देखकर कहा—'अब ठीक हुआ। पिलाओ इन मूर्खों को। आज ये सब मरेंगे सोम।'

'तुम अद्भुत हो कुण्डनी'—सोम ने कहा और वह असुरों को मद्य पीने को उत्साहित करने लगा।

मद्य असुरों के मस्तिष्क में जाकर अपना प्रभाव दिखाने लगा। वह खूब हंसने और आपस में हंसी-दिल्लगी करने लगे। स्त्रियों और बालकों ने भी खूब मद्य पिया। बहुत से तो वहीं लोट गए, पर सोमप्रभ उन्हें और भी मद्य पीने को उत्साहित कर रहे थे। बुद्धिहीन मूर्ख अन्धाधुन्ध

पी रहे थे। शम्बर का हाल बहुत बुरा था। वह सीधा खड़ा नही रह सकता था, पर कुण्डनी उसे नचा रही थी। वह हंसता था, नाचता था और आसुरी भाषा में न जाने क्या-क्या अण्ड-बण्ड बक रहा था। सिर्फ बीच में मानुषी-मानुषी शब्द ही वह समझ पाती थी। अवसर पाकर उसने सोम से कहा—'क्या कह रहा है यह असुर ?'

'प्रणय निवेदन कर रहा है कुण्डनी, तुझे अपनी असुर राजमहिषी बनाया चाहता है।'

कुण्डनी ने हंसकर कहा—'कुछ-कुछ समझ रही हूँ सोम। यह असुर-राज मेरे सुपुर्द रहा। उन सब असुरों को तुम आकण्ठ पिलादो। एक भी सावधान रहने न पावे। भाण्डों में एक भी बूंद मद्य न रहे।'

'उन असुरों से निश्चिन्त रह कुण्डनी, वे तेरे हास्य ही से अधमरे हो गए हैं।'

'मरे वे सब।' कुण्डनी ने हँसकर कहा।

शम्बर ने कुण्डनी की कमर में हाथ डालकर कहा—'मानुषी मेरे और निकट आ।'

कुण्डनी ने कहा—'अभागे असुर, तू मृत्यु को आलिंगन करने जा रहा है।'

शम्बर ने सोम से कहा—'वह क्या कहती है रे मानुष।'

सोम ने कहा—'वह कहती है, आज आनन्दोत्सव में सब योद्धाओं को महाशक्तिशाली शम्बर के नाम पर छक कर मद्य पीने की आज्ञा होनी चाहिए।'

'पिएं वे सब।' शम्बर ने हँसते-हँसते कहा और कुण्डनी ने और एक घड़ा शम्बर के मुंह से लगा दिया। उसे पीने पर शम्बर के पाँव डगमगाने लगे।

कुछ असुरों ने आकर कहा—'भोज, भोज, अब भोज होगा।'

शम्बर ने यथासंभव संयत होकर हिचकियाँ लेते हुए कहा—'मेरी इस मानुषी--हिक्—सुन्दरी के सम्मान में सब कोई खूब खाओ, पिओ,

हिक्—अनुमति देता हूं—हिक्—खूब खाओ पियो। मुझे सहारा दे,—मानुषी, हिक्—और मागध मानव, तू भी स्वच्छन्द खा-पी-हिक्।' वह कुण्डनी पर झुक गया।

सोम से असुर का अभिप्राय समझ कर कुण्डनी ने असुर को उसी शिला-खण्ड पर बैठाया। उसकी एक बगल में आप बैठी और दूसरी बगल में सोम को बैठने का संकेत किया। समूचा भैंसा जो आग पर भूना जा रहा था खण्ड-खण्ड किया गया। सबसे प्रथम उसका सिर एक बड़े थाल में लेकर पचास-साठ असुर तरुणियों ने शम्बर के चारों ओर घूम-घूम कर नृत्य करना और चिल्ला-चिल्ला कर गाना आरम्भ कर दिया। भैंसे के सिर का वह थाल एक से दूसरी के हाथों में हस्तान्तरित होता—जिसके हाथ में वह थाल जाता, वह तरुणी गीत की नई कड़ी गाती, फिर उसे सब दुहरा कर चारों ओर घूम-घूम कर नृत्य करतीं। अन्ततः एक सुसज्जिता तरुण असुर सुन्दरी ने घुटनों के बल बैठकर वह थाल शम्बर को अर्पण कर दिया।

शम्बर ने छूरा उठाया, भैंसे की जीभ काट ली और उसे स्वर्ण के एक पात्र में रख खड़े होकर उसे कुण्डनी को पेश करके कुछ कहा। कुण्डनी ने सोम से पूछा—'क्या कह रहा है यह ?'

'तेरा सर्वाधिक सम्मान कर रहा है। जीभ का निवेदन सम्मान का चिन्ह है।'

'तो उसे मेरी ओर से धन्यवाद दे दो सोम।'

सोम ने आसुरी भाषा में पुकार कर कहा,—'महान् शम्बर को मागध सुन्दरी अपना हार्दिक धन्यवाद निवेदन करती है। पियो मित्रो, इस मागध सुन्दरी के नाम पर एक पात्र।'

'मागध सुन्दरी, मागध सुन्दरी,' कहकर शम्बर एक बड़ा मद्यपात्र लेकर नाचने लगा। अन्य असुर भी पात्र भर कर नाचने लगे।

असुरों की हालत अब बहुत खराब हो रही थी। उनके नाक तक शराब ठुस गई थी और उनमें से किसी के भी पैर सीधे न पड़ते थे। अब उन्होंने भैंसे का माँस हबर-हबर करके खाना प्रारम्भ किया। कुण्डनी ने

कहा, 'भाण्डों में अभी सुरा बहुत है सोम, यह सब इन नीच असुरों की उदरदरी में उड़ेल दो।' सोम ने फिर ढाल कर असुरों को देना प्रारम्भ किया और कुण्डनी शम्बर को पिलाने लगी।

शम्बर ने हकला कर कहा—'मानुषी, अब-तू-नाच।'

उसका अभिप्राय समझकर कुण्डनी ने संकेत से सोम से कहा कि अब समय है, अपना मतलब साधो।

सोम ने कहा—'महान् शम्बर ने मागध बिम्बसार की मैत्री स्वीकार करली है। क्या इसके लिए सब कोई एक-एक पात्र न पिएँगे ?'

'क्यों नहीं। किन्तु, सैनिय बिम्बसार क्या ऐसी सौ तरुणी देगा।'

'अवश्य, परन्तु असुर उन्हें भोग-छू नहीं सकेंगे। वे सब विद्युतप्रभ है ?'

इसी समय कुण्डनी ने मोहक भावभंगी से नृत्य आरम्भ कर दिया। वह प्रत्येक असुर के निकट जाकर लीला-विलास करने लगी। मदिरा से उन्मत्त असुरों के मस्तिष्क उसका रूप-यौवन, लीला-विलास और भाव-भंगी देखकर बेकाबू हो गए। सब कोई कुण्डनी को पकड़ने को लपकने लगे। किसी में संयत भाव नहीं रह गया।

३० :: मृत्यु-चुम्बन

यह सब देख कुण्डनी के संकेत को पाकर सोमप्रभ ने पुकार कर कहा—'सब कोई सुने। यह मागध सुन्दरी है, जिसे असुर नहीं भोग सकते।' जो कोई इनका चुम्बन-आलिंगन करेगा, वही तत्काल मृत्यु को प्राप्त होगा।'

असुरों में अब सोचने-विचारने की सामर्थ्य नहीं रही थी। चुम्बन करो, चुम्बन करो', सब चिल्लाने लगे।

शम्बर ने हाथ का मद्यपात्र फेंक कर हकलाते हुए कहा—'सब कोई

इस मानुषी–का—चुम्बन करो ।'

सोम ने क्रुद्ध होकर कुण्डनी की ओर देखा । फिर उसका अभिप्राय जान सोम ने कहा—'जो कोई चुम्बन करेगा, वही मृत्यु को प्राप्त होगा । महान् शम्बर इसको न भूल न जायँ ।'

'शम्बर सब जानता है । उसने बहुत देव, दैत्य, गन्धर्व और मानुषियों का हरण किया है, कहीं भी तो ऐसा नहीं हुआ । दे, सौ ऐसी तरुणियाँ, दे रे मानुष, यदि मेरी मैत्री चाहता है ।' शम्बर ने मद से लाल-लाल हुई आँखों से सोम को घूर कर कहा ।

कुण्डनी नृत्य कर रही थी । जब बहुत से असुर तरुण हँसते हुए उसका चुम्बन करने को आगे बढ़े, तो कुण्डनी ने एक छोटी सी थैली वस्त्र से निकाल कर उसमें से महानाग को निकाला और कण्ठ में पहन लिया । यह देख सभी तरुण असुर भयभीत होकर पीछे हट गए । कुण्डनी ने उस नाग का फन पकड़ कर उसके नेत्रों से नेत्र मिला नृत्य जारी रखा । कभी वह शम्बर के पास जाकर ऐसा भाव दिखाती, मानों चुम्बनदान की प्रार्थना कर रही हो । कभी सोम के निकट जा अपना अभिप्राय समझाती । कभी असुरों के निकट जा लीला-विलास से उन्हें उन्मत्त करती ।

शम्बर ने कहा—'वह उस सर्प से क्या कर रही है मनुष्य ?'

सोम ने कुण्डनी से संकेत पाकर कहा–'मैंने कहा था कि यह मागधी नागपत्नी है, अब सर्वप्रथम नाग चुम्बन करेगा, पीछे जिसे मृत्यु की कामना हो, वह चुम्बन करे ।'

'तो नाग-चुम्बन होने दे ।'

'तो महान् शम्बर इस मानुषी के नागपति के नाम पर एक-एक पात्र मद्य पीने की आज्ञा दें ।'

शम्बर ने उच्च स्वर से सबको आज्ञा दी । फिर असुरों ने मद्य के बड़े-बड़े पात्र मुंह से लगा लिए ।

इसी समय कुण्डनी ने नाग से दंश लिया । उस दंश को देख कर सभी आश्चर्यचकित हो गए । कुण्डनी ने नाग को थैली में रख अपने वस्त्रों में

छिपा लिया। उसके मस्तक पर स्वेदबिन्दु छलक आये और वह विष के वेग से लहराने लगी। उस समय उसके नृत्य ने अलौकिक छटा प्रदर्शित की। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह हवा में तैर रही हो। उसके नेत्र और अधरोष्ठ मानों मद-निमन्त्रण-सा देने लगे।

शम्बर ने असंयत होकर चिल्ला कर कहा—'चुम्बन करो इस मागध मानुषी का।'

सोम ने चिल्ला कर कहा—'जो कोई चुम्बन करेगा उसी की मृत्यु होगी। महान् शम्बर इसके जिम्मेदार हैं।'

'चुम्बन करो, चुम्बन करो', शम्बर ने पुकार कर कहा। उसमें अब सोचने-विचारने की कुछ भी शक्ति न थी। एक तरुण ने हठात् कुण्डनी को अपने आलिंगन में कस कर अधरों पर चुम्बन लिया। वह तुरन्त बिजली से मारे हुए प्राणी की भाँति निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सोम यह चमत्कार देख भय से पीला पड़ गया। कुण्डनी ने उधर भ्रूपात नहीं किया। उसने दूसरे तरुण की ओर मुस्कुरा कर देखा। उसने भी आगे बढ़ कर कुण्डनी को कस कर बाहुपाश में बांध कर चुम्बन लिया और उसकी भी यही दशा हुई। अब तो उन्मत्त की भाँति असुरगण कुण्डनी का चुम्बन ले-लेकर और निष्प्राण हो-होकर भूमि पर गिरने लगे। एक अलौकिक अतर्कित मोह के वशीभूत होकर असुर एक के बाद एक होती हुई मृत्यु की परवाह न कर उस असाधारण उन्मादिनी के आलिंगन पाश में आकर और उसका अधर चूम-चूम कर ढेर होने लगे। शम्बर बार-बार मद्य पी रहा था। असुरों के इस प्रकार आश्चर्यजनक रीति से मरने पर उसका विश्वास नहीं होता था। प्रत्येक असुर के चुम्बन के बाद निष्प्राण होकर गिरने पर कुण्डनी ऐसे मोहक हास्य से शम्बर की ओर देखती कि वह समझ ही नहीं पाया कि वास्तव में उसके तरुण मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं, या विमोहित मूर्छित हो रहे हैं। सोमप्रभ बराबर मद्य के पात्र पर पात्र शम्बर के कण्ठ से उतार रहा था। अब कुण्डनी ने एक-एक तरुण के निकट जाकर चुम्बन-निवेदन करना प्रारम्भ किया। कुछ असुर भयभीत होगए

थे, पर उस मोहिनीमूर्ति के चुम्बन-निवेदन को अस्वीकार करने की सामर्थ्य मूर्ख, मद्य-विमोहित असुरों में न थी। वे चुम्बन ले-लेकर प्राण गंवाते गए। देखते-देखते मृतक असुर तरुणों के ढेर लग गए। कुण्डनी अब वृद्ध मन्त्रियों की ओर झुकी, परन्तु वे भयभीत होकर झिझक कर पीछे हट गए। कुण्डनी ने उन्हें हठात् अपने आलिंगन पाश में बांध कर उनके होठों पर चुम्बन अंकित कर दिया और वे निष्प्राण होकर जहां के तहां ढेर हो गए। सोम ने घबरा कर उसके निकट आकर—'सो कुण्डनी, तुम विष-कन्या हो ?

कुण्डनी ने नृत्य करते हुए कहा —'सावधान रहो, संकट काल निकट है, देखो उसके तेवर।'

शम्बर अब सावधान हुआ और क्रुद्ध नेत्रों से कुण्डनी को ताकने लगा। कुण्डनी ने यह देख मुस्कुराकर बंकिम कटाक्षपात् कर एक परिपूर्ण मद्यपात्र उसके होठों से लगा दिया। परन्तु उसने कुण्डनी को एक ओर धकेल कर मद्यपात्र फेंक दिया। फिर उसने गुर्राकर कहा—'क्या तूने मेरे तरुणों का हनन किया ?'

सोम ने शम्बर की बात उसे समझा दी। कुण्डनी ने संकेत से कहा कि वह शम्बर के पार्श्व में ही रहे और उसके सिंहासन के बगल में जो बर्छे और शूल लगे हैं, आवश्यकता पड़ने पर उनसे काम ले। पर इसमें वह जल्दी न करे, संयम और धैर्य से अन्तिम क्षण तक कुण्डनी का कौशल देखे।

सोम ने शम्बर को क्रुद्ध होते देख कहा—'महाशक्तिशाली शम्बर से कह दिया गया था कि यह तरुणी नागपत्नी है और मागधी मानुषी असुरों के भोग की नहीं। असुर अपने ही दोष से मरे हैं और महान् शम्बर ने उन्हें चुम्बन की आज्ञा दी थी।'

'परन्तु यह मानुषी अति भीषण है।' कहकर उसने सिंहासन से खड़े होने की चेष्टा की परन्तु लड़खड़ा कर गिर गया। सोम ने कहा—'मागध मानुष इससे भी अधिक भीषण हैं, यदि उन्हें शत्रु बना दिया जाय। क्या महान् शम्बर को मागध बिम्बसार की मित्रता स्वीकार है ?'

शम्बर ने बड़बड़ाते हुए कहा—'मागध मानुषी अति भीषण होती है।' उसने कुण्डनी की ओर प्यासी चितवन से देखा। कुण्डनी ने एक बडा पात्र मद्य का लाकर उसके ओठों से लगा दिया। शम्बर उसे पीकर ओठ चाटता हुआ फिर सिंहासन से उठने लगा। इस बीच में बचे हुए असुर तरुण कुण्डनी से भयभीत हो-होकर भागने लगे थे। बहुत से विवश मदमस्त पड़े थे। मृत असुरों के ढेर जहाँ-तहाँ पड़े थे। उनके कज्जलसमान निश्चल शरीर उस अग्नि के प्रकाश में भयानक दीख रहे थे। शम्बर के मन में भय समा गया। पर वह कुण्डनी की ओर वैसी ही प्यासी चितवन से देखने लगा। हठात् कुण्डनी ने फिर आकर एक मद्यभाण्ड उसके ओठों से लगा दिया। उसे भी गटागट पीकर शम्बर ने खींच कर कुण्डनी को हृदय से लगा, उन्मत्त भाव से हकला कर कहा—'दे, मृत्यु-चुम्बन—मानुषी तेरे—स्वर्ण अधरों—को एक बार चूमकर—मरने में भी सुख है।'

पर कुण्डनी ने यत्न से अपने को शम्बर के बाहुपाश से निकाल कर फुर्ती से एक लीला-विलास किया और फिर दूसरा मद्यपात्र उसके ओठों से लगाया। फिर उसने सोम से संकेत किया। मद्य पीकर शम्बर शिलाखण्ड पर बदहवास पड़ गया। वह कुण्डनी को बरबस खींचकर अस्तव्यस्त आसुरी भाषा में कहने लगा, द द दे मानुषी, एक चुम्बन दे। और—मागध—बिम्बसार के लिए—मेरी मैत्री —ले। दे चुम्बन दे।'

कुण्डनी ने गूढ़ मार्मिक दृष्टि से सोम की ओर देखा। वह सोच रही थी कि असुर को मारा जाय या नहीं। परन्तु सोम ने लपक कर कुण्डनी को असुर शम्बर के बाहुपाश से खीचकर दूर कर दिया और हाँफते-हाँफते कहा—'नहीं, नहीं, असुर को मारा नहीं जायगा। बहुत हुआ।' फिर उसने शम्बर के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—'महान् शम्बर चिरंजीव रहें। वह मागध बिम्बसार का मित्र है। उसे मृत्यु-चुम्बन नहीं लेना चाहिए।'

शम्बर ने कुछ होठ हिलाए और आँखें खोलने की चेष्टा की, परन्तु वह तुरन्त ही काष्ट के कुंदे की भाँति निश्चेष्ट होकर गिर गया। उस

समय बहुत कम असुर वहाँ थे। जो थे वे भयभीत होकर भाग रहे थे। कुण्डनी को एक ओर ले जाकर सोम ने कहा—'उसे छोड़ दकुण्डनी।'

कुण्डनी अपनी विषज्वाला में लहरा रही थी। उसने कहा—'मूर्खता मत करो सोम, मरे वह असुर।'

'ऐसा नहीं हो सकता।' उसने इधर-उधर देखा। इसी समय अन्धकार से वह तरुण असुर नेत्रों में भय भरे बाहर आया, जिससे सर्वप्रथम परिचय हुआ था और जिसके प्राण सोम ने बचाए थे। उसने पृथ्वी पर प्रणिपात करके कहा—'भागो, वह शक्ति उठा लो मैं चम्पा का मार्ग जानता हूँ।'

सोम ने शक्ति हाथ में ले ली। कुण्डनी ने वेणी से विपाक्त कटार निकाल कर हाथ में ले ली। उसने कहा—'इसकी एक खरोंच ही काफी है। इससे मृत पुरुष को, उसके घाव को छूने ही से औरों की मृत्यु हो जायगी। यह हलाहल में बुझी है।'

तीनों लपक कर एक ओर अन्धकार में अदृश्य हो गए। जो असुर दूसरी ओर शोर कर रहे थे, वे शायद उन्मत्त और हतज्ञान हो रहे थे। सोम ने देखा, नगर-द्वार पर चार तरुण असुर पहरा दे रहे हैं।

कुण्डनी ने हंसकर उनसे कहा—'अरे, मूर्खों तुमने मेरा चुम्बन नहीं लिया!' एक को उसने आलिंगनपाश में बाँध चुम्बन दिया। अधर छूते ही वह मृत होकर गिरा। दूसरे ने हुंकृति कर कुण्डनी पर आक्रमण किया। उसकी पीठ में सोम ने शक्ति पार करदी। शेष दो में से एक ने कुण्डनी की कटार का स्पर्श पाकर दूसरे ने सोम की शक्ति खाकर प्राण त्यागे। सोम ने अपने अश्व पर सवार हो तारों की छाँह में उसी समय असुरपुरी को त्यागा। असुर तरुण भी उनके साथ ही भाग गया।

१२ : : चम्पा में

मगध-सेनापति चण्डभद्रिक ने पटमण्डप में प्रवेश करके कहा—'मित्रो, अब वैशाखी के केवल पाँच ही दिन बाकी रह गए हैं। उन्हीं पाँच दिनों में मागधी सेना का और चम्पा के प्राचीन राज्य के भाग्य का निपटारा होना है। यदि हम वैशाखी के दिन चम्पा के दुर्ग में प्रवेश कर पाते हैं तो मगध-साम्राज्य का विस्तार सुदूर पूर्व के सम्पूर्ण द्वीप-समूह पर हो जायगा। परन्तु यदि हम ऐसा नहीं कर पाते तो निश्चय मागधी सेना का यहीं क्षय होगा और हम में से एक भी चम्पा महारण्य को पार कर जीवित मगध नहीं लौट सकेगा।'

मण्डप में बहुत से सेनानायक, उपनायक आदि सेनापति भद्रिक की प्रतीक्षा कर रहे थे। सेनापति के ये वाक्य सुनकर एक ने कहा—'परन्तु भन्ते सेनापति, हम बहुत ही विपन्नावस्था में हैं। आर्य वर्षकार ने हमें सहायता नहीं भेजी। मगध के इस पराजय का उत्तरदायित्व हम पर नहीं, आर्य वर्षकार पर है।'

'नहीं भन्ते, ऐसा नहीं। जय-पराजय का दायित्व तो हमीं पर है। हमें अपने बलबूते पर जो करना योग्य है, करना चाहिए।'

'हमने तीन मास से दुर्ग को घेर रखा है। यह कोई साधारण बात नहीं भन्ते सेनापति।'

'चाहे जो भी हो, परन्तु यदि वैशाखी के दिन हम दुर्ग में प्रविष्ट न हो सके तो साम्राज्य की ऐसी क्षति होगी, जिसका प्रतिकार शताब्दियों तक न हो सकेगा। यों कहना चाहिए कि सुदूर पूर्व की सारी आशाएं सदा के लिए लुप्त हो जाएँगी।—ब्रज, क्या रसद की कुछ आशा है?'

'खेद है कि नहीं।'

'तब तो हम जो कुछ कर सकते थे, कर चुके।'

'फिर भी भन्ते सेनापति, हमें कुछ समय निकालना चाहिए। सम्भव है, राजगृह से सहायता मिल जाय।'

'परन्तु हमारे सभी सैनिक घायल हैं। एक भी अश्व युद्ध के काम का नहीं। हम भूख-प्यास और घावों से जर्जरित हैं। यदि हम युद्ध जारी रखते हैं तो इसका अर्थ आत्मघात करना होगा। क्या इससे अच्छा यह न होगा कि हम चम्पानरेश महाराज दधिवाहन की सन्धि-शर्तें स्वीकार कर लें? मैं समझता हूँ, निश्चित पराजय की अपेक्षा यह अच्छा है।'

किसी ने उच्च स्वर से कहा—'क्या यह आर्य भद्रिक की वाणी मैं सुन रहा हूँ, जिनके शौर्य की यशोगाथा पर्शुपुरी के शासानुसास गाते नहीं अघाते? भद्रिक ने सिर ऊंचा करके कहा, 'कौन है यह आयुष्मान्?'

एक कोने से सोमप्रभ उठकर सेनापति के सम्मुख आया। वह साधारण किसान के वस्त्र पहिने था। सेनापति ने उसे सिर से पैर तक घूर कर कहा—'कौन हो तुम आयुष्मान्? ऐसे कठिन समय में ऐसे तेजस्वी वचन कहने वाले?'

'भन्ते सेनापति, मेरा नाम सोमप्रभ है। मैं राजगृह से सहायता लेकर आया हूँ। यह आर्य वर्षकार का पत्र है।'

युवक के वचन सुनकर सभी उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। सेनापति ने पत्र लेकर मुहर तोड़ी और शीघ्रता से उसे पढ़ा। फिर कुछ चिन्तित होकर कहा—'परन्तु सहायता कहाँ है सौम्य? आर्य वर्षकार का आदेश है कि वैशाखी के दिन चम्पा में प्रवेश करना होगा।'

'वह प्रच्छिन्न है, भन्ते सेनापति।'

'परन्तु हमारा कार्यक्रम?'

'क्या मैं निवेदन करूं आर्य?'

'अवश्य, आर्य वर्षकार ने तुम्हारे विषय में मुझे कुछ आदेश दिए हैं।'

'तब ठीक है। वैशाखी के दिन सूर्योदय होने पर चम्पावासी जो दृश्य

देखेंगे, वह चम्पा दुर्ग पर फहराता हुआ मागधी झण्डा होगा ।'

'परन्तु यह तो असाध्य-साधन है आयुष्मान् ! यह कैसे होगा ?'

'यह मुझ पर छोड़ दीजिए, भन्ते सेनापति ।'

सेनापति ने अब अचानक कुछ स्मरण करके कहा—'परन्तु तुम शिविर में कैसे चले आए सौम्य ?'

'किसी भाँति आज का संकेत-शब्द जान गया था भन्ते ।'

'यह तो साधारण बात नहीं है आयुष्मान् ।'

'भन्ते, सोमप्रभ साधारण तरुण नहीं है ।'

'सो तो देखूंगा, पर तुम करना क्या चाहते हो ?'

'अभी हमारे पास चार दिन हैं । इस बीच में बहुत काम हो जायगा ।'

'पर चार दिन हम खाएँगे क्या ?'

'आज रात को रसद मिल जायगी ।'

'परन्तु प्रतिरोध कैसे पूरा होगा ? हमारे पास तो युद्ध के योग्य···'

'एक सौ सशस्त्र योद्धा आज रात को आपके पास पहुँच जाएँगे ।'

'केवल एक सौ ?'

'आपको करना ही क्या है भन्ते, केवल प्रतिरोध ही न ?'

'परन्तु शत्रु के बाण जो हमें वेधे डालते हैं । हमारे पास रक्षा का कोई साधन नहीं है ।'

'यह तो बहुत सरल है भन्ते ! उधर बहुत सी टूटी नौकाएं पड़ी हैं, उनमें रेत भरकर उनकी आड़ में मजे में प्रतिरोध किया जा सकता है। मैंने सिन्धु नद के युद्ध में गान्धारों का यह कौशल देखा है ।'

'तुम क्या गान्धार हो वत्स ?'

'नहीं मागध हूँ । मैंने तक्षशिला में आचार्यपाद बहुलाश्व से शिक्षा पाई है ।'

'अरे, आयुष्मान् ! तुम वयस्य बहुलाश्व के अन्तेवासी हो । साधु, साधु ! तुम्हारी युक्ति बहुत अच्छी है ।'

'बस, कुछ नावों को आज रात के अँधेरे में यहाँ खींच लाया जाय और उनमें रेत भर दिया जाय।'

'यह हो जायगा। परन्तु तुम्हारे सौ सैनिक ?'

'रात की तीसरे पहर तक पहुँच जाएँगे।'

'ठीक है, तब तक तुम ?'

'मैं एक चक्कर नगर का लगाकर उसका मानचित्र तैयार करता हूँ।'

'तुम्हें कुछ चाहिए आयुष्मान्।'

'कुछ नहीं भन्ते। परन्तु अब मैं चला।' सोमप्रभ सेनापति का अभिनन्दन करके चल दिया। मागध योद्धाओं की सूखी आशा-लता पल्लवित हो उठी। घायल योद्धा भी वीर-दर्प से हुँकार भरने लगे।

३२ : : शत्रुपुरी में मित्र

सोम बहुत-से गली-कूचों का चक्कर लगाते, बीथी और राजपथ को पार करते एक तंग गली में छोटे से मकान पर पहुँचे। वहां उन्होंने द्वार पर आघात किया। एक अधेड़ वय के बलिष्ठ पुरुष ने द्वार खोला। सोम भीतर गए। वह पुरुष भी द्वार बन्द कर भीतर गया।

भीतर आंगन में एक भारी भट्ठी जल रही थी। वहां बहुत से शस्त्रास्त्र बन रहे थे। अनेक कारीगर अपने-अपने काम में जुटे थे। जिसने द्वार खोला था, वह कोई चालीस वर्ष की आयु का पुरुष था। उसका शरीर बलिष्ठ और दृढ़ पेशियों वाला था। चेहरे पर घनी दाढ़ी-मूंछ थी। उसने कहा—

'कहो मित्र, सेनापति का क्या विचार रहा ?'

'वे सब निराशा में डूब रहे थे। पर अब उत्साहित हैं। किन्तु मित्र अश्वजित्, अब सब कुछ तुम्हारी ही सहायता पर निर्भर है। कहो, क्या

करना होगा ?'

'बहुत सीधी बात है। दक्षिण बुर्ज पर वैशाखी के दिन तीन पहर रात गए मेरे भाई का पहरा है।'

'अच्छा फिर ?'

'अब यह आपका काम है कि आप चुने हुए भटों को लेकर ठीक समय पर बुर्ज पर चढ़ जायं।'

'ठीक है, परन्तु तुम कितने आदमी चाहते हो ?'

'बीस से अधिक नहीं। परन्तु मित्र, दक्षिण बुर्ज नदी के मुहाने पर है और चट्टान अत्यन्त ढालू है। उधर से बुर्ज पर चढ़ना मृत्यु से खेलना है।'

'हम मृत्यु से तो खेल ही रहे हैं मित्र। यही ठीक रहा। हम ठीक समय पर पहुँच जाएँगे।'

'इसके बाद की योजना वहीं बन जायगी।'

'ठीक है। और कुछ ?'

'अजी, बहुत कुछ मित्र। हमारे पास यथेष्ट शस्त्र तैयार हैं। मैंने मागध नागरिकों को बहुत-से शस्त्र बांट दिए हैं। वैशाखी के प्रातः ज्यों ही दुर्ग-द्वार पर आक्रमण होगा, नगर में विद्रोह हो जायगा।'

'अच्छी बात है, परन्तु मुझे अभी आवश्यकता है।'

'किस चीज की ?'

'सौ सशस्त्र सैनिकों की, जिनके पास पाँच दिन के लिए भोजन भी हो।

'वे मिल जाएँगे।'

'थोड़ी रसद और। सेनापति भूखों मर रहे हैं।'

'रसद और सैनिक आज रात को पहुँच जाएंगे।'

'परन्तु किस प्रकार मित्र ?'

'उसी दक्षिण बुर्ज के नीचे से। उधर पहरा नहीं है और एक मछुआ मेरा मित्र है। मेरे आदमी शिविर में तीन पहर रात गए तक पहुँच जाएंगे। कोई कानोकान न जान पाएगा।'

'वाह मित्र. यह व्यवस्था बहुत अच्छी रहेगी। परन्तु तुम्हारे उस

मछुआ मित्र की मुझे भी आवश्यकता होगी ।'

'कब ?'

'उसी वैशाखी की रात को ।'

'ओह, समझ गया । सैनिकों को पहुँचाकर वह अपनी डोंगी सहित वहीं कहीं कछार में चार दिन छिपा रहेगा । फिर समय पर आप उससे काम ले सकते हैं ।

'धन्यवाद मित्र । तो अब मैं आर्य को यह सुसम्वाद दे दूँ ?'

'और मेरा अभिवादन भी मित्र ।'

सोमप्रभ ने लुहार का आलिंगन किया और वहाँ से चल दिए ।

३३ : : पर्शुपुरी का रत्नविक्रेता

चम्पा के पान्थागार में पर्शुपुरी के एक विख्यात रत्न-विक्रेता कई दिन से ठहरे थे । उनके ठाठ-बाट और वैभव को देखकर सभी चम्पा-निवासी चमत्कृत थे । पान्थागार के सर्वोत्तम भवन में उन्होंने डेरा किया था और राज्य की ओर से उनकी रक्षा के लिए बहुत से सैनिक नियुक्त कर दिए गए थे । रत्न-विक्रेता के पास सेवकों की एक अच्छी-खासी सेना थी । रत्न-विक्रेता को अभी तक किसी ने नहीं देखा था । लोग उनके सम्बन्ध में भांति-भांति की बातें करते और भांति-भांति के अनुमान लगा रहे थे । इसका कारण यह था कि उनके सेवकों में अदना से आला तक सभी शाहखर्च थे । वे कार्षापण का सौदा खरीदते और स्वर्ण-दम्भ देकर फिरती लेना भूल जाते । ऐसा प्रतीत होता था, कि स्वर्ण को वे मिट्टी समझते हैं । परन्तु सबसे अधिक चर्चा की वस्तु रत्न-विक्रेता की पुत्री थी, जो प्रतिदिन प्रातः और संध्याकाल में अश्व पर सवार हो दासियों और

शरीर-रक्षकों के साथ नित्य नियमित रीति से वायु-सेवन को जाती तथा मार्ग में स्वर्ण-रत्न दरिद्र नागरिकों को हंसती हुई लुटाती थी। उसके अद्भुत अनोखे रूप, असाधारण अश्वसंचालन और अविरल दान से इन चार-पांच ही दिनों में पर्शुपुरी के रत्न-विक्रेता के वैभव और उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भाँति-भाँति की झूठी-सच्ची चर्चा नगर में फैल गई थी। अभी दो दिन पूर्व उनसे मिलने नगर के महासेट्ठि धनिय आए थे, और रत्न-विक्रेता तथा उसकी पुत्री को उन्होंने कल निमन्त्रण दिया था। आज स्वयं चम्पा के अधीश्वर परम परमेश्वर महाभट्टारक श्री दधिवाहनदेव पान्थागार में पधार रहे थे। इसीसे पान्थागार के द्वार मण्डप और लताओं से सजाए गए थे। भीतर बाहर बहुत सी दीपावलियाँ सजाई जा रही थीं। सैकड़ोंमनुष्य काम में जुटे थे। राजमार्ग पर अश्वारोही सैनिक प्रबन्ध कर रहे थे।

रात्रि का प्रथम प्रहर बीतने पर चम्पाधिपति ने पान्थागार में राजकुमारी चन्द्रभद्रा के साथ प्रवेश किया। पर्शुपुरी के उस रत्नविक्रेता ने द्वार पर आकर महाराज और राजकुमारी का स्वागत कि । और सादर एक उच्चासन पर बैठा कर अपनी पुत्री से महाराज का अर्घ्य-पाद्य से सत्कार कराया। रत्नविक्रेता के विनय और उससे अधिक उसकी पुत्री के रूप लावण्य को देख कर महाराज दधिवाहन मुग्ध हो गए। कुमारी चन्द्रभद्रा ने हाथ पकड़कर हंसते हुए रत्नविक्रेता की पुत्री को अपने निकट बैठा लिया। महाराज ने कहा—'चम्पा में आपका स्वागत है सेट्ठि। हमें आपको देखकर प्रसन्नता हुई है। मैंने सुना है, आप बहुत अमूल्य रत्न लाए हैं। राजकुमारी उन्हें देखना चाहती है।'

रत्नविक्रेता ने अत्यधिक झुककर महाराज का अभिनन्दन किया। फिर एक दास को रत्न-मंजूषा लाने का संकेत किया। दास कौशेय-मण्डित पट्ट पर मंजूषा रख गया। उसमें से बड़े-बड़े तेजस्वी मुक्ताओं की एक माला लेकर रत्नविक्रेता ने कहा—'देव चम्पाधिपति प्रसन्न हों, यह मुक्ता मोल लेकर बेचने योग्य नहीं है। पृथ्वी पर इनका मूल्य कोई चुका नहीं सकता। यदि देव की अनुमति हो तो मैं यह मुक्ताहार राजकुमारी को

अर्पण करने की प्रतिष्ठा प्राप्त करूँ।'

उन बड़े-बड़े उज्ज्वल असाधारण मोतियों को महाराज दधिवाहन आँखें फाड़-फाड़ कर देखते रह गए। रत्नविक्रेता ने आगे बढ़कर वह अमूल्य मुक्तामाला राजकुमारी के कण्ठ में डाल दी।

राजकुमारी ने आनन्द से विह्वल होकर दोनों हाथों में वह माला थाम ली।

इसके बाद रत्नविक्रेता ने कहा—'अब यदि अनुमति पाऊं तो बिक्री योग्य कुछ रत्न सेवा में लाऊं। कदाचित् कोई राजकुमारी को पसन्द आ जाय।'

उसने संकेत किया और दास ने दो बड़ी-बड़ी रत्नमंजूषा कौशेय पट्ट पर रख दी। उनमें एक से एक बढ़कर रत्नाभरण भरे पड़े थे। राजकुमारी ने कुछ आभरणों को छाँट लिया। किन्तु,महाराज दधिवाहन उन सब असाधारण रत्नों से अधिक रत्नविक्रेता की कन्या रत्न की ओर आकर्षित हो रहे थे, जो रह-रहकर वंकिम कटाक्ष से उन्हें पागल बना रही थी।

चम्पाधिपति ने बहुत से रत्नाभरण खरीदे। अन्त को उन्होंने उठते हुए कहा—'हम आपसे बहुत प्रसन्न हैं। इस समय मागध-सैन्य ने चम्पा को घेर रखा है, इससे आपको और आपकी सुकुमारी कन्या को असुविधा हुई होगी।'

'मेरी पुत्री का देव को इतना ध्यान है, इसके लिए अनुगृहीत हूँ। यह बिना माता की पुत्री है। महाराज, राजकुमारी ने इसे सखी की भाँति अपनाकर जो प्रतिष्ठित किया है उससे इसे अत्यन्त आनन्द हुआ है।'

'राजकुमारी चाहती है, आप जब तक यहां हैं, आपकी पुत्री राजमहालय में उन्हीं के सान्निध्य में रहे। आपको इसमें कुछ आपत्ति है?' महाराज ने छिपी दृष्टि से रत्नविक्रेता की पुत्री को देखकर कहा, जो मन्द मुस्कान से राजा के वचन का स्वागत कर रही थी।

रत्नविक्रेता ने कहा—'यह तो उसका परम सौभाग्य है। राजकुमारी उसे अपने साथ ले जा सकती हैं। यहाँ परदेश में देव, यह अकेलापन

बहुत अनुभव करती है।'

राजकुमारी ने हँस कर रत्नविक्रेता की कन्या का हाथ पकड़ कर कहा—'चलो सखी, हम लोग बहुत आनन्द से रहेंगे।'

उसने विनय से मस्तक झुकाया। प्रधान दास ने उत्तरी वासक उसके कन्धों पर डालते हुए अवसर पाकर धीरे से उसके कान में कहा—'वैशाखी की रात को चार दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर।'

और वह विनय से झुकता हुआ पीछे हट गया। रत्नविक्रेता की पुत्री ने (जो वास्तव में कुण्डनी थी) पिता के चरणों में प्रणाम किया। दोनों ने दृष्टि विनिमय किया।

महाराज राजकुमारी और रत्नविक्रेता की कन्या को लेकर चले गए। उनके जाने पर रत्नविक्रेता ने द्वार बन्द करने का आदेश दिया। फिर एकान्त पाकर अपने नकली केश और परिच्छद उतार फेंका। दास भी निकट आ खड़ा हुआ।

'सब ठीक हुआ न सोम ?'

'हाँ, आर्य।'

'सेनापति भद्रिक को सहायता मिल जायगी न ?'

'सब ठीक होगया है, आर्य।'

'आयुष्मान् अश्वजित् अपना कार्य कर रहा है ?'

'जी हाँ, वह लुहार बना हुआ है। चम्पा के सम्पूर्ण मागध नागरिकों को उसने सशस्त्र कर दिया है।'

'बहुत अच्छा हुआ। वे कितने है ?'

'बारह सौ से भी अधिक।'

'ठीक है। सेट्ठि धनिय ने चम्पा के बहुत से सार्थवाहों की हुंडियां मेरे आदेश से खरीद ली हैं। वैशाखी के दिन प्रभात ही वे भुगतान मांगेंगे। मैं जानता हूँ, राजकोष में स्वर्ण नहीं है। महाराज दधिवाहन मेरे रत्नों के मूल्य में जो स्वर्ण देंगे, वह चम्पा के स्वर्णवणिकों से लेकर। बस, वे खाली हो जाएँगे और वे नगर सेट्ठि की हुंडियां नहीं भुगता

सकेंगे ।'

'इसी बीच मागध नागरिक नगर में विद्रोह कर देंगे और यह हुण्डि-यावन ही उसका कारण हो जायगा । किन्तु कुण्डनी ?'

'वह अपना मार्ग खोज लेगी । वैशाखी की रात्रि के चौथे दण्ड के प्रारम्भ होते ही दधिवाहन मर जायगा ।'

'तो ठीक उसी समय चम्पा दुर्ग के पच्छिमी बुर्ज पर मागध तुरही बजेगी और उस समय तक तमाम प्रहरी वश में किए जा चुके होंगे । इसके बाद दो ही घड़ी में उन्मुक्त द्वार से मगध सेनापति प्रविष्ट हो दुर्ग अधिकृत कर लेंगे ।'

'उत्तम योजना है । अब मैं इसी क्षण प्रस्थान करूँगा । तुम मेरे रोगी होने का प्रचार करना तथा वैशाखी पर्व तक सब कुछ इसी भाँति रखना । परन्तु किसी से भेंट करने में असमर्थ बता देना ।'

'जैसी आज्ञा, किन्तु····· '

'ठहरो, तुम सोम, वैशाखी के दिन चार दण्ड रात्रि रहते ही श्रावस्ती की ओर प्रस्थान करना । चम्पा दुर्ग पर मागधी पताका देखने के लिए प्रभात तक रुकना नहीं । वहाँ सम्राट् विपन्नावस्था में हैं ।' इतना कह कर मगध महामात्य ने आसन त्याग कर ताली बजाई ।

एक दास ने निकट आकर अभिवादन किया ।

अमात्य ने कहा—'कितनी रात्रि गई अभय ?'

'रात्रि का द्वितीय दण्ड प्रारम्भ है आर्य ।'

'और मेरा अश्व ?'

'वह तैयार है ।'

'कहाँ ?'

'निकट ही, उसी उपत्यका के प्रान्त में ।

'ठीक है ।'

अमात्य आगे बढ़े । सोम ने कहा—'क्या मेरा असुर आर्य का पथ प्रदर्शन करे ?'

'नहीं, मेरी अपनी व्यवस्था है।'

वे एकाकी ही अन्धकार में अदृश्य हो गए।

३४ : : असम साहस

'तो आयुष्मान् सोम, हमारी योजनाएं असफल हुईं ?'

'यह क्यों, भन्ते सेनापति ?'

'कल ही वैशाखी पर्व है, हम कुछ भी तो नहीं कर सके।'

'भन्ते, हमें अभी काम करने के लिए पूरे पाँच प्रहर का समय है।'

'इन पाँच प्रहरों में हम क्या कर लेंगे ? दुर्ग पर आक्रमण के योग्य हमारे पास सेना कहाँ है ?'

'भन्ते आर्य, इन चार दिनों में जो कुछ हम कर पाए हैं वह सब परिस्थितियों को देखते क्या सन्तोषप्रद नहीं है।'

'अवश्य है, परन्तु इसमे लाभ ? मेरी समझ में हमारा सर्वनाश और चार दिन के लिए टल गया। अब भी तुम आत्मसमर्पण के पक्ष में नहीं हो ?'

'नहीं भन्ते सेनापति।'

'तो कल सूर्योदय के साथ हमारा सर्वनाश हो जायगा।'

'नहीं भन्ते सेनापति, कल सूर्योदय से पूर्व हम दुर्ग अधिकृत कर लेंगे।'

'क्या तुम्हें किसी दैवी सहायता की आशा है ?'

'नहीं, भन्ते सेनापति, मैं अपने पुरुषार्थ पर निर्भर हूँ।'

'तो तुम्हें अब भी आशा है ?'

'आशा नहीं, भन्ते सेनापति, मुझे विश्वास है।'

'परन्तु आयुष्मान्, तुम करना क्या चाहते हो ?'

'वह कल सूर्योदय होने पर आप देख लीजिएगा।'

'सौम्य सोम, तुम कोई असम साहस तो नहीं कर रहे ? मैं तुम्हें किसी घातक योजना की अनुमति नहीं दूंगा।'

'हमारा कार्य अतिशय गुरुतर है सेनापति और मेरी योजना भी वैसी ही गम्भीर है। परन्तु आप तनिक भी चिन्ता न कीजिए। आप केवल परिणाम को देखिए। कल सूर्योदय से पूर्व ही दुर्ग पर मागधी झंडा फहराता देखेंगे आप।'

'लेकिन कैसे आयुष्मान् ?'

'भन्ते सेनापति, कृपा कर अभी आप मुझसे कुछ न पूछें। हां, आज की रात का संकेत-शब्द क्या है, कृपया यह बता दीजिए।'

'असम-साहस ही सही।'

'बहुत ठीक, अब आप विश्राम कीजिए। अभी एक दण्ड रात गई है। मुझे बहुत समय है। मैं तनिक अपने आदमियों को ठीक-ठाक करलूं।'

'तुम्हारा कल्याण हो आयुष्मान् और कुछ ?'

'कृपया याद रखिए कि रात्रि के चौथे दण्ड में ज्यों ही चम्पा दुर्ग के दक्षिण द्वार पर मागध तुरही बजे, आप ससैन्य दुर्ग में प्रविष्ट होकर दुर्ग को अधिकृत कर लें। दुर्ग द्वार आपको उन्मुक्त मिलेगा।'

सोम ने अवनत होकर सेनापति भद्रिक को अभिवादन किया और तेजी के साथ पट-मण्डप से बाहर हो गए। सेनापति आश्चर्यचकित खड़े उसे देखते रह गए।

बाहर आते ही रात्रि के अन्धकार में एक वृक्ष की आड़ से निकल कर अश्वजित् उसके निकट आया। उसने आते ही सोम के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—'सब ठीक है मित्र।'

'वह माँझी ?'

'अपनी नाव सहित वहाँ चन्दन के कछार में छिपा हुआ है।'

'उस पर विश्वास तो किया जा सकता है ?'

'पूरा मित्र।'

'मित्र, स्मरण रखना, मगध का भाग्य इस समय उसी मांझी के हाथ में है।'

'वह पूरा विश्वास के योग्य है मित्र।'

'तब चलो उसके पास।'

दोनों व्यक्ति धीरे-धीरे निःशब्द पत्थर के छोटे-बड़े ढोकों को पार करते हुए उसी सघन अन्धकार में चन्दन नदी के उस कछार पर पहुँचे, जहां वह मछुआ अपनी नाव एक वृक्ष से बाँधे चुपचाप बैठा था। नदी के हिलोरों से नाव उथल-पुथल हो रही थी।

अश्वजित् ने संकेत किया। संकेत पाते ही मांझी कूद कर उनके निकट आगया। निकट आकर उसने दोनों को अभिवादन किया।

सोम ने आगे बढ़कर उस अन्धकार में उसे सिर से पैर तक देखा और पूछा—'तुम्हारा क्या नाम है मित्र ?'

'भन्ते आर्य, मैं सोमक मांझी हूँ।'

'तो मित्र सोमक, तुम्हें मालूम है कि आज की रात तुम्हें एक जोखिम से भरा काम करना होगा, जिसमें तनिक भी असफल हुए तो बहुत भारी हानि होगी ? हमें दक्षिण बुर्ज तक जाना होगा, वहां नाव को टिकाये रखना होगा। जानते हो, यह जान-जोखिम का काम है ?'

'भन्ते आर्य, हम लोग तो तुच्छ मछलियों के लिए नित्य जान-जोखिम ही में रहते हैं, आप तनिक भी आशंका न करें।'

'आश्वस्त हुआ मित्र। तो कब उपयुक्त समय होगा ?'

'चार दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर भन्ते, जब चन्दन में ज्वार आएगा।'

'नहीं मित्र, तीन दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर।'

'इसमें तनिक भय है सेनापति। किन्तु कोई हानि नहीं। ऐसा ही होगा।'

'यह तुम्हारा पारिश्रमिक है मित्र।'

सोम ने स्वर्ण से भरी एक छोटी सी थैली उसके हाथों में थमा दी, फिर धीरे से कहा—'हाँ, तुम्हारी नाव में बीस आदमी बैठ सकते हैं ?'

'बहुत आराम से भन्ते सेनापति ।'

'तब ठीक है । सावधानी से यहीं प्रतीक्षा करना मित्र !'

'आप निश्चिन्त रहिए, भन्ते आर्य ।'

सोम ने वहाँ से हटकर अश्वजित् से कुछ परामर्श किया और अश्वजित् तेजी से किन्तु निःशब्द एक ओर को चला गया । फिर सोम भी लम्बे-लम्बे डग बढ़ाते हुए एक ओर को तेजी से चले ।

३५ :: शंब असुर का साहस

चम्पादुर्ग के दक्षिण बुर्ज के निकट चन्दन के तट से थोड़ा हट कर एक शून्य चैत्य था। वह बहुत विशाल था, परन्तु इस समय वहाँ एकाध विहार को छोड़ कर सब खण्डहर था । उधर लोगों का आवागमन नहीं था । वहीं एक अपेक्षाकृत साफ-सुथरे अलिन्द में बीस भट एकत्र थे । वे सब शंब को लेकर आनन्द कर रहे थे । जो तरुण असुर सोम ने उस असुरपुरी से प्राणदान कर पकड़ा था, उसका नाम उन्होंने रखा था शंब । अपने इस नए नाम से वह बहुत प्रसन्न था । मागध तरुण उसे अच्छी-अच्छी मदिरा पिलाते तथा अनेक प्रकार के माँस और मिष्टान्न खिलाते थे, इससे वह उनसे बहुत हिलमिल गया था । उसने जो असुरपुरी में कुण्डनी को नृत्य करते और मृत्यु-चुम्बन करते देखा था, इस समय वह उसी की नकल कर रहा था। वह बार-बार अपनी स्वर्णकरधनी छूकर, हाथ मटका कर, कभी कभी भाण्ड में से मद्य ढालकर भटों को पिलाने का अभिनय करता और कभी कुण्डनी ही की भाँति चुम्बन-निवेदन करता। सब लोग उसे घेर कर उसके नृत्य का आनन्द ले रहे थे । वह बार-बार शंब–शंब अपना नवीन नाम उच्चारण करता हुआ आसुरी भाषा का कोई बढ़िया-सा प्रणय गीत गाता

हुआ, सब भटों को चुम्बन-निवेदन कर रहा था और मागध भट उसके मोटे-मोटे काले होठों के स्पर्श से बचने के लिए पास आने पर उसे धकेल कर हंस रहे थे। वाद्य के अभाव में एक भट पत्थर के सहारे लेटा अपना पेट ही बजा रहा था और सब लोग ही-ही करके हंस रहे थे।

क्षण भर सोम यह सब देखता रहा। एक क्षीण हास्य रेखा उसके होठों पर फैल गई। फिर उसने पुकारा—शंब, क्या आज तूने फिर बहुत मद्य पिया है ?'

शंब ने एक बार झुक कर स्वामी को प्रणाम किया, फिर भीत भाव से उनकी ओर देखा। परन्तु सोम की मुद्रा देख वह हंस पड़ा। उसके काले काजल से मुख में धवल दन्तपंक्ति बड़ी शोभायमान दीखने लगी।

उसने कहा—'नहीं स्वामी, नहीं।'

सोम ने उस पर से दृष्टि हटा कर बीसों भटों पर मार्मिक दृष्टि डाली और दृढ़ स्थिर स्वर में कहा—'मित्रो, आज हमें मृत्यु से खेलना होगा, कौन-कौन तैयार हैं ?'

'प्रत्येक, भन्ते सेनापति ?'

'परन्तु मित्रो, हमारे आज के कार्य का प्रभाव मगध के भाग्य-परिवर्तन का कारण होगा।'

'हम प्राणों का उत्सर्ग करेंगे भन्ते।'

'आश्वस्त हुआ मित्रो !'

'अभी एक दण्ड रात्रि व्यतीत हुई है, हम तीन दण्ड रात्रि रहते प्रयाण करेंगे, अभी हमारे पास चार घटिका समय है। आप तब तक एक-एक नींद सो लें।'

सब लोग चुपचाप सो गए। अब सोम ने शंब की ओर देख कर कहा—'शंब, तुझे एक कठिन काम करना होगा।'

शंब ने प्रसन्न मुद्रा से स्वर्ण-करधनी पर हाथ रखा।

सोम ने एक पतली लम्बी रस्सी को लेकर शंब को पीछे आने का संकेत किया और वह दक्षिण बुर्ज की ओर चला। बुर्ज के निकट आकर

कहा—'शंव, तू जल में कितनी देर ठहर सकता है ? 'शंव ने संकेत से बताया—वह काफी देर जल में ठहर सकता है। सोम ने वस्त्र उतार डाले और शंव के साथ जल में प्रवेश किया। इस समय चन्दन में ज्वार आ रहा था, बड़ी-बड़ी लहरें उठ कर चट्टानों से टकरा रही थीं। दोनों ने दृढ़तापूर्वक रस्सी पकड़ रखी थी, वे ठीक बुर्ज के नीचे किसी चट्टान पर स्थिर होना चाहते थे, पर पानी की लहरें उन्हें दूर फेंक देती थीं। अन्त को वे वहाँ पहुँचने में सफल हुए। सोम एक चट्टान को दृढ़ता से पकड़ कर और दांतों में रस्सी दबा कर बोले—'शंव, रस्से का दूसरा छोर लेकर पानी में गोता मार। देख तो कितना जल है ?'

शंव ने कमर में रस्सी बाँध पैर ऊपर कर गोता लगाया, रस्सी पानी में घुसती ही चली गई। सोम की भुजाओं पर पूरा जोर पड़ रहा था, चट्टान छूटी पड़ी रही थी, दाँत भी रस्सी के बोझ को नहीं सम्हाल सक रहे थे, एक-एक क्षण कष्ट और असह्य भार बढ़ रहा था। इसी समय रस्सी ढीली हुई और कुछ क्षण बाद ही शंव ने सिर निकाला। सोम ने रस्सी को नाप कर जल का अनुमान किया। उसने सोचा, दो दण्ड काल में जल और चार हाथ बढ़ जायगा। उसने पाँच हाथ ऊपर चट्टान में खूब मजबूती से वह रस्सी लपेट दी और उसका दूसरा छोर शंव के हाथ में देकर कहा—'शंव, खूब सावधानी से रहना, ज्यों ही नाव यहाँ पहुँचे रस्सी फेंक देना। ऐसा न हो—नाव को लहरें दूर फेंक दें और ऊपर बुर्ज का भी ध्यान रखना। वहाँ से एक रस्सी नीचे लटकाई जायगी। इसे भी तू थामे रहना। कर सकेगा न ?'

शंव बोला नहीं, उसने हंस कर स्वीकृति प्रकट की और जम कर चट्टान पर बैठ गया।

सोम ने गहरे जल में गोता लगाया और वहीं अदृश्य हो गए। अकेला असुर उस भयानक काली रात में अपनी कठिनाइयों के बीच बैठा रहा।

३६ : : गुप्त पत्र

सेनापति भद्रिक बड़ी देर तक शून्य अर्धरात्रि में अकेले चिन्तित भाव से पट-द्वार में इधर-उधर टहलते रहे। उस समय उनके मस्तिष्क में कुछ परस्पर विरोधी ऐसे विचार चक्कर लगा रहे थे, जिनका उन्हें निराकरण नहीं मिल रहा था। उन्होंने बहुत देर तक कुछ सोचकर दीपक ठीक किया और आसन पर आ भोजपत्र निकाल लेखनी हाथ में ली। इसी समय किसी के पदशब्द से चौंक कर उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा। सोम को देख कर उन्होंने आश्वस्त हो कर कहा--

'तुम सोम, इस असमय में ?'

'आर्य एक चर है, राजगृह से पत्र लाया है।'

'पत्र क्या सम्राट् का है ?'

'नहीं आर्य, सेनापति उदायि का पत्र है।'

'तो तुम पत्र ले आओ और चर की व्यवस्था कर दो।'

इतना कहकर सेनापति लिखने में लीन हो गए। सोम पत्र हाथ में लेकर चुपचाप मण्डप में खड़े हो गए।

लेख समाप्त होने पर सेनापति ने कहा–'भद्र मुहर तोड़ कर पत्र निकालो।'

सोम ने ऐसा ही किया।

सेनापति ने स्निग्ध कोमल स्वर से कहा–'पत्र पढ़ो भद्र।' पत्र पर दृष्टि डाल कर सोम ने कहा–'आर्य, पढ़ नहीं सकता, वह सांकेतिक भाषा में है।'

'अच्छा, तो कोई गुप्त पत्र है। वह संकेत-तालिका ले लो भद्र और तब सावधानी से पढ़ो।'

सोम ने पढ़ा—

'·····मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही आपको महाराज कह कर सम्बोधित करूँगा।' सोम ने झिझक कर सेनापति की ओर देखा। सेनापति ने मुस्करा कर कहा—

'पढ़ो भद्र, यह राजविद्रोह नहीं, राजनीति है। मगध सम्राट् ही अकेले महाराज नहीं हैं और भी हैं। फिर अब, सोमभद्र, जब तुमने आशा ही आशा हमें दी है तो फिर चम्पा के सिंहासन पर दधिवाहन के स्थान पर भद्रिक कुछ अनुपयुक्त भी नहीं है। कासियों का गण मगधसाम्राज्य में मिल ही चुका है और अंग, बंग, कलिंग के महाराज मेरे अधीन हैं। मल्ल लड़खड़ा रहे हैं। मेरे अधीन भी पचास सहस्र सेना सुरक्षित है, जो इच्छानुसार उपयोग में लाई जा सकती है। फिर कलिंग महाराज ने बीस सहस्र सैन्य और सौ जलतरी देने का वचन दिया है।·····'

'परन्तु भन्ते सेनापति·····'

'भद्र पहिले पत्र पढ़ लो।'

सोम ने फिर पढ़ना प्रारम्भ किया—

'आपका ध्यान मैं तीन बातों की ओर आकर्षित किया चाहता हूँ। प्रथम यह कि सम्राट् ने श्रावस्ती पर चढ़ाई कर दी है। श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित् कौशाम्बीपति उदयन से उलझ रहे हैं। सम्राट् इसी अभिसन्धि से लाभ उठाना चाहते हैं। उधर अवन्तिराज चण्डमहासेन ने भी उन्हें उकसाया है। परन्तु मुझे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि सम्राट् के कोशल पर अभियान करने का छिद्र पाकर चण्डमहासेन मगध की ओर आ रहा है। आर्य वर्षकार इस ओर सावधान अवश्य हैं। परन्तु आपके चम्पा में फँस जाने तथा सम्राट् के अवध पर अभियान करने से मगध की रक्षा चिन्तनीय हो गई है। तिस पर महामात्य कहीं गुप्त यात्रा पर गए हैं, तथा नगर मेरे अधीन है। इससे इस समय चण्डमहासेन का मगध पर अभियान हमें बहुत

भारी पड़ सकता है, यद्यपि चाणाक्ष आर्य वर्षकार एक युक्ति कर गए हैं।'

इतना पत्र सुन चुकने पर सेनापति आसन से उठकर टहलने और बड़बड़ाने लगे। वे कह रहे थे–'सम्राट् की मति मारी गई है, अथवा यह वर्षकार की अभिसन्धि है ? वे क्या बन्धुल मल्ल के शौर्य को नहीं जानते ? अस्तु, पढ़ो पत्र सोम !'

'देवी अम्बपाली को सम्राट् ने उपहार भेजा था। वह उसने लौटा दिया। सम्राट् इस पर बहुत उद्विग्न हुए हैं। आर्य वर्षकार उन्हें इस कार्य के लिए उकसा रहे हैं। वे चाहते हैं कि जल्द से जल्द किसी बहाने वैशाली पर आक्रमण हो जाय। असल बात यह है कि वे अम्बपाली से किसी प्रकार सम्राट् की घनिष्ठता बढ़ाकर काश्यप की विषकन्या का अम्बपाली के आवास में प्रवेश कराना चाहते हैं। परन्तु सम्राट् ने स्पष्ट रूप में मगध छोड़ते समय आदेश दिया था कि उसका प्रयोग चम्पाधिपति पर किया जाय। आश्चर्य नहीं कि वह इस पत्र से प्रथम ही चम्पा पहुंच चुकी हो।'

सोम के माथे से पसीना चूने लगा। सेनापति क्रुद्ध भाव से धम्म से आसन पर आ बैठे। बैठकर उन्होंने कहा—'समझा, वह कुटिल ब्राह्मण इसी लिए सेना नहीं भेज रहा था। अच्छा, और क्या लिखा है ?'

सोम ने पढ़ा—'मथुरा का अवन्तिवर्मन, सुना है–मगध पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है। इसी से सम्राट् ने मुझे उसका अवरोध करने को सीमाप्रान्त पर जाने का आदेश दिया था। परन्तु आर्य वर्षकार ने वह आदेश रद्द कर दिया और राजधानी का कार्यभार मुझे सौंप कर स्वयं अन्तर्धान हो गए हैं।'

'ठहरो सोम, सोचने दो—वह कुटिल गया कहाँ ?'

सोम चुपचाप खड़ा रहा। सेनापति ने एकाएक उद्विग्न होकर कहा–

'सोम, यह क्या सम्भव नहीं कि वर्षकार चम्पा ही में आया हो ?'

'यदि ऐसा है तो आर्य, हमें बहुत सहायता मिलेगी।'

'परन्तु श्रेय ?' सेनापति भद्रिक की भृकुटि टेढ़ी हुई। मगध के

ख्यातनामा वीर सेनानायक की यह कुटिल राज्य-वासना देखकर सोम विचार में पड़ गया।

सेनापति ने बड़ी देर चुप रहकर दीर्घ निःश्वास लेकर कहा--'सोम-भद्र, चाहे जो हो, श्रावस्ती में सम्राट् को अवश्य मुंह की खानी पड़ेगी। हाँ, वैशाली का गणतन्त्र मगध-साम्राज्य की गहरी बाधा है। क्यों न फिर अम्बपाली ही हमारी सम्पूर्ण कूटनीति और विग्रह का केन्द्र रहे। होने दो सम्राट् की उस पर आसक्ति। हमारे लिए लाभ ही लाभ है। तो भद्र सोम, मैं तुम्हें दो गुरुतर संदेश देता हूँ। कदाचित् अब हम लोग न मिल सकें। यदि तुम्हारी योजना सफल हो तब भी और न हो तब भी, जितना सम्भव हो, द्रुतगति से चम्पा से प्रस्थान करना और सेनापति उदायि से मिलकर मेरा मौखिक संदेश कहना कि जल्दी न करें। सर्वथा नष्ट कर देने की अपेक्षा अपनी कल्पनाओं को कुछ काल के लिए स्थगित कर देना अधिक अच्छा है।'

इतना कह कर सेनापति चुपचाप एकटक युवक के मुख की भावभंगी को देखते रहे। युवक लोह-स्तम्भ के समान स्थिर खड़ा रहा। उसने कहा--'भन्ते सेनापति का सन्देश अक्षरशः आर्य उदायि की सेवा में पहुँच जायगा।'

'तब दूसरी बात भी सुनो सौम्य', सेनापति ने और भी निकट मुंह करके और भी धीरे से कहा—

'मेरे महान् प्रतिद्वन्द्वी इस ब्राह्मण वर्षकार को अपना विश्वासपात्र बनाना। केवल वैशाली का पतन ही ऐसा है, जिस पर मैं, सम्राट् और यह कुटिल ब्राह्मण तीनों का त्रिकूट सहमत है, यद्यपि तीनों की भावनाएं पृथक् हैं! सम्राट् अम्बपाली को प्राप्त किया चाहते हैं और यह ब्राह्मण उत्तर भारत से सम्पूर्ण गण-राज्यों का उन्मूलन किया चाहता है। किन्तु मेरा उद्देश्य कुछ और ही है।' कुछ देर ठहर कर सेनापति ने कहा--'भद्र सोम, उदायि से कहना कि ऐसा करें, जिससे यह कुटिल ब्राह्मण स्वयं वैशाली जाय और सूनी राजधानी में अकेले सम्राट् ही रह जायं।'

सेनापति की आँखों से एक चमक निकलने लगी। उनका स्वर उद्विग्न हो गया। पर उन्होंने शान्त ही रह कर कहा–'सोमभद्र, थोड़ी बात और शेष है।'

'मेरी पचास सहस्र रक्षित सैन्य है, उसका मैं तुम्हें अधिनायक नियत करता हूँ। आवश्यकता होने पर उसका उपयोग मगध के लिए करना।'

युवक ने मौन भाव से सेनापति का आदेश ग्रहण किया। सेनापति ने कहा—'तो भद्र सोम, अब दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो रही है। तुमने जिस कठिन असाध्य-साधन का संकल्प किया है उसकी वेला निकट है। अपना अद्भुत काम करो। मैं अनिमेष भाव से उसके फलाफल का निरीक्षण करूंगा।'

सोम अभिवादन करके जाने लगे तो सेनापति ने लपक कर उन्हें खींच कर छाती से लगा लिया और कहा—'ऐसे नहीं सौमभद्र, आज के अभियान के सेनानायक मैं नहीं, तुम हो। अभिलाषा करता हूँ कि सफल हो।'

सोम एक बार सेनानायक को मौन भाव से फिर अभिवादन करके चुपचाप चल कर अन्धकार में समा गए।

३७ : : आक्रमण

चन्दन नद में ज्वार आ रहा था। अपने बीस आरोहियों को लेकर एक नौका जल के प्रबल थपेड़ों पर नाचती हुई आकर निःशब्द दक्षिण बुर्ज के नीचे रुक गई। साहसी मांझी ने यत्न करके पत्थर की चट्टानों से टकराती लहरों से नौका को बचाकर ठीक बुर्ज के नीचे उसी चट्टान के निकट लगा

दिया । सोम सबसे प्रथम चुपचाप नीचे उतरा। उसके पीछे अश्वजित् था। अश्वजित् ने बुर्ज के तल में जाकर देखा, एक मजबूत रस्सी लटक रही है और शंब उसकी यत्न से रक्षा कर रहा है । सोम का सकेत पाकर बीस योद्धा अपने-अपने खड्ग कोश से खींच और दांतों में दबा कर रस्सी के सहारे बुर्ज पर चढ़ने लगे । तीन सौ हाथ ऊँची सीधी ढालू चट्टान पर स्थित उस बुर्ज पर चढ़ना कोई हंसी-खेल न था । परन्तु वीरों की यह टोली भी कोई साधारण टोली न थी । सबसे प्रथम शंब, फिर अश्वजित् और उसके बाद एक के बाद दूसरा, कुल बीस योद्धा और सबके अन्त में सोम बुर्ज पर पहुँच गए । प्रत्येक आदमी बुर्ज पर पेट के बल लेट गया । अश्वजित् का भाई पहरे पर नियुक्त था । उसने धीरे से सोम के निकट आकर कहा–'पहरा बदलने का समय हो गया है। सबसे पहिले नए प्रहरियों को काबू में करना होगा। वे चार हैं और आधे ही दण्ड में आनेवाले हैं।' सोम ने अपने योद्धाओं को आवश्यक आदेश दिए । प्रत्येक व्यक्ति चुपचाप प्राचीर पर लेटा हुआ था और प्रत्येक के हाथ में नग्न खड्ग था ।

चारों नए प्रहरी बेसुध चले आए और अनायास ही काबू कर लिए गए । एक शब्द भी नहीं हुआ ।

सोम ने कहा—'अब ?'

'अब हमें सिंहद्वार के रक्षकों पर अधिकार करना होगा । कुल १६ हैं । परन्तु निकट ही २०० सशस्त्र योद्धा सन्नद्ध हैं । खटका होते ही वे आ जाएँगे ।'

'देखा जायगा । समय क्या है ?'

अश्वजित् ने आकाश की ओर देखकर कहा—'तीन दण्ड रात्रि जा चुकी है ।'

'तो अभी हमें एक दण्ड समय है ।'

इसके बाद अश्वजित् के भाई बाहुक की ओर देखकर उसने कहा–'मित्र, तुम्हें अभी और भी हमारी सहायता करनी होगी ।'

'मैं मगध का सेवक हूँ ।'

'तो मित्र, यह मद्यभाण्ड लो और झूमते हुए सिंहद्वार तक चले जाओ। जितना सम्भव हो, प्रहरियों को मद्य पिलाओ और तुम उन्मत्त का अभिनय करके वहीं पड़े रहो, जब तक कि हम लोग न पहुँच जायं। ठीक चार दण्ड रात बीतने पर सेनापति दुर्गद्वार पर बाहर से आक्रमण करेंगे।'

अश्वजित् के भाई ने हँसकर कहा—'और तब तक यह सुवासित मद्य उनके पेट में अपना काम कर चुका होगा तथा सेनापति को द्वार उन्मुक्त मिलेगा। मैं अब चला। आपका कल्याण हो।'

सोम आवश्यक व्यवस्था में जुट गए और उनके आदेश को ले लेकर उनके साहसी भट दांतों में खड्ग दबाए सिंहद्वार के चारों ओर को पेट के बल खिसकने लगे। सब कुछ निःशब्द हो रहा था।

बाहुक ने सिंहपौर पर लड़खड़ाते हुए पहुँच कर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो सामन्त, किन्तु इसमें किसी का हिस्सा नहीं है।' उसने मद्यपात्र मुंह में लगा कर मद्य पिया।

एक प्रहरी ने हंस कर कहा—'अरे बाहुक, तुम हो! आज तो रंग है कहाँ से लौट रहे हो?'

'रंगमहल से मित्र। बहार है! वहां वह पर्शुपुरी की अप्सरा आई है।'

कई प्रहरी जुट गए—'कौन आई है सामन्त?'

'चुप रहो, गुप्त बात है। पर्शुपुरी की रम्भा। महाराज आज पान-नृत्य में व्यस्त हैं। प्रहरियों को भी प्रसाद मिला है, यह देखो।'

'वाह, वाह, तो सामन्त, एक चषक हमें भी दो।'

'वहां जाओ और ले आओ। इसमें किसी का हिस्सा नहीं है।' उसने फिर पात्र मुंह में लगाया और एक ओर को लुढ़क गया।

एक प्रहरी ने मद्यपात्र छीनकर कहा—'वाह मित्र, हमें क्यों नहीं? अरे वाह, अभी बहुत है। पियो मित्रो! तेरी जय रहे सामन्त।'

सब प्रहरी मद्य ढालने लगे। बाहुक ने एक प्रेम-संगीत गाना प्रारम्भ कर दिया। पीलू के स्वर उस टूटती रात में मद्य के घूँटों के साथ ही प्रहरियों के हृदयों को आन्दोलित करने लगे।

एक ने कहा—'सामन्त, वह पर्शुपुरी की अप्सरा देखी भी है ?'

'देखी नहीं तो क्या, अरे ! वह ऐसा नृत्य करती है और देव को मद्य ढाल कर देती है—देखोगे ?'

'वाह सामन्त, क्या वहार है । नाचो तो तनिक, उसी भांति मद्य ढाल कर दो तो ।'

वाहुक दोनों हाथ ऊंचे करके नृत्य करने लगा और नृत्य करते-करते उसने मद्य ढाल-ढाल कर प्रहरियों को पिलाना आरम्भ कर दिया। प्रहरी उन्मत्त हो उठे—कई तो वाहुक के साथ नाचने लगे और कई उसके स्वर के साथ स्वर मिला कर गाने लगे । मद्य-भाण्ड रिक्त हो गया ।

सव मद्य प्रहरियों के उदर में पहुँच गया । तव वाहुक मद्य-भाण्ड को पेट पर रखकर लेट गया और पात्र को ढोल की भाँति पीट-पीट कर वजाने और कोई विरह-गीत गाने लगा । प्रहरी हंसते-हंसते लोटपोट हो गए और उस विशिष्ट मद्य के प्रभाव से फिर गहरी नींद में अचेत हो गए। वाहुक ने सावधान होकर प्रथम आकाश के नक्षत्र को, फिर चारों ओर अन्धकार से परिपूर्ण दिशाओं को देखा । अव चार दण्ड रात्रि व्यतीत हो रही थी ।

३८ : : मृत्युपाश

महाराज दधिवाहन कुण्डनी के उज्ज्वल उन्मादक रूप पर मोहित हो गए । कुण्डनी के यौवन, मत्त नयन और उद्वेगजनक ओष्ठ, स्वर्ण देहयष्टि, इन सबने महाराज दधिवाहन को कामान्ध कर दिया । वे उस पर मोहित होकर ही उसे अपनी कन्या चन्द्रभद्रा की सखी बना कर रंगमहल में लाए थे । पर जव उन्होंने जाना कि वह कुमारी है और पर्शुपुरी का वह रत्न-

विक्रेता कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति नहीं, सम्राटों के समकक्ष सम्पत्तिशाली है, तो महाराज के मन में रत्नविक्रेता की कन्या से विवाह करने की अभिलाषा जाग्रत हो गई।

आज वैशाखी पर्व का दिन था। इस दिन महाराज की आज्ञा से कुमारी चन्द्रभद्रा ने अपनी सखी कुण्डनी के आतिथ्य में नृत्य-पान-गोष्ठी का आयोजन किया था। उसमें महाराज दधिवाहन ने भी भाग लिया था। अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने तक पान-नृत्य-गोष्ठी होती रही। कुमारी अस्वस्थ होने के कारण जल्दी ही शयनागार में चली गई। कुण्डनी महाराज दधिवाहन का मनोरञ्जन करती रही। वह चषक पर चषक सुवासित मद्य महाराज को देती जा रही थी।

अवसर पाते ही महाराज ने दासियों और अनुचरों को वहाँ से चले जाने का संकेत किया। एकान्त होने पर महाराज ने कहा—'सुभगे कुण्डनी, तुम्हारा अनुग्रह अनमोल है।'

'देव इतना शिष्टाचार एक साधारण रत्नविक्रेता की कन्या के प्रति प्रकट करके उसे लज्जित कर रहे हैं।'

'नहीं- नहीं, कुण्डनी, तुम्हारे पिता के पास अलौकिक रत्न हैं, पर तुम सा एक भी नहीं।'

'किन्तु देव, आपके महल में एक से एक बढ़कर रत्न हैं।'

'नहीं प्रिये कुण्डनी, मुझे कहने दो। मैं तुम्हारा अधिक अनुग्रह चाहता हूँ।'

'देव की क्या आज्ञा है ?'

'कुण्डनी प्रिये, मैं जानता हूँ—तुम अभी अदत्ता हो। क्या तुम चम्पा की अधीश्वरी बनना पसन्द करोगी ?'

कुण्डनी ने हंसकर कहा—'तो देव, मुझे पट्ट राजमहिषी का कोपभाजन बनाया चाहते हैं ! लीजिए एक पात्र।'

'परन्तु अनुग्रह सहित।'

'कैसा अनुग्रह देव ?'

'इसे उच्छिष्ट कर दो प्रिये, अपने मृदुल अधरों का एक अणु रस इसमें मिला दो। प्रिये कुण्डनी, एक अणु रस।'

'यह चम्पाधिपति की मर्यादा के विपरीत है देव, चषक लीजिए। अभी मैं आपको कालनृत्य का अभिनय दिखाऊंगी।'

'तो यही सही प्रिये कुण्डनी, तुम्हारा नृत्य भी दिव्य है।'

कुण्डनी ने चषक महाराज के मुंह से लगाकर नृत्य की तैयारी की। धीरे-धीरे उसके चरणों की गति बढ़ने लगी। महाराज दधिवाहन स्वयं मृदंग बजाने लगे। कुण्डनी ने प्रत्येक सम पर महाराज के निकट चुम्बन निवेदन करना प्रारम्भ कर दिया और हर बार उस दुष्प्राप्य चुम्बन को प्राप्त न कर सकने पर चम्पाधिपति अधीर हो गए। नृत्य की गति बढ़ती गई और मृदंग का गम्भीर रव उस टूटती रात में एक उन्मत्त वातावरण उत्पन्न करने लगा। उस एकान्त रात में अनावृत सुन्दरी कुण्डनी की मनोरम देह नृत्य की अनुपम शोभा विस्तार कर रही थी और काम वेग से महाराज दधिवाहन की रक्त की गति असंयत हो गई थी। कुण्डनी ने अपनी चोली से एक छोटी सी थैली निकाली और उसमें से महानाग ने अपना फन निकालकर कुण्डनी के मुंह के साथ नृत्य करना प्रारम्भ किया। महाराज दधिवाहन एक बार भीत हुए, परन्तु मद्य के प्रभाव से वे असंयत होकर भी मृदंग बजाते रहे। उनका सारा शरीर पसीने से लतपत हो गया था। परन्तु कुण्डनी की चरणगति अब दुर्धर्ष हो रही थी। इस समय उसने अपने अधरों पर दंश लिया।

नागराज कुण्डनी के अधर चुम्बन कर शांत भाव से उसी बहुमूल्य थैली में बैठ गये। विष की ज्वाला से कुण्डनी लहराने लगी। नृत्य से थकित और दंश से विवश उसकी पुष्पाभरण भूषित सुरभित देहयष्टि धीरे-धीरे महाराज दधिवाहन के निकट, और निकट, और निकट आकर नृत्य की नूतनतम कला का विस्तार करने लगी। विलास और शृंगार का उद्दाम भाव उसके नेत्रों में आ व्यापा।

महाराज दधिवाहन ने मृदंग फेंककर कुण्डनी को आलिंगन पाश में

कस लिया और कुण्डनी फूलों के एक ढेर की भाँति महाराज दधिवाहन के ऊपर झुक गई। महाराज दधिवाहन ने ज्यों ही कुण्डनी का अधरोष्ठ चुम्बन किया, त्यों ही वह तत्काल मृत होकर पृथ्वी पर गिर गए। कुण्डनी हाँफते-हाँफते एक ओर खड़ी होकर उनके निष्प्राण शरीर को देखने लगी।

३९ : : पलायन

इसी समय एक अग्निबाण वहाँ आकर गिरा, उसमें से अति तीव्र लाल रंग का अग्नि-स्फुलिंग निकल रहा था। उससे क्षणभर ही में उस सुसज्जित कक्ष में आग लग गई। बहुमूल्य कौशेय, उपाधान, पट्ट-वासक और मणिजटित साज-सज्जाएं जलने लगीं। देखते-देखते एक,दो, तीन, फिर अनेक अग्निबाण रंगमहल के विविध स्थलों पर गिर-गिर कर आग लगाने लगे। महल धाँय-धाँय जलने लगा। अन्तःपुर में भीषण कोलाहल उठ खड़ा हुआ। मार-काट, शस्त्रों की झनकार, स्त्रियों के चीत्कार और योद्धाओं की हुंकार से दिशाएं भर गई। बहुत से सैनिक इधर-उधर दौड़ने लगे।

कुण्डनी ने महाराज दधिवाहन के पार्श्व में पड़ा खड्ग उठा लिया और एक कौशेय से कस कर अंग लपेट लिया। इसी समय रक्त से भरा खड्ग हाथ में लिए आकर सोम ने कहा—'कुण्डनी, शीघ्रता करो, एक क्षण विलम्ब करने से भी राजनन्दिनी की रक्षा नहीं हो सकेगी। तुम उन्हें लेकर गुप्त द्वार से अश्वशाला के पार्श्वभाग में जाओ, वहाँ अश्व सहित शंब है, तुम सीधे श्रावस्ती का मार्ग पकड़ना। मेरी प्रतीक्षा में रुकना नहीं, अपना कार्य पूर्ण कर मैं कहीं भी मार्ग में मिल जाउंगा।'

कुण्डनी ने एक क्षण भी विलम्ब नहीं किया। वह राजनन्दिनी के

शयन कक्ष की ओर दौड़ चली। चारों ओर धुंआ और अन्धकार भरा हुआ था। राजकुमारी अकस्मात् नींद से जाग कर इस आकस्मिक विपत्ति से त्रस्त हो शयनकक्ष के द्वार पर अपने शयन काल के असम्पूर्ण परिधान में ही विमूढ़ बनी खड़ी थी। कोई दासी, चेटी, कंचुकी या प्रहरी वहाँ न था। कुण्डनी को देख कर कुमारी दौड़ कर उससे लिपट गई। उसने कातर कण्ठ से कहा—'क्या हुआ है हला ? यह सब क्या हो रहा है ?'

'दुर्भाग्य है राजनन्दिनी ! दुर्ग पर शत्रुओं का अधिकार हो गया और वे अन्तःपुर में घुस आए हैं। महाराज दधिवाहन मारे गए। प्राण लेकर भागो राजकुमारी।'

राजकुमारी को काठ मार गया। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह जड़वत् आँखें फाड़-फाड कर कुण्डनी की ओर देखती रही।

कुण्डनी लपकती हुई भीतर गई, एक उत्तरवासक उठा लाई और उसे कुमारी के शरीर पर लपेटती हुई बोली—'साहस करो हला, अभी गुप्त द्वार तक कदाचित् शत्रु नहीं पहुँचे हैं। आओ हम भाग निकलें। अब एक क्षण का भी विलम्ब घातक होगा।'

एक प्रकार से वह उसे घसीटती हुई सी गुप्त द्वार के बाहर ले आई। बाहर आकर उसने देखा—अन्तःपुर से बड़ी-बड़ी आग की लपटें उठ रही हैं। चारों ओर योद्धा हाथ में मशालें लिए दौड़ रहे हैं। घायलों का आर्तनाद और मारकाट का घमासान बढ़ रहा था। राजकुमारी ने अश्रुपूरित नेत्रों से देखकर कुछ कहना चाहा, पर शब्द उसके होठों से नहीं निकले, होठ केवल काँप कर रह गए। उसका अंग भी बेंत के भाँति काँप रहा था। कुण्डनी ने उसे अपने ओर निकट करके, ढारस दिया। इसी समय शंब ने ओट से निकल कर अश्व उपस्थित किए।

कुण्डनी का प्रिय अश्व धूम्रकेतु और दो ऊँची रास के अश्व तैयार थे। कुमारी को कुण्डनी ने सहायता देकर धूम्रकेतु पर सवार कराया और स्वयं अश्व पर सवार होकर राजमार्ग पर आ गई। उसने कहा—'जम कर बैठना कुमारी, हमें द्रुतगति से भागना होगा।'

राजकुमारी ने शोकपूरित स्वर में कहा–'किन्तु हम जाएँगे कहाँ ?'

'जहाँ आपके मित्र हों ।'

'क्या तुम्हारे पिता हमारी रक्षा नही कर सकेंगे ?'

'कौन जाने, वे निरापद भी हैं या नहीं ।'

'किन्तु मैंने तुम्हें उनसे अपनी सुरक्षा में लिया था ।'

'यह समय इन बातों पर विचार करने का नहीं है ।'

'किन्तु तुम क्यों मेरे लिए विपत्ति में पड़ोगी सखी ?' कुमारी की आँखों से झर-झर आँसू वह चले ।

कुण्डनी ने कहा—'मैं प्राण देकर भी इस विपत्ति में तुम्हारी रक्षा करूंगी राजकुमारी ।'

'परन्तु हम निरीह अबला···?'

'क्यों, यह सेवक और मेरा वह दास ।'

'वह कहाँ है ?'

'मार्ग में मिल जायगा ? मुझे आशा है, हमारी सहायता को उसने यह सेवक भेजा है ।'

'उस पर विश्वास किया जा सकता है सखी ?'

कुमारी के प्रश्न पर कुण्डनी की आँखें भी गीली हो गईं । उसने कहा—'यह खड्ग लो कुमारी ।'

'और तुम ?'

'मेरे पास दूसरा शस्त्र है—शंख, तुम सावधानी से हमारे पीछे चलो। —तो कुमारी, क्यों न हम श्रावस्ती चलें ?'

'वहीं चलो सखी । वहाँ भगवान् महावीर हैं । वे मेरे गुरु हैं ।'

'तब तो बहुत अच्छा है ।' और उसने अश्व को संकेत किया । असील जानवर हवा में तैरने लगे । उनका धूम्रकेतु समुद्र पार के द्वीप से उपानय में आया हरे तोते के रङ्ग का अद्भुत अश्व था । उस जाति के अश्व बहुत दुर्लभ थे । उसकी गति विद्युत् के समान और देह की दृढ़ता वज्र के समान थी । तीनों अश्वारोही तेजी से बढ़ते चले गए ।

दिन का प्रकाश फैल गया, देखते ही देखते सूर्योदय हो गया। उसकी सुनहरी किरणें दोनों अश्वारोहियों के थकित चेहरों पर पड़ कर उपहास सा करने लगीं। शंव ने इधर-उधर देखा। उसने देखा सामने एक पर्वत के शृङ्ग पर सोम वस्त्रखण्ड हिला-हिला कर संकेत कर रहे थे। शंव ने देखकर हर्ष से चीत्कार कर उधर ही अश्व फेंका। दोनों बालाओं ने भी उसका अनुगमन किया। चलते-चलते कुण्डनी ने कहा—'वहां मीठा पानी, बनफल या आखेट अवश्य मिलेगा।' परन्तु राजनन्दिनी बोलने की चेष्टा करके भी बोल न सकी।

४० : : चम्पा का पतन

दुर्ग के दक्षिण बुर्ज पर मागध तुरही बजते ही दुर्ग के सिंह-द्वार पर आघात हुआ। प्रहरी मद्य से अचेत थे। एक-दो कुछ सचेत थे, उन्होंने कहा—'कौन है ?'

बाहुक ने कहा—'पिशाच होगा। एक चषक मद्य माँगने आया है। वह मैं नहीं दूंगा। तुम पियो मित्र !' उसने भाण्ड प्रहरी के मुंह से लगा दिया। परन्तु भाण्ड में एक बूंद भी मद्य न था। प्रहरी को भी पूरा होश न था। उसने भाण्ड में हाथ डाल कर कहा—'तुम गधे हो सामन्त ! मद्य यहाँ कहाँ है ?'

'क्या मैं गधा हूँ ? ठहर पाजी, बाहुक ने उसकी गर्दन में बाँह डाल कर गला दबोच लिया। प्रहरी दम घुटने से छटपटाने लगा। इसी समय पेट के बल रेंगते आकर एक आदमी ने खड्ग उसके कलेजे में पार कर दिया। उसी क्षण तीन चार आदमी इधर-उधर से निकल आए और उन्होंने प्रहरी के वस्त्रों से चाभी निकाल कर द्वार खोल दिया। जो एक

दो प्रहरी अब भी होश में थे, उन्होंने कुछ बोलने की चेष्टा की, पर वे तुरन्त मार डाले गए। फाटक खुल गया और सेनापति धड़धड़ाते हुए दुर्ग में घुस गए। उन्होंने दौड़ कर दक्षिण बुर्ज पर मागध झंडा फहरा दिया। क्षण भर ही में मार काट मच गई। परन्तु ज्यों ही महाराज दधिवाहन का मृत शरीर लाकर चौगान में डाला गया, चम्पा के सैनिकों के छक्के छूट गए। इसी समय पूर्व में सफेदी दिखाई दी और उसी के साथ चम्पा में विद्रोह के लक्षण देख पड़ने लगे। सूर्योदय होते ही विद्रोहाग्नि फूट पड़ी। सैकड़ों नागरिक जलती मशालें और खड्ग लेकर नगर में आग लगाने और लोगों को मारने काटने लगे। हाट, वीथी और जनपद सभी बन्द हो गए। चम्पा जय हो गया। एक पहर दिन व्यतीत होते-होते दुर्ग और नगर सर्वत्र मगध-सेनापति चन्डभद्रिक का अधिकार हो गया। उन्होंने एक ढिंढोरा पिटवा कर प्रजा को अभय दिया, तथा नई व्यवस्था कायम की। अब उन्हें सोम का स्मरण हुआ। उन्होंने सोमप्रभ को बहुत ढूंढ़ा, परन्तु सोमप्रभ का उन्हें पता नहीं लगा। कुमारी चन्द्रभद्रा का भी कोई पता नहीं लगा। राजकुल की अन्य स्त्रियों का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया। महाराज दधिवाहन का मर्यादा के अनुरूप अग्नि-संस्कार किया गया।

४१ : : वादरायण-व्यास

वैशाली के ठीक ईशान कोण पर लगभग वैशाली और राजगृह के अर्ध मार्ग में—पाटलीपुत्र से थोड़ा पूर्व की ओर हट कर गंगा के उपकूल पर एक बहुत प्राचीन मठ था। वह मठ वादरायण मठ के नाम से प्रसिद्ध था। उस मठ की बड़ी भारी प्रतिष्ठा थी। देशदेशांतर के सम्राटों और सामन्तों

से समय-समय पर अर्पित ग्राम, सुवर्ण और गौ तथा भू-सम्पत्ति से मठ बहुत सम्पन्न था। राजा और रंक सभी जनों का वहां नित्य आवागमन बना रहता था।

मठ की ख्याति और उसकी प्रतिष्ठा जो दिग्दिगंत में फैल रही थी, उसका कारण भगवान् बादरायण-व्यास थे, जो इस मठ के गुरुपद थे। उनके चरणों में बैठ कर देशदेशांतर के बटुक विविध विद्याओं का अध्ययन करते और ज्ञान-सम्पदा से परिपूर्ण होकर अपने देशों को लौटते थे।

भगवान् बादरायण कब से मठ के अधीश्वर हैं, यह कोई नहीं जानता न कोई यही कह सकता है कि उनकी आयु कितनी है। वे आज जैसे है वैसा ही लोग न जाने कब से उन्हें देखते आ रहे है।

भगवान् बादरायण धवल कौशेय धारण करते है। उनके सिर और दाढ़ी के बाल अति शुभ्र चाँदी के समान है, जो उनके गौरवर्ण—तेजस्वी मुखमण्डल पर अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होते है। उनकी सम्पूर्ण दन्तपंक्ति बहुमूल्य मुक्तापंक्ति के समान शोभित है, उनका अनवरत मृदुमन्द हास्य शरद् कौमुदी से भी शीतल और तृप्तिकारक है। वे बहुत कम शयन करते है, अपरान्ह में केवल एक बार हविष्यान्न आहार करते है। आज तक किसी ने उन्हें क्रुद्ध होते नहीं देखा। उनका पाण्डित्य अगाध है और उनकी विचारधारा अमन्दिग्ध। उनकी दार्शनिक सत्ता लोकोत्तर है। वे महा-सिद्ध त्रिकालदर्शी महापुरुष विख्यात है।

उनका कद लम्बा, देह दुर्बल किन्तु बलिष्ठ है। नासिका उन्नत, ललाट प्रशस्त, नेत्र मांसल, स्निग्ध और महातेजवान् है। उनमें भूतदया, दिव्य ज्ञान एवं समदर्शीपन की स्निग्ध धारा निरन्तर बहती रहती है।

कोई उन्हें भगवान् बादरायण कहते है, कोई केवल भगवान् कहते हैं, किन्तु बहुत जन उन्हें कोई सम्बोधन ही नहीं करते। वे उन्हें देख कर ससंभ्रम पीछे हट जाते है, अथवा पृथ्वी में गिर कर प्रणिपात करते है।

वे दोपहर रात रहते शय्या त्याग देते है और गर्भगृह में जाकर समाधिस्थ विराजते है। फिर उषा का उदय होने पर मठ के अन्तराल में

आकर प्रहर दिन चढ़े तक बटुकों को ज्ञान दान देते हैं। इसके बाद व्याघ्रचर्म पर बैठकर सर्वसाधारण को दर्शन देते तथा उनसे वार्तालाप करते हैं। मध्यान्ह होने पर वे आवश्यक मठ-प्रबन्ध-सम्बन्धी व्यवस्थाओं की आज्ञाएं प्रचारित कराते और फिर अन्तरायण में जा विराजते हैं उस काल वे शास्त्रलेखन अथवा अदृष्ट-गणना करते हैं। अथवा किसी महत्व-पूर्ण विषय पर विचार गवेषणा करते हैं।

भगवान् बादरायण के इस नित्यविधान में कभी किसी ने व्यतिक्रम नहीं देखा। न कभी वे रोगी, पीड़ित, थकित या क्लान्त देखे गए। ऐसे थे भगवान् बादरायण-व्यास थे, जिनकी ख्याति उन दिनों दिग्दिगन्त में फैली थी।

भादों का सन्ध्याकाल था। आकाश पर काली घटाएं छा रही थीं। गंगा का विस्तार सागर के जैसा हो रहा था, उस पार दूर तक जल ही जल देख पड़ता था। लतागुल्म सब जलमग्न हो गए। वृक्ष आधे जल में डूबे दूर से लतागुल्म जैसे प्रतीत होते थे। अभी दिन का थोड़ा प्रकाश शेष था।

बटुकगण सान्ध्य अग्निहोत्र कर चुके थे। भगवान् बादरायण मठ के पश्चिम ओर के प्रान्त भाग में एक ऊंचे शिलाखण्ड पर खड़े भागीरथी गंगा का यह विस्तार देख रहे थे। उन्हीं के निकट एक ब्रह्मचारी युवा विनम्र भाव से खड़ा था। ब्रह्मचारी की आयु तीस-बत्तीस वर्ष की थी। उसकी छोटी सी काली दाढ़ी ने उसके तेजस्वी मुख की दीप्ति को और भी बढ़ा दिया था। उसका बलिष्ठ अङ्ग कह रहा था, कि वह ब्रह्मचारी असाधारण शक्तिसम्पन्न है।

भगवान् बादरायण बोले—'सौम्य मधु, गंगा का विस्तार तो बढ़ता ही जाता है। उस ओर के जो ग्राम डूब गये थे, वहां उपयुक्त सहायता भेज दी गई है न ?'

ब्रह्मचारी ने विनयावनत होकर कहा—'भगवान् के आदेश के अनुसार दो सौ नावें कल ही भेज दी गई थीं। वे अपना कार्य कर रही हैं।

औषध और अन्न-वितरण भी हो रहा है और पीड़ित क्षेत्रों के स्त्री, बच्चों एवं वृद्धों को सर्वप्रथम उठा-उठा कर रक्षा-क्षेत्रों में पहुँचाया भी जा रहा है।'

'किन्तु क्या यह पर्याप्त है मधु ?'

'पर्याप्त तो नहीं है भगवन्, परन्तु अभी और अधिक व्यवस्था नहीं हो सकी। हमारी बहुत-सी नौकाएँ वह भी तो गई हैं ? फिर माझियों की कठिनाई है। प्रातःकाल और सौ नावें जा रही हैं।'

'यह अच्छा है, परन्तु चिकित्सा और खाद्य-सामग्री क्या प्रचुर मात्रा में है ?'

'जी हां भगवन्, परन्तु चिकित्सकों की कमी है। फिर भी रक्षण क्षेत्र में सर्वोत्तम चिकित्सा की व्यवस्था है।'

'व्यवस्था तो विपद् क्षेत्रों में भी होनी चाहिए मधु। ये सभी ग्राम-वासी अति निरीह हैं और इस बार तो उनका घर-बार, धान्य सभी बह गया। क्यों न ?'

भगवान् बादरायण की वाणी करुणा से आर्द्र हो गई।

ब्रह्मचारी ने कहा—

'सत्य है, परन्तु भगवन्, वैशाली और राजगृह से चिकित्सक मंगाए गए हैं, उनके आने पर सब व्यवस्था ठीक हो जायगी और बाढ़ का जल घटते ही मठ की ओर से उनके घर-द्वार निर्माण करने एवं बीज देने की यथावत् व्यवस्था हो जायगी।'

'ऐसा ही होना चाहिए। परन्तु क्या गणपति को तुमने सहायता के लिए नहीं लिखा ? ये ग्राम तो वज्जीगण ही के हैं ?'

'जी हाँ भगवन्, लिख दिया है। आशा है, उपयुक्त सहायता शीघ्र मिल जायगी।'

भगवान् बादरायण हर-हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे। फिर कुछ देर बाद स्निग्ध स्वर में कहा—'ठीक है मधु, सान्ध्य कृत्य का समय हो गया। चलो अब भीतर चलें। परन्तु मधु, आज एक

सम्भ्रान्त अतिथि आने वाले हैं। वे गंगा की राह आएँगे या राजमार्ग से, यह नहीं कहा जा सकता। दोनों ही मार्ग अगम्य हैं, परन्तु वे आएंगे अवश्य, तुम उनकी प्रतीक्षा करना और उनके विश्राम आदि की यत्न से सम्यक व्यवस्था कर देना, तथा उषाकाल, में उन्हें मेरे पास गर्भगृह में ले आना।'

वटुक ने मस्तक नवाकर आदेश ग्रहण किया। फिर आगे-आगे भगवान् वादरायण व्यास और उनके पीछे वह ब्रह्मचारी दोनों मठ की ओर चल दिए।

•

४२ : : सम्मान्य अतिथि

सान्ध्य-कृत्य समाप्त हुआ। भगवान् वादरायण गर्भगृह में चले गए। ब्रह्मचारी उन्हें गर्भगृह के द्वार तक पहुँचाकर पादवन्दन करके प्राँगण में लौट आया। अन्य वटुक भी अपने-अपने स्थानों को लौट गए। पार्षदगण इधर-उधर दौड़-धूप करके अपना-अपना काम करने लगे। अनावश्यक दीप बुझा दिए गए। अपना कार्य समाप्त करके पार्षदगण भी विश्राम के लिए चले गए। केवल वही तरुण ब्रह्मचारी प्राँगण में रह गया। पार्षदों को उसने कुछ आवश्यक आदेश दिए। गुरुपद के आदेशों की पूर्ति भी उसने यथासाध्य की। फिर वह एक मर्मर स्तम्भ पर पीठ का सहारा ले एक व्याघ्र-चर्म पर चुपचाप बैठ कर कुछ चिन्तन करने लगा।

आकाश में बादल घिर रहे थे। उनके बीच कभी-कभी चतुर्थी का क्षीणकाय चन्द्र देख पड़ता था, जिससे रात्रि का अन्धकार थोड़ा प्रतिभासित हो उठता था। एकाध तारे भी कभी-कभी दृष्टिगोचर हो जाते थे। ब्रह्मचारी कभी आँखे बन्द किए और कभी खोलकर देख लेता था।

उसका ध्यान गुरुपद की आज्ञा पर था। कौन वह सम्मान्य अतिथि आज रात को आने वाले हैं, जिसके लिए गुरुपद ने इतने यत्न से आदेश दिया है। उसी की अभ्यर्थना के लिए उसने हठपूर्वक रात्रि-जागरण करने का निश्चय कर लिया।

दो दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर उस नीरव रात्रि में उसे प्रतीत हुआ—जैसे सुदूर पर्वत-उपत्यका से कुछ अस्फुट शब्द रुक-रुक कर आ रहा है। थोड़ी ही देर में वह सावधान होकर सुनने लगा। वह समझ गया कि अश्वपद की ध्वनि है। अश्व एक नहीं, अधिक हैं। कुछ ही देर में मठ के पीछे के प्रान्त द्वार पर प्राचीर के निकट कुछ आहट प्रतीत हुई। वह समझ गया, कुछ अश्वारोही उधर आए हैं। वह झटपट अपने उत्तरवासक को कमर में लपेटकर मठ के प्रान्त द्वार पर गया। अन्धेरे में पहिले कुछ नहीं दीखा। फिर देखा, कोई दस हाथ के अन्तर पर एक मनुष्य की छाया है, पार्श्व में दो अश्व हैं।

उसने दोनों हाथ ऊँचे करके कहा—'भन्ते अतिथि, आपका मठ में स्वागत है। मैं भगवान् बादरायण के आदेश से आपके स्वागतार्थ प्रतीक्षा कर रहा था।'

ब्रह्मचारी के वचन सुन कर छाया-मूर्ति अन्धकार से आगे बढ़ी। मन्दिर के क्षीण आलोक में ब्रह्मचारी ने देखा—वह एक वृद्ध भट है। उसके शस्त्र तारों के क्षीण प्रकाश में चमक रहे थे। वृद्ध ने मस्तक झुकाकर ब्रह्मचारी को अभिवादन करके कहा—

'हमें क्षमा करें भन्ते, मार्ग में बहुत वर्षा होने से हमें अति विलम्ब हो गया और असमय में आपको कष्ट देना पड़ा।'

'कोई हानि नहीं, भगवान् ने मुझे प्रथम ही आदेश दे दिया था।'

परन्तु इतना कह कर भी ब्रह्मचारी कुछ असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा, यह साधारण वृद्ध भट ही क्या वह सम्मान्य व्यक्ति है? जिसने उसे 'भन्ते' कह कर और अभिवादन करके अपनी लघुता प्रकट की है! वह ध्यान से आगन्तुक को देखने लगा। आगन्तुक ने कहा—

'भगवान् वादरायण त्रिकालदर्शी हैं।' और तब पीछे खड़ी दूसरी छाया-मूर्ति की ओर देखा।

ब्रह्मचारी ने उसे अभी नहीं देखा था। वह छाया-मूर्ति भी आगे बढ़ी। ब्रह्मचारी उसे उस धूमिल प्रकाश में देखकर स्तम्भित हो गया। वह स्वप्न में भी नहीं सोच सका था कि जिस सम्मान्य अतिथि की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह कोई महिला है। उसने एक ही दृष्टि से देखा, महिला असाधारण सुन्दरी और गौरवशालिनी है। उसने आगे बढ़कर युवा ब्रह्मचारी से मधुर शब्दों में कहा—'भन्ते ब्रह्मचारिन् हम लोग बहुत थक गए हैं, वस्त्र भी सब भीग गए हैं, अश्वों को भी दाना-पानी नहीं मिला। कष्ट करके अभी हमारे विश्राम की व्यवस्था कर दीजिए, प्रभात में हम भगवान् वादरायण की पादवन्दना करेंगे। असुविधा के लिए क्षमा कीजिए।'

तरुण ब्रह्मचारी को जब गुरुपद ने आग्रहपूर्वक एक सम्भ्रान्त अतिथि के आने का संकेत किया है, तब वह अवश्य ही कोई महामहिम अतिथि होगा, ऐसा समझकर युवक विनय से बोला—'देवी, इधर से पधारें।'

आगे-आगे ब्रह्मचारी और उसके पीछे अतिथि पेचीले मार्गों से घूमते हुए मठ के भीतर प्राँगण में आए। वृद्ध भट ने संकोच से कहा—

'किन्तु अश्व ?'

'उनकी व्यवस्था हो जायगी, आप चिन्ता न करें।'

फिर कोई नहीं बोला। ब्रह्मचारी ने एक सुसज्जित कक्ष में अतिथियों को ला खड़ा किया। कक्ष में विश्राम और सुख के सब राजसी साधनों को देख कर अतिथि स्तम्भित रह गए। महिला ने मृदु मन्द हास्य से कहा— .

'भगवान् वादरायण का ऐसा वैभव है ?'

ब्रह्मचारी ने संकुचित होकर कहा—'समुचित व्यवस्था नहीं कर सका। गुरुपद ने सन्ध्या समय ही आदेश दिया था। आपको कोई आवश्यकता हो तो कहिए।'

'नहीं, नहीं, कुछ नहीं, हमें केवल विश्राम ही की आवश्यकता है।'

'तो देवी सुख से विश्राम करें, थोड़ा गर्म दूध और हविष्यान्न मैं अभी भिजवाता हूँ।'

'साधु ब्रह्मचारी। किन्तु भगवान् वादरायण को हमारे आगमन की सूचना होनी आवश्यक है।'

'उसकी आवश्यकता नहीं, भगवान् का आदेश है, कल ऊषाकाल में गुरुपद के आपको दर्शन होंगे। मैं स्वयं आपको गर्भगृह में ले जाऊँगा।'

'जैसी भगवान् वादरायण की इच्छा तो। अब हम विश्राम करेंगे।'

ब्रह्मचारी विनय से मस्तक झुका कर मठ के बाहरी प्रांगण की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हुआ। मठ के बाहरी प्राँगण में सन्नाटा था। वह प्राँगण को पार करता हुआ विश्राम के लिए अपनी कुटिया की ओर मठ के उत्तर प्रान्त मे जा रहा था। मठ के उत्तर द्वार की पीठिका के निकट एक एकान्त स्थान पर उसकी कुटिया थी। वहाँ जाने के लिए उसे विस्तृत सम्पूर्ण प्राँगण, अन्तर्भूमि और बाहरी विस्तृत भू-भाग पार करना पड़ा। अभी केवल दो स्थूल दीप बाहरी दीपाधारों में जल रहे थे, उन्ही के प्रकाश में उसने देखा, उत्तरद्वार के सम्मुख बड़ी पौर के निकट एक मनुष्य-मूर्ति दीपस्तम्भ के नीचे खड़ी है। प्रथम उसे भ्रम हुआ, फिर निश्चय होने पर उसने उसके तनिक निकट जाकर पुकारा—'कौन है ?'

उत्तर संक्षिप्त मिला—

'अतिथि।'

ब्रह्मचारी ने बिल्कुल निकट जाकर देखा। अतिथि असाधारण है। वह एक दीर्घकाय बलिष्ठ एवं गौर वर्ण पुरुष है। उसकी मुखाकृति अति गम्भीर, आकर्षक और प्रभावशाली है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से शक्ति का स्रोत बह रहा है। उसके वस्त्र बहुमूल्य हैं। उष्णीष की मणि उस अन्धकार में भी शुक्र नक्षत्र की भाँति चमक रही है। कमर में एक विशाल खड्ग है और हाथ में एक भारी बर्छा। खड्ग पर मणि-माणिक्य जड़े हैं, जो उस अन्धकार में भी चमक रहे है। वह थकित भाव से

अपने बर्छे का सहारा लिए खड़ा है ।

देखकर ब्रह्मचारी दो कदम पीछे हट गया। फिर ससम्भ्रम आगे बढ़ कर उसने कहा—'भन्ते, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'

'मुझे रात्रि व्यतीत करने को थोड़ा स्थान चाहिए और यदि थोड़ा गर्म दूध मिल जाय तो अत्युत्तम है ।'

ब्रह्मचारी कुछ असमंजस में पड़ कर बोला, 'किन्तु इस समय उपयुक्त .....'

'नहीं, नहीं, आयुष्मन्, शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं, भगवान् बादरायण के पुनीत स्थान में सब उपयुक्त है ।'

'तब आप आइये मेरी कुटी में ।'

और बातचीत नहीं हुई । कुटी में आकर ब्रह्मचारी ने दीप जलाया। इस बार उसने फिर अतिथि की ओर देखा, अपनी क्षुद्र एवं दरिद्र कुटिया में इस अतिथि को लाने के कारण वह संकुचित हो गया ।

कुठिया छोटी ही थी। उसमें बीच में एक काष्ठ-फलक पर कृष्णाजिन बिछा था। एक भद्रपीठ पर जल का पात्र, थोड़ी पुस्तकें और एक-दो आवश्यक वस्तुएँ ही वहाँ थीं। हाँ, प्रकुण्ड्य पर दो उत्तम धनुष, एक विशाल बर्छा, तथा कई उत्कृष्ट खड्ग लटक रहे थे । अतिथि क्षणभर में ही दृष्टि घुमाकर सारी कुटिया और वहाँ की सामग्री को देख डाला। फिर हँसकर कहा—'अच्छा, तो यह तुम्हारी ही कुटी है, आयुष्मन् ?'

'जी हाँ भन्ते'

'और ये पुस्तकें कृष्णाजिन ?'

'सब मेरे ही उपयोग की है ।'

'बहुत ठीक। परन्तु ये शस्त्रास्त्र ?' उन्होंने हठात् एक धनुष को दीवार से खींचकर क्षण भर ही में उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी ।

तरुण ने अतिथि के असाधारण सामर्थ्य और हस्तलाघव से चमत्कृत होकर कहा—'कभी-कभी गुरुपद मुझे अभ्यास कराते हैं ।'

'साधु आयुष्मन्। इसकी कभी आवश्यकता पड़ सकती है ।' उन्होंने

रहस्यपूर्ण हास्य होठों में लाकर धनुष को दीवार पर टाँग दिया। 'तो मैं इस कृष्णाजिन पर विश्राम करूँगा, किन्तु तुम ?'

'मेरे लिए बहुत व्यवस्था है भन्ते, इस पात्र में दूध है और सूखा हुआ कौशेय प्रावार और कौजव खूंटी पर है।'

'ठीक है आयुष्मन्, किन्तु तुम्हारा नाम क्या है ?'

'माधव, भन्ते, किन्तु गुरुपद मुझे मधु कहते है।'

'तो मैं भी यही कहूँगा। मधु आयुष्मन्, अब मै भी विश्राम करूंगा।'

'क्या भगवत्पाद में निवेदन करना होगा ?'

'नहीं नहीं, प्रभात में देखा जायगा।'

बटुक क्षणभर कुछ सोचकर चला गया। वह सोच रहा था, यह अधिकारपूर्ण स्वर से बात करने वाला तेजस्वी अतिथि कौन है ? और वह असाधारण महिला ? आज दो-दो महार्घ अतिथि मठ में आये हैं, परन्तु गुरुपद ने तो एक ही का संकेत किया था। वह संकेत किस के प्रति था ?'

बहुत देर तक बटुक विचार करता रहा। फिर वह अलिन्द के एक स्तम्भ का ढासना लगाकर सो गया।

४३ : : गर्भ-गृह में

गर्भगृह में माधव ब्रह्मचारी के साथ हठात् अम्बपाली को आते देख भगवान् बादरायण व्यास ने आश्चर्यमुद्रा से कहा—

'अरे, देवी अम्बपाली ?'

माधव ब्रह्मचारी ने ज्यों ही वह अतिश्रुत नाम सुना, वह अकचका कर अम्बपाली की ओर ताकता रह गया।

अम्बपाली ने पृथ्वी पर गिर कर प्रणिपात किया। भगवान् बाद-

रायण ने स्वस्ति कहकर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, जनपदकल्याणी अम्बपाली, कहो, तुम्हारा यह अकस्मात् आगमन क्यों ?'

'अविनय क्षमा हो, मैं प्रथम से विना ही आदेश पाए चली आई। किन्तु सर्वदर्शी भगवत्पाद ने इस अकिञ्चन के विश्राम आतिथ्य की जो असाधारण व्यवस्था की, उससे मैं अति कृतार्थ हुई।'

'किन्तु-किन्तु !·····' भगवान् वादरायण ने तरुण वटुक की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

ब्रह्मचारी ने अटकते हुए कहा—'भगवत्पाद का आदेश यथाशक्ति पालन किया गया।'

'क्या रात्रि में और कोई अतिथि नहीं आए ?'

माधव ने सावधान मुद्रा से कहा—'एक राजवर्गी सामन्त भी है।' इसी समय एक छाया ने गर्भगृह में प्रवेश किया। उसे देखकर भगवान् वादरायण कुछ असंयत हुए। उन्होंने दोनों हाथ उठा कर कहा—

'मगध-सम्राट् की जय हो।'

तब तक मगध-सम्राट् का मस्तक भगवान् वादरायण के चरणों में झुक गया।

सम्राट् का नाम सुनते ही माधव स्तम्भित हो गया। वह अपनी अविनय पर विचार करने लगा। भगवत्पाद के संकेत से उसने आसन की व्यवस्था की।

स्वस्थ होकर बैठने के बाद सम्राट् ने हँस कर कहा—'भगवत्पाद का आशीर्वाद विलम्ब से मिला। प्रसेनजित् ने मुझे करारी हार दी है, अभियान के समय मैं भगवत्पाद के दर्शन नहीं कर सका। बार्षभि विदूडभ ने मुझे डुबोया। उसी ने लिखा था कि श्रावस्ती पर अभियान का यही समय है, बूढ़े कामुक महाराज प्रसेनजित् अब कुछ न कर सकेंगे, वे कौशाम्बीपति उदयन से उलझे हुए हैं और सेनापति कारायण से मिलकर मैं सम्पूर्ण सेना में विद्रोह कर दूंगा।'

'और सम्राट् उसी के बल पर श्रावस्ती पर चढ़ दौड़े।' भगवान्

वादरायण ने मन्दस्मित करके कहा । सम्राट् ने लज्जा से सिर झुका लिया । भगवान् वादरायण फिर बोले—

'बन्धुल मल्ल और उसके बारह परिजनों के विक्रम का विचार नहीं किया ?'

'आर्य वर्षकार ने आपत्ति की थी, वे पूरी शक्ति चम्पा-विजय में लगा कर तब इधर ध्यान देने के पक्ष में थे ।'

कुछ देर चुप रह कर भगवान् वादरायण ने कहा—

'आप आए कब ?'

'मध्य रात्रि के बाद । मैं अश्व पर निकला था, पर राह में वह मर गया । तब नौका पर चला । एक स्थल पर नौका उलट गई । तब मैं तैर कर मध्य रात्रि में यहाँ पहुँचा । आयुष्मान् मधु का मैंने रात आतिथ्य-ग्रहण किया और उसी की कुटिया में रात व्यतीत की ।'

भगवान् वादरायण ने प्रश्नसूचक दृष्टि से माधव की ओर देखा । मधु ने लज्जित होकर कहा—'अविनय क्षमा हो, मैं सम्राट् को पहचान न सका । गुरुपद का आदेश कदाचित्···' वह अम्बपाली की ओर देखकर चुप हो गया ।

अम्बपाली की ओर अभी तक सम्राट् की दृष्टि नहीं गई थी । अब उन्होंने भी इधर देखा । धूत-दीप के मन्द पीत प्रकाश में अम्बपाली उन्हें एक सजीव चम्पक पुष्प-गुच्छ सी दीख पड़ी ।

इसी समय भगवान् वादरायण खिलखिला कर हंस पड़े । दोनों ने चकित होकर उनकी ओर देखा । उन्होंने कहा—

'खूब हुआ, सम्राट् के लिए जो व्यवस्था की गई थी, उसका देवी अम्बपाली ने उपयोग किया । फलतः सम्राट् को माधव की कुटिया के काष्ठफलक पर रात्रि व्यतीत करनी पड़ी ।'

अम्बपाली ने आगे बढ़ और करबद्ध हो सम्राट् का अभिवादन किया । फिर मधुर कण्ठ से कहा—'सम्राट् की जय हो, मुझसे अनजानते ही यह अपराध हो गया ।'

सम्राट् ने हंसकर कहा—'आप्यायित हुआ। यह जानकर, कि जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली ने मेरे लिए नियोजित कक्ष में शयन-सुख उठाया, हर्षित हुआ।'

'अनुगृहीत हुई।'

'भला एक अनुग्रह तो स्वीकार किया देवी अम्बपाली ने। अब मुझे प्रसेनजित् से पराजित होने का क्षोभ नहीं है।' सम्राट् ने हंसकर दोनों हाथ फैलाये।

भगवान् वादरायण ने हंसकर कहा—

'लाभ है, लाभ है, सुश्री अम्बपाली, तो मैं आज रात्रि में तुमसे वार्तालाप करूंगा।'

'जैसी आज्ञा भगवन्!' उसने प्रथम भगवान् वादरायण को और फिर मगध-सम्राट् को सिर झुका कर अभिवादन किया और कक्ष से चली गई।

एकान्त होने पर भगवान् वादरायण ने कहा—

'तो आपकी महत्वाकांक्षा ने वर्षकार की बात पर विचार नहीं करने दिया?'

'इसी से तो भगवन्, करारी हार खाई, परन्तु·····।'

'वैशाली में ऐसा अवसर न आने पाएगा, क्यों?'

'भगवत्पाद जब हृद्गत भाव से अवगत है तो मैं आशीर्वाद की आशा करता हूँ।'

'सम्राट् को उसकी क्या आवश्यकता है, विजय के लिए उनकी सेना और कूटनीति यथेष्ट है।'

'किन्तु यह तो भगवत्पाद का कोप-वाक्य है। भगवान् प्रसन्न हों।'

'भगवान् वादरायण ने मन्द हास करके कहा—

'नहीं-नहीं सम्राट्, कोप नहीं। परन्तु सम्राटों और विरक्तों का दृष्टिकोण सदा ही पृथक् रहता है।'

'परन्तु भगवन्, जहाँ जनपद-हित और व्यवस्था का प्रश्न है, वहाँ सम्राट् और विरक्त एक ही मत पर रहेंगे।'

'फिर भी सम्राट्, विरक्त सदैव कर्त्तव्य पर विचार करेगा और सम्राट् अधिकारों पर। ये ही अधिकार युद्ध, रक्तपात और अशांति की जड़ हैं, यद्यपि वे सदैव जनपद-हित और व्यवस्था के लिए किए जाते है।'

'अविनय क्षमा हो भगवन्, इस युद्ध, रक्तपात और अशांति में भी एक लोकोत्तर कल्याण-भावना है। भगवान् भलीभांति जानते हैं कि छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण परस्पर लडते रहते है, साम्राज्य ही उन्हें शांत और समृद्ध बनाता है। साम्राज्य में राष्ट्र का बल है, साम्राज्य जनपद की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है।'

भगवत्पाद हँस दिए। उन्होंने कहा—'इसीसे सम्राट् छोटे से वैशाली के गणतन्त्र को मगध-साम्राज्य में मिलाना चाहते हैं ?'

सम्राट् ने कुछ लज्जित हो कर कहा—'भगवन् स्वाधीनता सर्वत्र ही अच्छी वस्तु नहीं है, यह दासता की ध्वनि है और इसके मूल में आपाद अशांति, अव्यवस्था और उत्क्रान्ति है।'

भगवत् ने किंचित् हास्य कर कहा—'तो कौशाम्बीपति उदयन ने श्रावस्ती-अभियान में आपको सहायता नहीं दी ?'

'यही तो हुआ भगवन्, विदूडभ ने यही तो कहा था कि कौशाम्बी-पति ससैन्य सीमाप्रांत पर सन्नद्ध है, ज्यों ही मगध-सैन्य का आक्रमण होगा, वे उस ओर से घुस पड़ेंगे।'

'यह अभिसन्धि कदाचित् बन्धुल मल्ल ने नहीं पूरी होने दी ?'

'नहीं भगवन् आर्य यौगन्धरायण ने उदयन को आक्रमण न करके हमारे युद्ध का परिणाम देखने की सम्मति दी। यौगन्धरायण मृत मांस खाना चाहता था।'

भगवन् वादरायण जोर से हंस दिए ! सम्राट् भी हंसे।

'मैं भगवत्पाद के हास्य का कारण समझ गया। कदाचित् कौशाम्बी-पति यौगन्धरायण की सम्मति अमान्य करते, पर गान्धारनन्दिनी कलिंग-सेना का अनुरोध न टाल सके। देवी कलिंगसेना ही के लिए उदयन ने कोशल पर आक्रमण किया था, परन्तु कलिंगसेना ने ही जब यह संदेश

भेजा कि मैंने कोशलेश को आत्म-समर्पण कर दिया है, कौशाम्बीपति को मेरे लिए अभियान धर्मसम्मत नहीं है। तब कौशाम्बीपति निरुपाय हो युद्ध-विरत हो गए।'

भगवान् वादरायण ने कहा—'तो सम्राट् अब नित्यकर्म से निवृत हो विश्राम करें। अभी और बातें फिर होंगी।' वे उठ खड़े हुए। सम्राट् भी उठे। भगवान् ने कहा—'मधु, सम्राट् के लिए·····।'

सम्राट् ने बाधा देकर कहा—'नहीं नहीं, भगवन् मधु की कुटिया मुझे बहुत प्रिय है और मधु उससे भी अधिक।'

'कदाचित् इसलिए कि वह साधु कम और सैनिक अधिक है।'

'भगवन्, मुझे मधु जैसे सैनिकों की बड़ी आवश्यकता है।'

'तो सम्राट् जैसे प्रसन्न हों।'

तीनों गर्भ-गृह से बाहर निकले।

४४ : : भारी सौदा

अम्बपाली ने अपने कक्ष में सम्राट् को आमन्त्रित किया। सम्राट् के आने पर उनका अर्घ्य-पाद्य से सत्कार करके अम्बपाली ने उन्हें उच्च पीठ पर बिठा कर कहा—'तो क्या मैं आशा करूं कि सम्राट् ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ?'

'कौन सा अपराध ? पहले अभियोग उपस्थित होना चाहिए।'

अम्बपाली ने मन्द स्मित करके कहा—

'गुरुतर अपराध सम्राट्, मैंने सम्राट् के लिए व्यवस्थित कक्ष और अभ्यर्थना का अपहरण जो किया।'

'यह अपराध तो बहुत ही प्रिय और सुखद है देवी अम्बपाली। मैं

चाहता हूँ मेरे जीवन के पल-पल में देवी यह अपराध करें।'

'देव, क्या ऐसी ही भावुकता से न्याय-विचार करते है ?'

'यदि अभियुक्त कोमल कविकल्पना की सजीव प्रतिमूर्ति हो तो फिर सम्राट् क्या और वधिक क्या, उसे भावुक बनना ही पड़ेगा।'

'देव, यह तो मगध सम्राट् की वाणी नहीं है।'

'सत्य है देवी अम्बपाली, यह एक आतुर प्रणयी का आत्म-निवेदन है।'

'सम्राट् की जय हो, देव राजमहिषी के प्रति अन्याय कर रहे हैं।'

'देवी अम्बपाली प्रसन्न हों, वे सम्राट् के साथ अत्याचार कर रही हैं।'

'किस प्रकार देव ?'

'वहां खड़ी रह कर। यहां पास आकर बैठो, एक तथ्य सुनो प्रिये।'

'अम्बपाली ने एक पीठ पर बैठ कर हंसते हुए कहा—

'देव की क्या आज्ञा होती है ?'

'सुनो प्रिये, सम्राट् पर करुणा करो, इसे प्रसेनजित् से ही पराजित नहीं होना पड़ा।'

'शांतं पापं, क्या देव कोई दूसरी दुर्भाग्य कथा सुनाना चाहते हैं ?'

'कथा नहीं, तथ्य प्रिये। इस भाग्यहीन बिम्बसार को प्रणय क्षेत्र में तो जीवन के प्रारम्भ ही में हार खानी पड़ी है।'

'देव, यह क्या कह रहे हैं ?'

'वही, जो केवल देवी अम्बपाली से ही कह सकता था। प्यार की वह निधि तो प्रिये अम्बपाली, अभी तक वहीं उस पुराण हृदय में धरी है, किसी की धरोहर की भाँति और मैं आजीवन उसके धनी को ही खोजता रहा हूँ।'

'हाय, हाय और देव उसे अभी तक पाने में समर्थ नहीं हुए ?'

'आज हुआ प्रिये, सम्हाल लो वह सब अपनी पूँजी और इस शुष्क, निस्संग बिम्बसार के जलते हुए सूने जीवन में प्यार की एक बूंद टपका दो। देवी अम्बपाली प्रिये, मैं आज से नहीं, कब से तुम्हारी बाट जोह रहा हूँ। तुमने सदैव मेरी भेंट अस्वीकार करके लौटा दीं, मुझे दर्शन देना

भी नहीं स्वीकार किया। किन्तु आज प्रिये, मैंने अनायास ही तुम्हें पा लिया। ओह, प्रसेनजित् का ही यह प्रसाद मुझे मिला। आज हार कर ही मैं भाग्यशाली बना प्रिये अम्बपाली।'

सम्राट् उठ खड़े हुए और दोनों हाथ पसार कर अम्बपाली की ओर बढ़े।

अम्बपाली खड़ी होगई। उसका हास्य उड़ गया। उसने सूखे कंठ से कहा—'देव, संयत हों। मैं देव से ही सुविचार की अभिलाषा रखती हूँ।'

'मैं अन्ततः सुविचार करूंगा प्रिये।'

'तो देव, मेरा निवेदन है कि सम्राट् की यह प्रणय-याचना निष्फल है।'

'आह प्रिये, तुमने तो एकबारगी ही आशाकुसुम दलित कर दिया।'

'सुनिए महाराज, आप सम्राट् हैं और मैं वेश्या। हम दोनों ही ने प्रणय के अधिकार खो दिए हैं।'

'किन्तु प्रिये, हम मानव तो हैं, मानव के अधिकार ?'

'वे भी हमने खो दिए।'

'तो जाने दो। कृमि, कीट, पतंग, पशु जितने प्राणी हैं, क्या उनकी भांति भी हम प्रेम का आनन्द नहीं ले सकते ? दो निरीह पक्षियों की भांति भी नहीं रहे।'

'नहीं देव, नहीं। जैसे वेश्या होना मेरे लिए अभिशाप है, वैसे ही सम्राट् होना आपके लिए। प्रेम के राज्य में प्रवेश करना हम दोनों ही के लिए निषिद्ध है। हम लोग प्रेम का पुनीत प्रसाद पाने के अधिकारी ही नहीं रहे।'

'तब आओ प्रिये, हम इस अभिशाप को त्याग दें। मैं इस दूषित अभिशापित सम्राट्-पद को त्याग दूं और तुम···तुम·····।'

'इस···गर्हित वेश्या जीवन को ? सम्राट् यही कहा चाहते हैं ? परन्तु यह सम्भव नहीं है देव। जैसे मैं अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनी हूँ, उसी प्रकार आप भी अपनी इच्छा से सम्राट् नहीं बने। हम समाज के बन्धनों और कर्तव्यों के भार से दबे हैं, बच कर निकलने का कोई

मार्ग ही नहीं है।'

'कोई मार्ग ही नहीं है ? ओह, बड़ी भयानक बात है यह। प्रिये अम्बपाली, सखी, तो फिर क्या कोई आशा नहीं ?'

सम्राट् ने वेदनापूर्ण दृष्टि से अम्बपाली को देखा। वे धम से आसन पर बैठ गए।

अम्बपाली ने खोखले स्वर से नीची दृष्टि करके कहा—

'आशा क्यों नहीं है सम्राट्, बहुत आशा है।'

'ओह तो प्रिये, फिर झटपट मेरे सौभाग्य का विस्तार करो।' वे फिर उठकर और दोनों हाथ फैला कर अम्बपाली की ओर चले।

अम्बपाली ने पत्थर की मूर्ति की भाँति स्थिर बैठ कर कहा—'देव ! आप आसन पर विराजमान हों। मैं निवेदन करती हूँ। हमारी आशा यही है देव, कि मैं वेश्या हूँ और आप सम्राट् हैं।'

'यह कैसी बात प्रिये ? यही तो हमारा परम दुर्भाग्य है ?'

'और यही सौभाग्य भी देव।'

'सौभाग्य कैसे ?'

'दुर्भाग्य निवेदन कर चुकी कि हम प्रणय के अधिकारी नहीं हो सकते।'

'वह तो सुन चुका।'

'परन्तु हम सौदा कर सकते हैं।'

'सौदा ?'

'जी हाँ सम्राट्। मैं वेश्या हूँ, अपना शरीर बेच सकती हूँ और आप सम्राट् हैं, उसे मुंह माँगे दाम पर खरीद सकते हैं।'

सम्राट् ने उन्मत्त की भाँति अपना खड्ग कोश से खींच कर उसे अम्बपाली के पैरों के पास पृथ्वी पर रख कर कहा—'यह मैं अपना सम्पूर्ण साम्राज्य तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ प्रिये।'

अम्बपाली ने एक सूखी हंसी हंसी। उसने उठकर आदरपूर्वक खड्ग दोनों हाथों में उठा लिया, फिर उसे आँखों और मस्तक से लगा कर

कहा—'सम्राट् की जय हो, यह अधम लांछित नारी मगध साम्राज्य को लेकर क्या करेगी ?' उसने एक ठण्डी साँस लेकर खड्ग सम्राट् की कमर में बाँध दिया।

सम्राट् ने कातर वाणी से कहा—

'अब और तो कुछ मेरे पास बचा नहीं प्रिये। यह अधम शरीर है। पर इसे क्या कह कर तुम्हारी भेंट करूं ? यौवन और रूप सभी कुछ तो पुराना पड़ गया ?'

'सम्राट् का पुण्य शरीर दैवी वरदान है देव, इसी में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को एक करने की सामर्थ्य केन्द्रित है।'

'तब ?'

'देव, मेरी एक अभिलाषा है।'

'कहो प्रिये, कहो।'

'आपके औरस् से मेरे गर्भ में जो सन्तान हो, वही मगध का भावी सम्राट् हो।'

सम्राट् ने फिर खड्ग कोश से खींच कर ऊपर उठाया और उच्च स्वर से कहा—'मैं शिशुनागवंशी मगधपति बिम्बसार अपने साम्राज्य की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवी अम्बपाली के गर्भ में मेरे औरस् से जो पुत्र होगा वही मगध का भावी सम्राट् होगा।'

'हुआ महाराज।' अम्बपाली आंखों में आंसू भर कर उठी और एक सौरभमय पुष्पहार उसने सम्राट् के गले में डाल दिया और झुक कर सम्राट् के चरण छुए।

सम्राट् ने हर्षित होकर उसे उठाया और अपने कण्ठ से बहुमूल्य मुक्तामाला निकाल कर उसके गले में डाल दी और कहा—'प्रसेनजित् के लुटेरों से केवल यही बच पाई प्रिये।'

'सो वह यहां लुट गई' अम्बपाली ने हंसकर स्निग्ध स्वर में कहा।

'न, न, खूब अच्छी तरह सुरक्षित ठौर पर पहुँच गई। अब लुटने पिटने का भय ही नहीं रहा।' यह कहकर उन्होंने अम्बपाली का हाथ

पकड़ लिया। उसे आहिस्ता से छुड़ाकर अम्बपाली ने कहा—'देव प्रसन्न हों, सम्राट् की एक मर्यादा है और मगध के भावी सम्राट् की माता की भी।'

'इतनी निष्ठुर न बनो प्रिये।'

'सुनिए देव, सम्राट् को मगध के भावी सम्राट् की माता के हृदय का एक कांटा दूर करना होगा, नहीं तो आपके पुत्र को लज्जाना पड़ेगा।'

'कहो अम्बपाली, अपना अभिप्राय कहो।' सम्राट् ने आसन पर बैठ कर जलद गम्भीर स्वर में कहा।

'दुहाई सम्राट् की, लिच्छवि गणतन्त्र ने मुझे बलपूर्वक अपने धिक्कृत कानून के अनुसार वेश्या बनाया है।'

सम्राट् का मुंह लाल हो आया।

अम्बपाली ने आँखों में आंसू भर कर कहा—'देव, मेरा अपराध केवल यही था कि मैं असाधारण सुन्दरी थी। मेरा यह अभियोग है कि वैशाली गण को इसका दण्ड मिलना चाहिए।'

सम्राट् ने हाथ उठाकर कहा—'मैं प्रतीज्ञा करता हूँ कि मैं अष्टकुल के लिच्छवि गणतन्त्र का समूल नाश करूंगा।'

'·····और सप्तभूमि प्रासाद के कलुषित वातावरण में ···· 'अम्बपाली के होठ कांप गए।

सम्राट् ने कहा—'नहीं, नहीं, प्रिये, देवी अम्बपाली को मैं राजगृह के राजमहालय में ले जाकर पट्टराजमहिषी के पद पर अभिषिक्त करूंगा। प्रतिज्ञा करता हूँ।'

'अनुगृहीत हुई देव, आज मेरा स्त्री-जन्म सार्थक हुआ। अब मुझे एक निवेदन करना है।'

'कहो प्रिये, अब मैं और तुम्हारा क्या प्रिय कर सकता हूँ?'

'देव, आपकी चिरकिंकरी अम्बपाली इस समय तक विशुद्ध कुमारी है और वह आपकी आमरण प्रतीक्षा करेगी।'

'मैं कृतार्थ हुआ प्रिये, आह्लादित हुआ।'

सम्राट् उठ खड़े हुए। अम्बपाली ने उनके चरण छूए। सम्राट् ने उसके मस्तक पर हाथ रखा और कक्ष से बाहर हो गए। अम्बपाली आंखों में आँसू भरे वैसी ही खड़ी रह गई। उसके होठ काँप रहे थे।

४५ : : भविष्य-कथन

भगवान् वादरायण दीपाधार के निकट बैठे एक भूर्जपत्र पर कुछ लिख रहे थे। माधव ने भू-प्रणिपात करके देवी अम्बपाली के आगमन का संदेश दिया। दूसरे ही क्षण अम्बपाली ने साष्टांग दण्डवत् किया।

भगवान् ने हंसकर कहा—'अब कहो शुभे अम्बपाली, मैं तुम्हारा क्या प्रिय कर सकता हूँ ?'

अम्बपाली मौन रही। संकेत पाकर माधव चले गए। उनके जाने पर अम्बपाली ने कहा—'भगवान्, इस समय क्या किसी गुरुतर कार्य में संलग्न हैं ?'

'नहीं, नहीं, मैं तुम्हारी ही गणना कर रहा था।'

'इस भाग्यहीन के भाग्य में अब और क्या है ?'

'बहुत कुछ कल्याणी। तुम्हारा सौदा सफल है, तुम मगध के सम्राट् की माता होगी। किन्तु···'

अम्बपाली ने विस्मित होकर कहा—

'भगवान् सर्वदर्शी हैं, पर 'किन्तु' क्या ?'

'किन्तु साम्राज्ञी नहीं।'

अम्बपाली के होठ काँपे, पर वह बोली नहीं। भगवान् ने फिर कहा—

'और एक बात है शुभे।'

'वह क्या भगवन् ?'

'तुम वैशाली गणतन्त्र की जन हो, वैशाली का अनिष्ट न करना।'

अम्बपाली के भृकुञ्चित हुए। यह देख भगवान वादरायण हँस दिए। उन्होंने कहा—'गणतन्त्र पर तुम्हारा रोष स्वाभाविक है, उसी कानून के सम्बन्ध में न ?'

'भगवन्, उसी धिक्कृत कानून के सम्बन्ध में।'

'पर वह बात तो अब पुरानी हुई। फिर तुमने उसका मुंह माँगा शुल्क भी पाया। अब भी तुम्हारा रोष नहीं गया ?'

'नहीं भगवन्, नहीं।'

'फिर यह सौभाग्य ?'

'मगध-साम्राज्ञी न होते हुए मगध-साम्राज्य की राजमाता का लांछित हास्यास्पद पद ?' अम्बपाली ने घृणा से होठ सिकोड़े और क्रोध से उसके नथने फूल गए।'

भगवान् वादरायण विचलित नहीं हुए। वे मन्द स्मित करते अचल बैठे रहे। अम्बपाली एकटक उनकी भृकुटि में चिन्ताप्रवाह देखती रही। भगवान् ने मृदु मन्द स्वर में कहा—'केवल यही नहीं।'

'क्या और भी कुछ ?'

'बहुत कुछ।'

'वह क्या ?'

'भगवत्पाद क्षण भर गहन चिन्ता में डूब रहे, फिर जलद गम्भीर वाणी में बोले—'शुभे अम्बपाली, तुम विश्वविश्रुत साध्वी प्रसिद्ध होगी।'

'भगवन् मैं अधम वेश्या ?'

'शुभे, जिसके चरणतल की अपेक्षा मगध-साम्राज्य का चक्र भी लघु है, उसे यह आत्मप्रतारणा शोभा नहीं देती।' फिर उन्होंने भाव-गम्भीर हो दोनों हाथ उठाकर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, परन्तु तुम वैशाली की जनपद-कल्याणी हो। एक बार तुमने आत्मदान करके वैशाली को गृहयुद्ध से बचा लिया था, अब अपने तामसिक रोष में जनपद का अनिष्ट न करना। व्यक्ति से समष्टि की प्रतिष्ठा भी बड़ी है, स्वार्थ भी बड़ा है। व्यक्ति का स्वार्थ हेय है, परन्तु समष्टि का स्वार्थ उपादेय।' भग-

वत्पाद यह कहकर कुछ देर मौन रहे ! फिर बोले—'त्याग संसार में महा श्रेष्ठ है, त्याग से अरिष्ट, अनिष्ट सब टल जाते हैं। तुम जब देखो कि तुम्हारे द्वारा वैशाली का, उत्तराखण्ड के इस एकमात्र गणतन्त्र का अनिष्ट हो रहा है, तब कोई महान् त्याग करना, अनिष्ट टल जायगा। मेरा यह वचन भूलना नहीं शुभे, नहीं तो वह महासौभाग्य तुम्हें प्राप्त नहीं होगा।'

'मैं याद रखूंगी भगवन्।'

'तुम्हारा कल्याण हो भद्रे, अब तुम अपने आवास को जाओ।'

अम्बपाली बड़ी देर तक भगवान् बादरायण व्यास के चरणों में चुपचाप पृथ्वी पर पड़ी रही। फिर आंखों से आँसू बहाती हुई उठकर चल दी।

४६ : : साम्राज्य

'अब ?'

'भगवत्पाद जो आदेश दें।'

'साम्राज्यों के विधाता विचारशील मनुष्य नहीं होते सम्राट्, वे लोह-यन्त्र होते हैं। वे अपनी गति पर तब तक चले जाएंगे, जबतक वे टूटकर चूर-चूर नहीं हो जाते। उनकी राह में जो आएगा उसी का विध्वंस होगा।'

'किन्तु भगवन्, जन्म का मूल उद्देश्य निर्माण है, विध्वंस नहीं। फिर बाधाएं यदि ध्वस्त न हों तब !'

'निमाण का अतिरेक भी एक अभिशाप है सम्राट्। यदि निर्माण ही के लिए ध्वंस हो ?'

'नहीं भगवन्, आवश्यकता ही के लिए निर्माण होता है।'

'तो जनपद को सैन्यबल से आक्रान्त करने की क्या आवश्यकता है ?' निरन्तर युद्ध कितनी घृणा, संदेह और वैर बखेरते हैं।'

'परन्तु व्यवस्था भी तो स्थापित करते हैं।'

'व्यवस्था जहाँ अधिकार पर आरूढ़ होती है, वहाँ जनपद-कल्याण नहीं होता। वह व्यवस्था जनपद-कल्याण के लिए होती भी नहीं, अधिकारारूढ़ कुछ व्यक्तियों ही के लिए होती है, जिनकी आवश्यकताएँ इतनी बढ़ जाती हैं कि वे जनपद का सम्पूर्ण प्राण, धन और श्रम अपहरण करके भी भूखी और प्यासी ही बनी रहती है।'

'किन्तु भगवन्, शक्ति का विराट् संगठन सदैव जनपद का रक्षण करता है।'

'कहां ? कुरुक्षेत्र में आर्यों और संकरों की चरम शक्ति का प्रदर्शन हुआ, परन्तु शक्तिसंचय के द्वारा जनपद-कल्याण करने में वासुदेव कृष्ण कृतकृत्य नहीं हुए। कुरुक्षेत्र में केवल महाविनाश ही होकर रह गया।'

'इसमें दोष कहाँ था ?'

'आपाद दोष था। किस सदुद्देश्य से कुरुक्षेत्र में १८ अक्षोहिणी सैन्य का संघर्ष किया गया ? जनपद-कल्याण की किस भावना से पृथ्वी के लाखों तरुणों को बर्बर पशु की भाँति उत्तेजित करके एक दूसरे के हाथ से निर्दयतापूर्वक वध करा डाला गया ? पाण्डवों को राज्य का भाग मिलने के लिए जनपद का इतना धन-जन क्यों क्षय किया गया ? सम्राट्, आज आप भी वही प्रयोग कर देखिए। नई-नई सेनाएं भरती कीजिए, उनके द्वारा जनपद को लुटवाइए, उस लूट का कुछ स्वर्ण उन भाग्यहीन मूर्ख तरुण सैनिकों के पल्ले बाँध दीजिए, जो निरर्थक नरहत्या को वीरकृत्य समझते हैं। कुछ उन पुरोहित ब्राह्मणों को दीजिए, जो आपकी यशोगाथा गा-गाकर यह प्रचार करें कि आपका यह सामर्थ्य और अधिकार *दैवी हैं और यज्ञ के देवता आप पर प्रसन्न हैं। बस, शेष सम्पदा आप* जैसे चाहें भोगिए, लक्षावधि निरीह जनपद उसे सहन कर जायगा।'

भगवान् वादरायण कुछ देर दूर क्षितिज में टिमटिमाते तारे को देखते रहे, फिर उन्होंने कहा—'सम्राट्, आर्यों ने अपने पाप का फल पा लिया। उन्होंने जीवन में भूलें पर भूलें कीं, भारत की उर्वरा भूमि में आकर भी उन्होंने अपना विनाश किया। हिमालय के उस ओर से आने-वाली कुरु-पांचालों की शाखाओं से यदि उत्तर कुरु के भरतों का संघर्ष न होकर दोनों की संयुक्त जाति बनती तो कैसा होता ? परन्तु उत्तर कुरु के देवगण अपनी विजय के गर्व में मत्त रहे, वहीं खप गए। आर्यावर्त्त में उनका प्रसार ही न हो पाया। इधर ये पौरव दक्षिण में द्रविड़ों को आक्रान्त कर उनसे मिल गए। आर्यों की यह पहिली भूल थी। इसके बाद उन्होंने राजन्यों की, पुरोहितों की, फिर विशों की न्यारी-न्यारी शाखा चलाई। अनुलोम-प्रतिलोम विवाह प्रचलित किए। ब्राह्मणों ने दक्षिणा में और क्षत्रियों ने विजयों में सुन्दरी दासियों के रेवड़ भर लिए। परिणाम वही हुआ जो होना था। अनगिनत वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न होने लगीं। पहिले उन्होंने उन्हें पिता के कुलगोत्र ही में रखा और दायभाग में भी भाग दिया। परन्तु बाद में उन्हें इन आर्यों ने अपने कुलगोत्र से च्युत कर दिया। दायभाग भी नहीं दिया। पहिले प्रतिलोम संतान ही संकर थी, अब अनु-लोम प्रतिलोम प्रत्येक संतान संकर बना दी गई और उन्हें अपना उपजीवी बनाकर उनकी पृथक् जातियाँ बनादी गईं। यह आर्यों की दूसरी भूल थी। सभी संकर मेधावी, परिश्रमी, सहिष्णु एवं उद्योगी थे। जैसा कि होता ही है, आर्य अधिकारमद पी मद्यप, आलसी, घमण्डी और अकर्मण्य होते गए। अब वे या तो थोथे यज्ञाडम्बरों की हास्यास्पद बिडम्बना में फंसे हैं, या कोरे कल्पित ब्रह्मवाद में। इसी से सम्राट्, आज आर्यों में प्रसेनजित् जैसे सड़े-गले राजा रह गये। आज सम्पूर्ण भरतखण्ड में आर्य केवल प्रजावर्गीय रह गए हैं, राजसत्ता उन कर्मठ संकरों के हाथ में आती जा रही है। एक दिन भाग्यहीन प्रसेनजित अति दयनीय दशा में प्राणों के भार को त्यागेगा।'

'किन्तु भगवन्, मेरा स्वप्न क्या सत्य होगा ?'

'जम्बूद्वीप पर अखण्ड साम्राज्य स्थापन का ? इसके लिए तो पूर्व में आपका उद्योग चल ही रहा है । उधर पश्चिम में पार्शव सम्राट् भी इसी आयोजन में है ।

'परन्तु भगवन्, आर्य कभी उसे न अपनाएंगे ।'

'क्यों नहीं, बहुत बार उसनें इन्द्रपद ग्रहण किया है । सभी आर्यो ने तो उसका पूजन किया ।'

'किन्तु वासुदेव कृष्ण ने जो उसका प्रबल विरोध किया था, वह क्या भगवान् को विदित नहीं ?'

'क्यों नहीं ।'

'भगवन्, मैं शिशुनागवंशी बिम्बसार वासुदेव कृष्ण का अनुवंशी हूँ, आर्य नहीं, मैं पार्शव सम्राट् की विरोध करूंगा ।

'सम्राट् की इस वासना को मैं जानता हूँ ।'

'तो भगवत्पाद का अब मुझे क्या आदेश है ?'

'सम्राट् तुरन्त राजगृह जाँय ।'

'किस लिए भगवन् ?'

'राजगृह में कुछ घटनाएं होने वाली हैं ।'

'अच्छी या बुरी ?'

'यह सम्राट् को समय पर मालूम होगा, परन्तु उन्हें दोनों ही प्रकार की घटनाओं को देखने की आशा रखनी चाहिए ।'

'यही भगवत्पाद का मुझे आदेश है ?'

'राजगृह में शीघ्र ही श्रमण गौतम पहुंचेंगे, वे सम्राट् को समुचित आदेश देंगे ।'

भगवान् वादरायण फिर नहीं बोले । एकबारगी ही वे समाधिस्थ हो गए । इसी समय मधु ने कहा—'सम्राट् के सैनिक आ पहुंचे हैं । वे सम्राट् को अभिवादन-निवेदन कर रहे हैं ।'

सम्राट् ने भगवान् वादरायण के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और चल दिए ।

४७ : : दास नहीं, अभिभावक

पूरा दिन चारों अश्वारोहियों ने घोड़े की पीठ पर व्यतीत किया। वे नगर, जनपद, वीथी सब को बचाते हुए गहन वन में चलते ही गए। मार्ग में दो-एक हिंसक जन्तु मिले। शंब ने उनका आखेट किया। परन्तु सोम अत्यन्त खिन्न मुद्रा से सबके आगे-आगे जा रहे थे। उनमें बातचीत का भी दम नहीं था। उनके पीछे कुण्डनी राजकुमारी को दाहिने करके चली जा रही थी। राजकुमारी अत्यन्त म्लान, थकित और शोकाकुला थीं। परन्तु जब-जब उनसे विश्राम के लिए कहा गया, उन्होंने कहा—

'नहीं चले ही चलो, मैं और चल सकती हूँ।'

शंब सबके पीछे चारों ओर देखता, सावधानी से चल रहा था। एकाध बात कुण्डली कर लेती थी। फिर सन्नाटा हो जाता था। कभी--कभी वायु लम्बे वृक्षों और पर्वत-कन्दराओं में टकराकर डरावने शब्द करती थी। कुमारी का चेहरा पत्थर की भाँति भावहीन और सफेद हो गया था और उनके नेत्रों की ज्योति जैसे बुझ चुकी थी।

सोम ने अति विनय से एक-दो बार कुमारी से विश्राम कर लेने और थोड़ा बहुत आहार करने को कहा था, परन्तु कुमारी बहुत भीत थीं। उन्होंने हर बार भीत दृष्टि से कुण्डनी की ओर ताक कर कहा—'नहीं, हला, अभी चले चलो। धूमकेतु थका नहीं है, मैं भी थकी नहीं हूँ।'

सोम कुमारी की व्यग्रता तथा वैकल्प को समझते थे। उसी से वह चुप हो रहे। वे चलते ही गए। मध्यान्ह की प्रखर धूप धीमी पड़ गई। अश्वारोही और अश्व एकदम थक गए। सोम ने एक ऊंचे स्थान पर चढ़कर

चारों ओर दृष्टि फेंकी। कुछ दूर उन्हें बस्ती के चिन्ह प्रतीत हुए। उन्होंने तनिक रुक कर शम्ब से कहा—'शम्ब, आखेट का ध्यान रख।' और फिर कुण्डनी के निकट आकर कहा—'वहां बस्ती मालूम होती है। आज रात वहीं व्यतीत करनी होगी।'

और उसने बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए उधर ही प्रस्थान कर दिया। सूर्यास्त होने तक ये लोग नगर उपकूल पर पहुँच गए। नगर में न जाकर उन्होंने नगर के प्रान्त भाग में अवस्थित एक चैत्य में विश्राम करना ठीक समझा। चैत्य बहुत पुराना और भग्न था। उसके एक कक्ष की दीवार बिल्कुल टूट गई थी, फिर भी वहाँ विश्राम किया जा सकता था। निकट ही एक पुष्करिणी थी।

अश्वों ने जल पिया और अश्वारोहियों ने भी। राजकुमारी के विश्राम की सम्पूर्ण व्यवस्था कर सोम ने चिन्तित भाव से कुण्डनी की ओर देखा। शम्ब ने एक साबर मारा था। उसकी ओर निराशा से ताक कर सोम ने कहा—'कुण्डनी, यह क्या राजनन्दिनी के आहार के लिए यथेष्ट होगा?'

'परन्तु किया क्या जाय? नगर में जाने से कदाचित् थोड़ा दूध मिल सके। परन्तु आज आखेट ही पर रहें।'

शम्ब अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न था। साबर बहुत भारी था। उसने जल्दी-जल्दी राजकुमारी और कुण्डनी के विश्राम की व्यवस्था की और हरिण का मांस भूनने लगा। सोम ने कहा—'तनिक इधर-उधर मैं देख लूं, यदि थोडा दूध मिल जाय।'

उन्होंने अपना बर्छा उठाया और चल दिए। निवृत होकर कुण्डनी ने कुमारी के मनोरंजन की चेष्टा की। वह उनके निकट आकर बातें करने लगी। कुण्डनी ने कहा—

'राजकुमारी प्रसन्न हों, भाग्यदोष से समय कुसमय जीवन में आता ही है। इतना खिन्न न हों राजकुमारी।'

'खिन्न नहीं हूँ हला, लज्जित हूँ, तुम्हारे और तुम्हारे इस सौम्य दास के उपकार के लिए। कब कैसे बदला चुका सकूंगी।'

'राजकुमारी, हम सब तो आपके सेवक हैं। आपको कभी सुखी देख कर हमें कितना आनन्द होगा।' कुण्डनी ने आर्द्र होकर कहा।

'किन्तु सखी, क्या सचमुच वह वीर तुम्हारा दास है?' राजकुमारी ने नीची दृष्टि से सोम की ओर देखकर कहा।

'मेरा ही नहीं, आपका भी राजनन्दिनी।'

'नहीं, नहीं, उसका तेज, शौर्य, सत्साहस श्लाघ्य है। वह तो किसी भी राजकुल का भूषण होने योग्य है। फिर उसका विनय और कार्य तत्परता कैसी है!'

'इसकी उसे शिक्षा मिली है हला।'

'क्या नाम कहा—सोम?'

'हाँ, सोम।'

'और उस दास के दास का नाम शंब?'

'जी हाँ, दास के दास का शंब।' कुण्डनी हंस दी।

राजकुमारी होठों ही में मुस्कराईं। उन्होंने कोमल भाव से कहा—

'सखी, इस विपन्नावस्था में ऐसे अकपट सहायक मित्रों से दासवत् व्यवहार करना ठीक नहीं है। वे हमारे आत्मीय ही हैं।'

'किन्तु राजनन्दिनी, दास-दास हैं, सेवा उनका धर्म है। उनके प्रति उपकृत होना उन्हें सिर चढ़ाना है।'

'ऐसा नहीं हला, अन्ततः मनुष्य सब मनुष्य ही हैं और वह तो एक श्रेष्ठ पुरुष है। मैं उन्हें दास नहीं समझ सकती।'

'तो आप उन्हें राजकुमार समझिए राजनन्दिनी। यह आपके हृदय की विशालता है।'

'नहीं, वे राजकुमार से भी मान्य पुरुष हैं हला।' राजकुमारी का मुंह लज्जा से लाल हो गया और उनकी आँख से आंसू झरने लगे।

इसी समय सोम कुछ आहार द्रव्य और थोड़ा दूध ले आए। शंब ने भी हरिण को भून-भान लिया था। राजकुमारी क्षण भर को अपनी विपन्नावस्था भूलकर फुर्ती से आहार को स्वयं परोसने लगीं। उन्होंने

पलाश-पत्र पर आहार्य संजोकर अपनी बड़ी-बड़ी पलकें सोम की ओर उठाईं और कहा—'भद्र, भोजन करो।'

सोम ने विनयावनत होकर कहा—

'नहीं राजनन्दिनी, पहले आप और कुण्डनी आहार कर लें, पीछे हम लोग खाएंगे।'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं।'

'दास का निवेदन है—

'दास नहीं भद्र, अभिभावक कहो।'

राजनन्दिनी का गला भर आया। उन्होंने फिर उन्हीं भारी-भारी पलकों को उठा कर सोम की ओर गीली आंखों से ताका। उस मूक अनुरोध से वशीभूत होकर सोम ने और आग्रह नहीं किया। उन्होंने कहा—

'तो फिर, राजनन्दिनी की जैसी आज्ञा हो, हम लोग साथ ही बैठ कर भोजन करें।'

राजकुमारी ने भी जल्दी-जल्दी-कुण्डनी और अपने लिए आहार परोसा। शंब को भी दिया। पर शंब किसी तरह साथ खाने को राजी न हुआ। वे तीनों भोजन करने लगे।

४८ : : सोम की भाव-धारा

बाहर आकर सोम थकित भाव से एक सूने चैत्य के किनारे एक वट वृक्ष के सहारे आ बैठे। अपना विशाल खड्ग उन्होंने लापरवाही से एक ओर फेंक दिया। वह शून्य दृष्टि से आकाश को ताकते रहे। उस गलती हुई रात में उस एकांत भीषण स्थान में बैठे हुए सोम बहुत सी बातें विचारते रहे। ओस से भीगे हुए गुलाब के पुष्प की भाँति कुमारी का

शोकपूर्ण मुख उनकी दृष्टि में घूम रहा था। एक प्रबल राज्य के राजा की राजनन्दिनी किस भाँति उसी के उद्योग और यत्न के कारण इस अवस्था को पहुँची। यही सब सोच-सोच कर उसका नवीन, भावुक तरुण और वीर हृदय आहत हो रहा था। रह-रह कर उन्हें आचार्य काश्यप की बातें याद आ रही थीं। राजतंत्र की इस कुत्सा पर उन्हें अभी कुछ सोचने का अवसर ही न आया था। असुरपुरी में तथा चम्पा में वह कुण्डनी का अद्भुत कौशल, साहस और सामर्थ्य देख चुके थे। वह जान गए थे कि आचार्य की बात झूठी नहीं, इस अकेली कुण्डनी ही में एक भारी सेना की सामर्थ्य निहित है। राज्यों की लिप्सा में किस प्रकार निरीह निर्दोष हृदय कुसुम इस प्रकार दलित होते हैं यह सोच-सोच कर सोम का हृदय मर्माहत हो रहा था. परन्तु बात केवल भूत-दया ही तक सीमित न थी। सोम का तारुण्य भी कुमारी को देख कर जाग्रत हुआ था। कुण्डनी के उत्तप्त साहचर्य से यत्किंचित् उसका सुप्त यौवन जाग्रत् हुआ था, परन्तु उसे विषकन्या जान तथा भगिनी-भावना से वह वहीं ठिठक गया था। अब इस अमल धवल कुसुमकोमल सुकुमारी कुमारी के चम्पकपुष्प के समान नवल देह और लज्जा, संकोच, दुःख और शोक से परिपूर्ण मूर्ति पर उनका सम्पूर्ण तारुण्य जैसे चल-विचल हो गया। उन्होंने प्रण किया—'मेरे ही कारण कुमारी की यह दुर्दशा हुई है। मैं ही इसका प्रतिरोध करूँगा।

बहुत देर तक सोम यही सोचते रहे। उन्हें यह भी भान न रहा कि कोई उनके निकट है। पर कुण्डनी छाया की भांति उनके साथ थी। बहुत देर बाद कुण्डनी ने कहा—

'क्या सोच रहे हो सोम ?'

सोम ने अकचका कर कुण्डनी की ओर देखा। फिर शांत संयत स्वर में कहा—'कुण्डनी, कुछ हमारे ऊपर भी चम्पा की कुमारी की विपन्नावस्था का दायित्व है।'

'मूर्खता की बातें हैं। हम मगध राज-तन्त्र के यत्न है। हमें भावुक

नहीं होना चाहिए।'

कुछ देर सोम चुपचाप आकाश को ताकते रहे, फिर वह एक लम्बी साँस लेकर बोले—

'तुम कदाचित् ठीक कहती हो कुण्डनी, परन्तु मेरा तो अभी से सारा पुरुषार्थ गल गया और अब सम्भवत: राजनीति में भाग लेने की मुझ में शक्ति ही नहीं रह गई।'

'यह तुम क्या कहते हो सोम ? आर्य अमात्य को तुम से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। अभी हम जिस गुरुतर कार्य में नियुक्त हैं, हमें उधर ध्यान देना चाहिए।'

'अब तुम राजगृह लौट जाओ कुण्डनी, अब मेरे तुम्हारे मार्ग दो हैं।'

'परन्तु उद्देश्य एक ही है।'

'सम्भवत: वह भी दो हैं। तुम राजसेवा करो।'

'और तुम ?'

'मैं राजकुमारी की सेवा करूंगा।'

कुण्डनी हँस दी। उसने निकट आकर स्नेह से सोम के सिर पर हाथ रखा और स्निग्ध स्वर में कहा—

'सोम, तुम्हें मालूम है, कुण्डनी तुम्हारी भगिनी है।'

'जानता हूँ।'

'सो तुम्हारा एकान्त हित कुण्डनी को छोड़ और दूसरा कौन करेगा।'

'तो तुम मेरा हित करो।'

'क्या करूं, कहो ?'

'राज-सेवा त्याग दो।'

कुण्डनी ने हंसकर कहा—'और तुम्हारे साथ रह कर राजकुमारी की सेवा करूँ ?'

'इसमें हंसने की क्या बात है कुण्डनी ? क्या यह सेवा नहीं है ?'

'है।'

'फिर ?'

'उनकी सेवा कर दी गई ।'

'अर्थात् उन्हें रानी से राह की भिखारिणी और अनाथ बना दिया गया ।' सोम ने उत्तेजित होकर कहा ।

'यह कार्य तो हमारा नहीं था, राजकार्य था प्रिय । हमने तो विपन्नावस्था में उनका मित्र के समान साथ दिया है ।'

'तो कुण्डनी, अब उनका क्या होगा ? सोचो तो ?'

'कुछ हो ही जायगा । जल्दी क्या है ? अभी तो हम श्रावस्ती जा ही रहे हैं ।'

'नहीं, मैं राजकुमारी को वहाँ नहीं ले जाऊँगा ।'

'उन्हें कहाँ ले जाओगे ?'

'पृथ्वी के उस छोर पर जहाँ हम दोनों अकेले रहें ।'

'कुण्डनी को कहां छोड़ोगे ?' कुण्डनी हँस दी, फिर उसने सोम के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—

'यह ठीक नहीं है, प्रिय ।'

'तब ?'

'विचार करो, राजकुमारी क्या सहमत होंगी ?'

'मैं कह दूंगा कि मैं दास नहीं हूँ ।'

'और मागध हूँ, उसका पितृहन्ता और राज्यविध्वंसक शत्रु ?'

'किन्तु, किन्तु·····'

सोम उत्तेजित होकर पागल की भाँति चीख उठे, उन्होंने कहा—

'मैं उन्हें चम्पा की गद्दी पर बैठाऊँगा । मैं मगध से विद्रोह करूँगा ।'

'यह तो बहुत अच्छी योजना है सोम । फिर तुम अनायास ही चम्पाधिपति बन जाओगे । किन्तु राजकुमारी क्या तुम्हें क्षमा कर देंगी ?

'इतना करने पर भी नहीं ?

'ओह, तो तुम उनका मूल्य उन्हीं. को चुकाओगे और फिर उन्हें अपनी दासी बना कर रखोगे ?'

'दासी बनाकर क्यों ?'

'और किस भाँति ? तुम राजकुमारी की विचार-भावना की परवाह बिना किए अपनी ही योजना पर चलते जाओगे और समझोगे कि राजकुमारी तुम्हारी अनुगत हो गई।'

'तो कुण्डनी, मैं राजकुमारी के लिए प्राण दूंगा।'

'सो दे देना, बहुत अवसर आएंगे। अभी तुम चुपचाप श्रावस्ती चलो। राजकुमारी को निरापद स्थान पर सुरक्षित पहुँचाना सब से प्रथम आवश्यक है। हम लोग छद्मवेशी हैं, पराए राज्य में राजसेवा के गुरुतर दायित्व मे दबे हुए हैं, राजकुमारी को अपने साथ रखने की बात सोच ही नही सकते। फिर तुम एक तो अज्ञात-कुलशील, दूसरे मागध, तीसरे असहाय हो। ऐसी अवस्था में तुम राजकुमारी को कैसे ले जा सकते हो और कहाँ ? हां, यदि उनकी विपन्नावस्था से लाभ उठा कर उन पर बलात्कार करना हो तो वह असहाय अनाथिनी कर भी क्या सकती है ? परन्तु सोम, यह तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं होगा।'

सोम ने कुण्डनी के चरण छुए। उनके दो गर्म आंसू कुण्डनी के पैरों पर टपक पड़े। सोम ने कहा—'कुण्डनी, स्वार्थवश मैं अधम विचारों के वशीभूत हो गया। तुम ठीक कहती हो, उन्हें निरापद स्थान पर पहुँचाना ही हमारा प्रथम धर्म है।'

'तो अब तुम सोओ। बहुत रात गई। हमें एक पहर रात रहते ही यह स्थान त्यागना होगा। मैं शंब को जगाती हूँ। वह प्रहरी का कार्य करेगा।'

सोम ने और हठ नहीं किया। वह वहीं वृक्ष की जड़ में लम्बे हो गए। कुण्डनी ने स्नेहपूर्वक उत्तरीय से उनके अंग को ढक दिया और फिर एक स्निग्ध दृष्टि उन पर फेंक कर मठ में चली गई।

४६ : : मार्ग बाधा

तीन दिन तक ये यात्री अपनी राह निरन्तर चलते रहे। वे अब रात्रि भर चलते और दिन निकले पर जब धूप तेज होती तो किसी वन या पर्वत-कंदरा में आश्रय लेते, आखेट भून कर खा लेते। श्रावस्ती अब भी काफी दूर थी। चौथे दिन प्रहर रात्रि गए जब उन्होंने यात्रा प्रारम्भ की, तब आकाश में एकाध धौले बादलों की दौड़ धूप हो रही थी। षष्ठी का क्षीण चन्द्र उदय हुआ था। राह पथरीली और ऊबड़-खाबड़ थी, इस लिए चारों यात्री धीरे-धीरे जा रहे थे। इसी समय उन्हें अकस्मात् सामने दाहिने पार्श्व पर कुछ अश्वारोहियों की परछाहीं दृष्टिगोचर हुई।

सोम ने कहा—'सावधान हो जाओ कुण्डनी। नहीं कहा जा सकता कि ये मित्र हैं या शत्रु। दस्यु भी हो सकते हैं।' उन्होंने खड्ग कोश से निकाल लिया तथा राजकुमारी को बीच में ले लिया। कुण्डनी और शम्ब ने धनुष पर बाण सीधे कर लिए। इसी समय एक बाण सनसनाता हुआ सोम के कान के पास से निकल गया। तत्काल कुण्डनी ने बाण संधान किया। उसे संकेत से रोक कर सोम फुर्ती से बाम पार्श्व में घूम गए। वहां एक चट्टान की आड़ में उन्होंने आश्रय लिया। कुण्डनी और राज-कुमारी को वहां छिपा कर तथा शम्ब की उनकी रक्षा का भार देकर अश्व को चट्टान के ऊपर ले गए। उन्होंने देखा, शत्रु पचास से भी ऊपर हैं और उन्होंने उन्हें देख लिया है और वे उस चट्टान को घेरने का उप-क्रम कर रहे हैं। सामने एक घाटी और उसके उस पार प्रशस्त मार्ग है। घाटी बहुत तंग और लम्बी है। यह सब देख कर वे तुरन्त ही कुण्डनी के

निकट आ गए। उन्होंने कहा—'शत्रु पचास से भी अधिक हैं और सम्भवतः उन्होंने हमें यहाँ आते देख लिया है।'

'क्या करना होगा ?' कुण्डनी ने स्थिर स्वर से कहा।

सोम ने व्यग्र भाव से कहा—'कुण्डनी, चाहे भी जिस मूल्य पर हमें राजकुमारी की रक्षा करनी होगी। हम चार हैं और शत्रु बहुत अधिक। यदि किसी तरह हम घाटी के उस पार पहुँच जायँ तो फिर कुछ आशा हो सकती है। राजकुमारी को साहस करना होगा। पहिले तुम, पीछे राजकुमारी उसके बाद शम्ब और फिर मैं, घाटी को पार करेंगे। हम तीनों में जो भी जीवित बचे, वह राजकुमारी को श्रावस्ती पहुँचा दे। मैं शत्रु का ध्यान इधर आकर्षित करता रहूँगा। तुम तीर की भाँति पार जाकर चट्टान की आड़ में हो जाना। मैं उधर जाकर शत्रु पर तीर फेंकता हूँ। तीर की ओर शत्रु का ध्यान जाते ही तुम घूम कर घाटी पार हो जाना। मेरे दूसरे तीर पर राजकुमारी और तीसरे पर शम्ब।'

इतना कह सोम धनुष पर बाण चढ़ा चट्टान की दूसरी ओर चले गए। और वहां से कान तक खींच कर एक बाण फेंका। बाण एक योद्धा की पसली में घुस गया, वह चीत्कार करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुण्डनी ने एक मर्मभेदिनी दृष्टि राजकुमारी पर डाली। अश्व पर आसन जमाया और एड़ मारी। सैन्धव अश्व तीर की भाँति छलांग मार कर घाटी के पार हो गया। उस पार जाकर कुण्डनी ने संकेत किया और चट्टान की आड़ में हो गई। सोम ने संतोष की साँस ली और कुमारी के निकट आकर अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'अब आप राजनन्दिनी, साहस कीजिए। आपका धूम्रकेतु असाधारण अश्व है। ज्यों ही मैं तीर फेंकूं, आप अश्व को छोड़ दीजिए।' उसने धूम्रकेतु की पीठ थपथपाई। राजनन्दिनी ने दाँतों से होठ काटे और उत्तरीय भली-भाँति सिर पर लपेटा। सोम ने बाण छोड़ा और राजकुमारी ने अश्व को वेल्गु का एक झटका दिया। अश्व हवा में तैरता हुआ उस पार हो गया। सोम का मुख आनन्द से खिल गया। अब उन्होंने शम्ब की ओर मुड़ कर कहा—'शम्ब, यदि मैं असफल होऊं

तो तू प्राण रहते राजकुमारी की रक्षा करना ।'

शम्ब ने स्वामी के चरण छुए । सोम ने फिर बाण फेंका, शम्ब ने अश्व को संकेत किया । अश्व हवा में उछला और पार हो गया । अब सोम की बारी थी । परन्तु अब शत्रु निकट आकर फैल गए थे ।

सोम ने अश्व को थपथपाया और एड़ लगाई, अश्व उछला । इसी समय एक बाण आकर सोम की गर्दन में घुस गया और सोम वायु से टूटे वृक्ष की भांति घाटी में गिर गए । शम्ब चीत्कार करके दौड़ पड़ा राजकुमारी हाय कर उठी । कुण्डनी का मुंह फक् हो गया । राजकुमारी घाटी की ओर लपकी, परन्तु कुण्डनी ने हाथ पकड़ कर उन्हें रोक कर कहा—'क्षण भर ठहरो हला, शम्ब उनकी सहायता पर है ।' उधर से बाणों का मेह बरस रहा था, उनमें से अनेक शम्ब के शरीर में घुस गए । उसके शरीर से रक्त की धार बह चली । पर उसने उसकी कोई चिन्ता नहीं की । वह मूर्छित सोम को कन्धे पर लाद कर इस पार ले आया ।

'और अश्व, शम्ब ?' कुण्डनी ने उद्वेग से कहा—'दोनों अश्व मर गए' शम्ब ने हांफते-हांफते कहा । बाण वहां तक आ रहे थे और शत्रु घाटी पार करने की चेष्टा कर रहे थे । कुण्डनी ने कहा—'शम्ब, इन्हें राजकुमारी के घोड़े पर रखो और तुम मेरे साथ साथ आओ । एक क्षण का विलम्ब भी घातक होगा ।'

इसी समय सोम की मूर्छा भंग हुई । उसने राजकुमारी को सामने देख कर सूखे कण्ठ से कहा—'कुण्डनी, तुम राजकुमारी को लेकर भागो । हम लोग—मैं और शम्ब तब तक शत्रु को रोकेंगे ।' राजकुमारी ने आंखों में आंसू भर कहा—

'नहीं, आप मेरे अश्व पर आइए ।'

'व्यर्थ है, हम सब मारे जाएँगे ।'

इसी बीच शम्ब ने तीर मार कर दो शत्रुओं को धराशायी कर दिया । सोम ने साहस करके तीर खींच कर कण्ठ से निकाल दिया । खून की धार बह चली । राजकुमारी ने लपक कर अपना उत्तरीय सोम के कण्ठ से

बांध दिया और कहा—'उठो भद्र, मेरे अश्व पर ।'

'नहीं राजकुमारी तुम भागो । एक-एक क्षण बहुमूल्य है ।'

'मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊंगी ।' और वह सोम के वक्ष पर गिर गई ।

सोम के घाव से अब भी रक्त निकल रहा था । एक शत्रु घाटी के इस पार आ गया था, उसे शम्ब ने बाण से मार कर कहा—

'बहुत शत्रु इस पार आ रहे हैं ।'

सोम ने काँपते हाथों से राजकुमारी को अलग करके कहा—'ईश्वर के लिए कुमारी, प्राण और प्रतिष्ठा लेकर भागो ।'

'तो हम लोग साथ ही मरें ।'

'नहीं राजनन्दिनी, इस अधम का मोह न करो, प्राण लेकर भागो ।'

'किन्तु मैं तुम्हें·····'

'ओह, कुमारी, कुछ मत कहो, जीवन रहा तो फिर मिलेंगे ।'

'पर मैं जीते-जी तुम्हें छोड़ नहीं सकती ।'

वह सोम के शरीर से लिपट गई ।

सोम ने सूखे कण्ठ से कहा—'तुम्हें भ्रम हुआ है कुमारी, मैं मागध हूँ । तुम्हारा शत्रु ।'

मार्ग में पड़े हुए सर्प को अकस्मात् देखकर जैसे मनुष्य चीत्कार कर उठता है, उसी भांति चीत्कार करके कुमारी सोम को छोड़कर दो कदम पीछे हट गई और भीत नेत्रों से सोम की ओर देखने लगी ।

सोम ने कुण्डनी को संकेत किया और एक चट्टान का ढासना लेकर धनुष संभाला । कुमारी की ओर से उसने मुंह फेर लिया और धनुष पर तीर चढ़ाते हुए कहा—'शम्ब, तुम दाहिने, मैं बाएँ ।'

परन्तु सोम बाण लक्ष्य पर न छोड़ सके । धनुष से बाण छूटकर निकट ही जा गिरा । उधर सोम एकबारगी ही बहुत सा रक्त निकल जाने से मूर्छित हो गए । उनकी आँखें पथरा गईं और गर्दन नीचे को लुढक गई ।

शम्ब ने एकबार स्वामी को और फिर शत्रु को भीत दृष्टि से देखा ।

सामने कुण्डनी एक प्रकार से राजकुमारी को घसीटती हुई अश्व पर सवार करा अपने और कुमारी के अश्व को सम्हालती चट्टान की मोड़ पर पहुंच चुकी थी। राजकुमारी अश्व पर मृतक की भाँति झुक गई थी। शत्रु घाटी के इस पार आ चुके थे। कुण्डनी ने एक बार शम्ब की ओर देखा। शम्ब ने उसे द्रुत वेग से भागने का संकेत करके सोम को कन्धे पर उठा लिया और वह तेजी से पर्वत-कन्दरा की ओर दौड़ गया। एक सुरक्षित गुफा में सोम को लिटा, आप धनुष-बाण लेकर गुफा के द्वार पर बैठ गया।

परन्तु इतनी तत्परता, साहस एवं शौर्य भी कुछ काम न आ सका। शत्रुओं ने शीघ्र ही राजकुमारी और कुण्डनी को चारों ओर से घेर लिया। भागने का प्रयास व्यर्थ समझ कर कुण्डनी अब मूर्छिता कुमारी की सुश्रूषा करने लगी।

दस्युओं में से एक ने आगे बढ़कर दोनों के अश्व थाम लिए। चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में अश्वरोहियों को देखकर प्रसन्न मुद्रा से उसने कहा—

'वाह, दोनों ही स्त्रियां हैं।'

दूसरे ने निकट आकर कहा—

'और परम सुन्दरियां भी हैं। मालिक को अभी-अभी सूचना देनी होगी। उसने राजकुमारी को देखकर कहा—'मालिक ऐसी ही एक दासी की खोज में थे।' एक पुरुष ने चकमक झाड़ कर प्रकाश किया और कुण्डनी से पूछा—

'कौन हो तुम ?'

'राही हैं, देखते नहीं !'

'देख रहे हैं, तुम्हारे वे साथी कहां हैं, जिन्होंने हमारे इतने आदमी मार डाले हैं ?'

'वह तुम्हीं खोज लो।'

'अच्छी बात है, यह भी संभव है, वे लोग उसी घाटी में मर खप गए हों। किन्तु तुम लोग जा कहां रही हो ?'

'हम श्रावस्ती जा रहे हैं।'

'वह तो अभी साठ योजन है।'

'इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन है। हमें अपने मार्ग जाने दो।'

'हमारा सार्थवाह भी श्रावस्ती ही जा रहा है, हमारे साथ ही चलो तुम।'

'क्या बल से ?'

'नहीं विनय से।' वह पुरुष हंसकर पीछे हट गया। उसके साथी दोनों के अश्वों को घेर कर चलने लगे। कुण्डनी ने विरोध नहीं किया। कुछ दूर चलने पर उन्होंने देखा, वन के एक प्रांत भाग में कोई पचास-साठ सशस्त्र पुरुष आग के चारों ओर बैठे हैं, एक ओर कुछ स्त्रियाँ भी एक बड़े शिलाखंड की आड़ में बैठी हैं। कुछ सो रही हैं।

इनके वहाँ पहुंचने पर कई मनुष्य इनके निकट आ गए। एक पुरुष ने मशाल ऊंची करके कहा—'वाह, बहुत बढ़िया माल है! स्वामी को अभी सूचना दो।' इसी समय एक अधेड़ अवस्था का खूब मोटा आदमी आगे आया। इसकी लम्बी दाढ़ी और गरदन मोटी थी। वह एक कीमती शाल लापरवाही से कमर में लपेटे हुआ था। उसने हर्षित नेत्रों से दोनों स्त्रियों को देखा और हाथ मल कर सिर हिलाया।

'तो तुम दास-विक्रेता हो ?' कुण्डनी ने घृणा से होठ सिकोड़ कर कहा।

'तुम ठीक समझ गई हो, परन्तु चिन्ता न करो, मैं श्रावस्ती जा रहा हूँ। तुम्हें और तुम्हारी सखी को महाराज की भेंट करूंगा। वहां तुम्हारी यह सखी पट्टराजमहिषी का पद ग्रहण करेंगी—और तुम भी। संभवतः तुम अति दूर से आ रही हो और तुम्हारी साथिन रुग्ण है। अभी विश्राम करो, प्रभात में परिचय प्राप्त करूँगा। उसने दास को संकेत किया और वह उनके अश्व थाम कर उधर ले गया, जिधर अन्य स्त्रियां बैठी थीं। पहिले उसने राजकुमारी को सहारा देकर उतारा, फिर वह कुण्डनी के निकट आया। वह असावधान था, कुण्डनी ने विद्युत् वेग से उस पर हठात् कटार का वार किया और द्रुत वेग से अश्व छोड़ दिया। दास ने चिल्लाकर कहा—'पकड़ो, पकड़ो, दासी भागी जाती है।' अनेक पुरुष

अस्त्र-शस्त्र लेकर उसके पीछे दौड़े, पर कुण्डनी उनके हाथ न आई। कुछ देर में सब लोग हताश हो लौट आए। राजकुमारी का एकमात्र अवलम्ब भी जाता रहा। वह वहीं मूर्छित होकर गिर गई।

५० :: श्रावस्ती

श्रावस्ती उन दिनों जम्बूद्वीप का सबसे बड़ा नगर था। कोशल महाराज के अन्तर्गत साकेत और वाराणसी ये दो महानगर भी महा-समृद्धिशाली थे। परन्तु श्रावस्ती की उनसे होड़ न थी। साकेत बहुत दिन से कोशल की राजधानी न रही थी। इस समय उसका महत्व केवल इसलिए था कि वह उत्तरापथ के प्रशस्त महा जनपद पर थी तथा उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के सार्थवाह जल-थल दोनों ही मार्ग से साकेत होकर जाते थे।

परन्तु श्रावस्ती में समस्त जम्बूद्वीप की सम्पदाओं का अगम समागम था। यहाँ अनाथपिण्डिक सुदत्त और मृगार जैसे धनकुबेरों का निवास था, जिनके सार्थ जम्बूद्वीप ही में नहीं, ताम्रलिप्ति के मार्ग से बंगाल की खाड़ी और मरुकच्छ तथा शूर्पारक से अरब-सागर को पार कर सुदूर द्वीपों में जाते और सम्पदा विस्तार करते थे। श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक का मार्ग माहि-ष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का मार्ग पहाड़ की तराई होकर था। मार्ग में सेतव्य, कपिल-वस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलीपुत्र और नालन्द पड़ते थे। पूर्व से पश्चिम का मार्ग बहुत करके नदियों द्वारा तय होता था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी तक बड़ी-बड़ी नावें चलती थीं। सार्थवाह विदेह होकर गान्धार तक और मगध होकर सौवीर

तक, मरुकच्छ से बर्मा तक और दक्षिण होकर बैबिलोन तक तथा चम्पा से चीन तक जाते-आते थे। रेगिस्तानों में लोग रात को चलते थे और पथ-प्रदर्शक नक्षत्रों के सहारे मार्ग का निर्णय करते थे।

सुवर्णभूमि से लेकर यवद्वीप तक, तथा दक्षिण में ताम्रपर्णी तक आना-जाना था। श्रावस्ती महानगरी में हाथी-सवार, घुड़सवार, रथी, धनुर्धारी आदि नौ प्रकार की सेनाएँ रहती थीं। कोशल राज्य की सैन्य में यवन, शक, तातार और हूण भी सम्मिलित थे। यवनों को ऊँचे-ऊँचे सेनापति के पद प्राप्त थे। उच्चवर्गीय सेट्ठियों, सामन्तों, श्रमणों और श्रोत्रिय ब्राह्मणों के अतिरिक्त दास, रसोइए, नाई, उपमर्दक, हलवाई, माली, धोबी, जुलाहे, भौआ बनाने वाले, कुम्हार, मुहर्रिर, मुत्सद्दी और कर्मकार भी थे।

कर्मकारों में धातु, लकडी और पत्थर पर काम करने वाले, चमड़े, हाथीदाँत के कारीगर, रँगाईवाले, जौहरी, मछली मारने वाले, कसाई, चित्रकार आदि अनगिनत थे। रेशम, मलमल, चर्म, कारचोबी का काम, कम्बल, औषधि, हस्तिदन्त, जवाहर, स्वर्णाभरण आदि के अनगिनत व्यापारी थे।

जातियों में ब्राह्मण-महाशाल, क्षत्रिय सामन्तों का उच्च स्थान था। इनके बाद सेट्ठिजन थे, जो धन-सम्पदा में बहुत चढ़े-बढ़े थे। देश-देश का धन-रत्न इनके पास खिचा चला आता था। उन दिनों देश में दस प्रतिशत ये सामन्त-ब्राह्मण और नब्बे प्रतिशत सेट्ठिजन सर्वसाधारण की कमाई का उपयोग करते थे। इन ९० प्रतिशत में २० प्रतिशत तो दास ही थे, जिनका समाज में कोई अधिकार ही न था। शेष ७० प्रतिशत जनसाधारण के तरुण बलात् इन सामन्तों और राजाओं के निरर्थक युद्धों में अपने प्राण देने को विवश किए जाते थे और उनकी विवश युवती सुन्दरी कन्याएँ उनकी अन्तःपुरी की भीड़ में दासियों, उपपत्नियों आदि के रूप में रख ली जाती थीं। ब्राह्मण इन सामन्तों और राजाओं को परमपरमेश्वर घोषित करते, इन्हें ईश्वरावतार प्रमाणित करते और इनके सब

ऐश्वर्यों को पूर्व जन्म के सुकृत का फल बताते थे। इसके बदले में वे इनसे बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ फटकारते और स्वर्णभूषिता सुन्दरी दासियाँ दान में पाते थे।

मगध-सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को परास्त करके और कौशाम्बीपति उदयन की नियुक्ता गांधारनन्दिनी कलिंगसेना को प्राप्त करके बूढ़े घमण्डी कोशलेश प्रसेनजित् बहुत प्रसन्न थे। इस विजय और हर्ष के उपलक्ष्य में उन्होंने राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। जिसके लिए बहुत भारी आयोजन किया जारहा था। महाराज अभी तक राजधानी में नहीं थे, साकेत में ही बिराज रहे थे। परन्तु श्रावस्ती में यज्ञ की तथा कलिंगसेना के विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से हो रही थीं। देशदेशांतर के राजाओं, सामन्तों और मांडलिकों ने विविध प्रकार की भेंटें भेजी थीं। व्यापारियों, अतिथियों, मुनियों और ब्राह्मणों के गुट श्रावस्ती में चले आ रहे थे।,

श्रावस्ती के राजमहालय में कलिंगसेना का बड़े ठाठ का स्वागत हुआ। समस्त पुरी सजाई गई। उसका अद्भुत सौन्दर्य, नीलम मणि के समान उज्ज्वल नेत्र, चमकीले सोने के तार के से स्वर्ण केस और स्फटिक सी धवल गौर कांति एवं सुगठित सुस्पष्ट देहयष्टि देखकर सम्पूर्ण रनिवास आश्चर्यचकित रह गया। महाराज प्रसेनजित् के रनिवास में देश-विदेश की सैकड़ों एक से एक बढ़कर सुन्दरियाँ थीं। कलिंगसेना के सामने सभी की आभा फीकी पड़ गई। उन सहस्राधिक रमणियों में उसके रूप को कोई पा ही नहीं सकती थी। परन्तु कलिंगसेना जैसी रूपसम्पन्ना नारी थी, वैसी ही मानवती और विदुषी भी थी। वह गन्धार के स्वतंत्र और स्वस्थ वातावरण में पली थी। तक्षशिला के निकेतन में उसने शिक्षा पाई थी। वह वेद, वेदांग, ज्योतिष और चौदह विद्याओं के सिवा शस्त्र-संचालन और अश्व-संचालन में भी एक ही थी। उसने हठपूर्वक गन्धार से श्रावस्ती तक अश्व की पीठ पर यात्रा की थी। राजमहालय में उसे सम्पूर्ण सुख-साधन-सम्पन्न पृथक् प्रासाद दिया गया था।

इस समय श्रावस्ती में काफी भीड़-भाड़ थी। परन्तु यह भीड़ कलिंग-सेना को अच्छी नहीं लग रही थी। उसने अभी पति को नहीं देखा था, पर उसने सुना था कि वे विगलित-यौवन सत्तर वर्ष के बूढ़े, सनकी और स्त्रैण कापुरुष हैं। उसने इच्छापूर्वक ही कौशाम्बीपति उदयन को त्याग कर इस बूढ़े राजा से विवाह करने की स्वीकृति दे दी थी, परन्तु उसका प्रियभाव उदयन की ही ओर था। प्रसेनजित् के प्रति उसके मन में पूरी विरक्ति थी। महाराज के श्रावस्ती में लौटने पर उसका विवाह होगा, यह उसे मालूम था। उसकी तैयारियां भी वह देख रही थी और धैर्यपूर्वक बलि-पशु की भाँति उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। उस तेजवती विदुषी स्त्री ने पिता के राजनीतिक स्वार्थ की रक्षा के लिये ही अपनी बलि दी थी। इसलिये वह चुपचाप सूनी दृष्टि से कौतूहलाक्रान्त रनिवास को तथा अपने विवाह-अनुष्ठान की तैयारी को देख रही थी, जिसके लिए उसके मन में अवज्ञा के पूरे भाव भर गए थे।

कलिंगसेना अपने कक्ष में चुपचाप बैठी सूनी दृष्टि से सुन्दर आकाश की ओर ताक रही थी, इसी समय एक प्रौढ़ महिला ने वहाँ प्रवेश किया, कलिंगसेना ने उनकी ओर देखा, सूर्य के प्रखर तेज के समान उनका ज्वलंत रूप था। यद्यपि उनका यौवन कुछ ढल चुका था, परन्तु उनकी भृकुटी और दृष्टि में तेज और गर्व भरा हुआ था। आत्मनिर्भरता उनकी प्रत्येक चेष्टा से प्रकट हो रही थी। कलिंगसेना ने अभ्युत्थानपूर्वक उन्हें आसन देकर कहा—

'यह मुझे किन महाभागा के दर्शन की प्रतिष्ठा का लाभ हो रहा है?'

प्रौढ़ा ने हँस कर कहा—'कोशल के मंत्रीगण जिन्हें महामहिम परम-परमेश्वर देव-देव महाराजाधिराज कोशलेश्वर कह कर सम्मानित करते हैं, उनकी मैं दासी हूँ। इसके प्रथम एक क्रीता दासी वासव खत्तिय की महा-नाम शाक्य के औरस् से उत्पन्न दासी-पुत्री थी।'

कलिंगसेना ने ससंभ्रम उठकर कहा—'ओह, आप महामान्या राज-महिषी सुश्री देवी नन्दिनी हैं, मैं आपकी अभिवन्दना करती हूँ।'

'अच्छा, तो तुम मेरा नाम और पद भी जानती हो ? यह तो बहुत अच्छा है ।'

'मैंने गन्धार में आपके तेज, प्रताप और पाण्डित्य के विषय में बहुत कुछ सुना है ।'

'अरे, इतना अधिक ? किन्तु अपनी कहो, तुम तो तक्षशिला की स्नातिका हो ! तुमने वेद, ब्राह्मण, आरण्यक सब पढ़े हैं । और कौन-कौन सी दिव्य विद्याएं जानती हो भला, सब कहो ।'

'मैं आपकी अकिञ्चन छोटी बहिन हूँ देवी नन्दिनी, इस पराए घर में मुझे सहारा देना ।' कलिंगसेना की नीलमणि सी ज्योतिवाली आंखें सजल होगईं ।

नन्दिनी ने उसे खींचकर हृदय से लगाया और कहा—

'क्या बहुत सूना-सूना लगता है बहिन ?'

'अब नहीं देवी, आपको पाकर ।'

नन्दिनी ने उसकी ठोड़ी ऊपर करके कहा—'हताश मत हो, प्रारम्भ में ऐसा ही सूना लगता है, परन्तु पराये को अपना करने ही में स्त्री का स्त्रीत्व कृतार्थ है । तुम्हें अपदार्थ को निर्माल्य अर्पण करना होगा ।'

'यह तो मैं कदापि न कर सकूँगी ।'

'तो राजमहिषी कैसे बनोगी ?'

'उसकी मुझे तनिक भी अभिलाषा नहीं है ।'

'तब घोड़े पर चढ़कर इतने चाव से इतनी दूर आई क्यों ?'

नन्दिनी की व्यंग्य वाणी और होठों पर कुटिल हास्य देकर कलिंग-सेना भी हँस दी । हँसकर कहा—'केवल आपको देखने के लिए ।'

'मुझे तो देख लिया, अब पतिदेव को भी तो देखना ।'

'उसकी मुझे साध नहीं है ।'

'नारी-जन्म लेकर ऐसी बात ?'

'नारी जन्म ही से क्या हुआ ?'

'हुआ क्यों नहीं ? नारी का जन्म पाया तो पुरुष को आत्मार्पण भी

करो।'

'यह तो स्त्री-पुरुष का नैसर्गिक आदान-प्रतिदान है।'

'वह गान्धार में होगा हला, यहाँ केवल स्त्री ही आत्मार्पण करती है, पुरुष नहीं। पुरुष स्त्री को केवल आश्रय देता है।'

'आश्रय ? छी ! छी ! मैं गान्धारकन्या हूँ देवी नन्दिनी, मुझे आश्रय नहीं, आत्मार्पण चाहिए।'

'यह तो युद्ध-घोषणा है हला।'

'जो कुछ भी हो।'

'अब समझीं, तो कोशलपति से युद्ध करोगी।'

'यह नहीं, मैं पिता का भय और माता की अश्रुपूर्ण आँखें नहीं देख सकी। कोशलपति ने सीमांत पर सेनाएँ भेजी थीं और साकेत का सार्थ-मार्ग गान्धारों के लिए बन्द कर देने की धमकी दी थी। इस प्रकार गान्धारों के लिए सुदूरपूर्व के व्यापार का अवरोध होना गान्धारों ही के लिए नहीं, उत्तर कुरु और यवन–पर्शुपुरी के सम्पूर्ण प्रतीची देशों के विनिमय का घातक था। इसका निर्णय गान्धारों का खड्ग कर सकता था। परन्तु मैंने अपने प्रिय जनों के रक्त की अपेक्षा अपनी आत्मा का हनन करना ही ठीक समझा। हम गान्धार राजा और प्रजा सब परिजन हैं। यहाँ के रज्जुलों के समान हम प्रजा को अपना दास नहीं समझते, न बात-बात पर उनका रक्त बहाना ही श्रेयस्कर समझते हैं। हम युद्ध करते हैं सखी, परन्तु तभी, जब वह अनिवार्य हो जाता है। एक गान्धार-पुत्री के आत्मदान से यदि युद्ध से मुक्ति मिले, तो यह अधिक युक्तियुक्त है। इसी से पिता से मैंने सहमति प्रकट की और इस प्रकार मैंने बहुत बड़े संघर्ष से गान्धारों को बचा लिया।'

'और कोशल की जीर्णशीर्ण प्रतिष्ठा को भी। सम्भवतः गान्धारों के युद्धवेग को कोशल न संभाल सकते। बड़े घरों के बड़े छिद्र होते हैं सखी, कोशल के अधिपति जैसे जीर्णशीर्ण और जरा-जर्जरित हैं वैसा ही उनका सैन्यबल भी है। एक धक्के ही में वह ढह सकता था।'

'यह हम गान्धारों को विदित है हला। जहाँ सैनिकों को वेतन देकर राजभक्ति मोल ली जाती है, जहाँ राजा अपने को स्वामी और प्रजा को अपना दास समझता है, वहाँ बहुत छिद्र होते ही हैं। परन्तु गान्धार विजयप्रिय नहीं हैं, व्यवस्था-प्रिय हैं। उन्हें साम्राज्यों की स्थापना नहीं करनी, जीवन-व्यवस्था करनी है। इसीसे हम सब छोटे-बड़े एक हैं, समान हैं। हम प्रजा पर शासन नहीं करते, मिलकर व्यवस्था करते हैं। वास्तव में गान्धारों में राजा और प्रजा के बीच स्वामी-सेवक भाव है ही नहीं। गन्धार में हम स्वतन्त्र, सुखी और मानवता तथा नागरिकता के अधिकारों से युक्त हैं। परन्तु कोशल सैन्य ने सम्राट् बिम्बसार को कैसे पराजित कर दिया ?'

'सम्राट् बिम्बसार अपनी ही मूर्खता से पराजित हुए। उन्होंने आर्य वर्षकार का अनुरोध नहीं माना। उधर चम्पा में सेनापति चण्डभद्रिक फँसे हुए थे। सम्राट् अपने ही बलबूते पर यह दुस्साहस कर बैठे। वास्तव में उन्हें विश्वास था कि महाराज उदयन तुम्हारे लिए कोशल से अवश्य युद्ध छेड़ देंगे। वे इसी सुयोग से लाभ उठाना चाहते थे।'

'कौशाम्बीपति ने सीमान्त पर सैन्य भेजी थी, परन्तु मैंने ही उन्हें निवारण कर दिया।

'सीमान्त पर उनकी सैन्य अब भी पड़ी है। परन्तु आर्य यौगन्धरायण ने किसी कारण से युद्ध छेड़ना ठीक नहीं समझा। न जाने वे अब भी किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, या इस विलम्ब में उनकी कोई गुप्त अभिसन्धि है। किन्तु यही सम्राट् बिम्बसार का दुर्भाग्य था। उधर बन्धुल और बन्धुल बन्धुओं ने हूण सैन्य को अच्छा व्यवस्थित कर दिया था। सम्राट् को इसकी स्वप्न में भी आशा नही थी। नहीं तो वे चण्डभद्रिक की प्रतीक्षा करते। जो हो, अब विजयी वीर पति की प्राप्ति पर मैं तुम्हें बधाई देती हूँ सखी।'

'खेद है कि मैं अकिञ्चन उसे स्वीकार नहीं कर सकती।'

नन्दिनी ने हँसकर कहा—'हला, कोशल की राजमहिषियों में परि-

गणित होना परम सौभाग्य का विषय है।'

'परन्तु गान्धारकन्या का तो वह दुर्भाग्य ही है। मैं गान्धारकन्या हूँ। हम लोग पति सहयोग के अभ्यासी हैं।'

'परन्तु यहाँ आर्यों में स्त्री प्रदत्ता है हला। उसका पति अनेक स्त्रियों का एक ही काल में पति हो सकता है।'

'परन्तु गन्धार में एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री नहीं आ सकती।'

'तो बहिन, उत्तर कुरुओं की पुरानी परिपाटी अभी वहाँ है ?'

'वही क्यों ? पर्शुपुरी के पार्शवों और एथेन्स के यवनों में भी ऐसा ही है। वहाँ स्त्री पुरुष की जीवनसंगिनी है।'

यहाँ कोशल, मगध, अंग, बंग और कलिंग में तो कहीं भी ऐसा न पाओगी। यहाँ स्त्री न नागरिक है, न मनुष्य। वह पुरुष की क्रीता सम्पत्ति और उसके विलास की सामग्री है। पुरुष का उसके शरीर और आत्मा पर असाधारण अधिकार है।'

'परन्तु मैं देवी नन्दिनी, यह कदापि न होने दूंगी। मैंने आत्मबलि अवश्य दी है, पर स्त्रियों के अधिकार नहीं त्यागे हैं। मैं यह नहीं भूल सकती कि मैं भी एक जीवित प्राणी हूँ, मनुष्य हूँ, समाज का एक अंग हूँ, मनुष्य के सम्पूर्ण अधिकारों पर मेरा भी स्वत्व है।'

'यह सब तुम कैसे कर सकोगी ? जहाँ एक पति की अनेक पत्नियाँ हों, उपपत्नियाँ हों और वह किसी एक के प्रति अनुबंधित न हो, पर उन सबको अनुबंधित रखे, वहाँ मानव-समानता कहाँ रही बहिन ? यह 'पति' शब्द ही कैसा घृणास्पद है। हमारी विवश दासता की सारी कहानी तो इसी एक शब्द में निहित है।'

'यह कठिन अवश्य है देवी नन्दिनी, परन्तु मैं किसी पुरुष को 'पति' नहीं स्वीकार कर सकती। पुरुष स्त्री का पति नहीं, जीवनसंगी है। 'पति' तो उसे सम्पत्ति ने बनाया है। सो जब मैं उसकी सम्पत्ति का भोग नहीं करूँगी, तो उसे पति भी नहीं मानूंगी।'

'परन्तु कोशल के अन्तःपुर में तुम इस युद्ध में विजय प्राप्त कर

सकोगी ?'

'मैं युद्ध करूँगी ही नहीं देवी नन्दिनी । कोशलपति ने यही तो कहा है कि यदि गान्धारराज अपनी पुत्री मुझे दे, तो कोशल राज्य गन्धार का मित्र है । सो गन्धार ने अपना कार्य किया, उसका मैंने विरोध नहीं किया । अब मेरे साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए, मेरे क्या-क्या अधिकार हैं, यह मेरा अपना व्यक्तिगत कार्य है । इसमें मैं किसी को हस्तक्षेप नहीं करने दूंगी ।'

'किन्तु जीवनसंगी ?'

'ओह देवी नन्दिनी, जीवनसंगी जीवन में न मिले तो अकेले ही जीवन-यात्रा की जा सकती है । अन्ततः बलिदान में कुछ त्याग तो होता ही है ।'

'कुछ नहीं, बहुत । तो हला कलिंग, तुम्हारा सदुद्देश्य सफल हो । मैं दासी-पुत्री न होती तो मैं भी यह करती, परन्तु अब तुम्हारी सहायता करूँगी ।'

इसी समय एक चेरी ने आकर निवेदन किया—'राजकुमार दर्शनों की आज्ञा चाहते हैं ।'

'आएं यहाँ ।' नन्दिनी ने कहा ।

राजकुमार विदूडभ ने आकर माता को अभिवादन किया ।

नन्दिनी ने हंसकर कहा—

'यह तुम्हारी नई मां है पुत्र, इनका अभिवादन करो ।'

विदूडभ ने कहा—

'पूज्ये, अभिवादन करता हूँ ।'

'यह तुम्हारा अनुगत पुत्र है हला, आयु में तुमसे तनिक ही अधिक है । परन्तु यह देखने ही में इतना बड़ा है, यह वास्तव में नन्हा-सा बालक है ।' नन्दिनी ने विनोद से कहा ।

कलिंगसेना ने हँसकर कहा—

'आयुष्मान् के वैशिष्ट्य को बहुत सुन चुकी हूँ । कामना करती हूँ,

आयुष्मान् पूर्णाभिलाष हों।'

'चिरवाधित हुआ। इस श्रावस्ती के राजमहल में हम दो व्यक्ति तिरस्कृत थे, अब सम्भवतः तीन हुए।'

'मैंने समझा था, मैं अकेली हूँ, अब तुम्हें और देवी नन्दिनी को पाकर मैं बहुत सुखी हुई हूँ।'

देवी नन्दिनी ने उठते हुए कहा—

'हला कलिंग, मैं अब जाती हूँ, परन्तु एक बात गाँठ बांधना। इस राजमहालय में एक पूजनीया हैं, मल्लिका पट्टराजमहिषी। वे मेरी ही भाँति एक नगण्य माली की बेटी हैं, पर मेरी भाँति त्यक्ता नहीं। वे परम तपस्विनी हैं। उनके धैर्य और गरिमा का अन्त नहीं है। उनकी पद-वन्दना करनी होगी।'

'पूज्य-पूजन से मैं असावधान नहीं हूँ देवी नन्दिनी। मैंने महालय में आते ही राजमहिषी का अभिवादन किया था।'

'तुम सुखी रहो बहिन।'

यह कह कर नन्दिनी चली गई। विदूडभ ने भी प्रणाम कर प्रस्थान किया।

५१ :: वर्षकार का यन्त्र

सम्राट् ने राजधानी में लौट कर देखा, अवन्तिपति चण्डमहासेन प्रद्योत ने राजगृह को चारों ओर से घेर लिया था। नगर का वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। सम्राट् थकित और अस्त-व्यस्त थे। राजधानी में महामात्य उपस्थित नहीं थे, न सेनापति चण्डभद्रिक ही थे। सेना की व्यवस्था भी ठीक न थी। चम्पा में फैली हुई सैन्य लौटी न थी और

सेना का श्रेष्ठ भाग श्रावस्ती में बिखर गया था। सम्राट् ने तुरन्त उप-सेनापति उदायि को बुलाकर परामर्श किया।

सम्राट् ने कहा—

'भणे सेनापति, यह तो विपत्ति-ही विपत्ति चारों ओर दीख रही है। मालवपति ने राजगृह को घेरा है, हम विपन्नावस्था में हैं ही, अब तुम कहते हो कि मथुरापति अवन्तिवर्मन प्रद्योत की सहायता करने आ रहा है।'

'ऐसा ही है देव।'

'तो भणे सेनापति, ये दोनों ग्रह परस्पर मिलने न पाएं, ऐसा करो।'

'किन्तु देव, आर्य महामात्य का कड़ा आदेश है कि युद्ध किसी भी दशा में न किया जाय।'

'उन्होंने यह आदेश किस आधार पर दिया है?'

'अपने यन्त्र के आधार पर।'

'वह यन्त्र क्या है?'

'उसे गुप्त रखा गया है।'

'कौन उसके सूत्रधार हैं?'

'आचार्य शाम्बव्य काश्यप।'

'तो भणे सेनापति, काश्यप को देखना चाहता हूँ।'

'परन्तु काश्यप राजधानी में नहीं हैं।'

'कहाँ हैं?'

'अमात्य ने उन्हें छद्म रूप में कहीं भेजा है?'

'आर्य अमात्य यह सब क्या कर रहे हैं? भणे सेनापति, करणीय या अकरणीय?'

'करणीय देव।'

'तो फिर हमें सम्प्रति क्या करणीय है?'

'अमात्य की प्रतीक्षा।'

'जैसे हम लोग कुछ हैं ही नहीं, सब कुछ अमात्य ही हैं।'

'देव क्या युद्ध करना चाहते हैं?'

'भणे सेनापति, युद्ध हम दो सम्मिलित सैन्यों से कैसे कर पाएंगे ? हमारे पास सेना कहाँ है ?'

'देव, मैं किसी असम्भाव्य की प्रतीक्षा में हूँ।'

'कब ?'

'किसी भी क्षण।'

इस समय एक चर ने आकर सूचना दी—'देव, शत्रु रातोंरात नगर का घेरा छोड़ भाग गया। उसकी सेना अत्यन्त विपन्नावस्था में भाग रही है।'

'यह कैसा चमत्कार है सेनापति ? चर, क्या कुछ और भी कहना है ?'

'देव, आचार्य शाम्बव्य ने आश्वासन भेजा है कि प्रद्योत की ओर से देव निश्चिन्त रहें। हाँ, जितनी सैन्य सम्भव हो सीमान्त पर तुरन्त भेज दें, वहां आर्य अमात्य अवन्तिवर्मन का अवरोध कर रहे हैं। परन्तु उनके पास सेना बहुत कम है।'

'बस, या और कुछ ?'

'देव, आचार्य ने कहा है कि प्रद्योत को अपने ही सेनानायकों पर अविश्वास हो गया है। इसीसे वह रातोंरात अपने नीलगिरि हाथी पर चढ़ कर एकाकी ही भाग खड़े हुए हैं, उन्हें पकड़ने का यह अच्छा समय है।'

'तो भणे सेनापति, उसे पकड़ो और उसकी भागती हुई सैन्य को अव्यवस्थित और छिन्न-भिन्न कर दो। मैं अपनी अंगरक्षक सेना लेकर सीमान्त पर अमात्य की सहायता के लिए जाता हूँ। आप प्रद्योत के कार्य में कृतसंकल्प हो सीमान्त पर ससैन्य पहुँच जायं।'

'देव की जैसी आज्ञा। अब देव आज्ञा दें तो निवेदन करूं—अमात्य का यन्त्र मुझे विदित है।'

'पहले तो कहा था, गुप्त है ?'

'गुप्त था, चण्ड के पलायन तक।'

'तो कहो भणे, अमात्य ने कैसा यन्त्र किया कि प्रद्योत को इस प्रकार

भागना पड़ा ।'

'अमात्य ने प्रद्योत के अभियान की सूचना पाकर जहाँ-जहाँ स्कन्धावारयोग्य स्थान थे, वहाँ-वहाँ बहुत-सी मागधी स्वर्ण-मुद्राएँ प्रथम ही धरती में गढ़वा दी थीं ।'

'अरे, इसका अभिप्राय क्या था ?'

'उन्हीं स्थानों पर प्रद्योत के सहायक राजाओं और सेनानायकों ने डेरे डाले । तब प्रद्योत को भरमा दिया गया कि ये सब सेनानायक और राजा मगध के अमात्य से मिल गए हैं और बहुत-सा हिरण्य ले चुके हैं । खोजने पर मगधमुद्रांकित बहुत-सा हिरण्य उनकी छावनी से पृथ्वी में खोद निकाला गया ।'

'और इस भ्रम में प्रद्योत को किसने डाला ?'

'आचार्य काश्यप ने । वे मगध से विश्वासघात करके मालव सैन्य में चले गए थे । चण्डप्रद्योत उनका मित्र है ।'

सम्राट् ने हँसकर कहा—'भणे सेनापति, मगध को जैसे दो अप्रतिम सेनापति प्राप्त हैं, वैसे ही दो कूटनीतिज्ञ ये ब्राह्मण भी ।'

'ऐसा तो है ही देव । तो फिर मैं प्रद्योत को देखूं ।'

'अवश्य सेनापति और मेरी अंगरक्षक सेना भी तैयार रहे । मैं दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर कूच करूँगा ।'

'जैसी देव की आज्ञा ।'

५२ : : सोण कोटिविंश

शाक्यपुत्र गौतम विहार करते हुए साढ़े बारह सौ भिक्षु संघ के साथ राजगृह पहुँचे और गृध्रकूट पर्वत पर विहार किया । सर्वार्थक-आमात्य ने

मगधराज सैनिय बिम्बसार से निवेदन किया—'देव, शाक्यपुत्र श्रमण राजगृह में भिक्षुमहासंघ सहित छटी बार पधारे हैं और गृध्रकूट पर विहार कर रहे हैं। उनका मंगल यश दिगन्त-व्याप्त है, वह भगवान् अर्हत हैं। सम्यक् सम्बुद्ध हैं, विद्या और आचरण से युक्त सुगत हैं। देवताओं और मनुष्यों के शास्ता हैं। वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोक की देव-मनुष्य सहित, साधु-ब्राह्मणयुक्त सब प्रजा को यथावत् जानते हैं, वह आदि मध्य और अन्त में कल्याणकारक धर्म का अर्थ सहित, व्यञ्जना सहित उपदेश देते हैं। वे पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य के उपदेष्टा और जितेन्द्रिय महापुरुष हैं। ऐसे अर्हत का दर्शन करना उचित है। आगे जैसी देव की आज्ञा हो।'

सम्राट् ने उत्तर दिया—'तो भणे, तथागत के दर्शनों को चलना चाहिए। तुम बारह लाख मगध-निवासी ब्राह्मणों और गृहस्थों को, तथा अस्सी हजार गाँवों के मुखियों को सूचना दे दो, सब कोई महाश्रमण के दर्शनों को हमारे साथ चलें।'

सूचना-सचिव ने यही किया। उस समय चम्पा के सुकुमार सेट्ठिपुत्र सोण कोटिविंश राजगृह में सम्राट् के अतिथि थे। वे इतने सुकुमार थे कि उनके पैरों के तलुओं में रोम उग आए थे। इसी आश्चर्य को देखने के लिए सम्राट् ने सोण कोटिविंश को मगध में बुलाया था। उसने जब सुना कि सम्राट् महाश्रमण के दर्शनों को मागध जनपद सहित जा रहे हैं, तो उसने कहा—'देव, मुझे इस सौभाग्य से क्यों वंचित किया जाता है?' तब सम्राट् ने सोण कोटिविंश से इस जन्म के हित की बात कही। फिर कहा, 'भणे, मैंने तुम्हें इस जन्म के हित का उपदेश दिया, अब तुम्हें यदि जन्मान्तर के हित की बातें सुनने का चाव हो तो तुम जाओ उन भगवान् की सेवा में।'

इसके बाद श्रेणिक सम्राट् बिम्बसार सोण को आगे करके सम्पूर्ण राज परिजन, पौर जानपद को संग ले गृध्रकूट पर्वत पर जहाँ भगवान् गौतम विहार कर रहे थे, पहुँचे।

उस समय आयुष्मान् स्वागत भगवान् गौतम के उपस्थाक थे। उनके निकट जाकर सूचना-सचिव ने निवेदन किया—'भन्ते, यह श्रेणिक सम्राट् विम्बसार, सोण कोटिविंश, समस्त राज परिजन पौर जानपद सहित महाश्रमण के दर्शन को आ रहे हैं। आप महाश्रमण को सूचित कर दीजिए।'

'तो आयुष्मान्, मुहूर्त भर आप लोग यहीं ठहरें, मैं भगवान् से निवेदन करूँ।' इतना कह आयुष्मान् स्वागत ने अर्द्धचन्द्र पाषाण में प्रवेश किया और ध्यानस्थ बुद्ध से निवेदन किया कि सम्राट् सपरिवार भगवान् का दर्शन किया चाहते हैं। सो भगवान् अब जिसका काल समझें।'

'तो स्वागत, विहार की छाया में आसन विछा।'

'अच्छा भन्ते' कहकर आयुष्मान् स्वागत ने सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी। जब महाश्रमण विहार से निकलकर आसन पर बैठ गए तो उसने सम्राट् को सूचना दी। सम्राट् सम्मुख आ, अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। इसके बाद सब लोग यथास्थान कोई हाथ जोड़कर, कोई मौन होकर, कोई प्रदक्षिणा करके बैठ गए।

महाश्रमण ने उन्हें सम्बोधितकर दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, काम भोगों के दुष्परिणाम, उपकार, मालिन्य और काम-भोगों से रहित होने के गुणों का वर्णन किया, जिससे श्रावक जन भव्यचित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादितचित्त और आल्हादितचित्त हो गए। तब अवसर जान महाश्रमण ने दुःख, दुःख का कारण, दुःख का नाश और दुःख के नाश का उपाय प्रकट किया। तब सम्राट्, राजवर्ग, पौर जानपद सब के—'जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशवान् है, यह विमल विरज निर्मल धर्मचक्षु जहाँ जो बैठा था, उसे उसी आसन पर उत्पन्न हुआ।' तब तथागत ने दृष्टधर्म, प्राप्तधर्म, विदितधर्म, पर्यवगाढ़धर्म का विशद व्याख्यान किया।

इस पर बारह लाख मगध निवासी और अस्सी हजार ग्राम-मुखिया तथा समस्त राजवर्गीजन संदेहरहित हो संघ, धर्म और बुद्ध के अञ्जलि-

बद्ध शरणागत उपासक हो गए ।

सोण कोटिविंश चुपचाप सुन रहा था । उसने सोचा, महाश्रमण ने जिस सुविख्यात धर्म का वर्णन किया है, वह सर्वथा परिपूर्ण, शुद्ध और उज्ज्वल ब्रह्मचर्यसाधन बिना सुकर नहीं है । ब्रह्मचर्यसाधन के निमित्त मुझे परिव्राजक होना उचित है ।

जब सम्राट् राजवर्ग, पौरजानपद, महाश्रमण के भाषण का अभिनन्दन कर आसन से उठ, उनकी प्रदक्षिणा कर चले गए, तब सोण कोटिविंश अपने आसन से उठकर महाश्रमण के निकट आया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । जब तथागत ने उसकी ओर दृष्टि की, तब उसने करबद्ध प्रार्थना की—'भगवन्, मैंने भगवान् के उपदेश-धर्म को जिस प्रकार समझा है, उससे जान पड़ता है कि घर में रहकर ब्रह्मचर्य सुकर नहीं है । अतः मैं सिर-दाढ़ी मुड़ाकर, काषाय वस्त्र पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ चाहता हूँ । भन्ते, मुझे प्रव्रज्या दें ।'

सोण कोटिविंश ने प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई । उसे सीतवन में विहार के लिए स्थान मिला । परन्तु वह सुकुमार सेट्ठि कुमार कभी पाँव-प्यादे नहीं चला था, इसीसे उसके पैरों के तलुओं में रोम उग आए थे । अब नंगे पैर कठोर पृथ्वी पर चलने से उसके पैर लोहूलुहान हो गए और धरती लोहू से भर गई ।

तथागत ने यह देखा । वे उस रक्त से भरे मार्ग पर सोण के पदचिन्ह देखते हुए सीतवन में, जहाँ सोण का विहार था, पहुँचे ।

वहाँ सोणकुमार एकांत में बैठा यह सोच रहा था—'भगवान् के जितने उद्योग-परायण विहरनेवाले शिष्य हैं, मैं उनमें एक हूँ । फिर भी मेरा मन आश्रवों को छोड़कर मुक्त नहीं हो रहा है । मेरे घर में भोग-सामग्री है, वहाँ रहते मैं भोगों को भी भोग सकता हूँ और पुण्य भी कर सकता हूँ । तब क्यों न मैं लौटकर गृहस्थ हो भोगों का उपभोग करूँ, और पुण्य भी करूँ ?'

तभी भगवान् बुद्ध अनेक भिक्षुओं के साथ वहाँ पहुँच गए । सोण ने

भगवान् का समुत्थानपूर्वक स्वागत किया, आसन दिया। स्वयं एक ओर बैठ गया। स्वस्थ होने पर श्रमण बुद्ध ने कहा--

'क्यों सोण, एकांत में क्या सोच रहे हो ?'

सोण ने अपने मन का विकार निवेदन कर दिया। तथागत ने कहा—

'क्यों सोण, क्या तू पहले गृहस्थ होते समय वीणा बजाने में चतुर था ?'

'हाँ भन्ते।'

'तो सोण, जब तेरी वीणा के तार खूब खिंचे होते थे, तभी तेरी वीणा स्वरवाली होती थी ?'

'नहीं भन्ते।'

'और जब वे तार खूब ढीले होते थे तब ?'

'तब भी नहीं भन्ते।'

'किन्तु जब तार ठीक-ठीक आरोह-अवरोह पर होते थे तब ?'

'तब तो भन्ते, वीणा ठीक स्वर देती थी।'

'तो इसी प्रकार सोण, अत्यधिक उद्योग-परायणता औद्धत्य को उत्पन्न करती है। इसलिए सोण तू, उद्योग में समता को ग्रहण कर। इन्द्रियों के सम्बन्ध में समता को ग्रहण कर और वहाँ कारण को ग्रहण कर।'

'अच्छा भन्ते।'

'तो सोण, तू सुकुमार है, तुझे अनुमति देता हूँ, एक तल्ले का जूता पहन।'

'भन्ते, मैं अस्सी गाड़ी हिरण्य और हाथियों के सात अनीक को छोड़ कर घर से बेघर हो परिव्रजित हुआ हूँ। अब कहनेवाले कहेंगे, सोण कोटिविंश अस्सी गाड़ी स्वर्ण मुहर और हाथियों की सात अनीक को छोड़कर परिव्रजित हुआ, सो वह अब एक तल्ले के जूते में आसक्त हुआ है। सो भगवान् यदि भिक्षु-संघ के लिए भी अनुमति दे दें, तो मैं भी एक तल्ले का जूता ग्रहण करूँगा, नहीं तो नहीं।

भगवान् ने फिर भिक्षु-संघ को एकत्र किया, तथा इसी प्रकरण में, इसी प्रसंग में अनेक कथाएँ कहकर भिक्षुओं को एक तल्ले के जूते पहनने की अनुमति दे दी।

५३ :: गृहपति अनाथपिण्डिक

श्रावस्ती का अनाथपिण्डिक सुदत्त सेट्ठि राजगृह में इसी समय अपने किसी काम से आया था। राजगृह में उसकी पत्नी का भाई गृहपति था। उस दिन राजगृह के श्रेष्ठी ने तथागत बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था और वह उसकी व्यवस्था में ऐसा संलग्न था कि अपने सम्मान्य बहनोई का भी स्वागत-सत्कार भूल गया। वह दासों और कर्म्मकरों को आज्ञा दे रहा था—'भणे, समय पर ही उठकर खिचड़ी पकाना, भात बनाना, सूपतेमन तैयार करना ··।'

अनाथपिण्डिक सेट्ठि ने मन में सोचा—'पहले मेरे आने पर यह सब काम छोड़ मेरी ही आवभगत में लगा रहता था, आज वह विक्षिप्तों के समान दासों और कर्म्मकरों को आज्ञा पर आज्ञा दे रहा है। क्या इसके घर आवाह होगा? या विवाह होगा? या महायज्ञ होगा? या सब राजपरिजन के सहित श्रेणिक सम्राट् बिम्बिसार को इसने कल के लिए निमन्त्रित किया है?'

इतने ही में गृहपति ने आकर अपने बहनोई के साथ प्रति सम्मोदन किया और निकट बैठ गया। तब सेट्ठि अनाथपिण्डिक ने कहा—

'भणे गृहपति, पहिले मेरे आने पर तुम सब काम-धन्धा छोड़कर मेरी आवभगत में लग जाते थे, परन्तु आज यह क्या है? क्या तुम्हारे यहां आवाह है, या विवाह है अथवा सम्राट् बिम्बिसार निमन्त्रित हैं?'

'नहीं, गृहपति, मेरे यहाँ न आवाह है, न विवाह, न मगधराज निमन्त्रित हैं। मेरे घर कल बड़ा यज्ञ है, संघसहित बुद्ध कल के लिए

निमन्त्रित हैं।'

'गृहपति, तू 'बुद्ध' कह रहा है ?'

'गृहपति, हाँ, 'बुद्ध' कह रहा हूँ।'

'गृहपति, 'बुद्ध' कह रहा है ?'

'गृहपति, हाँ, 'बुद्ध' कह रहा हूँ।'

'गृहपति, क्या 'बुद्ध' कह रहा है ?'

'गृहपति, हाँ, 'बुद्ध' कह रहा हूँ।'

'गृहपति, 'बुद्ध' शब्द लोक में दुर्लभ है। तू जिसे 'बुद्ध' कहता है, क्या मैं उसे देखने अभी जा सकता हूँ ?'

'अभी नहीं गृहपति। यह समय उन सम्यक् अर्हत् भगवान् सम्यक्, सम्बुद्ध के दर्शनार्थ जाने का नहीं है। प्रत्यूष में सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शन होंगे।'

इसके बाद गृहपति सेट्ठि अपने प्रतिष्ठित अतिथि बहनोई के आहार-विश्राम की व्यवस्था करके फिर बुद्ध के कल के निमन्त्रण-प्रबन्ध में रात भर जुटा रहा। अनाथपिण्डिक गृहपति को भी रात भर नींद नहीं आई। वह रात को ही सबेरा समझकर तीन बार उठा और सो रहा। अन्त को रात ही में वह राजगृह के शिवक द्वार पर पहुँचा। अ मनुष्यों ने द्वार खोल दिया। प्राचीरके बाहर निकलते ही वह अन्धकार और सुनसान देख भीत हो गया। उसके रोंगटे खड़े हो गए। इच्छा हुई कि पीछे लौट जाय। परन्तु उसके कानों में एक दिव्य ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने मानो सुना—'सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ खच्चरों के रथ, मणिकुण्डल पहने सौ हजार कन्याएँ उसके एक पद के कथन के सोलहवें भाग के मूल्य के बराबर भी नहीं हैं। चला चल गृहपति, चला चल, चलना ही श्रेयस्कर है। लौटना नहीं।'

सेट्ठि के हृदय में प्रकाश उदय हुआ। वह चलता ही गया, गृध्रकूट पर जाकर उसने देखा—सम्यक् सम्बुद्ध प्रत्यूषकाल में उठकर चंक्रमण में टहल रहे हैं। उन्होंने दूर से आते हुए अनाथपिण्डिक को देखा। देख

कर चंक्रम से उलटकर, बिछे आसन पर बैठकर आते हुए अनाथपिण्डिक से कहा—

'आ सुदत्त।'

अनाथपिण्डिक गृहपति तथागत को अपना नाम लेकर पुकारते सुन हृष्ट, उदग्र हो निकट जा चरणों में सिर से पड़कर बोला—

'भन्ते, भगवान् को सुख से निद्रा तो आई ?'

'निर्वाणप्राप्त सदा सुख से सोता है। वह शीतल तथा दोषरहित है, काम-वासनाओं में लिप्त नहीं है, सारी आसक्तियों को खण्डितकर, हृदय से भय को दूर कर, चित्त की शान्ति को प्राप्तकर, उपशान्त हो वह सुख से सोता है।'

तब तथागत ने अनाथपिण्डिक गृहपति को आनुपूर्वी कथा कही। इससे गृहपति अनाथपिण्डिक को, उसी आसन पर जो कुछ समुदय धर्म है, वह निरोध-धर्म है, यह विमल विरज चक्षु उत्पन्न हुआ। तब उसने शास्ता के शासन में स्वतन्त्र हो कहा—'भवगन्, मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और संघ की शरण जाता हूँ, आज से मुझे भगवान् साञ्जलि शरण आया उपासक ग्रहण करें और भिक्षुसंघ सहित मेरा कल का निमन्त्रण स्वीकार करें।'

तथागत ने मौन सहित स्वीकार किया। तब गृहपति अनाथपिण्डिक आसन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा और अभिवादन कर चला आया।

राजगृह के गृहपति ने सुना कि अनाथपिण्डिक गृहपति ने कल भिक्षुसंघ को आमन्त्रित किया है, तब उसने कहा—'गृहपति, तुम आग-न्तुक हो और तुमने कल भिक्षुसंघ को आमन्त्रित किया है, इसलिए मैं खर्च देता हूँ, उसी से संघ के भोजन की व्यवस्था करो।'

अनाथपिण्डिक गृहपति ने अस्वीकार करते हुए कहा—'गृहपति, मेरे पास खर्च है।'

फिर राजगृह के नैगम ने सुना और खर्च देने का आग्रह किया। सम्राट् ने भी सुनकर अमात्य भेजकर खर्च देने के लिए कहा, किन्तु सेट्ठि

अनाथपिण्डिक ने अस्वीकार करते हुए कहा—'नहीं, खर्च मेरे पास है।'

उसने भोजन की ठाठदार व्यवस्था राजगृह के सेट्ठि के घर पर करके श्रमण को सूचना दी—

'समय है भन्ते, भात तैयार हो गया।'

तब भगवान् बुद्ध पूर्वान्ह के समय सु-आच्छादित हो, पात्र-चीवर हाथ में ले, राजगृह के सेट्ठि के मकान पर आए। भिक्षुसंघ सहित आसन पर बैठे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने बुद्ध सहित भिक्षुसंघ को अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्य से संतृप्त कर, पूर्णकर, भगवान् के भोजनकर, पात्र से हाथ खींच लेने पर स्वस्थचित्त होकर कहा—

'भगवान्, भिक्षुसंघ सहित श्रावस्ती में वर्षावास स्वीकार करें।'

'शून्यागार में गृहपति, तथागत अभिरमण करते हैं।'

'समझ गया भगवन्, समझ गया सुगत।'

अनाथपिण्डिक गृहपति बहुमित्र, बहुसहाय और प्रामाणिक था। राजगृह में जब वह अपना काम समाप्त कर चुका और श्रावस्ती को चल पड़ा तो उसने मार्ग में मित्रों तथा परिचित जनों से कहा—'आर्यो, आराम बनवाओ, विहार प्रतिष्ठित करो। लोक में बुद्ध उत्पन्न हो गए हैं। उन्हें मैंने आमन्त्रित किया है, वे इसी मार्ग से आएँगे।'

तब अनाथपिण्डिक गृहपति से प्रेरणा पाकर लोगों ने आराम बनवाए, विहार प्रतिष्ठित किए, सदावर्त लगवाए। जो धनी थे उन्होंने अपने धन से बनवाया, जो निर्धन थे उन्हें गृहपति ने धन दिया। इस प्रकार राजगृह से श्रावस्ती तक पैंतालीस योजन के रास्ते में योजन-योजन पर वह विहार बनवाता हुआ श्रावस्ती गया। श्रावस्ती पहुँचकर उसने विचार किया—भगवान् कहाँ निवास करेंगे? ऐसी जगह होनी चाहिए जो बस्ती से न बहुत दूर हो, न बहुत समीप हो, जाने-आनेवालों के लिए सुविधा भी हो। दिन को भीड़-भाड़ न रहे, रात को विजन-वात, अल्प-शब्द, अल्प-निर्दोष, मनुष्यों से एकान्त ध्यान के उपयुक्त हो।

उसका ध्यान जैत राजकुमार के जैत-उद्यान की ओर गया। उसे

वही स्थान सब भाँति उपयुक्त जँचा। उसने जैत राजकुमार से कहा—

'आर्यपुत्र, मुझे आराम बनाने के लिए अपना उद्यान दीजिए।'

'गृहपति, कोटि-संथार से भी वह अदेय है।'

'तो आर्यपुत्र, मैंने आराम ले लिया।'

'नहीं गृहपति, तूने नहीं लिया।'

लिया या नहीं लिया, इसकी न्याय-व्यवस्था के लिए वह व्यवहार-अमात्यों के पास गया। उन्होंने कहा—

'आर्यपुत्र ने क्योंकि मोल किया, इसलिए आराम ले लिया।'

तब गृहपति अनाथपिण्डिक ने गाड़ियों पर हिरण्य ढुलवाकर जैतवन में 'कोटि संथार' बिछा दिया। एक बार के लाए हिरण्य से द्वार के कोठे के चारों ओर का थोडा-सा स्थान पूरा न हुआ। तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने अपने मनुष्यों को आज्ञा दी—'जाओ भणे, हिरण्य और ले आओ, हम इस सारी भूमि पर स्वर्ण बिछाएँगे।'

जैत राजकुमार ने देखा—गृहपति इतना स्वर्ण खर्च कर रहा है। तब यह कार्य अत्यन्त महत्त्व का होगा। तब उसने अनाथपिण्डिक गृहपति से कहा—'बस गृहपति, तू इस खाली स्थान को स्वर्ण से मत ढाँप, यह खाली जगह मुझे दे। यह मेरा दान होगा।'

इस पर गृहपति अनाथपिण्डिक ने सोचा—यह जैतकुमार गण्यमान्य प्रसिद्ध पुरुष है। इस धर्म-विनय में इनका प्रेम लाभदायक होगा और वह स्थान जैतकुमार को दे दिया। तब जैतकुमार ने उस स्थान पर कोठा बनवाया। अनाथपिण्डिक ने जैतवन में विहार बनवाए, परिवेण बनवाए, कोठियाँ, उपस्थान, शालाएँ, अग्निशालाएँ, काल्पिक कुटिया, वच्चकुटी, वच्चकूप, पिशावखाने, चंक्रमण स्थान, चंक्रमणशालाएँ, प्याऊ, प्याऊघर, जंताघर, जंताघरशालाएँ, पुष्करिणियां, मण्डप आदि बनवाए।

सेट्ठि का जैतवन को स्वर्ण से ढाँपने में १८ करोड़ मुहरों का एक चहबच्चा खाली हो गया और ८ करोड़ स्वर्ण खर्च करके उसने आठ करीष भूमि में विहार आदि बनवाए और सब भिक्षु-संघ के चीवर,

पिण्डपात, शयनासन, ग्लान प्रत्यय, भैषज्य, आदि परिष्कारों से सत्कृत होने की व्यवस्था कर दी।

५४ : : मगध-महामात्य की कूटनीति

सम्राट् की आज्ञा से तथागत बुद्ध के लिए त्रिकूट पर एक विशाल विहार बनवाना प्रारम्भ हुआ, जिसमें सहस्रों शिल्पी कार्यरत थे। सम्राट् और साम्राज्य दोनों ही महाश्रमण गौतम के चरणसेवक थे। चम्पा का सुकुमार सेट्ठिकुमार कोटिविंश सोण जब अपनी इतनी सम्पदा को त्याग कर परिव्राजक हो गया, तो उसका जनसाधारण पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा। यों भी इस बार तथागत गौतम के भिक्षुसंघ में बड़े-बड़े दिग्गज नामांकित विद्वान् पण्डित भिक्षु रूप में उनके साथ थे, जिनमें पूर्णकाश्यप, मक्खली गोशाल, अजित के सकम्बली, प्रक्रुद्धकात्यायन, संजयवेलाट्ठपुत्त, सारिपुत्त, मोद्गलायन, पिण्डोत भारद्वाज आदि प्रमुख थे। महाश्रमण के दर्शन करने, उनके पुण्य उपदेश सुनने को नर-नारियों का ताँता लगा रहता था। इस समय राजगृह में केवल दो ही बातों की चर्चा थी, एक चण्डप्रद्योत के राजगृह पर आक्रमण और अकस्मात् पलायन की, दूसरे श्रमण गौतम की, जिनके नवीन धर्म के नीचे समस्त पौर जानपद और राजवर्ग समान रूप से नत-मस्तक हो गया था। बड़े-बड़े राजकुमार, सेट्ठिपुत्र छोटे-बड़े तरुण अपने सम्पूर्ण विलास ऐश्वर्य त्यागकर भिक्षु बन रहे थे। चारों ओर भिक्षु ही भिक्षु दीख रहे थे। व्रात्यों, संकरों और अब्राह्मणों को उनका धर्म बहुत अनुकूल प्रतीत हो रहा था। अब तक ब्राह्मणों का जो धर्म बलात् प्रजा पर चिपकाया गया था, उससे जनपद को संतोष न था। ब्राह्मण धर्म से भीतर ही भीतर द्वेष-भावना देश में बहुत फैल

गई थी, क्योंकि उसमें निम्नश्रेणी के उपजीवियों के विकास का कोई अवसर ही न था। वास्तव में ब्राह्मण धर्म प्रजा का धर्म अब न था। वह राजाओं, ब्राह्मणो और सेट्ठियों का धर्म था। वही उससे लाभान्वित होते थे। वैदिक देवताओं के नाम पर जो बडे-बड़े खर्चीले यज्ञ किए जाते थे, उनसे राजा महाराज बनते तथा महाराज सम्राट् बनते थे। यह उनका लाभ था। पुरोहित मोटी-मोटी दक्षिणा पाकर इन राजाओं को देव कहकर पुकारते और भाग्यवाद का ढिंढोरा पीटकर लोगों की स्पर्द्धा को रोक रखते थे। सर्वसाधारण को उनके इन यज्ञानुष्ठानों के लिए दिग्विजय करने को अपने तरुण पुत्रों के प्राण भेंट करने पड़ते थे, तथा तरुण कुमारी पुत्रियाँ दासी के रूप में भेंट करनी पड़ती थीं। एवं अपनी गाढ़ी कमाई का स्वर्ण, चाँदी, अन्न, वस्त्र सब कुछ भेंट करना पड़ता था, जिन्हें राजा अपनी ओर से ब्राह्मणों को दान दे वाहवाही लूटते थे। इस प्रकार ब्राह्मण-धर्म राजतन्त्र का पोषक था, परन्तु बुद्ध ने प्रजातन्त्रीय भावना उत्पन्न कर दी थी। ब्राह्मण-धर्म में जो ऊंच-नीच का भेद था, उसे मिटाने में श्रमण गौतम ने बहुत प्रयास किया। उन्होंने बड़े-बड़े खर्चीले और आडम्बरपूर्ण यज्ञों के स्थान में आत्म-यज्ञ की महत्ता पर जोर दिया। व्रात्य, शंकर और विश—ये सभी ब्राह्मण-धर्म के बोझ से दबे थे। बुद्ध ने इनका उद्धार किया। ब्राह्मणेत्तर युवकों को उन्होंने श्रमण परिव्राजक बनाया। उन्हें ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की शिक्षा दी। देश के बड़े-बड़े सुकुमार कोट्याधिप युवक जब ऐश्वर्य त्यागकर श्रमण बन गए, तो घबराकर ब्राह्मणों ने आश्रमों की स्थापना की और यह प्रचार किया कि बिना गृहस्थ और वृद्ध हुए कोई परिव्राजक न हो।

तथागत का चेहरा कुछ पीत थकित और चिन्तित था। उनका शरीर कृश और वाणी कोमल थी। उनके अंग यौवन से परिपूर्ण थे। सम्पूर्ण अंग में एक सौंदर्य का प्रभाव प्रतिभासित होता था। वे बहुत भिनसार में ही आसन पर ध्यान-मुद्रा में बैठ जाते और भक्तजनों को आनुपूर्वी कथावार्ता सुनाकर सदुपदेश देते रहते थे। उनकी दृष्टि तेजवान् कूटस्थ

और स्थिर थी ।

आर्य वर्षकार ने पास पहुँच परिक्रमाकर सामने आ अभिवादन किया, और एक ओर बैठ गए । महाश्रमण ने प्रसन्न दृष्टि से मगध-महामात्य को देखा । मगध-महामात्य की दृष्टि में गहरी चिन्ता की रेखाएँ थीं । उन्होंने कहा—'भगवन्, साम्राज्य जनपद का सर्वश्रेष्ठ संगठन है न ?'

बुद्ध ने हँसकर कहा—'यदि वह जनपद के प्रति उत्तरदायी हो ।'

मगध-महामात्य कुछ देर चुप रहे, फिर उन्होंने कहा—'भन्ते, क्या वज्जियों का गणतन्त्र सुसम्पन्न है ?'

उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवत्-सेवा में उपस्थित थे । महाश्रमण कुछ देर चुप रहकर स्निग्ध वाणी से बोले—'आनन्द, वज्जीगण हर बार अपने संघ-सम्मेलन करते हैं न ?'

'भन्ते, मैंने ऐसा ही सुना है ।'

'और आनन्द, वे अपने गणसंघ में सब एकत्र होकर परामर्श करते हैं, एक साथ उठते, बैठते तथा मिलकर काम करते हैं न ?'

'ऐसा ही है भन्ते ।'

'वे नियमविरुद्ध कोई कार्य नहीं करते हैं न ?'

'यही सत्य है भन्ते ।'

'वे किसी मर्यादा का उल्लंघन तो नहीं करते ?'

'नहीं भगवन् ।'

'वे अपने पूर्वजों के कुल-धर्म का पालन करते हैं, पूज्य पूजन करते हैं, जेष्ठों की आज्ञा मानते हैं न ?'

'हाँ, भन्ते ।'

'वे कुलपत्नियों तथा कुल-कुमारिकाओं पर बलात्कार तो नहीं करते ? उनका अपहरण तो नहीं करते ?'

'नहीं भन्ते ।'

'वे अपने अभ्यन्तर एवं बाह्य चैत्यों की यथावत् अर्चना करते हैं ? उनकी ठीक-ठीक रक्षा तो करते हैं, बलि भोग देने में उदासीन तो नहीं हैं ?'

'नहीं भन्ते, नहीं ।'

'विद्वानों, अर्हतों का रक्षण, पालन यथावत् करते हैं ? वज्जियों के गणराज्य में साधुजन सुखी तो हैं ?'

'हाँ भन्ते ।'

'तो आनन्द, वज्जीजन जब तक ऐसा करते रहेंगे, तब तक उन्नत रहेंगे, उनकी अवनति नहीं हो सकती । उनके अवनत होने का भय नहीं है । वे समृद्ध होते जाएँगे ।'

मगध-महामात्य ने बुद्ध का संकेत गाँठ में बांध लिया । उन्होंने समझा कि वैशाली में फूट डालनी होगी । उनका एकमत भंग करना होगा । उन्होंने बंग, कलिंग, अवन्ती, कौशाम्बी, गन्धार, भोज, भरत, अस्सक, आन्ध्र, शवर, माहिष्मती, भृगुकच्छ, शूर्पाटक, अश्मक, प्रतिष्ठान और विदिशा को गुप्तचर भेजे । उन देशों की वैशाली के प्रति उदासीनता उन्हें बड़ी महत्वपूर्ण लगी । उन्होंने अपने गुप्तचर वैशाली में भी फैला दिए । कोई रत्न-पारखी होकर, कोई मूर्तिकार, कोई स्थापत्यकार होकर, वैशाली में जा बसे । अनेक नट, विट, वेश्याएँ, कुटनिएँ विदूषक और सत्री वैशाली में फैला दिए गए । वे वज्जी-परिषद् के सभ्यों की पारस्परिक कलह ईर्ष्या-द्वेष के कारणों का पता लगा-लगा कर संकेत सूचनाएँ भेजने लगे । विविध उपायों से वे उनमें कलह बढ़ाने लगे । वे सभ्य नागरिकों के वेष में शिल्पी, दूत, वणिकों के वेश में वैशाली भर में फैल गए । बहुतों ने मद्य की हाट खोल ली और वे छोटी-छोटी बातों पर लोगों में झगड़ा कराने लगे । तीक्ष्णचर मैनफल के रस से भरे मद्य के घड़े नैपेचिक कहकर सम्भ्रांत नागरिकों को देने लगे । अनेक बन्धविपोषक, प्लवक, नट, नर्तक और सौमिक लोग मुखियों को सुन्दर-सुन्दर कन्याओं पर आसक्त करके उन्मत्त कर-करके परस्पर लड़ाने लगे । वे एक सुन्दरी को किसी मुखिया पर लगाते । जब वह उस पर अनुरक्त हो जाता तो उसे दूसरे के पास भेज देते और पहले से कहते कि उसने उसे जबर्दस्ती रख छोड़ा है । इस प्रकार उनमें घातक युद्ध करा कर एक-दूसरे को मरवा डालने लगे । क्षण-क्षण पर

अमात्य के पास सन्देश आने लगे। अब वे इस घात में लगे कि कब और कैसे वैशाली को आक्रान्त किया जाय।

गुप्तचरों ने उन्हें वैशालीगण के सभी भीतरी भेद बता दिए थे। अन्त को कूटनीति के आगार वर्षकार ने अपनी योजना स्थिर की। गुप्तचरों को बहुत-सी आवश्यक बातें समझाकर वैशाली भेज दिया और उन्होंने मागधों की राजपरिषद् बुलाई। सम्राट् के लिए वैशाली का आक्रमण अब साम्राज्य-वर्द्धन का प्रश्न नहीं रह गया था। वे चाहे भी जिस मूल्य पर वैशाली को आक्रान्तकर अम्बपाली को राजगृह ले आकर पट्टराज-महिषी बनाने पर तुले थे। यद्यपि अपनी यह अभिसंधि उन्होंने अपने बाल-मित्र से भी गुप्त रखी थी, परन्तु अमात्य वर्षकार स्वयं ही उन्हें अम्बपाली के प्रति अभिमुख करते रहते थे।

वर्षकार की योजना थी कि प्रथम अवन्ती के चण्डप्रद्योत पर आक्रमण करके अरब-समुद्र तक साम्राज्य का विस्तार किया जाय। रोरुक सौवीर पर उनकी गृद्ध-दृष्टि थी ही। जिस प्रकार चम्पा सुदूरपूर्व के व्यापार का मुख था, उसी प्रकार रोरुक सौवीर तब पच्छिम का व्यापार मुख था। वहाँ यहूदी राजा सालोमन के जहाज स्वर्ण भरकर आते थे और बदले में वस्त्र, मसाले, हाथीदाँत और अन्य पदार्थ ले जाते थे। उत्तर पश्चिम में सागल का राजा मगध का मित्र था। वर्षकार ने बहुत से बहुमूल्य उपानय भेजकर यहूदी राजा सालोमन को भी प्रसन्न कर लिया था। अब उनके साम्राज्य के विस्तार में अवन्ती का चण्डप्रद्योत ही, एक काँटा था। वे विराट् चाहते थे, पहले उसी को समाप्त करके रोरुक सौवीर पर अधिकार करें तथा अरब-समुद्र तक उनके साम्राज्य का विस्तार हो जाय। इधर कोशल पर विफल आक्रमण होने से गन्धार और चम्पा की व्यापार-शृंखला टूट रही थी और कोशल में परास्त होने का बुरा परिणाम वैशाली पर भी देख पड़ा रहा था, इसीसे आर्य वर्षकार वैशाली से पहले अवन्ती पर अभियान चाहते थे। चाहे जिस कारण से भी हो, अमात्य और सम्राट् में इस विषय में विवाद बढ़ता ही गया और राज्य-

वर्गी जनों में भी यह अपवाद फैल गया कि आर्य-वर्षकार और सम्राट् में तीव्र मतभेद हो गया है। इसी समय उन्होंने मगध की राजपरिषद् को बुलाया।

५५ : : मागध-विग्रह

राजपरिषद् का वातावरण बहुत क्षुब्ध था। महामात्य आर्य वर्षकार पत्थर की निश्चल मूर्ति के समान बैठे थे। सम्राट् क्रोध से लाल हो रहे थे। सम्राट् ने कहा—

'मैं पूछता हूँ, किसकी आज्ञा से अवन्ती में दूत भेजा गया ?'

'मेरी आज्ञा से देव।'

'मेरी आज्ञा से क्यों नहीं ?'

'देव को राजनीति का ज्ञान नहीं है।'

'मैंने आज्ञा दी थी कि वैशाली पर अभियान की तुरन्त तैयारी की जाय।'

'मैंने उस आज्ञा पालन की आवश्यकता नहीं समझी।'

'आपने कैसे यह साहस किया ?'

'साम्राज्य की भलाई के लिए देव।'

'परन्तु सम्राट् मैं हूँ।'

'परन्तु आप साम्राज्य की हानि भी कर सकते हैं।'

'वह मेरी हानि है।'

नहीं, वह साम्राज्य की हानि है।'

'मैं सुना चाहता हूँ, मैंने साम्राज्य की क्या हानि की है ?'

'तो देव सुनें, कोशल की अपमानजनक पराजय का पूरा दायित्व आप

ही पर है ।'

'आप पर क्यों नहीं ?' 'आपने समय पर सहायता नहीं भेजी ।'

'मैं साम्राज्य के अधिक गुरुतर कार्यों में व्यस्त था ।'

'सम्राट् की रक्षा से बढ़कर गुरुतर कार्य कौन है ?

'साम्राज्य की रक्षा ।'

'सम्राट् के बिना ?'

'सम्राट् नित्य मरते और पैदा होते हैं देव, वे क्षणभंगुर हैं, साम्राज्य अमर है ।'

'आर्य सम्राट् का अपमान कर रहे हैं ।'

'सम्राट् स्वयं ही अपना अपमान कर रहे हैं ।'

'साम्राज्य का संचालक मैं हूँ ।'

'देव का यह भ्रम है । आप उसके एक शीर्षस्थानीय रत्नमात्र हैं ।'

'मगध-साम्राज्य का संचालन कौन करता है ?'

'यह ब्राह्मण ।'

'अब से यह अधिकार मैं ग्रहण करता हूँ ।'

'मेरे रहते नहीं ।'

'मैं आर्य को पदच्युत करता हूँ ।'

'सम्राट् की केवल एक यही आज्ञा मानने को मैं बाध्य हूँ ।'

'किन्तु मेरी और भी आज्ञाएँ हैं ।'

'देव कह सकते हैं ।'

'आपने राजविद्रोह किया है । किन्तु आप ब्राह्मण हैं, इसलिए अवध्य हैं । परन्तु मैं आपका सर्वस्व हरण करने की आज्ञा देता हूँ ।'

'मैं ब्राह्मण हूँ, इसलिए सम्राट् का यह आदेश भी मानता हूँ । परन्तु मेरी एक घोषणा है ।'

'आर्य कह सकते हैं, परन्तु अनुग्रह नहीं पा सकते ।'

'मैं अनार्य श्रेणिक सम्राट् बिम्बिसार की अब प्रजा नहीं हूँ । सम्राट् यह आपका खड्ग है ।'

महामात्य ने खड्ग पृथ्वी पर रखकर आसन त्याग दिया।सम्राट् ने कहा-'अप्रजा को मेरे राज्य में रहने का अधिकार नहीं है।'

'मैं मगध को त्यागकर ही अन्न-जल ग्रहण करूंगा।' इतना कहकर महामात्य ने सभा भवन त्याग दिया और पाँव प्यादे ही अज्ञात दिशा की ओर चल दिए। राजगृह में सन्नाटा छा गया। सम्राट् ने विज्ञप्ति प्रज्ञापित की—'जो कोई आर्य वर्षकार को साम्राज्य में आश्रय देगा, उसका सर्वस्व हरण करके उसे शूली दी जायगी।' इसके बाद उन्होंने सेनापतियों को वैशाली पर आक्रमण करने की तैयारी करने की आज्ञा देकर सभा भंग की।

५६ : : नापित-गुरु

राजगृह के चतुष्पथ पर एक खरकुटी थी। खरकुटी छोटी-सी थी, पर वह राजगृह भर में प्रसिद्ध थी। उसके स्वामी का नाम प्रभंजन था। वह एक आँख का काना था। आयु उसकी साठ को पार कर गई थी। वह लम्बा, दुबला, पतला और फुर्तीला था। बाल मूँड़ने और उष्णीष बांधने में वह एक था। अनेक व्रात्य, संकर और क्षोत्रिय ब्राह्मण उसकी खरकुटी में आकर बाल मुड़वाते और उष्णीष बँधवाते थे। वह बड़ा वाचाल, चतुर और बहुज्ञ था। उसकी पहुँच छोटे से बड़े तक सर्वत्र थी। वह बहुत आनन्दी प्रकृति का जीव था। लोग उससे प्रेम करते, उसकी बातों से प्रसन्न होते, उसके कार्य से संतुष्ट होते तथा उससे डरते भी थे। डरने का कारण यह था कि लोग कानोंकान उसके विषय में बहुधा कहते कि सम्राट् और वर्षकार भी उसे बहुत मानते हैं और वह प्रासाद महालय में जाकर उनके बाल मूँड़ता है। कुछ लोगों का कहना था—इसे सम्राट्

और वर्षकार के अनेक गुप्त भेद मालूम हैं, इससे सम्राट् तथा अमात्य भी उससे भय खाते हैं। परन्तु जब-जब कोई उससे इन महामान्य जनों की चर्चा करता, वह केवल मुस्करा कर टाल जाता। वह बहुधा धार्मिक कथा-प्रसंग लोगों को सुनाया करता। लोग उसे नापित-गुरु कहकर पुकारते थे।

दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। किन्तु खरकुटी में अब भी ग्राहकों की काफी भीड़-भाड़ थी। प्रभंजन अपने दो सहायकों के साथ काम में जुटा था, छुरे के साथ ही उसकी जीभ भी तेजी से चल रही थी। इतने में एक ग्रामीण वेशधारी पुरुष ने खरकुटी में प्रवेश किया।

प्रभंजन ने बात रोककर कहा—'क्या चाहिए आवुस ? बाल यदि मुंड़वाना है तो मेरा शिष्य अभी मूंड़ देगा।'

'परन्तु मैं अवमर्दक ···।'

प्रभंजन ने बीच ही में बात काट कर कहा—

'अब इस समय अवमर्दन नहीं हो सकेगा मित्र, कल .....।'

'नहीं नहीं, मित्र, मैं अवमर्दक हूँ, तुम्हारी दुकान में नौकरी चाहता हूं। मैं अपने काम में सावधान हूँ तुम मेरी परीक्षा कर सकते हो।'

प्रभञ्जन ने आगन्तुक को घूरकर देखा और फिर कहा—'एक अवमर्दक की मेरे परिचित एक महानुभाव को आवश्यकता है। यदि तुम अपने काम के ठीक ज्ञाता हो तो मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा सकता हूँ। परन्तु आवुस, तुम आ कहाँ से रहे हो ?'

'वैशाली से मित्र।'

'क्या लिच्छवी हो ?'

'नहीं, नहीं, लिच्छवी क्या अवमर्दक होते हैं ? मैं व्रात्य हूँ।'

'सो तो मैं तुम्हारी नोकदार झुकी हुई उष्णीष देखते ही पहचान गया था, फिर भी पूछा, क्योंकि वैशाली के लिच्छवी अब पहले जैसे नहीं हैं।'

'सो कैसे मित्र ?'

'मित्र नहीं आवुस, नापित-गुरु कहो ।'

'तो नापित गुरु, यदि तुम मुझे कहीं नौकर रखवा दोगे तो मैं तुम्हारा भी उपकार करूंगा ।'

'कैसा उपकार करोगे आवुस ?'

'एक मास का वेतन दे दूंगा और तुम्हारा वह गुण-गान करूँगा कि जिसका नाम ।'

'तो आवुस, तुम अभी यहीं खरकुटी में विश्राम करो, मैं कल प्रभात में तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा । परन्तु सुनो वे एक बहुत भारी राजपुरुष हैं । तुमने क्या कभी किसी राजपुरुष की सेवा की है ।'

'बहुत, बहुत, नापित-गुरु । मैं केवल राजपुरुषों ही की सेवा करता रहा हूँ, जनसाधारण की नहीं ।'

'तब अच्छा है । तो इधर आओ आवुस ।'

प्रभंजन उसे खरकुटी के भीतर एक छोटे-से प्रांगण में ले गया । प्रांगण के उस पार कई छोटी २ कोठरियाँ थीं । एक को खोलकर उसने कहा—'आवुस, अभी तुम यहां विश्राम करो । एक मुहूर्त में मैं काम से निपटकर तुम्हारे आहार की व्यवस्था कर दूंगा । आज मैं बहुत व्यस्त रहा हूं मित्र । तुमने सुना—सम्राट् ने आर्य-अमात्य को पदच्युत किया है ?' प्रभंजन तेजी से कहकर लौट जाता था । आगन्तुक व्यक्ति ने अपना उष्णीष एक ओर फेंक दिया और वापस लौटते हुए नापित से कहा—'प्रभंजन ।'

अतर्कित और अकल्पित ढंग पर अपना नाम सुनकर वह चौंक पड़ा । उसने लौटकर देखा तो साक्षात् मगध-महामात्य वहाँ उपस्थित थे । नापित ने भूपात करके प्रणाम किया । अमात्य ने कहा—'प्रभंजन, लेख की सामग्री ला और अभी एक लम्बी यात्रा की तैयारी कर ।'

प्रभंजन की वाचालता लुप्त हो गई । वह तेजी से दूसरी कोठरी में घुस गया और लेख की सामग्री लाकर उसने अमात्य के सामने रख दी । इस प्रकार छद्म वेष में एकाकी पैदल अमात्य का इस समय खरकुटी में आना उसे सर्वथा असंभाव्य प्रतीत हो रहा था । उसने बद्धाञ्जलि होकर

कहा—'आर्य, यदि एक घड़ी भर का मुझे अवकाश दें ··।'

'हाँ, हाँ, इतना काल तो मुझे लेख में लग जायगा। परन्तु प्रभंजन तेरी यह यात्रा अत्यन्त गुप्त होगी और मैं अभी तीन दिन इसी वेश में इसी खरकुटी में रहूँगा। ऐसा यत्न कर कि इसका किसी को ज्ञान न हो।'

'ऐसा ही होगा आर्य।'

अमात्य लेख लिखने में लग गए। प्रभंजन ने झटपट ग्राहकों से छुट्टी ले सहयोगियों को आवश्यक आदेश दिए। एक खड्ग वस्त्रों में छिपाया, छद्म वेश धारण किया और पर्यटक बंजारे के वेश में अमात्य के सम्मुख आ उपस्थित हुआ।

अमात्य ने देखा, मुस्कराकर समर्थन किया, फिर एक मुहरबन्द पत्र और मुहरों से भरी थैली उसे देकर कहा–'यह पत्र जितना शीघ्र सम्भव हो, श्रावस्ती में सेनापति उदायि अथवा उनके सहकारी को मिल जाय।'

'और कुछ कहना भी होगा, आर्य ?'

'नहीं, यहाँ से योंही जाना होगा प्रभंजन। मार्ग में एक अश्व खरीद लेना। किन्तु वह साधारण ही हो, जिसमें किसी को संदेह न हो और तुम दस्युओं की दृष्टि में न पड़ो। हाँ, श्रावस्ती से लौटकर तुम वैशाली के मार्ग में मेरी प्रतीक्षा करना। जाओ तुम, प्रभंजन।'

प्रभंजन ने अभिवादन किया और तेजी से अंधकार में विलीन हो गया। अमात्य कोठरी का द्वार बन्द कर दीपक सामने रख लेख लिखने में व्यस्त हो गए। यह किसी को भी नहीं प्रतीत हुआ कि इस नापित-गुरु की इस खरकुटी की एक कोठरी में बैठे महामहिम मगध-महामात्य महाराजनीतिचक्र चला रहे हैं।

*

५७ : : शालिभद्र

राजगृह में गोभद्र सेट्ठि का पुत्र शालिभद्र था। वह अति सुकुमार और माता-पिता का प्रिय युवक था। उसकी सर्वलक्षणसम्पन्न बत्तीस पत्नियाँ थीं, जिनके साथ वह अपने विलास-भवन में विविध देश-देशान्तर से संचित विपुल भोग्य पदार्थों को भोगता था।

उन दिनों पारस्य देशीय कुछ व्यापारी राजगृह में बहुत-से रत्नकम्बल लेकर बेचने के लिए आए थे। परन्तु उनका मूल्य इतना अधिक था कि विविध युद्धों में व्यस्त सम्राट् बिम्बिसार ने रिक्त राजकोष देखकर इन रत्नकम्बलों को खरीदना अस्वीकार कर दिया। व्यापारी बहुत दूर से आशा करके आए थे। अब प्रतापी मगध के सम्राट् से ऐसी बात सुनकर वे बड़े निराश हुए। राजमहालय से निकलकर वे नगरवीथी में होकर जा रहे थे। जब वे शालिभद्र के विलासभवन के निकट पहुँचे तो शालिभद्रकी माता भद्रा ने पसन्द करके सम्पूर्ण रत्नकम्बल खरीद लिए।

साम्राज्ञी को खबर मिली कि पारस्य देश के व्यापारी बहुमूल्य रत्न-कम्बल बेचने के लिए राजगृह आए हैं। उन्होंने सम्राट् से चाहे भी जिस मूल्य पर एक रत्न-कम्बल खरीद देने का अनुरोध किया। सम्राट् ने अपने सर्वार्थक आमात्य को आदेश दिया—'भणें आमात्य, साम्राज्ञी एक रत्न-कम्बल चाहती हैं। सो एक कम्बल पारस्य सार्थवाहों से चाहे भी जिस मूल्य पर खरीद लो।'

सर्वार्थक आमात्य ने सार्थवाहों से पूछकर सम्राट् से निवेदन किया—'देव, उन्होंने तो सम्पूर्ण रत्नकम्बल भद्रा सेट्ठिनी के हाथ बेच दिए हैं।'

'तो भणे महामात्य, तुम भद्रा सेट्ठिनी को मूल्य देकर एक कम्बल साम्राज्ञी के लिए मँगा दो ।'

भद्रा सेट्ठिनी के पास सर्वार्थक महामात्य ने आदमी भेजा । उसने कहा—'भद्र, उन सब रत्नकम्बलों के मैंने अपनी पुत्रवधुओं के पैर पोंछने के पौंछन बनाने के हेतु छोटे-छोटे टुकड़े कर डाले हैं । एक भी रत्न-कम्बल समूचा शेष नहीं है ।'

सर्वार्थक महामात्य ने सम्राट् से निवेदन किया । सम्राट् ने सुनकर आश्चर्य से आँखें फैलाकर कहा—'भणे महामात्य, क्या मेरे राज्य में ऐसे ऐसे धनिक कुबेर बसते हैं ? तो मैं एक बार उस सेट्ठिनी पुत्र शालिभद्र को देखा चाहता हूँ । सर्वार्थक महामात्य ने स्वयं भद्रा सेट्ठिनी की सेवा में उपस्थित होकर सम्राट् का अभिप्राय उससे कहा । इस पर भद्रा सेट्ठिनी महार्घ शिविका में बैठ स्वयं सम्राट् की सेवा में राजमहालय में आई । उसने सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया—'देव, मेरा पुत्र शालिभद्र हर्म्य के सातवें खण्ड से नीचे नहीं उतरता, इसलिए सम्राट् ही कृपा कर मेरे घर पधारकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाएँ ।'

सम्राट् को भद्रा की बात सुनकर अत्यन्त कौतूहल हुआ उन्होंने भद्रा सेट्ठिनी का अनुरोध स्वीकार किया ।

यथासमय सम्राट् भद्रा सेट्ठिनी के आवास में अपने सम्पूर्ण राजवैभव के साथ पधारे । भद्रा ने सम्राट् को हर्म्य के चौथे खण्ड में ले जाकर उनका मर्यादा के अनुकूल अनुपम सत्कार किया । फिर उसने पुत्र की प्रधान दासी के द्वारा पुत्र के पास संदेश भेजा कि सम्राट् तुझसे मिलने हमारे घर पधारे हैं, तू आ ।

सन्देश सुनकर शालिभद्र ने माता से कहा—'सम्राट् को जो कुछ देना दिलाना हो देकर विदा कर दो मेरा वहाँ क्या काम है ?'

इस पर भद्रा सेट्ठिनी स्वयं पुत्र के पास गई और उसे समझाया कि पुत्र, हम सब श्रेणिय सम्राट् की प्रजा हैं । उन्होंने तुझे राजमहालय में बुलाया था, परन्तु मेरी विनय स्वीकार करके वे तुझे देखने स्वयं

यहाँ पधारे हैं और चौथे खण्ड पर बैठे हैं। इसलिए दो-तीन खण्ड नीचे उतर कर तुझे उनसे मिलना चाहिए।

सेट्ठिकुमार शालिभद्र ने 'चाहिए' शब्द पहली ही बार माता के मुंह से सुना, सुनकर उसका मन उदास हो गया। वह सोचने लगा—यह तो पराधीनता है, यह पराधीनता में ये सुखभोग किस काम के ? मनुष्य को जब तक दूसरे किसी की पराधीनता भोगनी है, तो फिर सुख तो नाममात्र ही का सुख है। वह विमन भाव से सम्राट् के निकट आया। सम्राट् को प्रणाम किया और बिना एक शब्द बोले, बिना एक क्षण ठहरे ऊपर चला गया। परन्तु इस विवशता की चुभन उसके हृदय में घर कर गई और वह अत्यन्त उदास हो शयन-कक्ष में जा पड़ा।

५८ : : सर्वजित्–महावीर

सात हाथ ऊंचा एक बलिष्ठ क्षत्रियकुमार, जिसके लोह-स्तम्भ जैसे सुदृढ़ भुजदण्ड थे और उन्नत विशाल वक्ष था, जिसकी कलाइयों में धनुष की डोरी खींचने के चिन्ह थे, जिसका वर्ण अत्यन्त गौर, नेत्र भव्य और विशाल, मुख गम्भीर, कम्बुग्रीवा और अजानुबाहु थीं, चुपचाप दृष्टि पृथ्वी पर दिए लाटदेश में पाँव-प्यादे विचरण कर रहा था। यह पुरुष एकाकी था और उसके शरीर पर एक चिथड़ा भी न था।

उसे कभी-कभी बैठने को आसन भी प्राप्त नहीं होता था और वृक्ष के सहारे नंगी भूमि पर बैठकर श्रान्ति को दूर करना पड़ता था। बहुधा लोग उसे उन्मत्त समझ कर मारते, बालक उसके पीछे टोली बाँधकर छेड़-छाड़ करते चिल्लाते हुए घूमते थे। कई-कई दिन बाद उसे बहुत कम रूखा-सूखा कुछ मिल जाता था। कुत्ते उसे देखकर भूँकने लगते। कभी-

कभी वे दौड़कर उसकी टाँगों का माँस नोंच ले जाते थे। उपद्रवी लड़के कुत्तों को उत्तेजित करके उस पर दौड़ाते थे, परन्तु यह महावीर पुरुष इन सब दुःखों पर विजय पाता, सुख-दुःख में समभाव रखता, निर्विरोध चुपचाप मौन भाव से आगे बढ़ता जाता था। बहुत बार दूर-दूर तक गाँव बस्ती का चिन्ह भी न होता था। कहीं-कहीं गाँव के निकट आने पर गाँव के लोग बाहर आकर उसे मारपीट कर भगा देते थे या उस पर धूल, पत्थर, घास, गन्दगी फेंकते थे। ऐसा भी होता था कि उसे लोग उठाकर पटक देते थे या चुपचाप ध्यान में बैठे हुए को धकेलकर आसन से गिरा देते थे।

यह पुरुष महा तीर्थंकर महावीर जिन था, जिसने अपनी कुलपरंपरा के आधार पर अपनी किशोरावस्था 'आयुधजीवी' होकर व्यतीत की थी और अब कामभोग की परितृप्ति के लिए, मायामय आचरण, संयमरहित, वैर-भाव से मुक्त हो आत्मा का अहित करने वाली प्रवृत्तियों को त्याग कर, पापकर्मरूप काँटे को जड़-मूल से खींच निकालने में सतत् यत्नशील था। अहिंसा उसका मूलमन्त्र था।

यह सर्वजित् पुरुष प्रत्येक वर्षा ऋतु का चातुर्मास किसी नगर-ग्राम में ठहरकर काटता था। चार-चार मास उपवास करता और वर्षा की समाप्ति पर फिर पैदल यात्रा करता था। इस प्रकार वह कठिन वज्र-भूमि लाटदेश को पारकर, भद्दिलपुर कदली समागम, कूपिक, भद्रिकापुरी आदि ग्राम, जानपद घूमता हुआ राजगृह में आ पहुँचा।

राजगृह में बुद्ध महाश्रमण की बहुत धूम थी। वे अनेक बार राज-गृह आ चुके थे और अब नगर में भिक्षु ही भिक्षु चारों ओर घूमते देख पड़ते थे। परन्तु इस श्रमण का आचार-व्यवहार ही भिन्न था। महा-श्रमण बुद्ध ब्रह्मचर्य पर विशेष बल देते थे, परन्तु महावीर जिन अहिंसा पर आग्रह रखते थे। वे 'छै जीवनिकाय' का उपदेश देते थे, उसी पर स्वयं भी आचरण करते और उसे धर्मज्ञान कराने वाला, चित्त शुद्ध करने वाला और प्राणिमात्र के लिए श्रेयस्कर समझते थे।

देखते-ही-देखते यह महापरिव्राजक राजगृह में पूजित होने लगा। जानपद जनों के साथ श्रेणिक् सम्राट् बिम्बिसार भी इस तपस्वी को देखने आए।

शालिभद्र की एक पत्नी ने कहा—

'आर्यपुत्र ने सुना है, कि राजगृह में एक सर्वजित् अर्हत श्रमण आए हैं, जो सब भाँति शुद्ध बुद्ध मुक्त हैं ?'

'क्या वह महाश्रमण तथागत गौतम शाक्यपुत्र हैं ?' जिनके अनुगत सारिपुत्र मौद्गलायन और महाकाश्यप हैं ?'

'नहीं, ये सर्वजित् महावीर है। वे निगण्ठ हैं, अल्पभाषी हैं। सेनिय मगधराज ने उनकी सेवा की है।'

'क्या वे मेरा दुःख दूर कर सकते हैं ?'

'आर्यपुत्र को दुःख क्या है ?'

'शुभे, तूने क्या नहीं देखा, माता मुझे आदेश देती है कि मुझे क्या करना चाहिए ? हन्त, मैं बन्धनग्रस्त हूँ। मुझे ये सब कामभोग व्यर्थ दीख रहे हैं। मैं संतप्त हूँ, मैं भारयुक्त हूँ।'

'तो आर्यपुत्र, हम सब क्यों न सर्वजित् परिव्राजक के दर्शन करें ?'

'तब ऐसा ही हो शुभे। तू माता से जाकर अनुज्ञा ले।'

सेट्ठिवधू ने सास से कहा और सेट्ठिनी ने स्वीकार कर सावरोध पुत्र को लेकर जहाँ सर्वजित् महावीर थे, वहां पहुँची। सावरोध अर्हत की प्रदक्षिणा की और अञ्जलिबद्ध प्रणामकर एक ओर बैठ गई। बैठकर उसने कहा—'महाश्रमण, यह मेरा पुत्र अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ अपने जीवन में प्रथम बार भूस्पर्श करके आपके दर्शनार्थ आया है। सम्राट् ने एक बार इसे देखना चाहा था। उस समय यह मेरा पुत्र सात खण्ड से नीचे कभी उतरा ही न था। तब सविनय निवेदन करने से सम्राट् स्वयं मेरे घर पधारे थे और पुत्र ने चतुर्थ खण्ड में उतरकर उनका सत्कार किया था। पुत्र को इसका बड़ा दुःख हुआ है, तभी से यह उदास और विमन रहता है। सो भन्ते श्रमण, यह अब आपके दर्शनार्थ भूस्पर्श करके सावरोध आया है। इसे अमृत देकर चिरबाधित कीजिए।'

तब कुछ देर मौन रहकर महाश्रमण ने कहा—'हे आयुष्मान् तू छै जीव निकाय को जान। जीव छः प्रकार के हैं, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रंसकायिक। इन सब जीवों को स्वयं कभी दुःख न देना, किसी दूसरे को दुःख देने की प्रेरणा न करना, कोई दुःख देता हो तो उसे प्रेरणा न देना और इसके लिए अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पाँच महाव्रत मन, वचन, कर्म से यावज्जीवन धारण करना।'

'इन पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ हैं। आयुष्मान् यही मैंने जीवन में धारण की है और सभी को धारण करने को कहता हूँ। सब जीवों को अपने ही समान जानने और देखने वाला इन्द्रियनिग्रही पुरुष पापमुक्त होता है। प्रथम ज्ञान और पीछे दया। अज्ञानी को आचार का ज्ञान नहीं। जीव कौन है और अजीव कौन है, यह भेद जो नहीं जानता वह मोक्ष-मार्ग को भी नहीं प्राप्त हो सकता। जो जीव और अजीव के तत्त्व को जानता है वही सब जीवों की अनेकविध गति को जानता है। वह उसके कारण-रूप, पुण्य-पाप तथा बन्ध-मोक्ष को भी जानता है। उसी को दैवी तथा मानुषी भोगों से निर्वेद प्राप्त होता है और वह भोगों से विरक्त हो जाता है। बाहर-भीतर के उसके सब सम्बन्ध टूट जाते हैं और वह त्यागी परिव्राजक हो जाता है, सब पाप-कर्मों का त्याग-कर धर्म का पालन करता है तथा अज्ञान से संचित कर्मरूपी पंक से अलिप्त हो जाता है। उसे सर्व-विषयक केवली ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह केवल ज्ञानी जिन लोक-अलोक के सच्चे स्वरूप को जान लेता है। तब वह अपने मन, वचन कर्म के व्यापारों का निरोध करके शैल जैसा निश्चल, 'शैलेषी' दशा प्राप्त करता है। उस समय उसके सब कर्मों का क्षय हो जाता है। वह निरञ्जन होकर लोक की मूर्धा पर 'सिद्धि' गति को प्राप्त कर शाश्वत सिद्ध बन जाता है।'

महाश्रमण यह उपदेश देकर मौन हो गए। शालिभद्र ने सावरोध उठ कर उनकी परिक्रमा की और अपने आवास को चल दिया।

५६ : : शालिभद्र का विराग

शालिभद्र के मन में भोगों के त्याग की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो गई। उसने सब सांसारिक सुखों की विनश्वरता को समझ लिया। फिर उसने माता के निकट आकर दीक्षा लेने की अनुज्ञा माँगी।

सेट्ठिनी भद्रा पुत्र के आग्रही स्वभाव को जानती थी। उसने अपनी निरुपायता देखकर पुत्र को समझाकर कहा—'तेरा विचार शुभ है, परन्तु तू जो सब वस्तुओं का एकबारगी ही त्याग करेगा, तो तुझे दुख होगा। इससे तू क्रमशः त्याग का अभ्यास कर और जब तुझे कठोर जीवन का अभ्यास हो जाय तो सर्वत्यागी हो जाना।'

शालिभद्र ने माता का कहना मान लिया। उसने प्रतिदिन एक-एक स्त्री का त्याग करने का निश्चय किया।

अपनी बत्तीसों पत्नियों को उसने अपने निकट बुलाकर कहा—'हे देवानुप्रियाओ, तुम सब प्रियदर्शना, मृदुभाषिणी, स्नेहमयी हो और मुझे प्राणाधिक प्रिय हो। परन्तु विनाश के दुःख से यह सम्पूर्ण लोक जल रहा है। जैसे कोई गृहस्थ अपने जलते हुए घर में से मूल्यवान् वस्तुओं को बचाने की चेष्टा करता है, उसी भाँति मेरा आत्मा भी बहुमूल्य है। वह इष्ट है, कान्त है, प्रिय, सुन्दर, मन के अनुकूल, स्थिर, विश्वासपात्र है। इसलिए भूख-प्यास, सन्निपात, परिषह तथा उपसर्ग उसकी हानि करें, इसके प्रथम ही उसे बचालूँ, मैं यह चाहता हूँ। वह आत्मा मुझे परलोक में हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, तथा परम्परा से कल्याण रूप होगा। इसलिए हे प्रियाओ, मैं चाहता हूँ कि मैं प्रव्रजित होऊं और प्रतिलेखनादि

आचार क्रियाओं को सीखूँ। माता का उपदेश है कि मैं एकबारगी ही कठिन त्याग न करूँ। सो मैंने प्रतिदिन एकाशन करने और एक पत्नी को त्यागने की इच्छा की है। अब तुम में जो मुझे सबसे अधिक प्रेम करती हो, वह मेरे कल्याण के लिए स्वेच्छा से मुझे आज बन्धनमुक्त करें। इसके बाद दूसरी, फिर तीसरी।

इस पर विदेह के वाणिज्यग्राम के सुदर्शन सेट्ठि की पुत्री सुश्री पद्मावती ने बड़े-बड़े लोचनों में मोती के समान आँसू भर के कहा—'नाथ, यह शरीर, यौवन और सम्पत्ति स्थिर नहीं। आप यदि आत्मा की मुक्ति के लिए कृतोद्यम हैं, तो मैं आपको पति-भाव से मुक्त करती हूँ। यह कह कर उसने अपने सब शृङ्गार और सौभाग्य-चिन्ह त्याग एक क्षौम वस्त्र धारण कर लिया और भूपातकर शालिभद्र का अभिवादन करके कहा—'अय्य, मैं भी आत्मा की उन्नति के लिए आपका अनुसरण करूँगी।'

इस पर शालिभद्र ने कहा—'उदग्र हूँ भद्रे, आप्यायित हूँ। आ, फिर हम दोनों ही आज स्वेच्छा पिण्डपात ग्रहण करें।

इस पर शालिभद्र की शेष वधुओं ने दोनों को पूजन-अर्चन कराकर संतर्पित किया।

शालिभद्र प्रतिदिन इसी प्रकार एक-एक करके अपनी पत्नियों को त्यागने लगा और वे श्रेष्ठा सुकुमारी श्रीमन्तकुमारी भी एक-एक कर कठिन व्रत लेती गईं।

शालिभद्र की छोटी बहिन राजगृह ही में धन्य सेट्ठि को ब्याही थी। उसने जब यह सुना तो वह बहुत रोई तथा रोते-रोते भाई के कठोर व्रत धारण करने की बात पति से कहने लगी।

धन्य सेट्ठि ने उसकी हँसी उड़ाते हुए हँस कर कहा—'अरी, चिन्ता न कर, रोज-रोज एक-एक स्त्री की शय्या त्यागने वाला साधु नहीं हो सकता।'

इस पर उसकी स्त्री ने क्रुद्ध होकर ताना मारा और कहा—'तुम्हें यदि यह काम इतना सहज दीखता हो तो तुम्हीं न साधु हो जाओ।'

धन्य सेट्ठि को पत्नी की बात चुभ गई और उसने उसी क्षण सर्वजित् महावीर के पास जाकर दीक्षा ले ली। शालिभद्र ने जब यह सुना तो वह भी घर से निकल चला और महावीर से उसने भी दीक्षा ले ली।

दोनों सेट्ठियों ने सर्वजित् महावीर का उपदेश अङ्गीभूत करके खड्ग की धार के समान तीक्ष्ण तप करना प्रारम्भ किया। बिना शरीर की परवा किए वे साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक उपवास करने लगे। इससे उनका शरीर केवल हाड़ पर मढ़ी चर्म की मूर्ति-सा हो गया।'

श्रमण महावीर तब राजगृह में चातुर्मास व्यतीत कर रहे थे। द्विमासिक उपवास करने के बाद जब पारण करने के लिए भिक्षा माँगने की उन्होंने अनुमति माँगी, तब महावीर ने कहा—'अपने घर जाकर अपनी माता से भिक्षा ग्रहण कर पारण करो।'

तब शालिभद्र और धन्य दोनों ही चुपचाप जाकर भद्रा सेट्ठिनी के द्वार पर खड़े हो गए।

पुत्र की व्रत-समाप्ति और पारण की सूचना भद्रा सेट्ठिनी को लग चुकी थी। वह पुत्र का पारण सम्पूर्ण कराने को जल्दी-जल्दी चलकर जहाँ सर्वजित् महावीर थे, वहाँ पहुँची। जल्दी में द्वार पर उपवास से कृशांगीभूत पुत्र और जमाता को खड़ा देखकर उसने पहचाना नहीं। कुछ देर वहाँ खड़े रहकर वे पीछे लौटे, मार्ग में एक ग्वालिन ने उन्हें पारण कराया। लौटकर उन्होंने श्रमण से अन्तिम व्रत-अनुष्ठान की अनुमति मांगी। अनुमति मिलने पर वे वैभार गिरि पर चले गए।

भद्रा ने श्रमण के पास पहुँचकर अपने पुत्र और जमाता के सम्बन्ध में प्रश्न किए। महावीर ने कहा—

'वे तेरे द्वार पर भिक्षा के लिए गए थे। परन्तु यहाँ आने की उतावली में तूने उन्हें पहचाना नहीं। अब वे दोनों मुनि मेरे निकट अन्तिम अनशन व्रत ग्रहणकर संसार से मुक्त होने के विचार से अभी-अभी वैभार गिरि पर चले गए हैं।

अन्तिम अनशनों की बात सुनकर भद्रा सेट्ठिनी का हृदय विदीर्ण हो गया। सम्राट् विम्बिसार ने भी सुना और वे आये। दोनों ने वैभार गिरि पर जाकर देखा—दोनों मुनि शांतस्थिर मुद्रा में शिलाखण्ड के सहारे स्थिर पड़े हैं। देखकर भद्रा विलाप करने लगी। वह द्विमास उपवास के बाद स्वेच्छा से भिक्षा के लिए द्वार पर आए पुत्र को न पहचानने के लिए अपने को तथा स्त्री-जाति को बारम्बार धिक्कार देने लगी। श्रेणिक विम्बिसार ने उसे समझाया और कहा—'भद्रे सेट्ठिनी, अब अन्तिम व्रत में उपवेशित पुत्र को अपने रुदन से व्यथित करना ठीक नहीं है।'

वह बार-बार पुत्र की प्रदक्षिणा करके लौटी और धन्य तथा शालिभद्र ने उसी उपवास में शरीर-त्याग किया।

६० : : पांचालों की परिषद्

उत्तरी पांचाल की राजधानी कम्पिला में पाँचालों की परिषद् जुड़ी थी। पांचालसंघ राज्य के सभी प्रतिनिधि उपस्थित थे। परिषद् में कुरुसंघ राज्य के धनंजय, श्रुतसोम, अस्सक के राजा ब्रह्मदत्त, कलिंगराज सत्तभू, सौवीर के भरत, विदेह के रेणु तथा काशिराज धत्तरथ परिषद् में उपस्थित हुए थे। मद्रराज और कोशल के पाँचों सामन्त पुत्र भी आए थे। कपिलवस्तु, धन्यकण्टक, जैतवन, नालन्द, तक्षशिला, कन्नौज, काशी, उज्जयिनी, मिथिला, मगध, राजगृह, कौशाम्बी के आर्यों और ब्राह्मणों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए थे। श्रोत्रिय भारद्वाज, कात्यायन, शौनक, बौधायन, गौतम, आपस्तम्ब, शाम्बव्य, जैमिनि, कणाद औलूक, वासिष्ठ, सांख्यायन, हारीत, पाणिनि और वैशम्पायन पैल आदि धर्माचार्य भी उपस्थित थे। माण्डव्य उपरिचर भी आए थे।

अथर्व आंगिरस् ने सबसे प्रथम विवाह की नई मर्यादा उपस्थित की। उसने कहा–'परिषद् सुने, मैं अब से विवाह की नई मर्यादा स्थापित करता हूँ। मैं अब तक प्रचलित वैदिक मर्यादा को बन्द करता हूँ। अब से कोई कन्या अवस्था प्राप्त करने पर कुमारी न रहे, वह स्वयं पति को न चुने, वह एक पति के साथ अनुबन्धित रहे, वह सपत्नियों से ईर्ष्या-रहित रहे। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही युवती तरुणों को न वरें। वह उनके गृह-कृत्यों के लिए सुगृहणी बनें। वर को कन्या कन्या के गुरुजन दें और वह वृद्धावस्था तक उसी एक पति के साथ सुगृहिणी होकर रहे।'

वैशम्पायन पैल ने कहा—'किन्तु यह तो अवैदिक मर्यादा है। वैदिक मर्यादा में कन्या वर चुनने में स्वतन्त्र है, वह आजीवन उसके साथ रहने को बाध्य भी नहीं, वह आजन्म कुमारी भी रह सकती है।'

आंगिरस् ने कहा—'आज से अथर्वांगिरस चतुर्थ वेद हो। गाय के चार पाद हैं, वेद भी तीन नहीं-चार हों। नई मर्यादा की आवश्यकता इसलिए है कि अब हमारा जनपद किसान और पशुपालक नहीं रह गया। हममें बड़े-बड़े राजन्य हैं; उनकी सेना, राजसम्पदा, तथा राज्याधिकार हैं। हममें राज पुरोहित ब्राह्मण हैं, जो समाज के नियन्ता हैं। हमारी सम्पत्ति, अधिकार और राजधर्म की मर्यादा अब प्राचीन मर्यादा नहीं है। आज से पुरुष पति है, स्त्री उसके अधीन है; वह दत्ता है। यज्ञ और धर्मकृत्यों में उसका स्थान ब्राह्मण ग्रहण करें और दायभाग वह नहीं, उसका पुत्र ग्रहण करे।'

भारद्वाज ने कहा—'तो इसका यह अर्थ है कि अब स्त्री पति की जीवनसंगिनी नहीं है और वह धार्मिक कृत्यों में अभिन्न भी नहीं।'

आंगिरस् ने कहा–'वह जीवनसाथी रहे, अभिन्न भी रहे, पर अधिकार पति और पुत्र का हो।'

वैशम्पायन ने कहा–'क्या समाज में स्त्री पुरुष समान नहीं ?'

ऐतरेय ने खड़े होकर कहा—'नहीं, मेरी मर्यादा है कि एक पुरुष

की अनेक पत्नियाँ हों। पर एक स्त्री के अनेक पति नहीं। मैं यह भी मर्यादा स्थापित करता हूँ कि चार पीढ़ियों के अन्तर्गत आत्मीयों में विवाह न हो। वे चार पीढ़ी बाद सम्मिलित हों।'

अथर्वांगिरस —'और उसे गुरुजन जिसे दान में दें, वह उसी की पत्नी हो। वह प्रिय दृष्टिवाली, पति की अनुरक्ता, सुखदायिनी, कार्यनिपुणा, सेवा करनेवाली, नियमों का पालन करनेवाली, वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली तथा देवर की कामना करनेवाली हो।'

भारद्वाज ने कहा—'पति की सेवा करनेवाली, नियमों का पालन करनेवाली और देवर की कामना करनेवाली तथा गुरुजनदत्ता, ये चार नई मर्यादाएँ स्थापित हुई ?'

अथर्वांगिरस ने कहा—'एक पाँचवीं और। वह सास ससुर तथा पति के कुटुम्ब के साथ रहे।'

'तो वह अब पति की पत्नी ही नहीं, पति के परिवार का अंग भी हो ?' वैशम्पायन पैल ने पूछा।

'ऐसा ही है भद्र। यह मर्यादा उन आर्य, अनार्य, अनुलोम, संकर सभी पर लागू हो, जो वर्णधर्मी हों और यह वैदिक मर्यादा ही रहे। इससे राष्ट्र की सम्पत्ति, धर्म और राजनीति अखण्ड रहेगी। आंध्र, सौराष्ट्र, चोल, चेर, पाण्डय, अंग, बंग, कलिंग सभी जनपद इस मर्यादा का पालन करें।'

परिषद् ने मर्यादा स्वीकृत की। अब गौतम ने खड़े होकर कहा—'मित्रो, मैं इससे भी अधिक आवश्यक प्रश्न उठाता हूँ। हमारे लिए अब चार वर्ण यथेष्ट नहीं हैं। अब अनेक अनार्य बन्धुओं के मिश्रण से जातियों की अनेक शाखाएं फैलती जा रही हैं। अनार्य बन्धु-संसर्ग को उत्तेजन देने को हमने असवर्ण विवाह की मर्यादा स्थिर की थी। मैं ऐसे विवाहों से उत्पन्न सन्तान को अब दायभाग से वंचित करता हूँ तथा उन्हें शुद्ध वर्ण और गोत्र की परम्परा से भी वंचित करता हूँ। वे अनुलोम हों या प्रतिलोम, मैं उनकी पृथक् जाति स्थापित करता हूँ। मैं छः प्रकार के

विवाह घोषित करता हूँ। एक ब्राह्म—जिसमें पिता वटुक वर को जल का अर्घ्य देकर कन्या अर्पण करेगा। यह ब्राह्मण का ब्राह्मण के लिए है। दूसरा दैव—जिसमें पिता कन्या को वस्त्राभूषणों से सज्जित करके यज्ञ में स्थानापन्न पुरोहित को देगा। यह क्षत्रिय का ब्राह्मण के लिए है। तीसरा आर्ष—जिसमें पिता एक गाय या बैल लेकर उसके बदले कन्या दे। यह जनपद के लिए है। चौथा गान्धर्व—जिसमें तरुण तरुणी स्वयं ही परस्पर वरण करेंगे। यह वयस्कों के लिए है। पाँचवाँ क्षात्र—जिसमें पति कन्या के सम्बन्धियों को युद्ध में मारकर बलात् कन्या का हरण करेगा। यह क्षत्रिय का क्षत्रिय के लिए है। छठा मानुष—जिसमें पति कन्या को उसके पिता से मोल लेगा— यह क्षत्रिय, ब्राह्मण का शूद्र के लिए है।'

आपस्तम्ब ने कहा—'मैं यह मर्यादा स्वीकार करता हूँ, परन्तु क्षात्र विवाह को 'राक्षस' और मानुष को 'आसुर' घोषित करता हूँ। मेरे दक्षिण के जनपद में रक्ष और असुरों में ये विवाह-मर्यादा स्थापित हैं।'

वसिष्ठ—'मैं जानता हूँ। असुर-कन्या शर्मिष्ठा को हम भुला नहीं सकते। मद्र और केकय वंश की कन्याओं को मध्यदेशीय क्षत्रिय सदैव शुल्क देकर लेते हैं और जिन क्षत्रियों के कुलों में असुरों से सम्बन्ध है, वहाँ यही कुल-परम्परा है। यदि हम इन क्रीता राजकुमारियों को विवाहिता पत्नी नहीं मानते हैं, तो उनकी सन्तानों के अधिकार की रक्षा नहीं होगी। हाँ, नीच जाति की सुन्दरी कन्याएँ दासी की भाँति मोल ली और बेची जा सकती हैं, परन्तु उन्हें विवाहिता पत्नी के अधिकार नहीं प्राप्त होंगे।'

आपस्तम्ब—'आप ठीक कहते हैं ब्रह्मन्, दक्षिणापथ में इसी प्रकार राक्षस कुल तथा दानव और दैत्य कुल हैं, जो राक्षस कुल से भी उन्नत और आर्य-सभ्यता-गृहीत हैं। वे अपनी कुल मर्यादा नहीं छोड़ सकते। आप जानते हैं, वे दीन नहीं हैं, आर्यों के श्रेष्ठ कुलों में तथा देव कुल में भी उनके विवाह सम्बन्ध हो चुके हैं। दैत्य-दानव युद्ध जो होते हैं, वे जातीय हैं, धार्मिक नहीं। वे यज्ञ भी करते हैं। प्रहलाद और बलि के

दान और यज्ञ भुलाये नहीं जा सकते। पुलोमा दैत्य की पुत्री शची इन्द्र की पत्नी थी ही। उसकी कन्या जयन्ती का विवाह शुक्राचार्य और फिर ऋषभ देव से हुआ था। मधु दैत्य की कन्या मधुमती सूर्यवंशी हर्यश्व को ब्याही थी और वृषपर्वा दैत्य की कन्या को ययाति ने पत्नी बनाया था। बाण दैत्य की कन्या का विवाह अनिरुद्ध से हुआ था, तथा वज्रनाभि के कुटुम्ब की तीन कन्याएँ यादवों में आई हैं। इसलिए मेरी यह मर्यादा स्वीकार करने योग्य है कि 'राक्षस' और 'आसुर' विवाह आर्य-परिपाटी में स्वीकृत कर लिए जायँ, जिससे इन जातियों की कन्याओं के अधिकारों का हनन न हो। परन्तु उत्तम विवाह प्रथम के तीन ही हैं।'

गौतम ने कहा—'मेरी मर्यादा है कि इन छः प्रकारों में 'प्राजापत्य' और 'पिशाच' दो प्रकार और बढ़ा दिए जायं। प्राजापत्य विवाह वह है, जिसमें पिता कन्या को यह कह कर दे कि तुम दोनों मिलकर नियमों का पालन करो। यह उत्तरापथ के शिष्ट गणसंघ शासितों की मर्यादा है। पिशाच विवाह मैं उसे कहता हूँ, जहाँ मूर्छिता, रोती, कलपती कन्या का बलात् हरण किया जाय।'

वसिष्ठ ने कहा—'किन्तु यह विवाह नहीं है।'

गौतम ने कहा—'यह मर्यादा काम्बोजों में विहित है। नन्दिनगर का काम्बोज संघ भी आर्यों के संघ में मिल चुका है। आप जानते हैं कि उत्तरापथ में काम्बोज की सीमाएँ गान्धार से मिली हुई हैं। उनके रीति-रिवाज जंगली तो हैं ही, परन्तु उन्हें हमें आर्यों के संघ में लाना है।'

बौधायन ने कहा—'यह मर्यादा मुझे मान्य है।'

गौतम—'तो एक ही गोत्र और प्रवर के स्त्री-पुरुष विवाह न करें। वे ही विवाह करें, जो माता की चार पीढ़ियों और पिता की छः पीढ़ियों में न हों।'

आपस्तम्ब—'नहीं नहीं, माता-पिता दोनों ही की छः छः पीढ़ियों में न हो। गोत्र के निषेध को मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु प्रवर का बन्धन नहीं।'

'मेरी मर्यादा है कि चाची या मामा की लड़की से विवाह किया जा सकता है।'

गौतम–'मैं उत्तरापथ में यह मर्यादा कदापि स्थापित न होने दूँगा। दूसरे, मैं शंकर की समस्या पर भी विचार उपस्थित करता हूँ। इस समय हम आर्यों के तीन वर्ण हैं, एक ब्राह्मण पुरोहित, दूसरा क्षत्रिय, तीसरा जनपद अर्थात् विश। इनके सिवा अनार्य, दस्यु, दास, राक्षस, दैत्य और दानव कुल भी हैं। आप जानते हैं कि प्रारम्भ में सभी आर्य खेती और पशुपालन करते थे। पीछे उनमें राजन्य हुए, जो आज क्षत्रिय राजा हैं। वे शासन-व्यवस्था करते हैं। दूसरे ब्राह्मण पुरोहित हुए, जो यज्ञ के अधिकारी हैं तथा धर्ममर्यादा स्थापित करते हैं। इनके बाद जो जन बचे वे विश थे। वे ही आर्यों के पुराने कार्य, कृषि और पशु पालन करते आए थे। परन्तु हमारे राज्य-वैभव-विस्तार और चहुँमुखी सभ्यता के विस्तार के कारण वे भी केवल वाणिज्य करने लगे। अतः आर्यों का प्राचीन धन्धा पशुपालन और कृषि, उनसे निकृष्ट शूद्रों को करना पड़ रहा है। परन्तु उनमें जो इन कार्यों से सम्पन्न हो गए हैं वे सेवा नहीं करते, सेवाकार्य का दायित्व क्रीत दासों के सुपुर्द हो गया है।'

आपस्तम्ब–'मित्र गौतम का अभिप्राय क्या है ?'

गौतम–'बड़ा जटिल मित्र। वही मैं कहता हूँ। आर्यों की पुरानी मर्यादा के अनुसार उच्च वर्ण का पुरुष अपने से नीच वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है। इससे ब्राह्मण को चारों वर्णों की स्त्रियां ब्याहने का अधिकार है। क्षत्रियों को तीन की, पर वैश्यों को दो ही की। फिर उन्हें कृषि, वाणिज्य और शिल्प के लिए दासों, शूद्रों और कर्मकारों से घनिष्ट रहना पड़ता है। नियम से भी उन्हें अपने सिवा शूद्रा स्त्री ही मिल सकती है। इससे उनके रक्त में शूद्रों और अनार्य दासों का रक्त बहुत अधिक मिश्रित हो गया है, जिससे समाज में बहुत गड़बड़ी और अशुद्धि उत्पन्न हो गई है। नियमानुसार ऐसे विवाह की सन्तान पिता की जाति की मानी जाती है। इस मिश्रण से वैश्यों का रंग भी बदल गया है और उनका बुद्धिविकास भी

कम हो गया है। संकर जनपद में जो सेट्ठिजन हैं उन्हें छोड़कर सर्वत्र ही विश-कुलहीन हो गया है। अतः मैं आर्यों में संकर-भाव को बन्द करता हूँ। मैं यह मर्यादा स्थापित करता हूँ कि अपने ही वर्ण की स्त्री की सन्तान पिता के वर्ण को प्राप्त हो, वही सम्पत्ति में भागी हो।'

वसिष्ठ--'परन्तु यह प्राचीन मर्यादा है कि ब्राह्मण तीनों वर्णों की स्त्री से ब्राह्मण सन्तान पैदा कर सकता है। यह सत्य नहीं है कि संकर संतान हीन-गुण होती है। मत्स्यगन्धा में पराशर ऋषि के औरस् से व्यास का जन्म हुआ, जो विद्या-बुद्धि में अपने पिता से भी बढ़-चढ़कर हुए। उनकी योग्यता का व्यक्ति उस युग में ब्राह्मणों में भी कोई न था।'

गौतम--'इतना होने पर भी उन पर 'न देवचरितं चरेत' का नियम लगा दिया गया था और उन्हें ब्राह्मण नहीं माना गया था और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि ब्राह्मण शूद्रा में सन्तान न उत्पन्न करें, करें तो वह ब्राह्मण नहीं।'

वसिष्ठ--'ब्राह्मण नहीं तो कौन ? वह शूद्र भी नहीं ?'

गौतम—'मैं उसे 'पारशव' घोषित करता हूँ और उसकी मर्यादा स्थापित करता हूँ कि वह अपने कुल की सेवा करे।'

वसिष्ठ–'तब क्षत्रिय भी शूद्रा में जो सन्तान उत्पन्न करें, वह क्षत्रिय नहीं। उसे मैं 'उग्र' घोषित करता हूँ। उसकी पृथक् जाति हो, परन्तु वैश्य पिता की शूद्रा में सन्तान वैश्य ही रहे। किन्तु वैश्या माता और ब्राह्मण पिता की संतान ब्राह्मण नहीं, मैं उसे 'अम्बष्ट' घोषित करता हूँ। यही उसकी जाति हो।'

अब शौनक ने उठकर कहा–'तो हम अब ऐसी मर्यादा स्थापित करते हैं कि सवर्ण विवाह की सन्तान ही सवर्ण हैं। प्रतिलोम की भाँति अनुलोम सन्तान भी आज से संकर हुई, तथा वे आर्यों से बहिर्गत हुई।'

सांख्यायन श्रोत्रिय ने कहा–'ऐसा ही हो। नहीं तो आर्य-कुल का नाश हो जायगा। क्या आप देखते नहीं कि आर्यों के सब राज्य, शिल्प, वाणिज्य संकरों ने अपना लिए हैं।'

आपस्तम्ब—'किन्तु मित्र, इस व्यवस्था से तो संकरों का अधिक संगठन होगा। वे और सबल होंगे। वे आर्यों के विद्रोही हो जाएँगे। संकरों की प्रत्येक जाति में एक प्रकार का गर्व उत्पन्न हो जायगा, क्योंकि प्रत्येक जाति यह समझने लगेगी कि किसी-न-किसी जाति से तो हम श्रेष्ठ हैं ही। फिर जहाँ कहीं धन और शक्ति का आधिक्य हो गया, वहाँ तो यह गर्व और बढ़ जायगा, तथा भीतरी भेद उत्पन्न होने लगेंगे। देश-भेद, रहन-सहन और खान-पान में अन्तर पड़ जायगा। विवाह भी उन्हीं जातियों में होने लग जाएंगे। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों तथा शूद्रों की भी अनेक उपजातियाँ बन जाएँगी। उन्हीं में उनके विवाह और खान-पान सीमित हो जाएंगे। संकरों की भी अनगिनत जातियाँ बन जाएँगी। इससे आर्यों का सम्पूर्ण संगठन नष्ट हो जायगा। उदाहरण के लिए कोशल के अधिपति प्रसेनजित् के परिणाम की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ।'

गौतम—'चाहे भी जो हो, हम रक्त की शुद्धता को नष्ट नहीं होने देंगे। अब तक विवाह की तीन विधियाँ थीं—एक अग्निप्रदक्षिणा, दूसरी सप्तपदी-लाजहोम, तीसरी शिलारोहण। मैं अबसे पाँच विधि स्थापित करता हूँ, चौथी कन्यादान और पांचवीं गोत्रों का बचाव। आर्यों का विवाह इन पाँच विधियों के पूर्ण हुए बिना सम्पादित न हो।'

वसिष्ठ—'ऐसा ही हो। अब मैं क्षेत्रज पुत्र को दायभाग में दूसरा स्थान देता हूँ।'

गौतम—'मैं स्वीकार करता हूँ।'

बोधायन—'मैं मतभेद रखता हूँ। क्षेत्रज का स्थान मैं तीसरा स्थापित करता हूँ।'

आपस्तम्ब—'मैं विरोध करता हूँ। मैं नियोग की प्रथा को बन्द कर देने के पक्ष में हूँ। किसी सभ्य पुरुष को अपनी स्त्री अपने कुटुम्बी को छोड़ कर किसी दूसरे को नहीं देनी चाहिए। नियम के अनुसार पति को छोड़ कर उसे दूसरे पुरुष का हाथ अज्ञात पुरुष का हाथ समझना चाहिए।'

गौतम—'मैं यह मर्यादा स्थापित करता हूँ कि जिस विधवा स्त्री को संतान की इच्छा हो, वह गुरुजनों की आज्ञा लेकर देवर से ऋतुगमन कर ले। देवर का अभाव हो तो सपिण्ड, सगोत्र, समान प्रवर या सवर्ण पुरुष से कर ले। वह दो से अधिक सन्तान न उत्पन्न करे। सन्तान उसकी है, जो उत्पन्न करे। यदि पति जीवित हो और सहमत हो तो सन्तान दोनों की है।'

हारीत—'मैं सहमत हूँ।'

भारद्वाज—'जो विवाहिता किन्तु अक्षतयोनि ही है, उसे मैं कन्या घोषित करता हूँ। उसका नियमानुसार विवाह हो।'

बोधायन—'सम्भोग हो भी गया हो, परन्तु विधिवत् विवाह न हुआ हो, तो वह भी कन्या ही है। उसका विवाह विधिवत् हो।'

पाणिनि—'जो अविवाहिता है वह कन्या है। पर पुरुष से भोगी जा कर भी उसका कन्या-भाव दूषित न हो। विवाह-विधि होने के बाद पुरुष-संग ही से उसका कन्या भाव छूटे।'

वसिष्ठ—'तो मैं छः कन्याएं घोषित करता हूँ—१. जो अविवाहिता और अक्षत है, २. जो अविवाहिता है और क्षत है, ३. जो विवाहिता है और अक्षत है, ४. साधारण स्त्री, ५. विशिष्ट स्त्रियाँ, ६. मुक्तभोगिनी।'

गौतम—'यदि किसी स्त्री का पति एकाएक विदेश चला जाय, तो वह छः वर्ष उसकी राह देखकर पुनर्विवाह कर ले। पर यदि पति ब्राह्मण हो और विद्याध्ययन के लिए गया हो तो स्त्री बारह वर्ष राह देखे।'

कात्यायन—'नपुंसक या पतित पति की स्त्री यदि दूसरा ब्याह करे, तो उसका पुत्र पौनर्भव हो। वह माता के पहले पति के दाय से भोजन-वस्त्र पाए।'

वसिष्ठ—'जो स्त्री अपने अल्पवयस्क पति को छोड़ अन्य पुरुष के पास रहे, तथा फिर पहले पति के वयस्क होने पर उसके पास आ जाय वह पुनर्भ है। यदि उसका पति पागल, पतित या नपुंसक हो और वह उसे छोड़कर दूसरे पति से विवाह करे तो वह पौनर्भव हो।'

हारीत—'ये छै पुत्र दायाद बन्धु हैं । औरस, क्षेत्रज, पौनर्भव, कानीन, पुत्रिकापुत्र और गूढ़ज । ये क्रम से दायभागी हों ।'

६१ : : जैतवन में तथागत

तथागत बुद्ध कपिलवस्तु से चारिका करते श्रावस्ती आए । उनके साथ महाभिक्षु-संघ भी था । जिसमें आयुष्मान् सारिपुत्त, आयुष्मान् महा मुद्गलायन, आयुष्मान् महा कात्यायन, आयुष्मान् महा कोट्ठिन्, आयुष्मान् महा कापियन्, आयुष्मान् महाचुन्द, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रैवत, आयुष्मान् उपालि, आयुष्मान् आनन्द, आयुष्मान् राहुल आदि संघप्रमुख स्थविर थे ।

गृहपति अनाथपिण्डिक ने सुना । सुनकर बोधिपुत्र माणवक को बुला कर कहा—'सौम्य बोधिपुत्र, जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाओ और मेरे वचन से भगवान् के चरणों में सिर से वन्दना करके आरोग्य, अनःआतंक, लघु-उत्थान, बल, अनुकूल विहार पूछो और यह भी कहो—'भन्ते, भिक्षु संघ सहित भगवान् जैतवन में विहार करें तथा कल का भोजन भी स्वीकार करें ।'

'अच्छा भो' कह बोधिकुमार माणवक जहाँ तथागत थे, वहाँ गया और अभिवादन कर उसने गृहपति का संदेश कहा । तथागत ने मौन से स्वीकार किया । तब माणवक ने लौटकर गृहपति से कहा ।

गृहपति ने उदग्र हो घर में उत्तम खादनीय, भोजनीय पदार्थ तैयार करवाए । जैतवन विहार के प्रवेश-मार्ग को अवदात धुस्रों से सीढ़ी के नीचे तक बिछवाकर सजाया सँवारा ।

तब भगवान् पूर्वहण समय पहिन पात्र चीवर ले संघ सहित जैतवन के द्वार पर पहुँचे। गृहपति द्वार-कोष्ठक के बाहर खड़ा तथागत की प्रतिक्षा कर रहा था। देखते ही अगवानी कर भगवान् की वन्दना कर ले चला। जब बुद्ध निचली सीढी पर पहुँचे तो खड़े हो गए।

गृहपति ने कहा—'भगवान् धुस्सों पर चलें। सुगत-धुस्सों पर चलें, जिससे ये चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिए हो।'

परन्तु तथागत चुपचाप खड़े रहे। गृहपति ने दूसरी बार, फिर तीसरी बार भी कहा। तब तथागत ने आनन्द की ओर देखा।

आनन्द ने कहा—'गृहपति, धुस्से समेट लो। भगवान् चैल पंक्ति पर नहीं चलते।' गृहपति ने धुस्सों को समेट लिया। तब तथागत बुद्ध ने आराम से प्रवेश किया और संघसहित बिछे हुए आसनों पर बैठे। तब गृहपति ने बुद्धसहित भिक्षुसंघ को अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्यपदार्थों से संतर्पित किया। भगवान् के हाथ हटा लेने पर एक ओर बैठ कर उसने कहा—

'भगवन्, जैतवन के विषय में कैसे करूँ ?'

'गृहपति, जैतवन आगत, अनागत, चातुर्दिश भिक्षुसंघ के लिए प्रदान कर दे।'

अनाथपिण्डिक ने कहा—

'ऐसा ही हो भन्ते।'

तब महाश्रमण बुद्ध ने अनाथपिण्डिक के दान को अनुमोदित करते हुए गाथा कही—

'सर्दी, गर्मी और क्रूर जन्तुओं से रक्षा करता है। सरीसृप, मच्छर, शिशिर, वर्षा, हवा-पानी से बचाता है। आश्रय के लिये, सुख के लिए, ध्यान के लिए, विपश्यन के लिए, संघ को विहार का दान श्रेष्ठ है। रमणीय विहार बनवाकर वहाँ बहुश्रुतों को बसाकर उन्हें अन्न-पान-वस्त्र और शयन-आसन प्रसन्नचित्त से प्रदान करें।'

तब दर्भ मल्लपुत्र ने आकर तथागत से कहा—

'भन्ते, यदि अनुमति हो तो मैं संघ के शयन-आसन का प्रबन्ध करूँ।'

'साधु, साधु, दर्भ ! तू संघ के शयन-आसन और भोजन का प्रबन्ध कर,

फिर उन्होंने भिक्षुसंघ को एकत्रित करके कहा—'भिक्षुओ, संघ दर्भ मल्लपुत्र को संघ के शयन-आसन का प्रबन्धक और भोजन का नियामक चुने।'

संघ ने दर्भ मल्लपुत्र को चुन लिया। तब मल्लपुत्र ने भिक्षुओं का एक-एक स्थान पर शयन-आसन प्रज्ञापित किया। जो सूत्रान्तिक थे उनका एक स्थान पर, जो विनयधर थे उनका दूसरे स्थान पर, जो धर्मकथित थे वे तीसरे स्थान पर, इसी प्रकार दर्भ मल्लपुत्र ने सम्पूर्ण भिक्षुसंघ को प्रज्ञापित किया। गृद्धकूट, चोरप्रपात, ऋषिगिरि की कालशिला, वैभार शृंग, सातपर्णि गुहा, सीतवन, सर्पशौंडिक, प्राग्भार, गौतम कन्दरा, कपोत कन्दरा, पोताराम, आम्रवन, मद्रकुक्षि, मृगदाव, सर्वत्र दर्भ मल्लपुत्र ने तेजोधातु की समापत्ति के प्रकाश में भिक्षुसंघ का शयन-आसन प्रज्ञापित किया। वे यत्न से प्रत्येक भिक्षु को बताते—यह मंच है, यह पीठ है, यह भित्ति है। यह विम्बोहन है, यह कत्तारदण्ड है, यह संघ का कतिक सन्थान है।

दर्भ मल्लपुत्र के अन्तेवासी भाण्डागारिक, चीवर-प्रतिग्राहक, चीवर-भाजक, यवागू-भाजक, फल-भाजक, खाद्य-भाजक, शाटिक-ग्रहायक, आरामिक प्रेषक, श्रामणेर-प्रेषक आदि भिक्षुसंघ से चुने हुए भिन्न-भिन्न विहारों के लिए नियत हुए।

६२ : : अजित-केसकम्बली

पूर्वाराम मृगार माता प्रासाद भी बनकर तैयार हो गया था। यह भवन श्रावस्ती ही में नहीं, प्रत्युत जम्बू द्वीप भर में अद्वितीय विहार था। इसमें एक सहस्र प्रकोष्ठ थे। यह विहार सात-तल्ला था। सेट्ठि मृगार की पुत्रवधू विशाखा ने इसे अपने एक हार के दाम से तैयार कराके बुद्ध को भेंट करने का निश्चय किया था, परन्तु अनाथपिण्डिक के जैतवन विहार में श्रमण गौतम ने वर्षावास स्वीकार कर लिया, इससे सेट्ठि मृगार की इच्छा पूरी नहीं हुई।

अजित-केसकम्वली अपने शिष्यों सहित सरयू तीर के अपने आश्रम में मृगचर्म पर बैठे थे। उनका शरीर बिल्कुल काला था, डील-डौल विशाल और आँखें चमकदार थीं। वे एक साधारण सूती वस्त्र कमर में लपेटे थे। स्वच्छ जनेऊ उनके कज्जलकृष्ण अंग की शोभा बढ़ा रहा था। उनके सामने महाशाल लौहित्य एक आसन पर बैठे थे। इनका अंग दुबला-पतला और वर्ण गौर था। कंठ में जनेऊ और सिर पर बड़ी चोटी थी। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और वक्ष विशाल था।

अजित ने कहा—'तो महाशाल लौहित्य, गौतम श्रावस्ती में आ गया है न ?'

'हाँ आचार्य और इस बार उसके ठाठ निराले हैं। उसने बहुत से विश्रुत ब्राह्मणों को भी शिष्य बना लिया है।'

'हाँ, हाँ, ऐसा तो होना ही था महाशाल। इन मूर्ख ब्राह्मणों का बेड़ा डूबा। मैंने तो तुमसे बार-बार कहा है कि ब्राह्मण याज्ञवल्क्य, जैविलि और

उद्दालक ने पुराने यज्ञवाद को गौण करके जो ब्रह्मवाद का ढकोसला खड़ा किया था और उनके गुरु प्रवाहण ने जो पुनर्जन्म की गढ़न्त गढ़ी थी, उसका एक दिन भण्डाफोड़ होगा ही। अब तुम देखोगे कि विदेह जनक के सारे प्रयासों पर पानी फिर जायगा। उसका ये बड़ी-बड़ी परिषदें बुलाना, ब्रह्मवाद पर शास्त्रार्थ कराना और बड़े-बड़े दान देना, सब व्यर्थ होगा और लोग स्वतन्त्र रीति से विचारना प्रारम्भ कर देंगे। अब इसी शाक्य गौतम ही को लो। इसने एक और ढकोसला चलाया है। क्यों महासामन्त पायासी, तुम तो उसके पिता शुद्धोदन से मिले थे। क्या कहता है वह अपने पुत्र के सम्बन्ध में ?'

महासामन्त पायासी का ताम्रवर्ण शरीर, लाल-लाल आँखें और बलिष्ठ भुजदंड एवं भारी-भारी गलमुच्छे बड़े प्रभावशाली थे। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—'वह भी उसका शिष्य हो गया है आचार्य। वही नहीं, कपिलवस्तु के सारे ही शाक्य उसके शिष्य हो गए हैं। शुद्धोदन को इससे बड़ा लाभ है आचार्य। वह कोशल के प्रभुत्व का जुआ उतार फेंकना चाहता है। अब तक तो शाक्यगण कोशल के अधीन था, अब गौतम का पिता तथा अनुगत शिष्य होने से शुद्धोदन का आदर बढ़ गया है। उधर मगध-सम्राट् भी उसका बहुत सम्मान करने लगे हैं, वे भी गौतम के शिष्य हो गये हैं।'

'होंगे क्यों नहीं ? बिना ऐसा किए वे अपने असुर-रक्त-प्रभावित वर्ण-संकर वंश को छिपाएंगे कैसे ? पर राजमहिषी मल्लिका ?'

'राजमहिषी तो सेट्ठि विशाला के पूरे प्रभाव में है आचार्य और वह भी गौतम की शिष्या हो गई है।'

'तब महाराज प्रसेनजित् अब किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?'

वे घपले में पड़े है आचार्य, असल बात तो यह है कि वे राजकुमार विदूडभ से बहुत भीत हैं और सच पूछिए तो शाक्य शुद्धोदन को भी उसका बड़ा भय है। इस भय से बचने के लिए गौतम की शरण ही एक ढाल है।'

'ठीक है पायासी । पर तुमने सुना—गौतम शाक्य कहता क्या है ?'

'आचार्य, वह आप ही की भाँति कहता है कि आत्मा और ईश्वर नाम की कोई नित्य वस्तु विश्व में नहीं है । सभी वस्तुएँ जो उत्पन्न होती हैं नाशवान् हैं । संसार वस्तुओं का नहीं, घटनाओं का प्रवाह है ।'

'वाह पट्ठे, सुनने में तो ये सब बातें बड़ी सुन्दर जान पड़ती हैं । अरे, उसने सत्य पर मुलम्मा किया है । क्यों लौहित्य, क्या कहते हो ? जो लोग लोक-मर्यादा, धनी और निर्धन तथा दास-स्वामी के भेद को लेकर मुझसे भड़कते हैं, वे गौतम के इस जाल में फँस जाएँगे ? पर यह संसार घटनाओं का प्रवाह कैसे है भाई ?'

'आचार्य, गौतम कहता है—यद्यपि कोई शाश्वत चैतन्य आत्मा संसार में नहीं है, परन्तु एक चेतना-प्रवाह स्वर्ग या नरक आदि लोकों के भीतर एक शरीर से दूसरे शरीर में, एक शरीर-प्रवाह से दूसरे शरीर-प्रवाह में बदलता रहता है ।'

'बड़ी चालाकी करता है यह गौतम शाक्य ! वत्स लौहित्य, वह मेरे सत्य को भी पकड़े हुए है और प्रवाहण के पुनर्जन्म के पाखण्ड को भी । अब मैं समझा पायासी, कि यदि वह ऐसा न करता तो क्या साकेत, कौशाम्बी, श्रावस्ती और राजगृह के राजा, महाराजा, सेट्ठि, सामन्त महाशाल उसके चरणों में सिर नवाते ? और अपनी थैलियाँ यों उसके आगे खोल देते ?'

'यही तो बात है आचार्य । सुना नहीं आपने, विशाखा का एक प्रतिस्पर्द्धी मूर्त्त और खड़ा हुआ है श्रावस्ती में ।'

'कौन है वह ?'

'अनाथपिण्डिक सुदत्त सेट्ठि ।'

'सेट्ठि सुदत्त ? क्या किया है उसने लौहित्य ?'

'जब उसने देखा कि पुत्रवधू विशाखा की आड़ में सेट्ठि मृगार महिषी मल्लिका के द्वारा शाक्य गौतम और महाराज प्रसेनजित् का कृपापात्र होना चाहता है, तब उसने भी एक मार्ग निकाल लिया ।'

'कौन सा मार्ग ?'

'उसने जेत राजकुमार को साधन बनाया है आचार्य ।'

'किस भाँति लौहित्य ?'

'राजकुमार से उसका क्रीड़ा-उद्यान जेतवन क्रयकर विहार बनवा उसने गौतम शाक्य को भेंट कर दिया ।'

'जेतवन भेंट कर दिया ? क्या कहते हो लौहित्य ?'

'सत्य कहता हूँ आचार्य ।'

'जेत राजकुमार ने जेतवन वेच दिया ।'

'वे नहीं देना चाहते थे, पर सुदत्त ने जेतवन की सम्पूर्ण भूमि पर स्वर्ण विछाकर उसे क्रय कर लिया आचार्य। अठारह करोड़ स्वर्ण दिया उसने ।'

'तो यों कहो, जेत राजकुमार को एक भारी उत्कोच दिया गया ।'

'यही तो वात है आचार्य । उसके तीन पोत स्वर्णद्वीप से स्वर्ण भर कर लौटे हैं । सुदत्त अनाथपिण्डिक के पास स्वर्ण की क्या कमी है । अव उसकी कीर्ति घर-घर गाई जा रही है, विशाखा का सप्तखण्डी मृगार माता प्रासाद धरा ही रह गया ।'

'यह तो होना ही था । फिर राजकुमार जेत की इस पर कृपादृष्टि ।'

'जेत ही की क्यों पायासी, गौतम शाक्य की भी कहो । यही देख लो राजमहिषी मल्लिका अव यहाँ नहीं आतीं । सुना है, उन पर इस गौतम का अच्छा रंग चढ़ा है ।'

'इसमें क्या आश्चर्य है ! माली की वेटी अपने रूप के कारण बनी कोशल पट्टराजमहिषी, सो वह रूप की दुपहरी तो कव की ढल गई, महाराज प्रसेनजित् को नित नये यौवनों से फुर्सत नहीं । उनकी विगलित वासना को राजगृह का वह तरुण वैद्य अपने वाजीकरण से नहीं पूर्ण कर सका । अब वह चार्वाकपन्थी माण्डव्य अपने रसायन का चमत्कार दिखाना चाह रहा है ।'

'साकेत के उस पाजी वृहस्पति चार्वाक के चेले की वात कह रहे

हो ? वड़ा घृणित है वह ब्राह्मण-कुलकलंक । हाँ, सो उसने राजा को खूब भरमा रखा है ?'

'जी हाँ, वह यही तो कहता है कि इन्द्रियों को तृप्त होकर अपने-अपने विषयों को भोगने दो, यथेष्ट आनन्द करो ।'

'और उस धूर्त ने राजा को कुछ रसायन दी है ?'

'जी हाँ, सो जैसे सूखा ईंधन अनुकूल वायु पाकर धाँय-धाँय जलता है, वैसे ही उस अतृप्त कामाग्नि में राजा भी जलकर राख हो जायगा । इस सत्तर वर्ष की अवस्था में वह गांधारी कलिंगसेना से विवाह करने जा रहा है । उधर विदूडभ राजपुत्र उसे मारकर कोशल के सिहासन को हथियाने का षड्यन्त्र रच रहा है ।'

'यह क्या कहते हो पायासी सौम्य ? राजकुमार विदूडभ ?'

'हाँ, आचार्य ! शाक्यों ने जब से उसको दासीपुत्र कहकर अपमानित किया है, वह महाराज से घोर घृणा करता है । वह कहता है, जब माली की लड़की मल्लिका को उन्होंने पट्टराजमहिषी का पद दिया, तो उसकी माता शाक्यदासी नन्दिनी को क्यों दासी ही रहने दिया ? शाक्यों से अनादृत होकर वह और भी क्रुद्ध हो उठा है ।'

'उसका यह कथन अयथार्थ तो नहीं है प्रिय । पर सत्य जानो, ये दासी-पुत्र उन सभी बूढ़े कामुक राजाओं को डुबोएँगे । तो विदूडभ तो शाक्य गौतम से भी घृणा करता होगा ?'

'उसका वश चले तो वह उसे मार ही डाले । पर उसका वह मित्र···'

'कौन ?'

'राजगृह का वही तरुण वैद्य । वह उस शाक्य गौतम का परम भक्त है । आजकल वह उसका बहुत घनिष्ट हो रहा है ।'

'तो यों कहो कि श्रावस्ती में जहाँ देखो वहीं उस धूर्त शाक्य श्रमण के गुप्तचर भर रहे हैं । पर सौम्य लौहित्य, तुम उस मूर्ख राजकुमार विदूडभ को मेरे पास लाओ । उसे तो हमारे ही दल में मिलना चाहिए ।'

'मैं चेष्टा करूँगा आचार्य । पर वह तरुण राजकुमार उतना मूर्ख

नहीं है । वह बड़ा तेजस्वी है ।'

'तब तो और भी अच्छा है । अरे ये सभी वर्णसंकर जन आर्यों से अधिक तेजस्वी होते हैं । प्रिय, यदि वही निकट भविष्य में कोशल का सिंहासन आक्रांत करेगा, तो उसे अपने निकटवर्ती रखना अच्छा है । विशेषकर इसलिए कि वह शाक्य गौतम से घृणा करता है, जिसके नाम का श्रावस्ती, कोशल, राजगृह, वैशाली सर्वत्र ही जनपद में डंका बज रहा है ।'

'मैं उसे लाऊँगा आचार्य । वह मेरा आदर करता है ।'

'तो उससे लाभ उठाओ भाई । हाँ, राजमहिषी मल्लिका की क्या बात कह रहे थे ?'

'वे नित्य उस श्रमण गौतम के पास जाती हैं । वे जानती हैं, उनका माली की पुत्री होने का लांच्छन वही मिटा सकता है । सेट्ठिवधू विशाखा उनके बहुत मुँह लगी है ।'

'तो उन दोनों का भेद कराना होगा । राजमहिषी को भी हमारे ही दल में मिलना चाहिए । फिर मैं उस शाक्य शुद्धोदन को समझ लूंगा ।'

'यह तनिक कठिन होगा आचार्य । देवी मल्लिका माली की बेटी तो हैं, परन्तु उनकी निष्ठा बहुत है और कोशल जन-पद में उनका मान महाराज प्रसेनजित् के ही समान है ।'

'तभी तो सौम्य लौहित्य । परन्तु चिन्ता न करो, मैं उपाय कर लूंगा । राजमहिषी मल्लिका को मेरी शरण आना ही होगा, यह राजसूय समाप्त होने दो । जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हो जाता, राजा मेरी ही इच्छा के आधीन हैं । परन्तु श्रावस्ती पर एक और भी तो पापग्रह है ।'

'वह कौन ?'

'श्रमण महावीर जिन ।'

'उसकी तपश्चर्या ही निराली है, आचार्य, कुछ समझ में ही नहीं आती । सुना है, वह दो-दो मास निराहार रहते हैं । आजीवकों की भाँति नंगे रहते हैं । उनके शील और व्रत बहुत श्रावक धारण कर रहे हैं । वह

भी शूद्र और ब्राह्मण में अभेद रखते हैं। राजपुत्र विदूडभ उन्हें बहुत मानते हैं।'

'समझ गया। अरे लौहित्य, प्रसिद्धि के अनेक उपाय हैं। इस लिच्छवि निर्गन्थ श्रमण को भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उधर शाक्यों ने इधर लिच्छवियों ने अपने गणराज्य के विस्तार का यह धर्म का ढोंग रचा है। इनका उच्छेद सम्राट् द्वारा नहीं, विदूडभ के द्वारा होगा। नहीं तो ये कोशल के आर्य-राज्य को खोखला कर डालेंगे। अच्छा-अच्छा देखूंगा इसे, राजसूय समाप्त होने दो।'

६३ : : राजपुत्र विदूडभ

राजकुमार विदूडभ ने आचार्य के निकट आ अभिवादन कर आसन पर बैठकर कहा—

'आपने मुझे स्मरण किया था आचार्य ?'

'तुम्हारा कल्याण हो राजकुमार। मुझे भासता है कि तुम्हें मेरी आवश्यकता है।'

'किस लिए आचार्य ?'

'अपने गुरुतर उद्देश्य की पूर्ति के लिए।'

'आप किस संदर्भ का संकेत कर रहे हैं आचार्य ?'

'तो क्या तुम मेरा संकेत समझे नहीं, कुमार ?'

'आचार्य कुछ कहें तो।'

'अरे, श्रावस्ती में कितना अनर्थ हो रहा है आयुष्मान् ?'

'कैसा अनर्थ ?'

'यह श्रमण गौतम क्या राजा-प्रजा सभी को नष्ट कर डालेगा ?'

'ऐसी आप कैसे कल्पना करते हैं ?'

'तो तुमने नहीं सुना कि सेठ सुदत्त ने जेतवन कुमार जेत से अठारह करोड़ स्वर्ण में मोल लेकर गौतम को भेंट कर दिया।'

'सुना है आचार्य।'

'और विशाखा ने जो वह सात खण्ड का पूर्वाराम मृगार माता प्रासाद बनाया है सो ?'

'वह भी जानता हूँ।'

'राजमहिषी मल्लिका नित्य वहाँ जाती हैं ?'

'जाती तो हैं।'

'और यह जो श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और राजगृह के राज-मुकुट और सेट्ठियों का द्वीप-द्वीपान्तर से खिचा चला आता हुआ सुवर्ण उसके चरणों में एकत्र हो रहा है ?'

'तो आचार्य, मैं क्या करूँ ?'

'अरे आयुष्मान्, एक दिन कौशल के अधिपति तुम होगे या यह श्रमण गौतम ?'

'किन्तु मैं तो दासीपुत्र हूँ आचार्य, कोशल का उत्तराधिकारी नहीं ?'

'शान्तं पापं ! और मैंने जो गणना की है सो ? आयुष्मन्, तुम्हीं कोशल के सिंहासन को आक्रान्त करोगे एक दिन, परन्तु तब तक तो जम्बू द्वीप की सारी सम्पदा इस गौतम के चरणों में पहुँच चुकेगी, सम्पूर्ण राजकोष खाली हो जाएँगे, सम्पूर्ण तरुण भिक्षु हो जाएँगे, सम्पूर्ण सेट्ठियों और श्रेणिकों का धन उसे प्राप्त हो जायगा। अरे पुत्र, क्या तुम नहीं देख रहे हो—यह धूर्त शाक्यपुत्र गौतम धर्म-साम्राज्य की आड में अर्थ-साम्राज्य स्थापित कर रहा है, जो तुम्हारे सामान्त-साम्राज्य को खोखला कर देगा।'

'यह, आप क्या कह रहे हैं आचार्य ?'

'अरे पुत्र, तुम कहाँ से बलि ग्रहण करोगे ? कहाँ से सैन्यसंग्रह करोगे ? वाणिज्य-व्यापार कैसे चलेगा ? सभी तरुण तो भिक्षु हो जाएँगे ?

सभी सम्पदा तो उसी शाक्य श्रमण के चरण चूमेगी ? तब तुम श्री, शक्ति, कोष और सैन्यहीन राजा राज्य-संचालन कैसे करोगे आयुष्मान् ?'

'आपके कथन में सार प्रतीत होता है आचार्य ।'

'इसे रोको आयुष्मान् और तुम्हारा वह मातुल कुल ?'

'शाक्य कुल कहिए भन्ते आचार्य, मैं उसे आमूल नष्ट करूँगा ।'

'तुम्हें करना होगा पुत्र और यह पितृकुल भी ।'

'इसे भी मैं नष्ट करूँगा ।'

'तभी तुम कोशल के सिंहासन पर आसीन होगे । सुनो आयुष्मान्, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा, तुम्हारा कण्टक मुझे ज्ञात है ।'

'वह क्या है आचार्य ?'

'बंधुल मल्ल और उसके बारहों पुत्र-परिजन । बन्धुल के ऊपर निर्भर होकर राजा राजकाज से निश्चिन्त हो गया है, बन्धुल स्वयं आमात्य हो गया है और उसने अपने बारहों पुत्र-परिजनों को सेना और राज-कोष का अधिपति बना दिया है । ये जब तक जीवित हैं तुम्हारा स्वप्न सिद्ध नहीं होगा ।'

'परन्तु आचार्य, मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।'

'मूर्खता की बातें हैं आयुष्मान् । तुम्हारा यह उद्ग्रीव यौवन प्रतीक्षा ही में विगलित हो जायगा । फिर उसी के साथ साहस और उच्चाकांक्षाएँ भी । मित्रगण निराश होकर थक जाएँगे और वे अधिक आशावान् शत्रु को सेवेंगे । तुम आयुष्मान् खींचकर समय को वर्तमान में ले आओ ।'

'किस प्रकार आचार्य ?'

'कहता हूँ, सुनो । इस बन्धुल और उसके बारहों पुत्र-परिजनों को नष्ट कर दो आयुष्मान् और बन्धुल के भागिनेय दीर्घकारायण को अपना अन्तरंग बनाओ । इससे तुम्हारा यन्त्र सफल होगा । दीर्घकारायण बन्धुल और राजा, दोनों से अनादृत और वीर पुरुष हैं ।'

'परन्तु यह अति कठिन है आचार्य ।'

'अति सरल आयुष्मान् । वत्सराज उदयन सीमान्त पर सैन्य-संग्रह

कर रहा है। कलिंगसेना के अपहरण से वह अतिक्रुद्ध है। महाराज को भय है कि विवाह और यज्ञ में वह विघ्न डालेगा।'

'यह मैं जानता हूँ। महाराज ने उधर सेनापति कारायण को भेजा है।'

'मैं ऐसी व्यवस्था करूंगा कि सेनापति कारायण को सफलता न मिले आयुष्मान्।'

'इससे क्या होगा आचार्य ?'

'तब तुम महाराज और बन्धुल को उत्तेजित करके बन्धुल के बारहों पुत्र-परिजनों को सीमान्त पर भिजवा देना और कारायण को राजधानी में वापस बुलाकर राजा से अनादृत कराना।'

'मैं ऐसा कर सकूंगा।'

'बन्धुल के बारहों पुत्र-परिजन सीमान्त से जीवित नहीं लौटेंगे और बन्धुल को स्वयं उस अभियान पर जाने को विवश होना पड़ेगा। बिम्बिसार को पराजित करके वह गर्व तो बहुत अनुभव करता है, पर उसका सैन्य-संगठन इस युद्ध में छिन्न-भिन्न हो गया है आयुष्मान्, उसे कौशाम्बीपति और उसके अमात्य यौगन्धरायण से लोहा लेने में बहुत सामर्थ्य खर्च करनी पड़ेगी।'

'किन्तु बंधुल के बारहों पुत्र-परिजनों का निधन कैसे होगा आचार्य ?' वे सब भाँति सुसज्जित और संगठित हैं।'

'उनकी चिन्ता न करो आयुष्मान्। पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्यवान् महामात्य यौगन्धरायण मेरा बालमित्र है। मैं आवश्यक संदेश देकर आज ही पायासी महासामान्त को सीमान्त भेज दूंगा। बन्धुल के पुत्र-परिजनों का वध सीमान्त पहुँचने के प्रथम ही हो जायगा।'

'यह तो असाध्य साधन होगा भन्ते आचार्य।'

'और एक बात है, पायासी कारायण के साथ साकेत को लौटेगा। मार्ग ही में वह उसे तुम पर अनुरक्त कर देगा। साकेत पहुँचने पर और महाराज से अनादृत होने पर उसे भली-भाँति समादृत करके मित्र बना

लेना तुम्हारा काम है ।'

'इस सम्बन्ध में आप निश्चिन्त रहें आचार्य ।'

'तो पुत्र, इसी यज्ञ-समारोह में तुम्हारी अभिसन्धि पूरी होगी । किन्तु एक बात है ।'

'क्या ?'

'अनाथपिण्डिक सुदत्त शाक्य गौतम का जेतवन में नित्य स्वागत करता है ।'

'हाँ आचार्य, मुझे ज्ञात है ।'

'जाओ तुम भी और श्रमण से कपट-सम्बन्ध स्थापित करो ।'

'आचार्य, क्या उसे मार डालना होगा ?'

'नहीं आयुष्मान् वह अभी जीवित रहना चाहिए । वह इन सब राजाओं को, सेट्ठियों को, सेट्ठि पुत्रों को मार डालेगा । ये ही तो आज तुम्हारे शत्रु हैं । आयुष्मान्, अभी उसे अपना कार्य करने दो । परन्तु यह श्रमण विशाखा के पूर्वाराम मृगार प्रासाद में कब जा रहा है ?'

'इसी पूर्णिमा को, आचार्य ।'

'उसी समय राजमहिषी मल्लिका देवी भी गौतम से दीक्षा लेगी ?'

'ऐसी ही व्यवस्था सेट्ठि पुत्रवधू विशाखा ने की है ।'

'तो तू ऐसा कर सौम्य कि बन्धुल मल्ल की पत्नी मल्लिका भी उस श्रमण के चंगुल में फँस जाय, वह भी राजमहिषी के साथ ही दीक्षा ले ।'

'यह तो अति सरल है आचार्य । उससे मेरा अच्छा परिचय है । मैं उसे सहमत कर लूंगा ।'

'श्रमण की खूब प्रशंसा करो आयुष्मान् और राजमहिषी के साथ ही गौतम के पास जाने की उसे प्रेरणा करो । कर सकोगे ?'

'कर सकूंगा । मैं जानता हूँ, महिषी का उस पर बहुत प्रेमभाव है ।'

'यह बहुत अच्छा है आयुष्मान् । और एक बात याद रखो ।'

'वह क्या आचार्य ?'

'वही करो जो उचित है ।'

'उचित क्या है ?'

'जो आवश्यक है, वही उचित है आयुष्मान् ।'

विदूडभ ने हँसकर कहा—'आचार्य, आपका धर्म गौतम की अपेक्षा बहुत अच्छा है ।

'परन्तु आयुष्मान्, यह धर्म-पदार्थ एक महा असत्य वस्तु है । इसे केवल परधन-हरण करने और उसे शान्ति से उपभोग करने के लिए ही कुछ चतुर जनों ने अपनाया है । इससे प्रिय, तुम किसी की ठगाई में न आना । धर्म के सत्य रूप को समझना और उससे भय न करना । उससे काम लेना और जो उचित हो वही करना ।'

'समझ गया आचार्य । राजगृह के उस तरुण वैद्य के पास कुछ अति भयंकर विष हैं, परन्तु वह उनसे काम लेना जानता है । वह जो उचित है, वही करता है । वह कहता है, ऐसा करने से ये सब भयानक विष अमृत का काम देते हैं, उनसे मृतप्राय आदमी जी उठते हैं ।'

'ऐसा ही है आयुष्मान् । अब तुम इस तत्त्व को भली भाँति समझ गए । अब जाओ तुम प्रिय, तुरन्त साकेत जाकर शुभ कार्य का अनुष्ठान करो ।'

'अच्छा भन्ते' कहकर राजकुमार ने उठकर आचार्य को अभिवादन किया और आचार्य ने दोनों हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया ।

राजकुमार विदा हुए ।

६४ : : दासों के हट्ट में

जीवक कौमारभृत्य को एक दासी की आवश्यकता थी। उसने मित्र राजपाल से कहा—'मित्र, हट्ट में चल, एक दासी मोल लेंगे। सुना है, यवन देश का एक दासविक्रेता नगर में आया है, उसके पास कुछ अच्छी तरुण दासियाँ हैं।'

दोनों मित्र हट्ट में पहुँचे। अन्तरायण में पणजेट्ठक के वाड़े में कुछ दास-दासी एक शृङ्खला में बँधे बैठे थे। अभी दोपहर होने में देर थी। हाट के बीचोबीच बिना छत का लोहे के सींकचों से घिरा हुआ एक बाड़ा था। उसी में पन्द्रह-बीस दास-दासियाँ, जो बेचे जाने को थे, बन्द थे। सबके पैरों में एक लोहे की शृङ्खला पड़ी थी। इनमें सभी आयु के दास-दासी थे। कुछ दासियाँ यवनी थीं। एक की आयु तीस वर्ष के लगभग थी, परन्तु यौवन का प्रभाव अब भी उसके शरीर पर था। दूसरी युवती की आयु बीस बरस की थी। उसका रंग मोती के समान स्वच्छ और आँखें वैदूर्य के समान सतेज थीं। वह दोनों हाथ छाती पर बाँधे एक वृद्धा के पास नीची दृष्टि किए बैठी थी। एक बालक बारह-चौदह वर्ष का था। कई दास काले थे।

दास विक्रेता एक बूढ़ा ठिगना यवन था। वह बहुत बार श्रावस्ती आ चुका था। उसकी सफेद दाढ़ी, ठिगनी गर्दन और क्रूर आँखें उसको अन्य पुरुषों से पृथक् कर रही थी। उसके हाथ में चमड़े का एक सुदृढ़ चाबुक था। वह एक क्रीता-दासी को लेकर बाड़े में आया। दासी की गोद में तीन साल का बालक था। बालक हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था।

'उचित क्या है ?'

'जो आवश्यक है, वही उचित है आयुष्मान् ।'

विदूडभ ने हँसकर कहा—'आचार्य, आपका धर्म गौतम की अपेक्षा बहुत अच्छा है ।

'परन्तु आयुष्मान्, यह धर्म-पदार्थ एक महा असत्य वस्तु है । इसे केवल परधन-हरण करने और उसे शान्ति से उपभोग करने के लिए ही कुछ चतुर जनों ने अपनाया है । इससे प्रिय, तुम किसी की ठगाई में न आना । धर्म के सत्य रूप को समझना और उससे भय न करना । उससे काम लेना और जो उचित हो वही करना ।'

'समझ गया आचार्य । राजगृह के उस तरुण वैद्य के पास कुछ अति भयंकर विष हैं, परन्तु वह उनसे काम लेना जानता है । वह जो उचित है, वही करता है । वह कहता है, ऐसा करने से ये सब भयानक विष अमृत का काम देते हैं, उनसे मृतप्राय आदमी जी उठते हैं ।'

'ऐसा ही है आयुष्मान् । अब तुम इस तत्त्व को भली भाँति समझ गए । अब जाओ तुम प्रिय, तुरन्त साकेत जाकर शुभ कार्य का अनुष्ठान करो ।'

'अच्छा भन्ते' कहकर राजकुमार ने उठकर आचार्य को अभिवादन किया और आचार्य ने दोनों हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया ।

राजकुमार विदा हुए ।

६४ : : दासों के हट्ट में

जीवक कौमारभृत्य को एक दासी की आवश्यकता थी। उसने मित्र राजपाल से कहा—'मित्र, हट्ट में चल, एक दासी मोल लेंगे। सुना है, यवन देश का एक दासविक्रेता नगर में आया है, उसके पास कुछ अच्छी तरुण दासियाँ हैं।'

दोनों मित्र हट्ट में पहुँचे। अन्तरायण में पणजेट्ठक के बाड़े में कुछ दास-दासी एक शृङ्खला में बँधे बैठे थे। अभी दोपहर होने में देर थी। हाट के बीचोबीच बिना छत का लोहे के सींकचों से घिरा हुआ एक बाड़ा था। उसी में पन्द्रह-बीस दास-दासियाँ, जो बेचे जाने को थे, बन्द थे। सबके पैरों में एक लोहे की शृङ्खला पड़ी थी। इनमें सभी आयु के दास-दासी थे। कुछ दासियाँ यवनी थीं। एक की आयु तीस वर्ष के लगभग थी, परन्तु यौवन का प्रभाव अब भी उसके शरीर पर था। दूसरी युवती की आयु बीस बरस की थी। उसका रंग मोती के समान स्वच्छ और आँखें वैदूर्य के समान सतेज थीं। वह दोनों हाथ छाती पर बाँधे एक वृद्धा के पास नीची दृष्टि किए बैठी थी। एक बालक बारह-चौदह वर्ष का था। कई दास काले थे।

दास विक्रेता एक बूढ़ा ठिगना यवन था। वह बहुत बार श्रावस्ती आ चुका था। उसकी सफेद दाढ़ी, ठिगनी गर्दन और क्रूर आँखें उसको अन्य पुरुषों से पृथक् कर रही थी। उसके हाथ में चमड़े का एक सुदृढ़ चाबुक था। वह एक क्रीता-दासी को लेकर बाड़े में आया। दासी की गोद में तीन साल का बालक था। बालक हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था।

जब दासों के व्यापारी ने उस स्त्री को दासों के बाड़े में बैठाकर उसके पैरों में शृङ्खला डाल दी, तो वह स्त्री रोने लगी।

दासविक्रेता ने कहा—'रोती क्यों है ? क्या चाबुक खायगी ?'

'तुमने मुझे यहाँ किस लिए बैठाया है ?'

'यह तो प्रकट है कि बेचने के लिए। देखा नहीं, बीस निष्क सोने के देकर मैंने तुझे और तेरे इस छोकरे को खरीदा है।'

'कहाँ ? मुझे तो मेरे मालिक ने यह कहा था कि वैशाली में तेरा आदमी है, वहीं यह भलामानस तुझे ले जायगा।'

व्यापारी ने हँसकर कहा—'ऐसा न कहता तो तू वहीं रो-धो कर एक टंटा खड़ा कर देती ? पर अब रोकर अपना चेहरा न खराब कर, नहीं तो ग्राहक अच्छे दाम नहीं लगाएगा।'

स्त्री ने निराश दृष्टि से उसकी ओर ताकते हुए कहा—'तो क्या तुम मुझे बेचोगे ?'

'नहीं तो क्या बैठाकर खिलाऊँगा ? यहाँ तो इधर लिया, उधर दिया।'

इतने में एक आदमी ने लड़के के माँसल कन्धों में हाथ गड़ाकर देखा और कहा—

'अरे इस छोकरे को सस्ते दामों में दे तो मैं ही ले लूं।'

'सस्ते की खूब कही। छोकरा कितना तैयार है। खरे दाम चोखा माल।'

'पर इतना-सा तो है। काम लायक बड़ा होने तक कितना खिलाना-पिलाना होगा, जानते हो ? मैं दस कार्षापण दे सकता हूँ।'

'क्या दस ? अभी नहीं और छः महीने बाद पचास में बिकेगा।'

'और जो मर गया तो माल से भी जाओगे। मान जाओ, पन्द्रह कार्षापण ले लो।'

'अच्छा बीस पर तोड़ करिए। बहुत खरा माल है, कैसा गोरा रंग है।'

ग्राहक कार्षापण गिनने लगा, तो स्त्री ने आंखों में भय और आँसू

भर कर कहा—'मुझे भी खरीद लीजिए भन्ते ।'

व्यापारी ने हाथ का चाबुक उठाकर कहा—'चल, चल, ग्राहकों को तंग न कर ।' उसने खींचकर बालक को ग्राहक के हाथ में दे दिया । बालक रोने लगा, उसकी माँ मूर्छित हो गई ।

व्यापारी ने कहा–'अब इस अवसर पर आप अपना माल लेकर चल दीजिए, होश में आने पर यह और टंटा खड़ा करेगी ।'

ग्राहक सिसकते हुए बालक को लेकर चला गया । थोड़ी देर में स्त्री ने होश में आकर शून्य दृष्टि से अपने चारों ओर देखा । दासविक्रेता ने पास आकर कहा—'चिन्ता न कर, जिसने खरीदा है वह भला आदमी है, लड़का सुख से रहेगा और तेरा भी झंझट जाता रहा ।' स्त्री भाव-हीन आँखों से उसे देखती रही । उसके होठ हिले, पर बोल नहीं निकला । वह सिर से पैर तक कपड़े से शरीर ढाँपकर पड़ रही ।

एक बूढ़े ब्राह्मण ने आकर कहा—'एक दासी मुझे चाहिए ।'

'देखिए, इतनी दासियां हैं । यवनी चाहिए या दास ?'

'दास ।'

'तब यह देखिए ।' उसने एक तरुणी की ओर संकेत किया । वह चुपचाप अधोमुखी बैठी रही । व्यापारी ने कहा—'चार भाषा बोल सकती है आर्य । रसोई बनाना और चरणसेवा भी जानती है, अभी युवती है ।' यह कहकर उसने उसे खड़ा किया । युवती सकुचाती हुई उठ खड़ी हुई ।

ब्राह्मण ने साथ के दास से कहा—'देख काक, दाँत देख, सब ठीक-ठाक हैं ?'

ब्राह्मण के क्रीतदास ने मुँह में उँगली डालकर दाँत देखे और निश्शंक वक्षःस्थल में हाथ डालकर वक्ष टटोला । कमर और शरीर को जगह-जगह से टटोलकर, दबाकर देखा और फिर हँसकर कहा—'काम लायक है मालिक, खूब मजबूत है ।'

व्यापारी ने हँसकर कहा–'मैंने पहले ही कहा था । परन्तु भन्ते, मूल्य

चालीस निष्क से कम नहीं होगा।'

'इतना बहुत है, तीस निष्क दूंगा।'

'आप श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं, मुझे उचित है कि आप ही को बेचूं।' उसने हँसते-हँसते युवती के पैर की शृंखला खोल दी। ब्राह्मण ने स्वर्ण गिन दिया और दास से कहा—'लेखपट्ट ठीक-ठीक लिखाकर दासी को ले आ।' वे चले गए।

काक ने सब लिखापढ़ी कराकर दासी से कहा—'चल-चल, घबरा मत, हमीं तेरे मालिक हैं, भय न कर।' दासी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलदी।

जीवक कौमारभृत्य घूर-घूर कर प्रत्येक दासी को देख रहे थे। अब अवसर पाकर उन्होंने व्यापारी से कहा—'भन्ते, आपको कैसा दास चाहिए? इस छोकरे को देखिए-कैसे हाथ पैर हैं, रंग भी काला नहीं है।' उसने छोकरे के पैरों से शृङ्खला खोलकर कहा—

'तनिक नाच तो दिखा रे?'

बालक ने डरते-डरते खड़े होकर भद्दी तरह नाच दिखा दिया। व्यापारी ने फिर कहा—'गाना भी सुना।'

उसने दासों का गीत भी गा दिया। व्यापारी हँसने लगा।

जीवक ने कोने में सिकुड़ी हुई बैठी युवती की ओर उँगली उठाकर कहा—'उस युवती दासी का क्या मोल है भणे!'

व्यापारी ने हँसकर हाथ मलते हुए कहा—'आप बड़े काइयां हैं भन्ते, असल माल टटोल लिया है। बड़ी दूर से लाया हूँ, दाम भी बहुत दिए हैं। व्यय भी करना पड़ा है। संगीत, नृत्य और विविध कला में पारंगत है। भोजन बहुत अच्छा बना सकती है, अनेक भाषा बोल सकती है। रूप-सौन्दर्य देखिए·····।'

उसने दासी को अनावृत करने को हाथ बढ़ाया। परन्तु जीवक ने कहा—'रहने दे मित्र दाम कह।'

'साठ निष्क से एक भी कम नहीं।'

'इतना ही ले।'

जीवक ने स्वर्ण-भरी थैली उसकी ओर फेंक दी। व्यापारी ने प्रसन्न हो और दासी के निकट जाकर उसकी शृङ्खला खोलते हुए कहा—'भाग्य को सराह, ऐसा मालिक मिला।'

दासी ने कृतज्ञ नेत्रों से जीवक को देखा और उसके निकट आ खड़ी हुई। जीवक ने उसे अपने पीछे-पीछे आने का संकेत किया, तथा मित्र से बातें करता हुआ अपने आवास की ओर आया।

इसी समय और भी बहुत से दास और दासियाँ बिकने के लिए हट्ट में आए। पणजेष्ठक ने सबके मालिकों के नामपट्ट देखे, शुल्क लिया और एक-एक करके शृंखला उनके पैरों में डाल दी। इन दास-दासियों में बूढ़े भी थे, जवान भी थे, अधेड़ भी थे, लड़कियाँ भी थीं। सत्तर वर्ष की बुढ़िया से लेकर चार वर्ष तक की लड़की थी। एक दस वर्ष की लड़की कराह रही थी। कल इसकी माँ बिक चुकी थी और यह मा, मा, चिल्ला रही थी। वह सत्तर साल की बुढ़िया बात रोग से गठरी-सी बनी लगातार रो रही थी। उसके पाँच-छै लड़के-लड़कियाँ लोग खरीद ले गए थे। वह तीन चार दिन से हट्ट में बिकने को आ रही थी, पर कोई इसका खरीदार ही नहीं खड़ा हो रहा था। दो औरतें एक-दूसरी से चिपटी बैठी थीं। एक की आयु ४५ वर्ष की होगी, दूसरी १५ वर्ष की थी। दोनों माँ-बेटियाँ थीं। संकर थीं, आर्य पिता और दासी से उनकी उत्पत्ति थी। दासी भी संकर थी। उनके कपड़े-लत्ते साफ सुथरे और अंग कोमल थे। इससे प्रतीत होता था कि उन्होंने परिश्रम नहीं किया था। ये एक क्षोत्रिय ब्राह्मण के यहाँ से आई थीं। दोनों पढ़ी-लिखी थीं। एक सामन्त ने उन्हें ब्राह्मण को यज्ञ की दक्षिणा में दिया था। ब्राह्मण ने उनके स्वर्णभरण उतारकर उन्हें बेचने को हट्ट में भेज दिया था।

दासों को देखने और उनका क्रय-विक्रय करने वालों की हट्ट में बड़ी भीड़ हो रही थी। उसी भीड़ में एक ओर सोम चुपचाप खड़े तीव्र दृष्टि से एक-एक करके दासों को देख रहे थे। उनका चेहरा पीला पड़ गया था और उस पर श्री नहीं रह गई थी। इतने ही में किसी ने पीछे

से उनके कन्धे पर हाथ रखा। सोम ने पीछे फिरकर देखा, कुण्डनी थी। कुण्डनी ने संकेत से उन्हें एक ओर ले जाकर कहा—'बड़ी बात हुई जो तुम्हें देख पाई। मैं तुम्हारे लिए बहुत चिन्तित थी। परन्तु राजनन्दिनी की खटपट में मैं तुम्हारे लिए कुछ न कर सकी। तुम क्या सीधे श्रावस्ती भी में चले आ रहे हो ?'

'हाँ, मुझे अशक्तावस्था में राह में अटकना पड़ा। परन्तु मैं मार्ग भर तुम्हें खोजता आया हूँ।'

'मुझे या चम्पा की राजनन्दिनी को ?'

'कुण्डनी ने सोम पर एक कटाक्ष करके हँस दिया। सोम भी हँस पड़ा उसने कहा—'राजकुमारी है कहां ?'

'वह इसी दस्यु यवन दासविक्रेता के फन्दे में फँस गई थी।'

'तुम रक्षा नहीं कर सकीं कुण्डनी ?' सोम ने सूखे कण्ठ से कहा।

'नहीं, मैंने उस समय उन्हें छोड़ कर पलायन करना ही ठीक समझा।'

'अरे, तो यह दुष्ट क्या उन्हें दासी की भाँति बेचेगा ?' सोम ने क्रोध से नथने फुलाकर खड्ग पर हाथ रखा और एक पग आगे बढ़ाया।

कुण्डनी ने उनका हाथ पकड़ लिया। कहा—'बेवकूफी मत करो, यह तो उन्हें बेच भी चुका।'

'बेच चुका, कहाँ ?'

'अन्तःपुर में। अन्तःपुर का कंचुकी मेरे सामने स्वर्ण देकर उन्हें महालय में ले गया।'

'और तुम यह सब देखती रहीं कुण्डनी ? सोम की वाणी कठोर हुई।

'दूसरा उपाय न था। परन्तु अन्तःपुर की सब बातें मुझे विदित हैं।'

'कौन बातें ?'

'गान्धार-कन्या कलिंगसेना का महाराज प्रसेनजित् से विवाह होगा। उस अवसर पर पट्टराजमहिषी मल्लिका नियमानुसार उन्हें एक दासी भेंट करेंगी। इस काम के लिए बहुत दासियाँ इकट्ठी की गई थीं। उनमें

कंचुकी भाण्डायन ने चम्पा की राजकुमारी को ही चुना, वह उन्हें मुंहमांगे मूल्य पर क्रय कर ले गया और राजमहिषी मल्लिका ने उन्हीं को विवाह के उपलक्ष्य में महाराज को भेंट करने का निर्णय किया है।'

'परन्तु यह अत्यन्त भयानक है कुण्डनी। यह कदापि न होने पाएगा। तुम इस सम्बन्ध में कुछ न करोगी ?'

'क्यों नहीं। हमें राजनन्दिनी को बचाना होगा। परन्तु, क्या तुम साहस करोगे ?'

'यदि प्रसेनजित् को अपने सेनापति बन्धुल पर अभिमान है, तो मैं कुण्डनी, अकेला ही कोशल का गर्व भंग करूँगा। मगध-पराजय का पूरा बदला लूंगा।'

'तुम अकेले यह कर सकोगे ?'

'अकेला नहीं, यह खड्ग भी तो है ?'

'खड्ग पर यदि तुम्हें इतना विश्वास है तो दूसरी बात है। परन्तु तुम यहाँ मुझसे कुछ आशा मत रखना।'

'तो तुम राजनन्दिनी पर इतनी निर्दय हो ? तब उसे इस विपत्ति में डालने को लाई क्यों थीं ?'

'मैंने उनका विपत्ति से उद्धार किया था ?'

'तो अब भी उद्धार करो।'

'कर सकती हूँ, परन्तु तुम्हारी योजना पर नही, अपनी योजना पर।'

'वह क्या है ?'

'कहती हूँ, पहिले यह कहो कि तुम साहस कर सकते हो ?'

'मेरा यह खड्ग तुम देखती नहीं ?'

'फिर खड्ग, अरे भाई, खड्ग का यहाँ काम नहीं है।'

'तब ?'

'कौशल का है।'

'क्या असुरपुरी का वही मृत्यु-चुम्बन ?'

'नहीं, नहीं, सोम, यह असुरपुरी नहीं, कोशल महाराज्य की राजधानी श्रावस्ती है। जानते हो, यदि यहाँ यह पता लग जाय कि हम मागध हैं, तो चर होने के संदेह में हमें शूली चढ़ना होगा।'

'तो फिर कहो भी, तुम्हारी योजना क्या है ?'

'हम मागध हैं पराजित मागध।'

'मैं अस्वीकार करता हूँ।'

'व्यर्थ है। यह कहो कि साहस कर सकोगे ?'

'अच्छा करूँगा। कहो, क्या करना होगा ?'

कुण्डनी हँस दी—'हाँ ठीक है, इसी भाँति मेरे अनुगत रहो।'

सोम को भी हँसना पड़ा। उसने कहा—तो अनुगृहीत भी करो।'

'वही तो कर रही हूँ।'

'क्या करना होगा, कहो ?'

'तुम्हें मेरे साथ अन्तःपुर में प्रवेश करना होगा।'

'कैसे ?'

'स्त्री वेश में।'

'अरे ! यह कैसे होगा ?'

'चुपचाप मेरी योजना पर विश्वास करो। वस्त्र मैं जुटा दूंगी। कहो, कर सकोगे ?'

सोम ने हँसकर कहा—'तुम्हारे लिए यह भी सही कुण्डनी।'

'मेरे लिए नहीं भाई, राजनन्दिनी के लिए।'

'ऐसा ही सही।'

'अच्छा, अब चलो मेरे साथ।'

'कहाँ ?'

'जहाँ आर्य आमात्य हैं ?'

'आमात्य क्या यहाँ हैं ? और सम्राट् ?'

'वे राजगृह पहुंच गए हैं।'

'उनके पास अभी चलना होगा ?'

'अभी नहीं, अब तो स्नान-भोजन और विश्राम करना होगा। फिर रात्रि होने पर।'

'चलो फिर।'

दोनों जने टेढ़ीमेढ़ी गलियों को पार करते चले गए।

६५ : : युग्म युग-पुरुष

नगर के बाहर एक यक्ष-निकेतन था। निकेतन बहुत पुराना था। उसमें विराट्काय यक्ष की प्रतिमा थी। निकेतन का अधिकांश पृथ्वीगर्भ में था और उसमें प्रवेश एक गुफा-द्वार से होता था। यक्ष-प्रतिमा काले पत्थर की थी, जो उस अन्धकारपूर्ण निकेतन में प्रभावशाली प्रतीत होती थी। नगर के इस प्रान्त भाग में लोगों का आना-जाना बहुत कम होता था। कभी-कभी लोग यक्षपूजन के लिए आते और दीप जलाकर गुहागर्भ में प्रवेश करते थे। साधारणतया यह प्रसिद्ध था कि यक्ष के प्रकोप से मनुष्य का मस्तक कट गिरता है। इसी से इस यक्ष-निकेतन के प्रति लोगों में बड़ी भीति थी। रात्रि को इधर भूलकर भी कोई नहीं आता था।

कुण्डनी सोम को टेढ़े-मेढ़े मार्गों से होकर इसी यक्ष-निकेतन में ले आई। उसने दृढ़ता से सोम का हाथ पकड़कर उस अन्धकारपूर्ण भयावनी गुहा में प्रवेश किया। सोम टटोल-टटोल कर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। गुहा के बिलकुल अन्त में यक्ष-प्रतिमा की पीठ पर ढासना लगाए, दीपक के क्षीण प्रकाश में आर्य वर्षकार गम्भीर मुद्रा से बैठे ताड़पत्र पर कुछ लेख लिखने में व्यस्त थे। कुण्डनी और सोम ने निकट जाकर अभिवादन किया। आर्य वर्षकार ने सिर उठाकर देखा, फिर संकेत से बैठने को

कह अपना लेख पूरा किया। लेख पूरा करके उस पर उन्होंने गीली मिट्टी की अपनी मुद्रिका से मुहर लगा दी। फिर सोमप्रभ की ओर देख कर कहा—'आयुष्मान् सोम, हम लोगों के आने के प्रथम ही सम्राट् की सेना पराजित हो गई।'

'सुन चुका हूँ आर्य!' सोम ने धीरे से कहा।

'अभी भगवत्पाद वादरायण का सन्देश मुझे मिला है, सम्राट् अब राजगृह पहुँच गए होंगे। मेरा उधर तुरन्त पहुँचना आवश्यक है, क्योंकि राजगृह पर चण्डमहासेन ने अभियान किया है और मथुरा का अवन्ति-वर्मन भी उससे मिलने आ रहा है। किन्तु मैं निमित्त से रुका हूँ। समय क्या है?'

'एक दण्ड रात्रि व्यतीत हुई है।'

'तो आयुष्मान् सोम, यह पत्र तुम यत्न से रखो और सेनापति उदायि को ढूँढ़-ढाँढ़कर उन्हें दे दो। वह बिखरी हुई मागध सैन्य का संगठन कर रहे हैं। तुम उन्हें सहायता दो—अत्यन्त गोपनीय भाव से सेना को संगठित करो और अवसर पाते ही यज्ञ विध्वंस कर दो।'

'क्या कोशलपति के प्रति आर्य कोई विशेष आदेश देंगे?'

'नहीं। परन्तु यथा समय तुम करणीय करो।'

'राजकुमार विदूडभ?'

'उसके जीवन की रक्षा होनी चाहिए, किन्तु पिता पुत्र के विवाद से तुम लाभान्वित हो सकते हो।'

'जैसी आज्ञा आर्य।'

'पुत्री कुण्डनी, तुझे अन्तःपुर का सब महत्त्वपूर्ण समाचार सुविदित होना चाहिए। तुम लोग नगर में छद्म नाम और छद्म वेष में रह सकते हो। हाँ, मल्ल बन्धुल को नष्ट कर दो।'

'जो आज्ञा आर्य।'

'और एक बात। उपालि कुम्भकार हमारा मित्र है, भूलना नहीं।'

'नहीं आर्य, नहीं।'

'तो जाओ अब, तुम्हारा कल्याण हो।'

दोनों ने अभिवादनकर प्रस्थान किया। वर्षकार फिर कुछ लिखने लगे। इतने ही में पदशब्द सुनकर उन्होंने खड्ग उठाया और खड़े हुए।

'किसी ने मृदु मन्द स्वर से कहा—'वहाँ कौन है ?'

'यदि वयस्य यौगन्धरायण हैं, तो वर्षकार स्वागत करता है।'

'स्वस्ति मित्र, स्वस्ति।'

दोनों ने अपने-अपने स्थान से आगे बढ़कर परस्पर आलिंगन किया। उस अंधकारपूर्ण गुफा में विश्व के दो अप्रतिम राजनीतिज्ञ एकत्र थे।

यौगन्धरायण ने कहा—

'मगध सम्राट् की पराजय का दायित्व मुझी पर है मित्र।'

'मैं जानता हूँ, परन्तु मैं आपको दोष नहीं दे सकता।'

'सुनकर सुखी हुआ। कौशाम्बीपति ने केवल कलिंगसेना के कारण अभियान किया था।'

'किन्तु सुश्री कलिंगसेना ने प्रियदर्शी महाराज उदयन को छोड़कर विगलित-यौवन प्रसेन को कैसे स्वीकार किया ?'

'मेरे ही कौशल से मित्र।'

'तो क्या वह नहीं जानती थी कि प्रसेनजित् बूढ़े हैं ?'

'क्यों नहीं।'

'तो फिर महाराज उदयन ने उसका त्याग किया ?'

'नहीं, मैंने ही यह विवाह नहीं होने दिया।'

'क्यों मित्र ?'

'कौशाम्बी की कल्याण-कामना से।'

'तो क्या वयस्य यौगन्धरायण यह समझते हैं, कि गान्धारराज की मैत्री इतनी हीन है ? उससे तो सम्पूर्ण उत्तर कुरु तक महाराज उदयन का प्रभाव हो जाता।'

'वह तो है ही मित्र, कौशाम्बीपति ने जब से देवासुर-संग्राम में क्रियात्मक भाग लिया है, तब से देवराज इन्द्र उन्हें परम मित्र मानता है।'

'सुनकर सुखी हुआ, किन्तु कलिंगसेना के ब्याह में क्या राजनीतिक बाधा थी ?'

'मैं अवन्तीनरेश महाराज चण्डमहासेन को क्रुद्ध नहीं करना चाहता था। आप तो जानते ही हैं कि कन्याहरण के बाद वे बड़ी कठिनाई से प्रसन्न हुए थे और मालव-मित्रता की कौशाम्बी राज्य को बड़ी आवश्यकता है मित्र।'

'किन्तु कदाचित् कौशाम्बी के महामात्य यौगन्धरायण मगध-सम्राट् की प्रसन्नता की उतनी चिन्ता नहीं करते।'

'क्यों नहीं। मगध के महामहिम अमात्य वर्षकार भली भाँति जानते हैं कि मागध मित्रता की प्राप्ति के लिए ही मैंने युक्ति-पूर्वक देवी वासवदत्ता को छल से मृतक घोषित करके मगधनन्दिनी पद्मावती का विवाह कौशाम्बीपति से कराया था। मगध-सम्राट् की प्रसन्नता की कौशाम्बीपति को उतनी ही आवश्यकता है मित्र, जितनी मगध-सम्राट् को कौशाम्बीपति मित्रता की।'

'सुनकर आश्वस्त हुआ मित्र। आपको विदित ही होगा, इसीसे असन्तुष्ट होकर अवन्तीनरेश ने मगध पर अभियान किया है। कलिंगसेना से उदयन महाराज का विवाह मगध-सम्राट् को भी अभीष्ट नहीं था।'

यौगन्धरायण ने हँसकर कहा—'सम्राट् को कौशाम्बीपति की गान्धार राज्य की मैत्री से पश्चिमोत्तर दिशा से भय ही भय है, तो मित्र सम्राट् की इस महत्वाकांक्षा में कौशाम्बी राज्य बाधक नहीं है। सच पूछिए तो कौशाम्बीपति को विश्वास था कि मगध-अभियान कौशल राज्य के जीर्ण-शीर्ण ढाँचे को अकेला ही ढहा देगा।'

'सो मित्र यौगन्धरायण, मागध-अभियान अभी समाप्त नहीं है। अभी वर्षकार जीवित है।'

'वयस्य वर्षकार का प्रबल प्रताप मुझे विदित है। मुझे सुख है कि मुझे और कौशाम्बीपति को उसकी और मगध सम्राट् की मित्रता प्राप्त है।'

'मगध-सम्राट् सदैव कौशाम्बीपति को मित्र समझते हैं।'

'महाराज यह सुनकर सुखी होंगे। तो मित्र, अब स्वस्ति।'

'स्वस्ति मित्र, स्वस्ति।'

आर्य यौगन्धरायण चले गए और उसके कुछ ही देर बाद आर्य वर्षकार गुहाद्वार से निकले। बाहर आकर उन्होंने कुछ संकेत किया। एक चर ने आकर उनके कान में धीरे-धीरे कुछ कहा। आर्य वर्षकार ने नेत्रों में संतोष प्रकटकर कहा—

'अब तुम अपने कार्य में लगो सौम्य। मेरा अश्व तैयार है?'

'जी हाँ आर्य।'

'ठीक है।' वे उत्तरीय से शरीर को अच्छी तरह लपेट एक ओर को चल दिए।

६६ :: विदूडभ का कूट-यन्त्र

महाराज प्रसेनजित् अशान्त मुद्रा में बैठे बन्धुल मल्ल से कोई गुप्त परामर्श कर रहे थे। विदूडभ ने वहाँ प्रवेश किया। महाराज ने कहा—'बैठो राजपुत्र। तुम श्रावस्ती अकस्मात् ही चले गए, मुझे सूचना भी नहीं दी?'

'जाना पड़ा महाराज।'

'किस लिए पुत्र?'

'एक महत्वपूर्ण संदेश पाकर।'

'कैसा?'

'क्या निवेदन करूँ?'

'कहो पुत्र?'

'मुझे सूचना मिली थी।'

'कैसी ?'

'अप्रिय ।'

'कहाँ से ?'

'सीमान्त से ।'

'कह पुत्र, क्या सूचना थी ।'

'कौशाम्बीपति ठीक यज्ञ के समय कोशल पर आक्रमण करेगा ।'

'कहाँ ? कारायण ने तो नहीं लिखा । यह उसका पत्र है । वह लिखता है, चिन्ता का कोई कारण नहीं है ।'

'मेरे पास भी एक पत्र है महाराज ।'

'किसका पत्र ?'

'सेनापति कारायण का ।'

'किसके नाम ?'

'किसी गुप्त मित्र के नाम ।'

विदूडभ ने एक पत्र वस्त्र से निकालकर महाराज के हाथ में दे दिया। महाराज ने मल्ल बन्धुल को देकर कहा—'पढ़ो बन्धुल ।'

बन्धुल ने पढ़ा । उसका मुँह सूख गया । वह उलट-पुलट कर पत्र को देखने लगा ।

महाराज ने कहा—'पत्र में क्या लिखा है ?'

'लिखा है, ठीक···दिन कौशाम्बीपति श्रावस्ती पर आक्रमण करेंगे। मैं प्रकट में विरोध करूँगा, परन्तु भीतर से अनुकूल हूँ । तुम नगर-रक्षक सैन्य को ठीक रखना । तुम्हारा प्राप्तव्य जा रहा है ।'

'पत्र पर क्या कारायण के हस्ताक्षर हैं ?'

'हाँ महाराज,' बन्धुल ने क्रुद्ध स्वर में कहा ।

'पत्र किसे लिखा गया है ?'

'कोटपाल को ।'

'तुम पर यह अभिसन्धि कैसे प्रकट हुई पुत्र ?'

'मेरे चर द्वारा ।'

'श्रावस्ती क्यों गए ?'

'नगर का प्रबन्ध देखने, तथा पत्रवाहक मिल जाय तो विशेष समाचार जानने।'

'तो पुत्र अबकरना क्या है ?'

'यह सेनापति बन्धुल कहेंगे। वे महाराज के विश्वासपात्र और वीर हैं।'

'तुम भी कहो पुत्र ।'

'महाराज जानते हैं कि मेरा मत महाराज से नहीं मिलता।'

'किन्तु यह कोशल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है पुत्र।'

'इसीसे मैं श्रावस्ती गया था महाराज।'

'तो बन्धुल, तुम सीमान्त को अभी प्रयाण करो और कारायण को बन्दी करके यहाँ भेज दो।'

'मैं विरोध करता हूँ महाराज।'

'क्यों पुत्र ?'

'सेनापति की यहाँ अधिक आवश्यकता है।'

'परन्तु सीमान्त पर और भी अधिक।'

'वहाँ, सेनापति के बारहों पुत्र-परिजन जा सकते हैं। वे वीर और योद्धा हैं और विश्वस्त भी हैं। आगा-पीछा सोचने योग्य भी हैं।'

'पर वे सब राजकाल में नियुक्त हैं पुत्र।'

'राजधानी का कार्यभार मैं ग्रहण करता हूँ महाराज।'

'तो बन्धुल यही ठीक है। वे सीमान्त को तुरत बीस सहस्र नई सेना लेकर जायँ।'

'नहीं महाराज, मेरी एक योजना है।'

'वह क्या ?'

'यदि सब एकत्र सैन्य लेकर जायेंगे, तो शत्रु सावधान हो जायगा। उसे भय उपस्थित हो सकता है।'

'तुम्हारी योजना क्या है ?'

वे बारहों बन्धुल-परिजन सैन्य बिना लिए महाराज के दूत के रूप में

उपानय लेकर कौशाम्बीपति के पास जायँ और यज्ञ में उन्हें निमन्त्रण देकर उनकी रुचि देखें। सैन्य प्रच्छन्न रूप में पीछे-पीछे जाय। कोई योग्य सामन्त या सेनापति उसका संचालन करे।'

'युक्ति बुरी नहीं है; 'पर सैन्य संचालन कौन करेगा ?'

'यह भन्ते सेनापति ठीक करें।'

अब मल्ल बन्धुल ने मुंह खोला। उसने कहा—

'सैन्य की व्यवस्था हो जायगी। राजकुमार की योजना उत्तम है। किन्तु कारायण ?'

'उसे तुरन्त राजधानी में बुला लिया जाय। यहाँ आने पर महाराज जैसा उचित समझें, उस पर अभियोग करें।'

महाराज एकदम असंयत हो उठे। उन्होंने कहा—'सेनापति, तुम आज ही बारहों मल्ल-पुत्र-परिजन को सीमान्त पर भेज दो और सेना का भी प्रबन्ध करो और पुत्र, तुम श्रावस्ती जाकर नगर-व्यवस्था अपने अधीन कर लो।'

राजपुत्र विदूडभ कृतकृत्य होकर उसी समय श्रावस्ती को चल दिए। उन्हीं के साथ उनके राजवैद्य मित्र जीवक कौमारभृत्य भी श्रावस्ती गए।

६७ : : राजसूय समारम्भ

वसन्त ऋतु का प्रारम्भ था। सुन्दर-शीतल-मृदु-सुगन्ध वायु बह रही थी। लता गुल्म पल्लवित और द्रुमदल कुसुमित हो रहे थे। श्रावस्ती में राजसूय की बड़ी भारी तैयारियाँ हो रही थीं। महाराज प्रसेनजित् की साकेत से अवाई हो रही थी। मार्ग-बीथी सब पताकाओं, स्वस्तिकों, ध्वजाओंसे सजाई गई थीं। सब सड़कें छिड़काव से ठंडी की हुई थीं।

स्थान-स्थान पर कुसुमगुच्छ के द्वारमंडप और तोरण बनाए गए थे। शीतल चन्दन और जलते हुए अगुरु की सुगन्ध महक रही थी। जहाँ तहाँ देश-विदेश के सौदागर और धनिकजन राजपथ की शोभा निहारते घूम रहे थे। महाराज प्रसेनजित् उज्ज्वल वेश धारण किए, बारहों मल्ल-बन्धुओं से रक्षित हो, एक भीमकाय हाथी पर बैठे हुए राजमहालय की ओर आ रहे थे। शोभायात्रा में देश-विदेश के राजा, राजप्रतिनिधि, माण्डलिक और गण्यमान्य सेट्ठि, ब्राह्मण श्रोत्रिय, परिव्राजक तथा ब्रह्मचारी वानप्रस्थ, जटिल सब कोई थे। राजमहालय में पहुँच राजा ने पहिले अन्तःपुर में जा परिवार की स्त्रियों से भेंट की। राजमहिषी मल्लिका देवी ने उनका पूजन किया। फिर उन्होंने खुली राजसभा में देश-विदेश से आए राजवर्गियों का स्वागतसत्कार किया, उनके द्वारा लाई उपानय सामग्री को साभार स्वीकार किया, काम्बोज के संघपति ने उत्तरापथ की अलभ्य वस्तुएँ उपानय में भेजी थीं, जिनमें नन्दिनगर के बने हुए भेड़, बिल्ली और मूषक के रोम से बने सुवर्ण-चित्रित, मूल्यवान वस्त्र आजानीय अश्व, अश्वतरी और ऊँट थे। कुरु, पांचाल संघ राज्य के शासक धनञ्जय और श्रुतसोम तथा गणपति राजा दुर्मुख बहुत से वायु-तुल्य वेग से चलने वाले, अच्छी जाति के अश्व और बहुत से रत्न भेंट लेकर स्वयं आये थे। अस्सक के राजा ब्रह्मदत्त, कलिंगराज सत्तभु, कम्पिला के राजा भरत, बिदेहराज रेणु, काशिराज धत्तरथ भी विविध मूल्यवान् वाहन, आसन, पलंग, पोशाक, बहुमूल्य मणियों और मोतियों से सुशोभित हाथी दाँत के बने विचित्र कवच, विविध शस्त्र, सुशिक्षित घोड़ों से जुते हुए तथा सोने के तारों से खचित व्याघ्रचर्म से मढ़े हुए रथ, हाथी, कम्बल, रत्न, नाराच, अर्द्धनाराच आदि सामग्री लाए थे। रोरुकसौवीर साकल के राजा बहुत सा सुवर्ण तथा कार्पासिक देश की षोड़शी, कुन्तला, अलंकृता सैकड़ों दासियों कों भेंट में लाए थे। मद्र देश के राजा स्वर्णघाटों में मलयगिरि के सुवासित चन्दन का अर्क और दर्दुर गिरि का अगुरु, चमचमाते मणिमाणिक्य तथा सोने के तारों से बने हुए महीन वस्त्र लाए

थे। दक्षिण से भोजराज्य, विदर्भ राज्य, अस्सक और दण्डक राज्यों के प्रतिनिधि बहुत से तेजस्वी रत्न, चाँदी, अलंकार, शस्त्र और वस्त्र लेकर आए थे। विदिशा के नागराज शेष के पुत्र पुरञ्जय भोगी ने अलभ्य विषहर मणि तथा दो सौ सुन्दरी नागकन्याएँ भेजी थीं। हजारों गौसेवक, ब्राह्मण श्रोत्रिय, सूद्र और शंकर, व्रात्य महाराज प्रसेनजित् को प्रसन्न करने के लिए विविध उपहार लेकर आए थे। जंगली जाति के सरदार रत्न, मूँगा, स्वर्ण, भेड़, बकरी, ऊँट, गाय आदि पशु, फल-फूल, फूलों का मधु आदि सामग्री भेंट लाए थे।

ये सब राजा, महाराजा और सरदार जमीदार भीड़ के मारे भीतर घुसने का स्थान न पाकर बाहर द्वार ही पर खड़े थे। सैकड़ों ग्रामवासी प्रधान घी से भरे सोने-चाँदी के घड़े हाथों में लिए राह न मिलने के कारण बाहर ही खड़े रह गए थे। कुरु के जनों और पहाड़ी राजाओं ने ब्राह्मणों और श्रोत्रियों के काम की बड़ी-बड़ी सुन्दर मृगछालाएँ तथा मजबूत पहाड़ी टट्टू भेजे थे। कलिंगराज सत्तभु दरवाजे पर भारी भीड़ देखकर मूल्यवान रत्नजटित गहने और हाथीदाँत की मूठोंवाले खड्ग तथा काली गर्दनवाले और सौ कोस तक दौड़नेवाले हजार खच्चर भीतर भेजने की व्यवस्था कर अपने देश को लौट गए। उत्तर कुरु के देव दिव्य औषध अम्लान पुष्पमाल और कदली मृगचर्म लेकर आए खड़े थे। क्रूरकर्मा असभ्य किरात, खस और दर्दुर विविध पशु-पक्षियों का शिकार लेकर तथा पांच सौ युवती दासियां लेकर आए थे।

अनेक राजा लोगों ने द्वार पर जाकर देखा कि दण्डधर दौवारिक लोगों की राह रोक कर विनयपूर्वक कह रहे हैं—'भन्ते, तनिक ठहरिए। यथा समय क्रमशः आप भीतर जा सकेंगे। महाराज आपके उपानय भी ग्रहण करेंगे।' मगध के सम्राट् सेनिय बिम्बिसार ने लम्बे दाँतों तथा सुनहरी झुलोंवाले सौ मस्त हाथी और इतने ही वायुवेग अश्व, जो सुनहरी साज से सजे थे, भेंट भेजे थे। इसी प्रकार अनेक राजा, महाराजा, गणपति, सेट्ठि नगरसेट्ठि और पौर जानपद प्रमुखों ने विविध उपानय

वस्तु महाराज प्रसेनजित् को प्रसन्न करने के लिए भेजी थीं। पच्छिमी गान्धार के अधिपति कलिंगसेन ने आम के पत्ते के समान रँगवाले अपूर्व सोलह अश्व और दो सौ नवनीत-कोमलांगी गानवाद्य-द्यूत-निपुणा कुमारियाँ भेजी थीं।

आगत जनों के लिए कोशलपति ने स्वागत-सत्कार की समुचित व्यवस्था की थी। सहस्रों सेवक, दास, कम्मकर लोगों को खिलाने-पिलाने, ठहराने तथा उनके वाहनों की व्यवस्था में लगे हुए थे। सैकड़ों कर्णिक लेखा-जोखा लिख-लिख कर उपानय-सामग्री कोठार में पहुँचाते तथा रसद तोल रहे थे। कहीं कच्ची रसद तोल-तोल कर बाँटी जा रही थीं, कहीं अन्न पकाया जा रहा था। कहीं भोजन करनेवालों के आगे भोजन परोसा जा रहा था। साधु, श्रमण, निगण्ठ, श्रोत्रिय लोग भक्ष्य, भोज्य, चूष्य, लेह्य, चर्व्य आदि विविध पदार्थों का आस्वाद ले रहे थे। चारों ओर ऐसा कोलाहल हो रहा था कि कान नहीं दिया जाता था। जगह-जगह पुण्याह पाठ हो रहा था। अभ्यागतों को भोजन, वस्त्र, स्वर्ण, गौ, रत्न दान दिया जा रहा था। यज्ञ-कार्य के निमित्त अजित केसकम्बली, हिरण्यकेशी, बौधायन, भारद्वाज, शौनक, जैमिनि, गौतम, शाम्बव्य, कणाद ओलूक, सांख्यायन, वैशम्पायन पैल, सावण, स्कन्दकात्यायन आदि वेद-वेदांग वेत्ता, षडंग वेदपाठी, षोड़शोपचारसंस्कर्ता, षष्ठितन्त्र, गणित, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, व्युत्पत्ति, ज्योतिष तथा नीतिशास्त्रों के ज्ञाता महाश्रोत्रिय अट्ठासी ब्राह्मण प्रमुखकर्ता नियत किए गए थे, जिनमें से प्रत्येक की सेवा के लिए राजा ने सोलह-सोलह रूपगुणालंकृता दासियां नियत की थीं। सहस्र ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी नित्य स्वर्ण-थाल में हविष्य भोजन करते और अखण्ड सस्वर सामगान करते थे। राजाओं और सरदारों की लाई हुई सहस्रों जंगली गायें जहाँ-तहाँ बंधी थीं। जगह-जगह यज्ञ-बलि के पवित्र पशु, बछड़े, वृषभ और अन्य पशु बँधे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि सब देश और सारे संसार की सम्पदा और जानपद इस समय श्रावस्ती में ही एकत्र हो गए हैं।

६८ : : वज्रपात

नगर आनन्दोत्सव में व्यस्त था। राजमहालय और वीथी, हर्म्य अट्टालिकाएँ सम्मान्य आगतों से परिपूर्ण थीं। यज्ञ में भेंट-स्वरूप आई वस्तुओं के ढेर लगे थे। सैकड़ों कर्णिक, कोठारिक, द्वार-बन्धु, कंचुकी उसकी व्यवस्था में लगे हुए थे। परन्तु महाराज प्रसेनजित् अपने अन्तः-कक्ष में अर्द्ध विक्षिप्त अवस्था में बकझक कर रहे थे। सीमान्त से बड़ी भयानक सूचना पाई थी। बारहों मल्ल पुत्रपरिजनों को राह में दस्युओ ने मार कर सब उपानय सामग्री लूट ली थी। बन्धुल मल्ल काष्ठ के कुन्दे की भाँति शोक-संतप्त भूमि पर पड़े थे। राजकुमार विदूडभ तीखी दृष्टि से दोनों आहत प्रतिद्वन्द्वियों को चुपचाप खड़े देख रहे थे।

महाराज ने बड़ी देर तक बकझक करने के बाद कहा—'राजकुमार, क्या कारायण आया है ?'

'हाँ महाराज।'

'तो पुत्र, उसे अभी उपस्थित कर।'

'महाराज, यह अनुपयुक्त होगा। इस समय यह गृहविवाद प्रकट नहीं होना चाहिए। कारायण कोई उपद्रव खड़ा कर सकता है।'

'तो क्या उसे दण्ड नहीं दिया जाय ?'

'क्यों नहीं महाराज। अभी उसे बन्दीगृह में रक्खा जाय, पीछे यज्ञ-समारोह की समाप्ति पर न्याय-विचार से जैसा उसका अपराध हो, उसे दण्ड दिया जायगा, जिससे महाराज का न्याय दूषित न हो।'

'तो पुत्र, तुम जैसा ठीक समझो, व्यवस्था करो।'

'नहीं महाराज, वह साधारणजन नहीं, सेनापति है। उसकी कारा-व्यवस्था भन्ते सेनापति कर सकते हैं।'

'तो बन्धुल, ऐसा ही हो।'

युवराज ने कहा—'महाराज, इससे भी गुरुतर एक कार्य है।'

'कैसा कार्य पुत्र ?'

'सीमान्त का प्रबन्ध। वहाँ सेना गई है, परन्तु सेनानी विश्वस्त और योग्य नहीं हैं। सर्वत्र छिद्र-ही-छिद्र हैं। इस समय यदि कौशाम्बी नरेश श्रावस्ती पर आक्रमण करें तो भयानक परिणाम हो सकता है। मेरी सम्मति है कि सेनापति स्वयं सीमान्त पर जायँ।'

'राजा और बन्धुल चुप रहे। कुमार ने फिर कहा—'मुझे सन्देह है महाराज !'

'कैसा सन्देह ?'

'बारह मल्ल-बन्धुओं की हत्या केवल दस्युओं का साधारण कार्य नहीं प्रतीत होता। इसमें षड्यन्त्र भी हो सकता है।'

बन्धुल ने सिर उठाकर कहा—

'यदि ऐसा है, तो मैं कौशाम्बी को जला कर छार न करूँ तो बन्धुल नहीं।'

'भन्ते सेनापति, इसी से मेरी सम्मति में आपका ही सीमान्त पर जाना ठीक है। रक्षा भी होगी, यथार्थ का पता भी लगेगा।'

'तो महाराज, मुझे सीमान्त पर जाने दीजिए।'

'जा मित्र। परन्तु यहाँ तेरे बिना मैं अकेला हूँ।'

'महाराज इस समय यज्ञ-अनुष्ठान में व्यस्त हैं। पुर, पौरजन तथा राजपुरुषों से परिवृत हैं। चिन्ता की बात नहीं। मैं सीमान्त जाता हूँ।'

बन्धुल ने उसी समय सीमान्त पर प्रयाण किया। तब तक कारायण को बन्दी-गृह में भेज दिया गया।

६६ : : क्रीता दासी

हंस के समान उज्ज्वल ज्योत्सना से भूलोक ओतप्रोत था। डेढ़ पहर रात्रि जा चुकी थी। आज चन्द्रमा कुछ देर मे निकला था, परन्तु अभी तक उसमें उदय काल की ललाई झलक रही थी। सारा आकाश चाँदनी से भरा था। तारे टिमटिमा रहे थे और सान्ध्य समीर ने प्राणियों पर एक अलस निद्रा का प्रभाव डाल दिया था। कुण्डनी के पीछे उसकी सखी के वेश में सोम धीर मन्थर गति से राजमहालय की ओर बढ़ा जा रहा था। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, जैसे प्रकृति में एक अवसाद ओत-प्रोत हो रहा है। उसने साहस करके कहा—'कुण्डनी, यदि हम सफल न हुए ?'

'चुप। मैं ऐसा कभी नहीं सोचती।'

धीरे-धीरे वे महालय के निकट पहुँच गए। वहाँ अलकापुरी की सुषमा फैल रही थी।

राजमहालय के अन्तःपुर में बहुत भीड़ थी। दासी, चेटी, नागरिका, राजवधू, गणिका, भद्रा आदि अनगिनत स्त्रियाँ वहाँ भरी हुई थीं। सहस्रों सुगन्ध-दीप जल रहे थे और विविध वाद्य बज रहे थे। दास, दासी, सेवक, दण्डधर, कंचुकी अपने-अपने काम मे दौड़-धूप कर रहे थे।

परिवेण पार कर जब वे निकट पहुँचे तो देखा—अलिन्द में बहुत से सशस्त्र प्रहरी ड्योढ़ी की रखवाली कर रहे हैं। कुण्डनी ने वहाँ निःशंक जाकर एक प्रहरी की ओर उँगली उठाई और सोम की ओर देखकर कहा— 'हन्दजे, यही है। इसी चोर ने दासी को उड़ाया है।'

प्रहरी कुण्डनी की रूप ज्वाला और ठाठ से चमत्कृत हो गया। उसने

घबड़ा कर कहा—'कैसी दासी हला ?'

इस पर सोम ने यथासाध्य कोमल कण्ठ करके कहा—'चुप। इसका विचार महिषी मल्लिका करेंगी। तू उनकी सेवा में चल।'

प्रहरी सोम का मुंह ताकने लगा। सोम प्रकाश की आड़ देकर खड़ा हो गया था। कुण्डनी ने उसे डपट कर कहा—'चल चल, महिषी की सेवा में चल।'

'किन्तु हन्दजे,.....'

'पाजी, महिषी की आज्ञा है, चल।'

प्रहरी को भी रोष आ गया। उसने दृढ़ स्वर में कहा—'मैं चोर नहीं हूँ, चलो।'

वह अन्तःपुर की ओर चला। पीछे कुण्डनी और सोम चले। अन्तःपुर की पौर पर वे निर्विघ्न पहुँच गए। वहाँ पौर पर भी प्रहरी थे। कुण्डनी ने उन्हें सुनाकर सोम से कहा—'हला, तू जाकर देवी को सूचना दे आ, मैं तब तक इस चोर पर पहरा दूंगी।'

सोम स्थिर गति से अन्तःपुर में घुस गया। प्रहरियों ने उसे नहीं रोका। वे कुण्डनी को घेर कर खड़े हो गए। कोई उसके कान में लटकते बहुमूल्य हीरक कुण्डलों को, कोई उन्नत उरोजों पर कसी स्वर्णकंचुकी को, कोई उसके नवविकसित यौवन को प्यासी चितवनों से देखने लगा। उनके जेठक ने कुण्डनी को प्रसन्न करने के लिए कहा—

'आर्य्ये, हुआ क्या ?'

कुण्डनी ने उसकी ओर एक कटाक्षपात करके कहा—

'पाजी ने महिषी की अन्तर्वासिनी दासी को उड़ाया है। इसे आज सूली चढ़वाऊँगी।'

'किन्तु यह असत्य है, असत्य।'

एक प्रहरी ने कहा—'इसका प्रमाण क्या है ?'

कुण्डनी ने क्रुद्ध होकर कहा—'अरे मोघपुरुष, प्रमाण क्या तुझे ही बताना पड़ेगा। तू भी इसका साथी है, देवी से निवेदन करना होगा।'

'नहीं, नहीं, अज्जे, मुझसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

सब प्रहरी हँसने लगे। एक ने कुण्डनी की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने की इच्छा से कहा—'अज्जे, इसे पकड़ा कहाँ ?'

कुण्डनी ने उस पर एक कटाक्ष फेंका और मुस्करा कर कहा—'पकड़ा क्या यों ही, तीन पहर से घूम रही हूँ। देवी की आज्ञा है, जहाँ मिले, उपस्थित कर।'

इसी समय सोम ने आकर कहा–'चलो'। प्रहरियों ने बाधा नहीं दी। कुण्डनी प्रहरी सहित अन्तःपुर की पौर में घुस गई।

सोम ने कुण्डनी के कान में कहा—'अब ?'

'अब इसे यहाँ से भगाना होगा, नहीं तो यह थोड़ी ही देर में भीड़ इकट्ठी कर लेगा। तुम उसे जाकर युक्ति से भगाओ, मैं तब तक उस लता मण्डप में हूँ।'

कुण्डनी आगे बढ़ गई। सोम ने सिपाही के पास आकर कहा—

'प्राण बचाना चाहता है ?'

'हला, मैं चोर नहीं हूँ।'

'तो ला कुछ मुझे दे, तुझे छोड़ती हूँ।'

'मेरे पास केवल चार कार्षापण हैं।'

'वही दे मोघपुरुष और भाग। तब तक मैं दूसरी ओर देख रही हूँ। परन्तु याद रख, मेरी संगिनी की दृष्टि में पड़ा और मरा। वह तुझ पर क्रुद्ध है। दो चार दिन अन्तर्ध्यान रह।'

'ऐसा ही सही हला, तुम्हारा कल्याण हो। वह कार्षापण दे बाहर को भागा। सोम ने लम्बे-लम्बे डग भरते हुए लतामण्डप के निकट पहुँचकर कुण्डनी से कहा—'पाप कट गया, चार कार्षापण उत्कोच में मिले।'

'परन्तु सोम, तुम्हारी चाल दूषित है। स्त्रियाँ इस भाँति नहीं चलतीं।'

सोम ने हँसकर कहा—'अब मैं एक दिन में सम्पूर्ण स्त्री नहीं बन सकता हूँ। परन्तु राजकुमारी कहाँ है ?'

'मैं जानती हूँ। वहाँ पहुँचने के लिए पूरा जन-कोलाहल पार करना

होगा। उधर नये हर्म्य में जाना होगा। परन्तु तुम बहुत लम्बे हो और तुम्हारे भीतर झिझक दीख रही है—यह ठीक नहीं है हला।'

'परन्तु यह झिझक नहीं है—व्रीड़ा है सखि।'

कुण्डनी हँस दी। सोम भी हँस पड़े। कुण्डनी ने कहा—

'जो हो, पर अस्वाभाविक कुछ न हो। सावधान, कड़ी परीक्षा का समय है। आओ अब।'

आगे-आगे कुण्डनी और पीछे-पीछे सोम अन्तःद्वार में प्रविष्ट हुए। पद-पद पर दीपालोक बढ़ रहा था। तरुणियाँ उन्मत्त विलास में मग्न थीं। अन्तःपुर से मृदंग और मदिरा से उन्मत्त कोकिल कण्ठ-स्वर सुनाई दे रहे थे। दूर तक विस्तीर्ण वाटिका में नाग, पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, शिरीष के सघन वृक्ष लगे थे। मालावच्छावलियाँ दूर तक फैल रही थीं। उन नील सघन गुल्मों के पत्तों पर उज्ज्वल ज्योत्स्ना की अनोखी छटा दीख रही थी। दोनों व्यक्ति वृक्षों की छाया में अपने को छिपाते बंकिम मार्ग से चले जा रहे थे। अन्तःकोष्ठ के लोहार्गल-युक्त कपाट के उस ओर द्वारपाल को देखकर कुण्डनी ने हँसते हुए स्वर्णमण्डित ताम्बूल की दो वीटिका उसके मुँह में ठूंस दीं। द्वारपाल प्रसन्न हो गया।

कुण्डनी ने कहा—'आज तो हुड़दंग का दिन है भणे।'

'हन्दजे, आनन्द है, आनन्द है।'

दोनों आगे बढ़ गए। द्वारपाल ने बाधा नहीं दी। दोनों विस्तृत वाटिका-वीथियों पर चलने लगे। दोनों ओर की सघन वृक्षों की पंक्तियों से यहाँ अंधेरा छाया हुआ था। अन्त को दोनों अन्तःपुर के अन्तः प्रवेश द्वार पर आ पहुँचे। सोम का हृदय धड़कने लगा। द्वार पर यवनी दासियाँ धनुषबाण लिये मुस्तैद खड़ी थीं। उनका वर्ण गौर था। उनका सारा अंग आगुल्फ कंचुक से आवेष्ठित था। एक-एक छोटा खड्ग उनकी कटि में बँधा था, तथा मस्तक पर उत्तरीय स्वर्णखचित पट्ट से बंधा था। उनके कान के दन्तपत्र उनके चिक्कण कपोलों पर क्रीड़ा कर रहे थे। पैरों में लगा अलक्तक-रस दूर ही से भासित हो रहा था। वे कुल पाँच थीं। मदिरा

के आवेश से उनकी आँखों के कोए लाल हो रहे थे। उन्होंने कुछ चकित भाव से कुण्डनी की ओर देखा। वे समझ ही नहीं रही थीं कि कुण्डनी किस दर्जे की स्त्री है। कुण्डनी ने हँसकर उनके दन्तपत्र को क्रीड़ा से छुआ। फिर कंचुक से मद्यपात्र निकाल कर कहा—'पियो हला, देवी कलिंगसेना के लिए।'

पाँचों ने मद्यपात्र छीन लिया। एक ने पात्र मुंह से लगाया, दूसरी उसे छीनने लगी। कुण्डनी हँसती हुई उन्हें एक दूसरी पर धकेल कर चली गई। किसी ने उनकी तरफ नहीं देखा।

अब वे वास्तविक अन्तःपुर में आ गए। सोम ने स्खलित वाणी से कहा—'कुण्डनी, भला कहीं कभी इस अन्तःपुर का अन्त भी होगा?'

परन्तु कुण्डनी ने उसे चुप रहने का संकेत किया। वे मल्लिका, कुरण्टक, नवमल्लिक आदि के गुल्मों को पार करते हुए चलते गए। बकुल और सिन्धुवार की भीनी महक ने उन्हें उन्मत्त कर दिया। उधर गवाक्षों से लाल पीली नीली प्रकाश छटा छन-छनकर उन पर पड़ रही थी। उनमें से मृदंग, मंजीर, काहल और शंख का नाद सुनाई पड़ रहा था। परिचारिकाएँ द्विपदी खण्ड गान कर रही थीं। आगे चलकर देखा, तरुणियों का एक झुण्ड नृत्य गान करता आ रहा है। वे पान-मत्त थीं। नारीसुलभ मर्यादा को वे त्याग चुकी थीं। उनके केशपाश खुल गए थे। उत्तरीय खिसक गए थे। मंजरीक, उरच्छद, वटंक और अचेलक मालाएँ अस्तव्यस्त हो रही थीं। पैरों के नूपुर बार-बार पैर पटकने से झनझना रहे थे। वे सब इनके पास आ गईं, सोम कुण्डनी की पीठ में छिप गया। कुण्डनी ने सखिल भाव से उच्च स्वर से मदोन्मत्त की भाँति मुद्रा बना कर कहा—'जय, जय। जय, जय। मित्तिया, जय, जय!'

सब मिलकर दोनों को घेर कर नाचने गाने लगीं। कुण्डनी हँसती रही। पर सोम की मुद्रा देख एक-दो ने उसे छेड़ना प्रारम्भ किया। कुण्डनी ने रोक कर कहा—'उसे न छेड़ हला, अल्हड़ बछेड़ी है।'

सब रहस्य की हंसी हँस दी और उसी भाँति गाती बजाती चल दीं। सोम ने अघा कर साँस ली।

दो पहर रात जा चुकी थी। दक्षिण समीर मलयानिल को ला रही थी। उससे वाटिका के सब लता गुल्म झूमते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे—मानो इन सबने भी पी है।

कुण्डनी ने अब द्रुतगति से एक हर्म्य की ओर पग बढ़ाया और उस अट्टालिका में घुस गई। वह अनेक अलिन्द, कुट्टिम वीथियाँ, कोष्ठक, परिवेण, वातायन और मिसिका पार करते हुए उस घर में पहुँचे, जहाँ चक्कलिका के भीतर राजनन्दिनी अधोमुखी, निश्चल बैठी थीं। कक्ष के भीतर का वातावरण एकदम शान्त था। कोलाहल से परिपूर्ण सम्पूर्ण रंगमहल का जैसे यहाँ कुछ प्रभाव ही न था। घर के एक कोने में एक नातिदीर्घ आसन्दी पड़ी थी, उस पर दुग्धफेन के समान प्रच्छदपट ढका था। उसी के निकट एक भद्रपीठ पर एक अष्ट पदक बिछा था, उसी पर सद्योस्नाता राजनन्दिनी चुपचाप ध्यान-मुद्रा में बैठी थीं। उनके सामने एक वेदिका पर गन्ध, माल्य, चन्दन और नैवेद्य रखा था। एक छोटे से मणिपीठ पर सुगन्धित सिक्थपिटक और सौगन्धिक पुटिका रखी हुई थी। उससे तनिक हट कर एक हिरण्यस्तवक में मातुलुंग की छाल और पान के अन्यान्य उपकरण रखे थे। आसन्दी के पादाधान की ओर रजत पतद्ग्रह रखा हुआ था। एक नागदन्त पर कुरण्डमाल लटकी हुई थी।

सोम इस कमनीय मूर्ति को इस अवस्था में देख भाव-मूर्छित हो गया। राजबाला के सम्पूर्ण शरीर मे स्वच्छ कान्ति प्रस्फुटित हो रही थी। उसका सद्यःस्नात हिमधवल प्रभापुंज गात्र, शरत्कालीन मेघों से आच्छादित चन्द्रकला जैसा प्रतीत होरहा था। वह मूर्तिमती स्वर्ग-मन्दाकिनी सी, शंख से खोदकर बनाई हुई दिव्य प्रतिमा सी प्रतीत हो रही थी। जैसे अभी-अभी विधाता ने उसे चन्द्रकिरणों के कूर्चक से धोकर, रजत रस से आप्लावित करके, सिन्धुवार के पुष्पों की धवल कान्ति से सजा

कर वहाँ बैठाया हो।

उसने पग-आहट पाकर उत्पल के समान बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर देखा और सामने दुःखसंगिनी को देख कुछ कहने को ओठ खोले। परन्तु शब्द निकलने से प्रथम ही कुण्डनी ने ओठों पर उँगली रख कुमारी को चुप रहने का संकेत किया। कुमारी ने मिसिका में खम्भे का सहारा लिए ऊंघती हुई दासी को कातर दृष्टि से देखा और आँखें नीची कर लीं। उनकी आँखों से झर-झर अश्रुधारा बहने लगी।

कुण्डनी ने दासी के निकट जा उसे हिलाते हुए डाँटकर कहा–'भाकुटिका, इसी प्रकार सावधान रहा जाता है ?'

दासी हड़बड़ा कर कुण्डनी का मुंह देखने लगी। उसका मुंह सूख गया।

कुण्डनी ने कहा—'कबसे तू बैठी है, बोल ?'

'हन्दजे, तीन प्रहर से। सब लोग उधर विवाह के आमोद-प्रमोद में लगे हैं।'

'तो जा, तुझे भी छुट्टी देती हूँ, भाग, यहाँ अब मैं हूँ। तू भी समारोह देख—माध्वीक पी, तुझे क्या पुरस्कार नहीं मिला ?'

'नहीं, हन्दजे।'

'तो जल्दी जा मूर्खे, सभी को रत्नभाण्ड मिल रहे हैं।' दासी ने और विवेचना नहीं की। वह तेजी से अन्तःपुर की ओर भागी।

उधर नर्तकियाँ चर्चरी ताल के साथ नाच गा रही थीं। उनकी सम्मिलित ध्वनि यहाँ भी आ रही थी।

कुण्डनी फिर चुपचाप कुमारी के पास जाकर बैठ गई। कुछ देर उसके मुंह से शब्द नहीं निकला। फिर उसने कहा–'राजकुमारी, यहाँ से भागो।'

राजकुमारी ने आँसू भरे नेत्रों से कुण्डनी की ओर देखा। कुछ कहना चाहा, पर केवल ओठ हिलकर रह गए। हठात् उन्होंने भय और आशंका से सोम की ओर देखा। सोम लज्जा और ग्लानि से डूबे हुए भीत में चिपक

कर चुपचाप खड़े थे। कुण्डनी ने फुसफुसा कर कहा–'सोम है, सखी।' सुनकर राजकुमारी चमत्कृत हुई। उन्होंने बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर सोम को देखा। सोम के स्त्री-वेश को देख इस विपन्नावस्था में भी उनके ओठों पर क्षण भर को मुस्कान फैल गई। कुछ देर बाद राजकुमारी ने कहा—

'अब ?'

'यहाँ से भागो।'

'क्या यह सम्भव है ?'

'निरापद तो नहीं है।'

सोम ने आगे बढ़ कर कहा—'मेरे पास खड्ग है, चिन्ता नहीं।'

कुण्डनी ने कहा—'फिर साहस करने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है ?'

'है सखि।'

'तो कहो कुमारी ?'

'भगवान् महावीर।'

'वे श्रावस्ती में हैं ?'

'हैं, मैं जानता हूँ।'

'उन तक मेरा संदेश ले जाओ, फिर जैसा वे समझें।'

'मैं उनसे क्या कहूँ भद्रे ?'

'कहना भद्र, कि चम्पा की दग्धभाग्या कुमारी चन्द्रभद्रा बद्धांजलि शरणागत है, प्रसाद हो।'

'किन्तु कुमारी, इस कार्य में समय लगेगा। तब तक यदि कुछ अनिष्ट हो ?'

'नहीं होगा। मैंने तीन दिन व्रत-उपवास का समय माँग लिया है। कल सन्ध्या तक मेरे पास कोई नहीं आएगा।'

'तो कुण्डनी, यही ठीक है। कुमारी का यहाँ से निकलने की अपेक्षा यहाँ रहना ही ठीक है। परन्तु क्या भगवान् महावीर सहायता करेंगे ?'

'करेंगे भद्र, राजकन्या ने फिर आँसू भरी बड़ी-बड़ी आँखों से सोम

को देखा ।

'किन्तु यदि सफलता नहीं मिली ?'

'तो भद्र, फिर जो उचित हो सो करना ।' इतना कह वह फफक-फफक कर रो पड़ी ।

कुण्डनी ने कहा—'सोम, मैं किसी भाँति कल तक अन्तःपुर में रह जाऊंगी । तुम अभी जाओ और प्रातःकाल ही भगवान् महावीर से मिलो ।'

किन्तु ·····?'

'जाओ सोम, किन्तु सिंहद्वार से नहीं । प्रमोदवन के बाहर-बाहर वृक्षों की आड़ में, वाटिका के मध्य में जो बापी है, वहाँ जाओ । वहाँ स्त्री-वेष त्याग, वृक्ष पर चढ़ किसी शाखा के सहारे प्राचीर को लाँघ जाना । परन्तु यदि तीन दण्ड दिन चढ़ने तक तुम्हारे उद्योग का कोई प्रभाव न हुआ तो फिर मैं कोई दूसरा कौशल रचूंगी । तब तुम उसी प्राचीर के उस ओर हमारी प्रतीक्षा करना ।'

सोम ने एक बार राजनन्दिनी को कातर और म्लान दृष्टि से देखा, फिर तेजी से कक्ष के बाहर हो गए ।

७० : : निगंठ–दर्शन

उपाश्रय के द्वार पर ही एक सामनेर हाथ में पोथी लिए कुछ सूत्र रट रहा था । सोम ने सीधे उसी के पास पहुँच कर कहा—'भन्ते सामनेर मैं श्रमण भगवान् महावीर का दर्शन किया चाहता हूँ ।'

'श्रमण भगवान् अवरोध में नहीं रहते भ । किन्तु मैं उनकी अनुज्ञा ले आता हूं । आप कौन हैं ?'

'एक अर्थी हूँ और गुरुतर कार्यवश भगवान् का दर्शन किया चाहता हूँ।'

'तो भद्र, तुम क्षण भर ठहरो, मैं अभी आया।'

सामनेर जाकर शीघ्र ही लौट आया। आकर उसने कहा—'भन्ते, भगवान् श्रमण ने इसी समय तुम्हें दर्शन देने का प्रसाद किया है। मेरे साथ आओ। आगे-आगे सामने और पीछे-पीछे सोम उपाश्रय के सिंहद्वार को पार कर एक विशाल मैदान में पहुँचे। वहाँ देखा, एक बटवृक्ष की छाँह में सर्वजित् महावीर जिन सिर नीचा किए ध्यान-मुद्रा में बैठे थे। उनके छोटे-छोटे श्वेत श्मश्रु-केश मुख और सिर पर विरल दीख रहे थे। अंग में वृद्धावस्था के लक्षण लक्षित थे। उनका गौर वर्ण अंग इस अवस्था में भी तेजपूर्ण था, तथा दृष्टि मर्मभेदनी थी। उसमें स्नेह और करुणा का प्रवाह बहता-सा प्रतीत हो रहा था। उनकी आकृति तप्त कांचन के समान प्रभापूर्ण दीख रही थी और स्थिर मुद्रा एक सहज शान्त भाव का सृजन कर रही थी। सोम अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। श्रमण ने गर्दन को तनिक सोम की ओर घुमाकर कहा—'कह वत्स, मैं तेरा क्या प्रिय करूँ?'

'भन्ते, मैं गुह्य निवेदन किया चाहता हूँ।'

'तो एक क्षण ठहर भद्र, इतना कह कर श्रमण महावीर ने अपने चारों ओर देखा। उपासक उठ गए। एक शिष्य बैठा था, उससे श्रमण ने कहा—'अभी तू जा वत्स, फिर आना' और सामनेर की ओर देख कर कहा—'तू द्वार पर ठहर। जब तक मैं आयुष्मान् से बात करूँ, इधर कोई न आए।'

वे दोनों भी चले गए। तब श्रमण महावीर ने सोम की ओर देख कर कहा—'अब कह भद्र?'

'भन्ते, चम्पाराजनन्दिनी चन्द्रभद्रा भगवान् की शरण कामना करती हैं।'

श्रमण महावीर एक बारगी ही विस्मय और उद्वेग से आँखें फाड़-फाड़ कर सोम की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—'तो क्या सुश्री शीलचन्दना चन्द्रभद्रा अभी जीवित है? वह कहाँ है, शीघ्र कह।'

'श्रावस्ती ही में हैं भन्ते ।'

'कहाँ भद्र ? शीघ्र कह, उस शोभामयी सुकुमारी की शुचि मूर्ति देखने को मैं व्याकुल हूँ । वह कुमारी कहाँ है, मागधों ने उसे जीवित कैसे छोड़ दिया ?'

सोम ने लज्जा से आँखें नीची कर लीं और मन्द स्वर से कहा—'भन्ते भगवन्, वह चम्पा-पतन के बाद आपकी शरण में श्रावस्ती आ रही थीं। मार्ग में तस्कर दासविक्रेताओं के फन्दे में फँस गई । उन्होंने उन्हें यहाँ श्रावस्ती में लाकर दासों के हट्ट में बेच दिया ।'

'बेच दिया ? क्या कहते हो भद्र ?'

'हाँ भगवन् महाराज प्रसेनजित् के नवविवाह के उपलक्ष्य में राज-महिषी मल्लिका को नियमानुसार महाराज को भेंट करने के लिए एक दासी की आवश्यकता थी । उसी काम के लिए राजमहालय के कंचुकी ने स्वर्णभार देकर कुमारी को क्रय कर लिया ।'

'शान्तं पापं ! क्या महिषी मल्लिका ने उसे दासी भाव से महाराज को भेंट करने के लिए क्रय किया है ?'

'हाँ भन्ते ।'

'तुम कौन हो भद्र ?'

'मैं मागध हूँ ।'

'ओह !' भगवान् महावीर नीची दृष्टि किए कुछ देर सोचते रहे । फिर बोले—'तो क्या कुमारी को यह ज्ञात है कि वह कर्म-विपाक से शत्रु से उपकृत हुई है ?'

'ज्ञात है भन्ते ।'

'तुम्हीं ने राजकुमारी की सहायता की है ?'

'भन्ते, कुमारी की एक सखी और है ।'

'वह कौन है ?'

'मागधी ही है । चम्पा के पतन के बाद, कुमारी की रक्षा और व्यवस्था हम लोगों ने शक्ति भर की है । सोम ने अपने स्त्री-वेश में अन्तःपुर प्रवेश

का भी वर्णन कर दिया।

सब सुन कर श्रमण महावीर ने कहा—'तुम्हारा नाम क्या है भद्र ?'

'सोम, भन्ते।'

'अच्छा तो सोमभद्र तुम मुहूर्त भर वहाँ उपाश्रय में प्रतीक्षा करो। तब मैं तुमसे बात करूँगा और उस पीठिका पर से उस सामनेर को मेरे पास भेज दो।'

सोम ने अभिवादन करके स्वीकार किया। वह चले गए। सामनेर ने श्रमण के सम्मुख आकर वन्दना की।

श्रमण ने कहा—'भद्र, हम अभी राजकुमार विदूडभ को देखा चाहते हैं।'

'भगवन् की जैसी आज्ञा।'

सामनेर चला गया। महावीर स्वामी गहन चिन्ता में मग्न हो गए।

७१ : : द्वन्द्व

उसी सामनेर ने आकर सोम से कहा—'चलिए भन्ते, कुमार विदूडभ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'कुमार विदूडभ ?' सोम ने आश्चर्यचकित होकर कहा।

'श्रमण भगवान् के आदेशानुसार ही वे आपसे भेंट किया चाहते हैं।'

सोम ने और अधिक बात नहीं की। वह चुपचाप सामनेर के पीछे-पीछे हो लिए। एक छोटे से अलिन्द में राजकुमार विदूडभ गम्भीर मुद्रा में एक तृणास्तर पर बैठे थे। उनका वेश सादा था और कोई शस्त्र उनके पास न था। वे धवल कौषेय पट्ट पहने थे। उनके मुखमण्डल पर उनकी अल्पायु की अपेक्षा अधिक दीप्ति भासित हो रही थी। सोम का उन्होंने

अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया और मृदु वाणी से कहा—

'स्वस्ति मित्र, मैं विदूडभ हूँ। भगवान् ज्ञातिपुत्र ने मुझे चम्पा की राजनन्दिनी के संरक्षण का आदेश दिया है। सो मैं उनका संरक्षण स्वीकार करता हूँ। अब तुम आश्वस्त हो।'

सोम को यह भाषण न जाने कहाँ जाकर चुभ गया। उन्होंने एक प्रकार से उद्धत भाव से कहा—'किन्तु यह तो यथेष्ट नहीं है।'

सोम का यह उत्तर राजकुमार को कुछ धृष्ट प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा—

'मित्र, तुम अप्रियवादी हो। कोशल के राजकुमार से तुम्हें मर्यादा से बात करनी चाहिए।'

'कोशल राजकुमार का मैं उपकृत नहीं हूँ और कोशल-परिवार ने राजकुमारी के साथ जो व्यवहार किया है, उसे देखते मैं नहीं समझता कि चम्पा-राजनन्दिनी किसी कोशल के संरक्षण में रहना स्वीकार करेंगी।

'मुझे श्रमण ज्ञातिपुत्र से ज्ञात हुआ है कि तुम मागध हो। सो मागध मित्र, तुम्हें विश्वास करना चाहिए कि मागधों से अधिक बुरा व्यवहार चम्पा की राजकुमारी के साथ कोशल में नहीं किया जायगा।'

सोम ने उत्तेजित होकर कहा—

'राजकुमार, मागध कोशल से शिष्टाचार सीखने की अपेक्षा नहीं रखते। किन्तु राजकुमारी की इच्छा के विरुद्ध आप उनके संरक्षक नहीं हो सकते।'

राजकुमार विदूडभ ने हँसकर कहा—'सो ठीक है मित्र। कोशल मागधों के शास्ता बनने को उत्सुक नहीं हैं। परन्तु कुमारी की इच्छा और भगवान् महावीर के सत्परामर्श से कुमारी की सम्यक् व्यवस्था कर दी जायगी। इस सम्बन्ध में तुम सर्वथा निश्चिन्त रह सकते हो।'

'किन्तु मैं अब तक कुमारी का अभिभावक रहा हूँ। मैं जब तक आश्वस्त न हूँ·····।'

'तो तुम आश्वस्त रहो मित्र, अब से मैं कुमारी का अभिभावक रहा।'

'परन्तु कुमारी यह स्वीकार न करेंगी। वे किसी कोशल के आश्रय में रहना नहीं चाहेंगी।'

युवराज ने व्यंग से मुस्कुराकर कहा—

'कोशल ने तो कुमारी का कोई अहित नहीं किया, न उनके पिता का राज्य हरण किया, न उन्हें पथ की भिखारिणी बनाया।'

'किन्तु कोशलों ने उन्हें क्रीता दासी बनाने की धृष्टता की है।' सोम ने उत्तेजित होकर कहा।

राजकुमार का मुंह क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने कहा—'यह तो अभद्रता की पराकाष्ठा है मित्र। तुम जानते हो—केवल मागध होने ही के अपराध में श्रावस्ती में तुम्हारा सिर काट लिया जायगा। फिर तुमने छद्मवेश से अन्तःपुर में प्रविष्ट होने का अक्षम्य अपराध भी किया है।'

'यह सिर इतना निष्क्रिय नहीं है कुमार! फिर मागध प्रतिकार अभी अवशिष्ट है।' सोम ने अपने खड्ग पर हाथ डाला।

इसी समय श्रमण महावीर ने वहाँ आकर कहा—

'भद्र, यह तुम क्या कर रहे हो? मेरे अनुरोध से ही कुमार विदूडभ राजकुमारी की रक्षा करने पर सन्नद्ध हुए हैं।'

'किन्तु .....।'

'किन्तु-परन्तु कुछ नहीं भद्र। राजकुमार विश्वसनीय भद्र पुरुष हैं, तुम्हें उनका विश्वास करना चाहिए।'

'किन्तु मैं राजकुमारी से एक बार मिलना चाहता हूँ।'

'यह सम्भव नहीं है।' राजकुमार ने कहा।

'बिना उनका मत जाने मैं स्वीकार नहीं करूँगा।'

'महावीर जिन हँस पड़े। फिर सोम के सिर पर हाथ रखकर बोले—

'तुम्हारे मन का कलुष मुझे दीख गया भद्र, उसे दूर करो। कुमारी का कल्याण जिसमें होगा, वही मैं करूँगा।'

सोम बड़ी देर तक चुप रहे। फिर बोले—

'राजकुमार क्या उन्हें यहीं श्रावस्ती ही में रखेंगे?'

श्रमण ने कुमार के मुँह की ओर देखा। कुमार ने कहा—नहीं, यह निरापद नहीं है। कुमारी को अपने विश्वस्त चरों के तत्त्वावधान में साकेत भेजना श्रेयस्कर होगा। परन्तु यह सब गांधारी माता के परामर्श पर निर्भर है।'

'तो मैं समझूँ कि कुमारी अब क्रीता दासी हैं। वे कुमार की गांधारी माता और कुमार की इच्छा पर निर्भर होने को बाध्य हैं।'

'नहीं भद्र, वह मेरी शरण हैं, जिसमें उनका कल्याण हो वह मैं करूँगा। तुम्हारा काम समाप्त हुआ, अब तुम जाओ।'

सोम कुछ देर सोचते रहे। फिर वह खिन्न भाव से श्रमण को अभिवादन करके चलने लगे। तब कुमार ने हाथ बढ़ाकर उठते हुए कहा—'यह क्या मित्र, बिना ही विदूडभ से प्रतिसम्मोदन किए?'

उन्होंने सोम का आलिंगन किया। सोम ने कहा—'मैं अपने अविनय के लिए लज्जित हूँ, कुमार।'

'वह कुछ नहीं मित्र। भगवान् ज्ञातिपुत्र ने तुम्हारे मन का कलुष देख लिया। मुझसे भी वह छिपा न रहा। मित्र, मैं भगवान् के समक्ष निवेदन करता हूँ —भगवान् के आदेश-पालन को छोड़ चम्पाराजनन्दिनी के प्रति मेरे मन में दूसरा अन्य भाव नहीं है। वह, यदि मित्र, तेरे प्रति अनुरक्त है, तो तेरे धरोहर के रूप में विदूडभ के पास उपयुक्त काल तक रहेगी। विदूडभ भगिनी की भाँति उनकी मानमर्यादा की रक्षा प्राणों के मूल्य पर भी करेगा।'

'आश्वस्त हुआ कुमार। आपकी शालीनता का मैं अभिवादन करता हूँ। सोम की सेवाएँ सदा आपके लिए उपस्थित रहेंगी।'

'आप्यायित हुआ मित्र।'

दोनों ने फिर प्रेमालिंगन किया और अपने-अपने मार्ग चले।

७२ : : उद्धार

महारानी नन्दिनी पट्टराजमहिषी मल्लिका की अन्तेवासिनी हो समागता स्त्रियों की व्यवस्था तथा राजमहिषी के अन्य आदेशों का पालन तत्परता से कर रही थीं। अन्तःपुर की इस अव्यवस्थित भीड़ में यदि व्यवस्थित, कार्य-तत्पर कोई था, तो देवी नन्दिनी थीं। राजकुमार विदूडभ ने वहीं पहुँचकर माता से कहा—'एक अति गुरुतर विषय पर मुझे आपसे इसी समय परामर्श करना है।'

'क्या इतना गुरुतर पुत्र ?'

'अति गुरुतर।'

'किन्तु मंत्र-योग्य निरापद स्थान इस कोलाहल में कहाँ है ?'

'क्यों, माता गांधारी के आवास में।'

'वहाँ ?'

'परामर्श में उनका रहना भी अनिवार्य है।'

'तुम कहते हो पुत्र, अनिवार्य ?'

'अय्या, विषय अति गुरुतर है।'

'तब चलो।'

दोनों ने देवी कलिंगसेना के आवास में आकर देखा, देवी स्थिर चित्त से बैठी कुछ अध्ययन कर रही हैं। केवल एक चैवरवाहिनी प्रकोष्ठ से बाहर अलिन्द में आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी है। कलिंगसेना ने देवी नन्दिनी का अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया।

विदूडभ ने अभिवादन किया। कलिंगसेना ने हंसकर दोनों से कहा—

'स्वागत बहिन, स्वागत जात, इस अवकाश में अनवकाश कैसे मिला ?'

'निमित्त से अय्ये', विदूडभ ने बात न बढ़ाकर कहा ।

'तो निमित्त कहो जात ?' गान्धारी रानी ने आशंकित होकर कहा ।

'एक दुष्कर्म रोकना होगा, अय्ये ।'

'दुष्कर्म ?'

'हाँ, अय्ये ।'

'कह, जात ?'

'राजमहिषी ने विवाहोपलक्ष्य में महाराज को भेंट देने के लिए एक दासी मोल ली है ।'

गान्धारी कलिंगसेना ने मुस्कुराकर कहा—

'तो पुत्र, इसमें नवीन क्या है, असाधारण क्या है, दुष्कर्म क्या है ?'

'अय्ये, वह दासी चम्पा की राजनन्दिनी—सुश्री चन्द्रभद्रा शील-चन्दना है ।'

'अब्भु में, अब्भु में । यह तो अति भयानक बात है पुत्त ।'

'इसका निराकरण करना होगा, अय्ये ।'

'तुमसे किसने कहा ?'

'श्रमण भगवान् महावीर ने ।'

'कुमारी कहाँ है भद्र ?'

'दक्षिण हर्म्य के अन्तःप्रकोष्ठ में ।'

'तब चलो हला, राजकुमारी को आश्वासन दें ।'

'किन्तु करणीय क्या है वहिन ?'

'कुमारी से कोशल राजकुल को क्षमा माँगनी होगी ।'

'परन्तु उसकी रक्षा ?'

'क्या महिषी देवी मल्लिका सब जान सुनकर भी राजनन्दिनी को दासी भाव से मुक्त न करेंगी ?'

'हो सकता है, पर पिताजी से आशा नहीं है । इसलिए अभी उन्हें तुरत श्रावस्ती से बाहर गोपनीय रीति से भेजना होगा । पीछे और बातों पर

विचार होगा।'

'तो जात, तू व्यवस्था कर। तब तक हम राजनन्दिनी को आश्वासन देंगी।'

'मैंने अपना लघु पोत तैयार करने का आदेश दे दिया है तथा पचास विश्वस्त भट उस पर नियत कर दिए हैं। पोत उन्हें अति गोपनीय भाव से साकेत ले जायगा। वहाँ राजनन्दिनी सुखपूर्वक गुप्त भाव से रह सकेंगी। मैं अपने गुरुपद ब्रह्मण्यबन्धु को सब व्यवस्था करने को लिख दूंगा।'

'तो ऐसा ही हो जात, व्यवस्था करो।'

'परन्तु अय्ये, आपको दो काम एक मुहूर्त में करने हैं। महालय के वाम तोरण पर शिविका उपस्थित है वहाँ अत्यन्त गुप्तभाव से राजनन्दिनी पहुँच जाय।'

'यह हो जायगा, और ?'

'राजनन्दिनी के लिए दस विश्वस्त दासियाँ आप तुरन्त तट पर भेज दें। पोत दो मुहूर्त में चल देगा।'

गान्धारी कलिंगसेना ने कहा—'यह भार मुझ पर रहा जात। यह सब व्यवस्था हम कर लेंगे, तुम अपनी व्यवस्था करो। चलो हला, हम चलकर राजनन्दिनी का अभिनन्दन करें।'

राजकुमारी कुण्डनी से धीरे-धीरे बात कर रही थीं कि देवी कलिंग-सेना और नन्दिनी ने पहुँचकर राजनन्दिनी का अभिनन्दन किया। कुमारी दोनों को देखकर ससंभ्रम उठ खड़ी हुई। कलिंग ने उन्हें अंक में भरकर कहा—'शुभे राजकुमारी, मैं हीं हतभाग्या कलिंगसेना हूँ, जिसके कारण तुम्हें यह भाग्य-विडम्बना भी सहनी पड़ी है। ये युवराज विदूडभ की माता महारानी नन्दिनी देवी हैं। हम दोनों कोशलवंश की ओर से तुम से क्षमा-प्रार्थना करती हैं और आश्वासन देती हैं कि अब तुम्हारा कष्ट दूर हुआ। श्रमण महावीर के आदेश से कुमार विदूडभ ने तुम्हारा संर-क्षण ग्रहण किया है और अभी एक मुहूर्त में तुम्हारा यहाँ से उद्धार हो

जायगा बहिन । मैं अपनी दस विश्वस्त दासियाँ तुम्हें अर्पण करती हूँ। भगवान् महावीर जैसा कहेंगे, वैसा ही किया जायगा । फिर, हम लोग भी तुम्हारी प्रिय हैं हला । अब शोक त्यागो और हमारे साथ चलो । परन्तु, यहाँ से तुम्हारा अभिगमन अत्यन्त गुप्त होना चाहिए, इसलिए सौम्ये, वाम तोरण तक तुम्हें अवगुंठन में पाँव प्यादा चलना होगा ।'

राजकुमारी रोती हुई कलिंगसेना से लिपट गई । रोते-रोते उसने कहा—'भद्रे, मैं कैसे आपका और देवी नन्दिनी का उपकार व्यक्त करूँ ? ओह, यह आशातीत है ।'

'नहीं-नहीं सौम्ये, अब चलो ।'

अब कुण्डनी की ओर राजनन्दिनी ने आँख उठाकर देखा । उस रूप की ज्वाला की ओर अभी दोनों रानियों ने ध्यान ही नहीं दिया था । अब उसे देखकर कहा—'तुम कौन हो भद्रे ?'

'मैं कुमारी की एक सेविका हूँ ।'

कुमारी ने कहा—'यह मेरी प्राण-रक्षिका है । एक और व्यक्ति भी है ।' कहते-कहते कुमारी का मुंह लाल हो गया ।

कुण्डनी ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम करके कहा—

'मेरा अपराध क्षमा हो भद्रे, मैंने छद्मवेश में अन्तःपुर में प्रवेश कर कुमारी को सहायता दी है। मैंने ही श्रमण महावीर को सूचना भेजी है, जिससे राजकुमारी आपकी कृपा प्राप्त कर सकीं ।'

'तो शुभे, आपत्ति नहीं । पर अब कहाँ जाओगी ? राजनन्दिनी के साथ तो रहना नहीं हो सकेगा ।'

'नहीं अय्ये, मैं राजकुमारी के साथ नहीं जाऊँगी । मेरा कार्य समाप्त हो गया । राजनन्दिनी की रक्षा हो गई—तो कुमारी, अब विदा !'

कुमारी आँखों में आँसू भरे देखती ही रही और कुण्डनी तीनों को प्रणाम कर वहाँ से चल दी ।

कुछ देर बाद राजकुमारी को अत्यन्त प्रच्छिन्न रूप में शिविका में पहुँचा दिया गया और वे यथासमय साकेत सुरक्षित पहुँच गईं ।

*

७३ :: प्रसेनजित् का कौतूहल

देवी कलिंगसेना से वृद्ध महाराज प्रसेनजित् का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। देवी कलिंगसेना ने विरोध नहीं किया। सारे कार्य सुचारु रूप से हो गए। गान्धारराज ने व्याह के यौतुक में बहुत-सा धन भेंट किया। किंकिणी जाल-मण्डित चार घोड़ों के सारथी सहित सौ रथ. मथुरा की एक सहस्र बछड़ेवाली दुधार गायें, सुवर्णाभरण से अलंकृत वायुवेगी अजानीय सौ अश्व और वायुवेगी सौ खच्चर, स्नान, खान-पान और उत्सव के समय सेवा करने में शिक्षिता, गौरांगी, सुवेशिनी, सुकेशिनी, सुप्रभा, रत्नाभरणभूषिता, तरुणी, सुन्दरी सौ यवनी दासियाँ। बहुत-से सधे हुए वाल्हीक देश के अश्व, बहुमूल्य प्रावार, कौषेय प्रावार, कोजब, क्षौम, क्षौममिश्रित कम्बल, शाण, भंग आदि विविध वस्त्र और स्वर्ण के रत्नजटित ढेर-के-ढेर आभूषण दिए। महाराज ने भी गान्धार-जनों को दान-मान सत्कार से बिदाई दी। परन्तु यज्ञ की धूमधाम में महाराज को कलिंगसेना से मिलने का अवकाश ही नहीं मिला। बहुत चाहने पर भी न मिला।

अधिकृत भेंट की क्रीता दासी के महल से अकस्मात् पलायन करने की सूचना महाराज के कानों में भी पहुँची। बहुत यत्न-खोज करने पर भी उस दासी के सम्बन्ध में कोई नहीं बता सका कि वह राजमहालय के प्रबल अवरोध में से कहाँ चली गई। तब महाराज को भी इसके सम्बन्ध में कौतूहल हुआ और महाराज यज्ञ में दीक्षित होने पर भी अनियमित रूप से एकदिन रात्रि को देवी कलिंगसेना के प्रासाद में पधारे। देवी

कलिंगसेना ने अभ्युत्थानपूर्वक महाराज का सम्मान किया। यथोचित आसन पर बैठने पर महाराज ने कहा—

'शुभे कलिंग, कोशल के राजमहालय में तुम्हारा स्वागत करने मैं अबसे प्रथम नहीं आ सका, इसका मुझे खेद है।'

'महाराज के आमात्यों, भृत्यों और राज पौर जानपद सभी ने मेरा यथेष्ट स्वागत किया महाराज। मैं इसके लिये आपकी कृतज्ञ हूँ और इसलिए भी कि आपने मात्र मुझ नगण्यनारी ही से संतुष्ट होकर उत्तर गान्धार के लिए सुदूरपूर्व का वाणिज्य-द्वार खोल दिया। महाराज आप जानते ही हैं, बिना सुदूरपूर्व के वाणिज्य के हमारा गान्धार जानपद जी ही नहीं सकता।'

महाराज ने हँसकर कहा—'पर यह कैसी बात सुश्री कलिंग, कि तुम इस राजनीति में अपने मूल्य का अंकन करती हो।'

'निस्सन्देह महाराज, वह कथनीय नहीं है।'

'न, न, कलिंग, ऐसा नहीं, मैं तुम्हें·····'

'समझ गई, महाराज मुझे बहुत चाहते हैं। सुनकर कृतकृत्य हुई महाराज।'

'परन्तु वह क्रीता दासी।'

'भाग गई ? जाने दीजिए। महाराज के अन्तःपुर में दासियों और रानियों की गणना ही नहीं है, फिर न सही एक दासी।'

'पर, विभ्रव्य कहता है, वह असाधारण सुन्दरी थी।'

'थी तो महाराज ! आपके अन्तःपुर में वैसी एक भी नहीं है।'

'क्या तुम भी कलिंग ?'

'मैं भी महाराज।'

'पर तुमने तो उसे देखा ही नहीं।'

'देखा था महाराज। पलायन के समय मैं उससे कोशल-राजवंश की ओर से क्षमा माँगने गई थी।'

'क्या कहती हो ? क्या उसका पलायन तुमको विदित है ?'

'मैंने ही उसे भगाया है महाराज ।'

'किस लिए ?'

'दुष्कर्म-निवारण के विचार से ।'

'दुष्कर्म क्या था ?'

'यही कि उसे क्रीता दासी बनाया गया था ।'

'यह तो अति साधारण है कलिंग ।'

'दुर्भाग्य से यह अति असाधारण था महाराज ।'

'क्या इसमें कुछ रहस्य है ?'

'हाँ महाराज ।'

'वह क्या ?'

'वह दासी चम्पा के महाराज दधिवाहन की पुत्री सुश्री चन्द्रभद्रा शीलचन्दना थी ।'

'अरे, चम्पा की राजकुमारी ?'

'हाँ महाराज ।'

'वह यहाँ कैसे दासों में बिकने आई ?'

'कर्म-विपाक से महाराज ।'

'और तुम कहती हो, वह अनिन्द्य सुन्दरी थी ।'

'हाँ महाराज ।'

'तो महाराज दधिवाहन मर चुके, उनका राज्य भी भ्रष्ट हो गया । फिर वह दासी जब मूल्य देकर क्रय करली गई, तब मेरा उस पर अधिकार हो गया ।'

'यही सोचकर मैंने उसे भगा दिया महाराज ।'

'क्या गान्धार को ?'

'नहीं महाराज ।'

'तब ?'

'अकथ्य है ।'

'कहो कलिंग !'

'नहीं महाराज।'
'कहना होगा !'
'नहीं महाराज।'
'तुमने अपराध किया है।'
'तो आप दण्ड दे सकते हैं।'
'तब इस पर विचार किया जायगा।'
महाराज क्रुद्ध होकर कलिंगसेना के प्रासाद से उठ गए।

७४ : : यज्ञ

पहिले दिन सहस्र दक्षिण चार दीक्षावाला सोमयाग प्रारम्भ हुआ और पुरोडाश चढ़ाया गया। इसके बाद ध्रुवहोम, विष्णुयाग, चातुर्मास्य, वरुण प्रवास, साकमेधीय, शुनासीरीय और पंचवातीय याग का अनुष्ठान हुआ। आहवनीय अग्नि का देवताओं की दिशा में विस्तार किया गया। फिर 'इन्द्रतुरीय' यज्ञ और अपामार्ग होम हुआ।

आचार्य अजितकेसकम्वली यज्ञ के अध्वर्यु और कणाद औलूक, वैशम्पायन पैल, स्कन्द कात्यायन, जैमिनि, शौनक, कात्यायन, वररुचि, बोधायन, भारद्वाज, पतञ्जलि, शाम्बव्य, सांख्यायन आदि सोलह कर्मकाण्डी वेदपाठी ब्राह्मण ऋत्विक् थे। माल-मलीदे खानेवाले और बहुत से ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, वटुक और श्रमण निरन्तर राजधानी में आ रहे थे। राजा-महाराजा आगत कुछ आते थे, कुछ जाते थे। व्यवस्था करने पर भी अव्यवस्था बहुत थी। देश-देशान्तर की वेश्याएँ भी यज्ञ में आई थीं। वे हँस-हँसकर ब्राह्मणों और समागत जनों के अंग पर गंध-माल्य-लेपन और परिहास से उनका मनोरंजन कर रही थीं।

अग्निदेव को निरन्तर घृत की धारा पान कराई जा रही थी। घी के कुप्पे के कुप्पे यज्ञ स्थल में रखे थे। विविध शाकल्य, वनस्पति, पुरोडाश, बलि और आहवनीय पदार्थों से भरे सैकड़ों पात्र दास, दासियाँ और राजपुत्र यज्ञ भूमि में ला रहे थे। यज्ञवेदी के निकट यूप के चारों ओर एक बड़े बाड़े में घिरे देश-देशान्तर से लाए हुए बछड़े, बैल, भेड़ आदि पशु गवालम्भन अनुष्ठान की प्रतीक्षा में विविध रंगों और पुष्पों से सुसज्जित और पूजित हो, हरी-हरी घास खा रहे थे। देवताओं को माँस का हविर्भाग अर्पण करके जो हविर्मास बचता था, उसमें हरिण, वराह आदि मेध्य पशुओं का माँस और कन्द-मूल-फल, तिल, मधु, घृत मिलाकर 'खाण्डवराग' तैयार किया जा रहा था। उसे वेदपाठी ब्राह्मण रुच-रुचकर और बार-बार माँग-माँग कर खा रहे थे। एक-एक देवता का आवाहन करके विविध पशुओं, पक्षियों, जलचरों और वृषभों की आहुति यज्ञकुण्ड में दी जा रही थी। ब्राह्मणों के साथ क्षत्रिय, वैश्य और व्रात्य आगत-समागत यज्ञबलि का प्रसाद श्रद्धापूर्वक खा रहे थे। कहीं गृहस्थाश्रमी श्रौत्रिय ब्राह्मणों के लिए दूध, खीर, खिचड़ी, यवागू, माँस, बड़े सूप आदि खाद्यपीण बनाए जा रहे थे।

गौडीय, माध्वीक, द्राक्षा ढाली जा रही थी। सोपधान आराम से बैठे हुए आगत जन विविध प्रकार से भुने हुए कुरकुरे मांस के साथ सौवर्ण, राजत तथा मणिमय पात्रों में मद्य-पान करके परस्पर विनोद कर रहे थे। आढ्य पुरुष रुच-रुचकर माँसोदन खा रहे थे। कुछ लोग सक्थु, घी और शर्करा मिलाकर आनन्द से खा रहे थे। सैकड़ों आरालिक, सूपकार और रागखाण्डविक लोग विविध खाद्य-संस्कार में संलग्न थे।

गवालम्भन और पशुयाग को लेकर नगर में एक क्षोभ का वातावरण भी उठ खड़ा हुआ था। श्रमण महावीर और शाक्य गौतम दोनों ही महापुरुष इस समय श्रावस्ती ही में थे। वे निरन्तर अपने प्रवचनों में यज्ञ-विरोधी भावना प्रकट करते रहते थे और इसके कारण अनेक सेट्ठि गृहपति सामन्त, राजपुत्र और विश यज्ञ के गवालम्भन को लेकर भीतर ही

भीतर महाराज के प्रति विद्रोही होते जा रहे थे। प्रच्छन्न रूप में राजकुमार विदूडभ और आचार्य अजितकेसकम्बली ऐसे लोगों को प्रोत्साहन दे रहे थे। राजधानी में सेनापति मल्ल बन्धुल नहीं थे। उनके बारहों बन्धु-परिजन मारे जा चुके थे। इससे राजा बहुत चिन्तित और व्यग्र हो रहे थे। एक ओर जहाँ समारोह हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर भय, आशंका और विद्रोह की भावना से राजा को अशान्त कर रखा था।

गान्धारी नववधू कलिंगसेना से पहिली ही भेंट में राजा को क्षोभ हो गया था। वे इसके बाद फिर उनसे मिले भी नहीं। परन्तु इस अनिन्द्य सुन्दरी बाला को प्रथम परिचय ही में क्षुब्ध कर देने तथा चम्पा की हाथ में आई राजकुमारी को खो बैठने से वे भीतर ही भीतर बहुत तलमला रहे थे। उधर यज्ञ के विविध अनुष्ठान व्रत-नियम, प्रक्रियाओं तथा प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक उलझनों ने उन्हें असंयत कर दिया था।

राजकुमार विदूडभ ने इस सुयोग से बहुत लाभ उठाया था। उन्होंने समागत अनेक राजाओं को अपना मित्र बना लिया था। वे उनके सहायक और समर्थक हो गए थे। नगर के जो गृहपति, सेट्ठि, पौरजन और निगम राजा पर आपेक्ष लेकर आते, उनसे युवराज विदूडभ अपनी गहरी सहानुभूति दिखाते और राजा की मनमानी पर अपनी बेबसी और रोष भी प्रकट करते थे। इस प्रकार घर-बाहर उनके मित्रों, समर्थकों और सहायकों का एक दल और अनुकूल वातावरण बन गया था।

एक दिन अवकाश पा उन्होंने आचार्य अजितकेसकम्बली से एकान्त में वार्तालाप किया। राजकुमार ने कहा—

'आचार्य, अब यह यज्ञ-पाखण्ड और कितने दिन चलेगा ?'

'यह पुण्य समारोह है युवराज, सौ वर्ष भी चल सकता है, बारह वर्ष भी और अठारह मास पर्यन्त भी।'

'और इतने काल तक राज्य की सारी व्यवस्था इसी प्रकार रहेगी ?'

'तो कुमार, एक ही बात हो सकती है, या तो राजा स्वर्ग के लिए

पुण्यार्जन करें या दुनियांदारी की खटपट में पड़ें।'

'बहुत पुण्य-संचय हो चुका आचार्य। अब अधिक की आवश्यकता नहीं है।'

आचार्य हँस पड़े। उन्होंने कहा—'पुत्र, मैं तुम्हारे लिए असावधान नहीं हूँ।'

'तो आचार्य, यही ठीक समय है, न जाने बन्धुल सेनापति कब आ जाँय।'

'अभी आ नहीं सकता पुत्र। सीमान्त पर वह जटिल कठिनाइयों में फँसा है। वयस्य यौगन्धरायण ने उसे विग्रह और भेद में विमूढ़ कर दिया है।

'फिर भी आचार्य, यदि मैं इस समय विद्रोह करूँ, तो सफलता होगी ?'

'अभी नहीं, रत्नहोम के बाद। आज द्वितीया है, त्रियोदशी को रत्नहोम सम्पूर्ण होगा। फिर पन्द्रह दिन खाली जाएँगे, यज्ञ की मुख्य क्रिया नहीं होगी, यजमान की उपस्थिति भी न होगी। इसके बाद आगामी चतुर्दशी को अभिषेक होगा। इसी अवकाश में पुत्र, तुम कार्य-सिद्धि करना। अभी मैं सीमान्त से पायासी के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'क्या आपने कोई योजना स्थिर की है आर्य्य ?'

'हाँ पुत्र, मैं तुझे यथासमय अवगत करूँगा।'

'जैसी आपकी आज्ञा। मैंने अनेक राजाओं को मिला लिया है और जानपद भी गवालम्भन के कारण क्षुब्ध हैं।'

'मैं भी यही समझकर श्रमण महावीर और शाक्य-पुत्र को सहन कर रहा हूँ। उन्हें अपना काम करने दो।'

'परन्तु कारायण का क्या होगा ?'

'समय पर कहूँगा कुमार, अभी नहीं। अभी तुम राजा के अनुगत रहो, जिससे वह आश्वस्त रहें। तुमने देखा है, राजा बहुत क्षुब्ध है।'

'देख रहा हूँ आचार्य ।'

'तो पुत्र, तू निश्चिन्त रह । नियत काल में मैं तेरे ही सिर पर यज्ञ-पूत जल का अभिषेक करूँगा ।'

'तो आचार्य, मैं भी आपका चिर अनुगत रहूँगा ।' यह कहकर राज-कुमार विदूडभ ने आचार्य को प्रणाम कर विदा ली ।

७५ : : राजनन्दिनी

साकेत के सर्वसाधन-सुलभ प्रासाद में राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा सुख से रहने लगीं । उसके लिए सुख के जितने साधन कोशल-राजकुमार प्रस्तुत कर सकते थे, उन्होंने यत्नपूर्वक कर दिए । उन्होंने यद्यपि राजकुमारी की केवल एक झलक भर नौकारूढ़ होते समय देख पाई थी, पर उसी से उनका सुप्त तारुण्य सहस्र सुख से जागरित हो गया । परन्तु राजकुमार विदूडभ चरित्रवान् पुरुष थे । उन्होंने मागध मित्र से जो शब्द कहे थे, उनका मूल्यांकन करना वह जानते थे । उन्होंने यत्नपूर्वक अपने को राजकुमारी से तटस्थ रखा । फिर भी उनका मन रह-रहकर विद्रोह करने लगा । वे राजकुमारी को विविध सुविधाएँ, सुखसाधन और मनोरंजन के साधन प्रस्तुत करने में हार्दिक आल्हाद की अनुभूति करते रहे । परन्तु बहुत इच्छा होने पर भी उन्होंने राजनन्दिनी को देखने की चेष्टा नहीं की, यद्यपि इसमें एक यह भी कारण था कि यज्ञ की उलझनों और अपनी अभिसन्धि के ताने-बाने में वे बुरी तरह उलझ रहे थे ।

राजनन्दिनी के साथ जो दस यवनी दासियां गान्धारी कलिंगसेना ने भेजी थीं, वे बड़ी चतुर थीं । उन्होंने विविध नृत्य-गान-विनोद और कौतुक-प्रदर्शन से कुमारी का अच्छा मनोरंजन किया । क्षण भर को

कुमारी यहाँ आकर अपनी विपन्नावस्था को भूल गईं।

परन्तु सोम की स्मृति अब उन्हें और अधिक संतप्त करने लगी। दिन-दिन उन्हें सोम का वियोग असह्य होने लगा। परन्तु उन्हें विश्वास था कि सोम उनके निकट हैं और उन्हें प्राप्त करने में अब कोई बाधा नहीं होगी। इसी विचार से वह प्रहर्षित थीं।

सोम और कुण्डनी ने भी प्रच्छन्न भाव से साकेत तक राजनन्दिनी के साथ ही यात्रा की थी और एक दिन सुयोग पाकर कुण्डनी प्रसाद में जा कुमारी से मिली भी। कुण्डनी को देख कुमारी अत्यन्त आनन्दित हुईं। उसका बहुविध आलिंगन करके उन्होंने विविध संकेतों से प्रश्न किए। पर कुण्डनी ने वाकछल और चांचल्य से उन्हें तंग करने के बाद बताया कि सोम भी साकेत में हैं और कुमारी को देखना चाहते हैं तथा उनका भी प्रेमावेश कम नहीं है। यद्यपि यहाँ सोम के आने में विशेष बाधा नहीं थी, फिर भी लज्जावश कुमारी ने सोम से छिपकर मिलना नहीं स्वीकार किया। उन्होंने बहु तरह से सोम की चर्चा की और फिर साहस करके कुण्डनी से कहा—'सखी उनसे कहो, वे भगवान् महा श्रमण से मिलकर अपने मन की बात कह दें। फिर वे जो कुछ आदेश दें। कुमारी की इच्छा जानकर सोम और कुण्डनी श्रावस्ती आए।' आकर सोम ने श्रमण महावीर से फिर साक्षात् किया। श्रमण महावीर ने बहुत देर मौन रहकर कहा—'भद्र सोम, अपने हित के लिए तुम उनसे अभी दूर रहो। यथासमय मैं कर्तव्य-प्रदर्शन करूँगा।'

सोम श्रमण महावीर की बात से बहुत निराश हुए। उन्होंने हठ कर के श्रमण की इच्छा के विपरीत कुण्डनी को फिर साकेत भेजा। उसने कुमारी से साक्षात् कर श्रमण महावीर का अभिप्राय कुमारी से कहा। कुमारी ने सुनकर कहा—'तो हला कुण्डनी, जैसी भगवान् महा-श्रमण की इच्छा है, वैसा ही हो। तुम सोमभद्र से कहो कि वे जब तक महाश्रमण का आदेश न हो, यहाँ न आएँ। यथासमय महाश्रमण स्वयं आदेश देंगे।'

सोम कुण्डनी से कुमारी का यह उत्तर पाकर निराश और उदास रहने लगे। परन्तु सेनापति उदायि ने उन्हें कुछ आत्यावश्यक आदेश दिए थे। वह उनके पालने में कई दिन तक बहुत व्यस्त रहे और एक प्रकार से उन्होंने कुमारी का ध्यान ही न किया। परन्तु अवसर पाते ही वह साकेत गए और राजकुमारी से भेंट की।

उस समय कुमारी ने श्वेत पुष्प-गुच्छों का शृंगार कर श्वेत कौशेय धारण किया था। सोमप्रभ को देखते ही उनके नेत्र हँसने लगे।

सोम ने अनुताप के स्वर में कहा—

'संयत न रह सका राजनन्दिनी, महाश्रमण के आदेश के विपरीत आने का दुःसाहस मैंने किया है।'

'यह तो ठीक नही हुआ, प्रियदर्शन।'

'परन्तु मैं क्या करूं कुमारी, तुम्हीं ने इस अकिंचन को बाँध लिया।'

'प्रिय, ऐसा अधैर्य क्यों ? भगवान् महाश्रमण जानेंगे तब ?'

'प्रिये, तुम कह दो कि तुम मेरी हो, फिर मैं भगवान् महाश्रमण के प्रति अपराध का प्रायश्चित कर लूंगा।'

'और यदि मैं कुछ न कहूँ तो ?' कुमारी ने हास्य छिपाते हुए कहा।

सोम ने दो चरण आगे रख कुमारी का अंचल हाथ में ले घुटनों के बल बैठ चूम लिया। उन्होंने कहा—'प्रिये, चारुशीले, तुमने मुझे आप्यायित कर दिया, मैंने तुम्हारे नेत्रों में पढ़ लिया।'

'तो भद्र, मुझे भी आप्यायित करो।'

'कहो प्रिये, मुझे क्या करना होगा ?'

'अब बिना महाश्रमण की आज्ञा लिए यहाँ मत आना भद्र।'

'ओह, यह तो अति दुस्सह है।'

'सो क्या तुम्हारे ही लिए प्रिय ?'

'तो प्रिये, मैं सहन करूँगा।'

'यही उत्तम है, धर्मसम्मत है, गुरुजन-अनुमोदित है। सोम प्रियदर्शन, अब तुम जाओ, कोई दासी हमें साथ देखे, यह शोभनीय नहीं है।'

'जैसी राजनन्दिनी की इच्छा।'

सोम बार-बार प्यासी चितवनों से कुमारी को फिर-फिर देखते हुए बाटिका से निकले और शीघ्र श्रावस्ती की ओर चल दिए।

७६ : : नापति कारायण

बन्दीगृह में जाकर राजकुमार विदूडभ ने कहा—'सेनापति, तुम स्वतन्त्र हो, बाहर जाओ।'

बन्दीगृह के अन्धकार में कारायण ने विदूडभ को नहीं पहिचाना। उसने कहा—

'यह किसने मुझे उपकृत किया भन्ते ?'

'मैं विदूडभ हूँ, मित्र।'

'राजकुमार, मैं आपका किस प्रकार आभार मानूं ?'

'पहिले इस कलुषित स्थान से बाहर आओ मित्र और बातें पीछे होंगी।'

'परन्तु मैं बेड़ियों के बोझ से चल नहीं सकता।'

विदूडभ ने उसे उठाकर कन्धे पर बैठा लिया। बाहर आकर उन्होंने कहा—'यहाँ एकान्त में क्षण भर ठहरो सेनापति। मेरा एक मित्र लुहार निकट ही है, मैं उसे अभी लाकर बेड़ियाँ कटवाता हूँ।'

विदूडभ चले गए। लुहार ने आकर बेड़ियाँ काट दीं। कारायण ने मुक्त होकर राजकुमार को अभिवादन करके कहा—'मैं राजकुमार का अनुगत सेवक हूँ।'

'क्या आभार-भाराक्रान्त ?'

'नहीं भन्ते, पहिले ही से।'

'परन्तु मित्र, तुम स्वतन्त्र हो, कोई बन्धन नहीं है।'

'मैं आपका अनुगत सेवक हूँ कुमार।'

'तो यह तलवार ग्रहण करो मित्र, मैं तुम्हें कोशल-सैन्य का प्रधान सेनापति नियत करता हूँ।'

'क्या मैं आपको देव कोशलपति कहकर हर्षित होऊँ?'

'यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो यही सही मित्र।'

'तो देव कोशलपति, आपकी क्या आज्ञा है?'

'सेनापति, तुम अभी नगर को अधिकृत कर अपने प्रहरी और चौकी बैठा दो।'

'जो आज्ञा देव। और भी?'

'हाँ, दो सौ अश्वारोही लेकर आज सूर्यास्त के समय नगर-द्वार पर स्वयं उपस्थित रहो। महाराज प्रसेनजित् आज जेतवन में श्रमण गौतम के दर्शन को जाएँगे। उन्हें जाने में बाधा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु जब वे लौटें तो दक्षिण द्वार पर उनका अवरोध करो। उन्हें बन्दी कर लो और एकाकी पूर्वी सीमान्त पर छोड़ आओ। उनके अंग-रक्षक विरोध करें तो उन्हें काट डालो। सहायक सेना निकट ही रखो। परन्तु सब काम अत्यन्त चुपचाप होना चाहिए।'

'बहुत अच्छा महाराज, ऐसा ही होगा।'

'एक बात और। महिषी मल्लिका भी महाराज के साथ होंगी। उनसे राजमहालय में आने का अनुरोध करना, तथा महाराज को सीमान्त पर पाथेय देना।'

'ऐसा ही होगा महाराज। और कुछ?'

'हाँ, सेनापति, गुप्तचरों से पता लगा है, बन्धुल मल्ल सीमान्त से आ रहा है। उसे प्रत्येक मूल्य पर रोको। यदि मारना भी पड़े तो मार डालो।

'बन्धुल मेरा आत्मीय है, परन्तु मेरे सम्पूर्ण उत्पीड़न का मूल है। मैं उसका शिरच्छेद करूँगा, आप निश्चित रहें महाराज।'

तो जाओ सेनापति, बन्धुल का आवास तुम्हारे लिए प्रस्तुत है। वहाँ

तुम्हारे परिजन भी पहुँच गए हैं। विश्राम करो। अभी तुम्हारे पास यथेष्ट समय है। सावधान रहो और प्रत्येक प्रगति से मुझे सूचित करो।'

७७ : : प्रसेनजित् का निष्कासन

जेतवन से महाराज प्रसेनजित् ने लौटकर देखा, नगरद्वार पर भारी अवरोध उपरोध उपस्थित है सेनापति कारायण नग्न खड्ग लेकर राजा के सम्मुख आए। राजा ने उन्हें देखकर कहा—'यह क्या बात है कारायण ? मैंने तुम्हें बन्दी किया था, किसने तुम्हें मुक्त किया ?'

'कोशल के अधिपति ने।'

'कोशल का अधिपति मैं हूँ। मैंने तुझे मुक्त नहीं किया।' राजा ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके कहा।

'आप जैसा समझें।'

'तेरी यहाँ उपस्थिति का क्या कारण है ?'

'मैं आपको बन्दी करने के निमित्त यहाँ उपस्थित हूँ ?'

'किसकी आज्ञा से ?'

'कोशल के अधिपति महाराज विदूडभ की आज्ञा से।'

'तेरा इतना साहस ? बंचक, कुटिल, मैं अभी तेरा शिरच्छेद करूंगा। राजा ने खड्ग कोश से खींच लिया।

'तो महाराज प्रसेनजित्, आप यदि इसी समय मृत्यु को वरण किया चाहते हैं, तो आपकी इच्छा, आइए, इधर।' कारायण ने मैदान की ओर खड्ग से संकेत किया।

राजा ने क्रोध से काँपते हुए सैनिकों को आज्ञा दी—'सैनिको, इस बंचक को बन्दी करो।'

किन्तु सब सैनिक चुपचाप शिर झुकाकर खड़े हो गए। यह देखकर राजा का हृदय भय से दहल उठा वह काँपते हुए हाथों में खड्ग लिए हुए काष्ठ-प्रतिमा के समान खड़े रह गए।

कारायण ने हँसकर कहा—'महाराज प्रसेनजित्, विरोध-प्रदर्शन से कोई लाभ नहीं। चुपचाप महाराज विदूडभ की आज्ञा शिरोधार्य कीजिए।'

'कैसी भाग्य-विडम्बना है! क्या मैं नगर में नहीं जा सकता?'

'नहीं।'

'तेरे महाराज—उस दासी पुत्र की क्या आज्ञा है रे?'

'यही कि यदि आप चुपचाप बन्दी होना स्वीकार कर लें, तो आपको प्राण-दान दे दिया जाय।'

'और यदि मैं न स्वीकार करूँ?'

'तो महाराजा की आज्ञा है कि आपका वध करके आपके शरीर के चार टुकड़े करके नगर की चारों दिशाओं में बलि-पिण्ड की भाँति फेंक दिए जायं।'

राजा की आँखों मे आँसू ढलकने लगे। उन्होंने हाथ का खड्ग पृथ्वी पर फेंक दिया, कण्ठ से मौक्तिक माला तोड़कर उसके दाने धूल में बखेर दिए। सिर का उष्णीष टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। फिर कहा—'तो धृष्ट भाकुटिक सेनापति, तू अपने वृद्ध असहाय राजा से जैसा व्यवहार करना चाहता है, कर।'

तो महाराज प्रसेनजित्, आप अपने सेवकों सहित आगे बढ़कर मेरे इन सैनिकों के बीच में आ जायँ।' महाराज चुपचाप सैनिकों के मध्य में जा खड़े हुए। देवी मल्लिका भी चुपचाप राजा के साथ जा खड़ी हुई। अनुगमन करती हुई दासियों को निवारण करते हुए उन्होंने कहा—'हज्जे, ऐसा ही काल उपस्थित हुआ है। तुम महालय में लौट जाओ और अपने राजा की सेवा करो। मुझे तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही।' इतना कहकर उन्होंने अपने सब रत्नाभूषण उन्हें बाँट दिए। दासियाँ

खड़ी हो रोने लगीं।

कारायण ने आगे बढ़ कर कहा—'पट्टराजमहिषी के चरणों में महाराज विदूडभ ने यह निवेदन किया है कि वे महालय में पधारकर अपने अनुगत पुत्र को आप्यायित करें।'

'पुत्र विदूडभ ने यह अपने योग्य ही कहा, भन्ते सेनापति। पर मुझे अपना कर्तव्य विदित है। जहाँ महाराज वहाँ मैं। पुत्र विदूडभ से कहना—वह कोशल के यशस्वी आर्यकुल की मर्यादा की रक्षा करें। मैं आशीर्वाद देती हूँ—वह यशस्वी हो, वर्चस्वी हो, चिरंजीवी हो।' राजा ने भी अपने आभरण सेवकों के ऊपर फेंकते हुए कहा—'भणे, तुम्हारा कल्याण हो। तुम राज-सेवक हो। तुमने राजा की सेवा जीवन भर की। अब यह प्रसेनजित् राजा नहीं रहा, तो उसका सेवकों से क्या काम? तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, राजा की सेवा करो।' फिर उन्होंने कारायण की ओर मुंह करके कहा—'तो भाकुटिक सेनापति, अब विलम्ब क्यों? तू राजाज्ञा का पालन कर।'

'तो फिर ऐसा ही हो।' उसने सैनिकों को संकेत किया और वे राजा-रानी के अश्वों को घेर कर चल दिए। दास-दासी खड़े रोते रहे। उस समय प्रतीची दिशा माँग में सिन्दूर भरे कौसुम्बिक चीनांशुक पहने वधूटी-सी प्रतीत हो रही थी। सूर्यकुल-प्रदीप महाराज प्रसेनजित्, मागध विजयी, पाँच महाराज्यों के अधिपति, अर्द्ध शताब्दी तक लोकोत्तर वैभव भोगकर आज दिनांत में राज्यश्री से भ्रष्ट हो अपने ही सेवकों द्वारा बन्दी होकर अदृष्ट विधि और नियतिवश अज्ञात दिशा को चले जा रहे थे।

७८ :: बन्धुल का दांव-पेंच

सीमान्त पर बन्धुल भारी उलझनों में फँस गया। वत्स-सैन्य ने सीमान्त के निकट ही स्कन्धावार स्थापित करके धान्वन, वन, संकट, पंक, विषम, नीहार आदि सत्र स्थापित किए थे और वह सैन्य छिपकर इन स्थलों पर गति करती थी। इससे यहाँ स्पष्ट कूटयुद्ध हो रहा था। शत्रु बन्धुल को दूष्य सेना तथा आटविक के द्वारा बार-बार थका डाल रहे थे। वे अवसर पाते ही धावा मारकर सीमान्त का उल्लंघन कर गाय, पशु और खाद्य सामग्री लूट ले जाते या नष्ट कर जाते थे। कोशल के जो वीर प्रतिकार के लिए उधर जाते थे, उन्हें सत्रों में छिपकर मार डालते थे। बहुधा वे रात्रि में छापा मारते। लूटपाट करके या आग लगाकर भाग जाते। इसमें कोशल सैनिक रात को सो ही न पा रहे थे। बहुधा चमड़े के खोल पैरों में बाँधे हुए सैकड़ों हाथियों के द्वारा वे कोशल छावनी में घुसकर सोते हुए सैनिकों को कुचलवा डालते थे।

इन कठिनाइयों के कारण बन्धुल को बहुत ही सावधान रहना पड़ता था। पर उसकी दूसरी कठिनाई यह थी कि राजधानी से न तो उसे सूचना ही मिल रही थी, न सैन्य, न रसद। रसद समाप्त हो रही थी, कोष खाली हो चुका था, सेना अस्तव्यस्त हो रही थी और बार-बार पत्र भेजने पर भी राजा सहायता नहीं भेज रहा था। वास्तव में यह विदूडभ की अभिसन्धि का परिणाम था। फिर भी बन्धुल को चरों के द्वारा इस अभिसन्धि का पता चल गया। उसने सीमापाल को सीमान्त की गतिविधि देखने की व्यवस्था सौंप कर श्रावस्ती की ओर अत्यन्त

प्रच्छन्न भाव से प्रयाण किया। जिस दिन राजा का श्रावस्ती से निष्कासन हुआ, वह श्रावस्ती पहुँच गया था। उसने छद्मवेष में अपनी आँखों से राजा का निष्कासन देखा। वह निरुपाय था। सेना उसके हाथ में न थी। विदूडभ की सम्पूर्ण अभिसन्धि वह जान गया। कारायण का प्रबन्ध बहुत जाग्रत था और वह प्रकट होकर अब कुछ नहीं कर सकता था। कारायण को उसने राजा के साथ जाते देखा। उसने समझा कि अवश्य ही राजा को कहीं कैद कर दिया जायगा। उसने सोचा, इसका पता लगाना असम्भव नहीं है। अत: उसने सबसे प्रथम विदूडभ को पकड़ने का विचार किया। यह साधारण कार्य न था, परन्तु उसने सोचा कि यदि आज नहीं तो फिर कभी नहीं। कारायण की अनुपस्थिति से उसने पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया। परन्तु वह जैसा योद्धा था, वैसा कूटनीतिज्ञ न था। फिर भी वह चुपचाप अपने गुप्त वासस्थान पर लौट आया। अपने चुने हुए मित्रों और सहायकों से उसने परामर्श किया और विदूडभ के अपहरण की एक योजना बनाई।

राजकुमार विदूडभ इस गहरी कूटनीति में घुसकर भी अपनी रक्षा की ओर से सर्वथा असावधान थे। वह आचार्य अजित केसकम्बली से गुप्त परामर्श करके केवल एक भृत्य के साथ निश्शंक राजपथ पर जा रहे थे। रात्रि का अन्धकार राजपथ पर फैला हुआ था। दो चार जन इधर-उधर आ-जा रहे थे। बन्धुल ने अनायास सुयोग पा लिया। राजपथ के एक विजन मोड़ पर बन्धुल के एक ही हाथ ने अनुचरों को धराशायी कर दिया और उसी समय उसके तीक्ष्ण जनों ने अंगवस्त्र डालकर राजकुमार को विवश कर दिया। क्षण भर में यह कार्य हो गया। किसी को कानोकान खबर नहीं लगी। बन्धुल के तीक्ष्ण जन राजकुमार को हाथोहाथ उठाकर ले भागे।

परन्तु राजा और राजकुमार दोनों ही का इस प्रकार जो अप्रकाश्य रूप से राजधानी से विलोप हुआ, यह किसी भी मनुष्य ने नहीं जाना। अभिसन्धि की अंगीभूत योजना के अनुसार आचार्य अजित केसकम्बली ने

रत्न-होम के बाद पन्द्रह दिन का अवकाश मुख्यानुष्ठान के लिए कर दिया था। साधारण होम और हविष्य-याग चल रहे थे, परन्तु उनमें यजमान के उपस्थित होने की आवश्यकता न थी। राजकुमार का हरण ऐसी गुप्त रीति से हुआ था कि आचार्य अजित को भी आठ पहर तक उसका पता नहीं लगा। परन्तु जब मागध वैद्य जीवक ने आचार्य को सूचना दी कि राजकुमार कल रात से राजधानी में नहीं हैं, तो वे एक बारगी ही चिन्ताकुल हो उठे। वे अधैर्य से कारायण के सीमान्त से लौटने की बाट देखने लगे। साथ ही उन्होंने शूनाध्यक्ष और राष्ट्रपाल को अत्यन्त सावधानी से नगर-रक्षण के लिए सचेत कर दिया।

दिन के पिछले प्रहर में बन्धुल मल्ल आचार्य अजित के पास गया। जाकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। उस समय आचार्य बहुत व्यस्त थे। यज्ञ से सम्बन्धित विविध आदेश विविध जनों को दे रहे थे। बन्धुल को देखकर आचार्य अथ से इति तक विदूडभ के लुप्त हो जाने का सब रहस्य जान गए। भीत भी हुए, परन्तु प्रकट में उन्होंने सेनापति का प्रहर्षित हो स्वागत करते हुए कहा—'प्रसन्न तो रहा, सम्मोदित तो रहा सेनापति ? सीमान्त में सब भाँति कुशल तो है ?'

'हाँ आचार्य, सब ठीक है। भला यहाँ यज्ञानुष्ठान तो ठीक-ठीक चल रहा है ?'

'सब ठीक है बन्धुल।'

'मैंने सोचा, मैं भी तो यह समारोह देखूं, इसी से आ गया।'

'साधु, साधु सेनापति। परन्तु अभी तो रत्न-होम सम्पन्न हुआ है। अब दो पक्ष का अवकाश है। हविर्यज्ञ होता रहेगा, फिर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अभिषेक होगा, तब तक ठहरना सेनापति।'

'अवश्य आचार्य, किन्तु महाराज प्रसन्न तो हैं ?'

'बहुत थकित हैं बन्धुल। यज्ञ-समारोह का पूरा भार, फिर व्रत, उपवास, कर्मकाण्ड। उन्हें क्या एक कार्य है ? अब जो अवकाश मिला है भाई, रत्ती-रत्तीकाल गान्धारी रानी के लिए राजा ने सुरक्षित रख लिया।

दर्शन ही नहीं होते। परन्तु हानि नहीं, अनुष्ठान निर्विघ्न चल रहे हैं।'

'यह अच्छा है आचार्य। कुमार विदूडभ तो प्रसन्न हैं ?'

'इधर देखा नहीं है, बन्धुल।'

'कदाचित् वे भी किसी नव वधू के फेर में न हों आचार्य, आप देखते हैं—आयु है।'

'हाँ, हाँ बन्धुल।' आचार्य हँस पड़े। बन्धुल भी हँसे, परन्तु दोनों ने दोनों को जलती आँखों से देखा। आचार्य ने कहा—

'तो बन्धुल सेनापति देख ही रहे हैं, यज्ञ-व्यवस्था में बहुत व्यस्त हूँ। आहार-विश्राम का समय भी नहीं मिलता।'

'तो आचार्य विश्राम करें, मैं भी चला।'

बन्धुल अभिवादन करके चल दिया।

७९ : : कुटिल ब्राह्मण

अजित केसकम्बली ने जो कूटनीति का ताना-बाना इतनी चतुराई से फैलाया था, उसमें युवराज विदूडभ के अकस्मात् लुप्त हो जाने से बडा व्याघात पड़ गया। युवराज को मल्ल बन्धुल ने ही उड़ाया है, इस सम्बन्ध में आचार्य को तनिक भी सन्देह नहीं रहा। आचार्य ने बन्धुल के जाते ही अस्वस्थता का ढोंग रचा और आसपास के लोगों को बिदाकर एकान्त में शय्या पर पड़ रहे। शय्या पर पड़कर उन्होंने एक शिष्य को बुलाकर कहा—'सौम्य माधव, तू तनिक जाकर उस मागध वैद्य को बुला ला, मुझे उदरपीड़ा है।'

जीवक के आने पर आचार्य ने परामर्श किया। जीवक ने भी यही निश्चय किया कि कुमार को बन्धुल ने ही उड़ाया है। दोनों इस बात

पर सहमत थे कि कुमार का यह गोपन प्रकट न किया जाय। बन्धुल इसे प्रकट न करेगा यह निश्चय है। वह उनके प्राण संकट में भी नहीं डालेगा, क्योंकि उसका अभिप्राय केवल यही है कि सम्राट् का पता लगाया जाय। परन्तु अब विचारणीय बातें दो हैं—एक यह कि राजकुमार को छिपाया कहाँ गया है, दूसरी यह कि उसका उद्धार कैसे हो। जीवक और आचार्य दोनों ही निरुपाय थे।

आचार्य ने कहा—'जीवक, हमें सेनापति कारायण की प्रतीक्षा करनी होगी।'

'किन्तु आचार्य, राजपुत्र का एक मित्र है।'

'कौन है वह ?'

'वह एक मागध तरुण है।'

'वह कहाँ है ?'

'ढूंढ़ना होगा आचार्य। परन्तु वह निश्चय ही श्रावस्ती में है।'

'तब ढूंढ़ो प्रिय जीवक। तब तक मैं अन्तःपुर में क्या प्रतिक्रिया हो रही है, एक बार देखूं।'

वैद्य को विदा करके आचार्य ने शिष्य से कहा—'पुत्र, तू राजमहल में देवी कलिंगसेना के हर्म्य में जा और कंचुकी वाभ्रव्य से कह, कि आचार्य विष्णुपादामृत बेला में विशेष अनुष्ठान के लिए देवी के महल में आएंगे। देव-पूजन की सब व्यवस्था करके देवी स्नाता होकर तैयार रहें। उन्हें उपवास भी करना होगा।'

शिष्य समाचार लेकर महालय की ओर चला गया। आचार्य बहुत सी बातों पर विचार करते हुए अपने शयनकक्ष में पड़े रहे। इसी समय कारायण ने व्यग्र भाव से आकर कहा—

'यह क्या सुन रहा हूँ मैं आचार्य ?'

'सेनापति, धैर्य से पूर्ण सम्बन्ध पर विचार कर कर्तव्य का निर्णय करो।'

'परन्तु मेरा कर्तव्य है कि सर्वप्रथम मल्ल बन्धुल को बन्दी करूँ।'

'नहीं सेनापति, ऐसा करने से राजपुत्र का पता नहीं लगेगा ।'

'तब क्या करना होगा ?'

'दो कार्य, एक नगर की रक्षा का सुदृढ़ प्रबन्ध, दूसरे बन्धुल की गति-विधि पर सतर्क दृष्टि ।'

'तब ऐसा ही हो आचार्य । परन्तु क्या हम कुमार की ओर से निश्चिन्त बैठे रहें ?'

'निश्चिन्त क्यों सेनापति ? कुमार कहाँ है, पहिले इसका पता लगाया जाय, पीछे उन्हें छुड़ाया जाय। बन्धुल अवश्य ही अत्यन्त गुप्त रूप से कुमार से मिलने जायगा और उन्हें डरा-धमकाकर महाराज का पता पूछेगा। ऐसी स्थिति में उसका अत्यन्त छद्मवेश में बहुत सावधानी के साथ पीछा होना चाहिए ।'

'ऐसा ही होगा आचार्य ।'

'एक बात और । वत्स-राज्य की सीमा पर जो सेना है, उससे किसी भी दशा में बन्धुल का सम्बन्ध सम्पर्क नहीं रहना चाहिए । इसके लिए पूरा सतर्क रहना होगा । उसका कोई चर सीमान्त पर न पहुँचने पाए, उसे तुरन्त बन्दी कर लिया जाय और बन्धुल को भी इसका पता नहीं लगना चाहिए ।'

'समझ गया आचार्य, मैं ऐसी ही व्यवस्था करूंगा ।'

'तो सेनापति, तुम समुचित व्यवस्था करो । और एक बात है ।'

'वह क्या ?'

'कुमार का मित्र एक मागध तरुण श्रावस्ती में है, उसे ढूंढ़ने में मागध वैद्य जीवक को सहायता देना होगा ।'

'अच्छा आचार्य ।'

सेनापति अभिवादन कर वहां से चल दिया ।

बन्दी राजदम्पत्ति को लेकर सेनापति कारायण चलते ही गए। चलते-ही-चलते रात्रि का अन्त हो गया। प्राची में उज्ज्वल आलोक की एक किरण फूटी। इसी समय कोशल की सीमा आ गई। सीमान्त पर कारायण रुक गया। उसने अपने सैनिकों को एक ओर हटकर खड़े होने का आदेश किया। फिर राजदम्पत्ति के निकट जाकर कहा—'अब आप मुक्त हैं महाराज प्रसेनजित्। मैं राजाज्ञा का पालन कर चुका। अब आप स्वेच्छा से जहाँ जाना चाहें जा सकते हैं। यह आपका पाथेय है।' उसने स्वर्ण से भरी एक छोटी-सी थैली राजा के हाथ में थमा दी और बिना ही एक क्षण ठहरे और उत्तर की प्रतीक्षा किए वह तुरन्त लौट चला।

उस टूटती रात में, एकान्त शान्त निर्जन बन में दोनों वृद्ध राज-दम्पति सर्वथा निरीह एकाकी खड़े रह गए। वह स्वर्णदम्म से भरी सेनापति के द्वारा दी गई छोटी-सी थैली न जाने कब उनके हाथ से खिसककर भूमि पर जा गिरी।

'बहुत देर बाद राजा ने महिषी से कहा—'अब, मल्लिका ?'

'महाराज, जिसका काल जानें।'

'तो मगध चलो, प्रिये।'

'पराजित सेनिय बिम्बिसार से पराभाव पाने में क्या लाभ है, महाराज ?'

'श्रेणिक बिम्बिसार मगधपति हैं। वह पूर्वी भारत का शीर्षस्थानीय

नरपति है। वह कर्तव्याकर्तव्य को समझता है। उसका ईर्षा-द्वेष जो कुछ भी हो सकता है, कोशल के अधिपति के प्रति हो सकता है, प्रसेन के प्रति नहीं। प्रसेन अब एक निरीह पुरुष है। वह साधारण नागरिक भी नहीं है। वह राज्यभ्रष्ट, श्रीभ्रष्ट, अधिकार-भ्रष्ट, मित्र-बन्धु-सेवक और सम्पत्ति से रहित आगत शरणागत जन है। श्रेणिक बिम्बिसार उसका स्वागत करेगा, उसे आश्रय देगा। फिर मैंने उसे कन्या दी थी, वह मेरा सम्बन्धी जामाता है, वह उसकी मर्यादा का भी पालन करेगा।'

'तो देव, जैसी आपकी इच्छा, मगध ही चलिए। परन्तु आपने तो पाथेय भी ग्रहण नहीं किया और सब आभरण हमने भृत्यों को दे दिए। मार्ग में पाथेय का क्या होगा ?'

'क्या मैं सेवक का दान ग्रहण करूँगा ?'

'तो महाराज, मार्ग में हम खाएँगे क्या ?'

'क्यों ? क्या भिक्षा नहीं मिलेगी ?'

'हन्त ! देव क्या भिक्षा ग्रहण करेंगे ?'

महाराज ने एकाएक कुछ स्मरण करके हँसते हुए कहा—

'ओह देवी, पाथेय की व्यवस्था हो गई ?'

'किस प्रकार महाराज ?'

'मेरे दांतों में हीरक-कील है, उखाड़ लेने पर यथेष्ट होगा।'

'शान्तं पापं ! महाराज क्या दांत तोड़कर उसकी हीरक-कील निकालेंगे ?'

'ये दांत अब किस काम आएँगे देवी मल्लिका ? सब त्यागा तो दांतों का मोह क्या ? फिर ये सब विगलित होकर चल-विचलित हो गए हैं। तोड़ने में अधिक कष्ट नहीं होगा।'

मल्लिका कुछ न कहकर रोने लगीं। राजा ने घोड़े से उतरते हुए कहा—'रोने से क्या लाभ मल्लिके ? अश्व से उतर आओ। कोशल राज्य का यह चिन्ह भी हमारे काम का नहीं। प्रिये, तुम माली की बेटी हो, क्या पुष्पमाल नहीं गूंथ सकती ?'

'अति बाल-काल में गूंथी थी महाराज, गूंथ सकूंगी।'

'तो प्रिये, मैं उसे गृहस्थों के हाथ बेच आऊँगा। हमारा पाथेय चल जायगा। चलो प्रिये।'

राजा ने रानी का हाथ पकड़ा और वे दोनों पांव-प्यादे, कठोर, ऊबड़-खाबड़ जन-शून्य मार्ग पर अपने अनभ्यस्त चरणों से बढ़ चले।

दिन निकला, अस्त हुआ, रात हुई, प्रभात हुआ। ये दोनों निरीह वृद्ध, नियति-संतप्त राजदम्पति चलते ही चले गए। मार्ग में लोगों ने देखा, दया करके भोजन देना चाहा, पर उन्होंने उस ओर नहीं देखा। बहुतों ने नाम-धाम पूछा, उन्होंने उत्तर नहीं दिया। बहुतों ने मान किया, अपमान किया, उपहास किया, उन्होंने उनकी ओर नहीं देखा। वे चलते चले गए। उनके पैर लोहू और घावों से भर गए, पिण्डलियां तन गईं, वस्त्र गन्दे हो गए, वे झाड़ियों में उलझ कर फट गए, मुंह सूख गया। भूख और प्यास से होंठ जड़ हो गए। पर वे चलते ही चले गए—चलते ही चले गए।

अंत में वे राजगृह के द्वार पर जा पहुँचे। उस समय दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, द्वार बन्द थे। उन्होंने थकित वाणी से द्वारी से कहा—'मित्र द्वार खोल।'

दो वृद्ध निरीह भिक्षुक पुरुष-स्त्री को अवज्ञा की दृष्टि से देखकर द्वारी ने कहा—'क्या तुम्हारे आदेश से ?'

'आदेश नहीं मित्र, परन्तु हम दूर से आ रहे हैं।'

'तो उधर चैत्य में स्थान है, रात भर रहो। प्रातः द्वार खुलने पर नगर में जाना।'

राजा ने निराश दृष्टि से रानी की ओर देखा। उनमें खड़े होने और बोलने की शक्ति नहीं रही थी। रानी ने मन्द स्वर से कहा—

'ऐसा ही हो महाराज।'

राजा ने मुद्रिका उंगली से निकालकर दौवारिक को देते हुए कहा—'तो मित्र; यह मुद्रिका अपने स्वामी मगध के सम्राट् श्रेणिक बिम्बिसार

के लिए है, यह श्रेणिक बिम्बिसार को दे।'

दौवारिक राजमुद्रा देख आश्चर्यचकित हो गया। उसने थोड़ा आदर प्रदर्शन कर कहा—'कुछ संदेश भी है भन्ते ?'

'नहीं।' कहकर राजदम्पति चैत्य में आकर एक शिला-खण्ड पर पड़ रहे।

शिला पर गिरते ही देवी मल्लिका के प्राण निकल गए। उन्हें गत-प्राण देख महाराज प्रसेनजित् कुछ होठों ही में बड़बड़ाए और वे भी धीरे से देवी मल्लिका के शरीर पर गिर गए। उसी रात उनकी भी मृत्यु हो गई।

मुद्रिका पाकर श्रेणिक बिम्बिसार अमात्य-वर्ग सहित कौशलपति की अभ्यर्थना को जब वहाँ आया, तो दोनों राजदम्पति चिथड़े अंगपर लपेटे चिर निद्रा में सो रहे थे। सम्राट् ने राजविधान के साथ उनका संस्कार किया और सारे साम्राज्य में सूतक मनाया।

८१ : : नाउन

नगर के प्रांत भाग में एक नाउन का घर था। घर कच्चा मिट्टी का था। परन्तु उसकी स्वच्छता दिव्य और आकर्षक थी। नाउन घर में अकेली रहती थी। यौवन उसका चलाचली पर था, परन्तु उसकी देह-यष्टि अतिमोहक, आकर्षक और कमनीय थी। उसकी आंखें चमकदार थीं, परन्तु उनके चारों ओर किनारों पर फैली स्याही की रेखाएँ नाउन के चिर विषाद को प्रकट कर देती थीं। उसका हास्य शीतकाल की दुपहरी की भाँति सुखद था। वह श्याम लता के समान कोमलांगी तथा आकर्षक थी। नृत्य, गान, पान-वितरण, अंगमर्दन, अलक्तक-लेपन आदि

कार्यों में वह पटु थी। उसके इन्हीं गुणों के कारण राजमहालय से लेकर छोटे-बड़े गृहस्थ गृहपतियों के अन्तःपुरों तक उसका आवागमन था।

इसी नाउन के घर में सोम और कुण्डनी ने डेरा डाला था। राजनन्दिनी को खोकर सोम बहुत उदास और दुखी दीख पड़ते थे। वे विमन से मागध सैन्य का संगठन कर रहे थे। सेनापति उदायि प्रच्छन्न भाव से उनसे मिलते रहते थे। यज्ञ-समारोह की भीडभाड और देश-देशान्तर के समागत लोगों से मिलकर उनके विचार-भावना जानने का सोम को यह बड़ा भारी सुयोग प्राप्त हुआ था। परन्तु विमन और खिन्न होने के कारण वे अधिकतर इस नाउन के घर पर चुपचाप कई-कई दिन पड़े रहते थे। कुण्डनी छद्म वेश में बहुधा अन्तःपुर में जाती रहती थी। नाउन भी कभी-कभी उसके साथ जाती थी। आवश्यकता से अधिक स्वर्ण पाकर नाउन बहुत प्रसन्न थी और दोनों अतिथियों को अभिसार-मूर्ति समझ उनकी खूब आवभगत करती और उनकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने की चेष्टा करती थी।

कुण्डनी ने बड़ी ही हड़बड़ी में बाहर से आकर सोते हुए सोम को जगाकर कहा—'सोम, भयानक समाचार है।'

'क्या लोग हमारा छिद्र पा गए हैं?'

'नहीं नहीं, महाराज प्रसेनजित् और विदूडभ दोनों ही राजधानी में नहीं हैं।'

'राजधानी में नहीं हैं तो कहाँ गए?'

'यही हमारी गवेषणा का विषय है।'

'तुमने कहाँ सुना?'

'राजमहालय में।'

'परन्तु नगर में तो कोई हलचल नहीं है?'

'नगरवासियों से यह समाचार छिपाकर रखा गया है।'

'यह कैसी बात है?' सोम उठकर बैठ गए। फिर कहा—'अब कहो, तुमने कहाँ सुना?'

'देवी कलिंगसेना के प्रासाद में ।'

'किसके मुँह से ।'

'आचार्य अजित केसकम्बली के मुँह से । वे आज प्रातःकाल ही देवी कलिंगसेना को अनुष्ठान कराने के बहाने उनके प्रासाद में गए, वहाँ विचारविनिमय हुआ । महाराज प्रसेनजित् को राजकुमार ने बन्दी करके अज्ञात स्थान पर भेज दिया है ।'

'यह तो मैं पहले ही समझ गया, परन्तु कुमार विदूडभ ?'

'उन्हें सम्भवतः बन्धुल मल्ल ने बन्दी कर लिया है ।'

'बन्धुल क्या यहाँ है ?'

'वे कल ही सीमांत से आए हैं ।'

'तो कुण्डनी, इस सम्बन्ध में हमें क्या करणीय है ?'

'देवी कलिंग तुम्हें देखा चाहती हैं ।'

'किस लिए ?'

'राजकुमार की मुक्ति के लिए वे तुम से सहायता की याचना करेंगी ।'

'परन्तु मैं क्यों सहायता करूँगा ?'

'देवी ने चम्पा-राजकुमारी की मुक्ति में हमारी सहायता की थी ?'

'की थी ।' सोम ने धीरे से कहा । वे उठकर टहलने लगे । कुछ देर बाद उन्होंने कहा—'कुण्डनी, मैं इसी समय आर्य उदायि से मिलना चाहता हूँ ।'

'ठहरो सोम, मुझे बताना होगा, किस लिए ?' कुण्डनी की मुद्रा कठोर हो गई ।

सोम ने रूखे स्वर में कहा—'अकथ्य क्या है ? मागधों के लिए यह स्वर्ण-सुयोग है, मागध बदला लेंगे । कोशल-जय का यह स्वर्णयोग है । वे कोशल को आक्रान्त करेंगे ।'

'परन्तु किससे बदला लेंगे सोम ?'

'कोशलों से ?'

'कहाँ हैं वे कोशल, विचार तो करो । क्या तुम विश्वासघात करने

जा रहे हो सोम ?'

'किस से ? क्या शत्रु से ? इसमें विश्वासघात क्या है ? मेरे पास इस समय दस सहस्र मागध सेना है, मैं दो घड़ी में कोशल को आक्रान्त करके कोशल का अधीश्वर बन जाऊँगा। फिर मैं चम्पा की राजनन्दिनी को परिशोध दूंगा।'

'किस प्रकार ?'

'कोशल की पट्टराजमहिषी बनाकर।'

'तो सोम, विद्वानों का यह कथन सत्य है कि जन्म से जो पतित होते हैं उनके हीन ही विचार होते हैं।'

'इसका क्या अभिप्राय है कुण्डनी ?'

'यही कि तुम अज्ञात-कुलशील हो, मैंने तुम्हारा शौर्य और तेज देख तुम्हें कुलीन समझा था, पर अब मैंने अपनी भूल समझ ली।'

'क्या ऐसी बात ?' सोम ने कुण्डनी के मस्तक पर खड्ग ताना।

'सत्य है, सत्य है, यह समुचित होगा। पहले कुण्डनी का वध करो, फिर मित्र के साथ विश्वासघात करके कोशल का सिंहासन और चम्पा की राजकुमारी को एक ही दाँव में प्राप्त करो।'

'मित्र का विश्वासघात क्यों ?' सोम ने चिल्लाकर कहा।

'क्या तुमने राजकुमार को मित्र नहीं कहा ? क्या उन्होंने राजकुमारी को धरोहर नहीं कहा ? क्या उन्होंने और राजमाताओं ने कुमारी की रक्षा करने में हमारी सहायता नहीं की ? क्या तुमने खड्ग छूकर राजकुमार से नहीं कहा था कि मित्र, यह खड्ग तेरी सेवा को सदा प्रस्तुत है ?'

सोम ने खड्ग नीचे रख दिया। वे चुपचाप पृथ्वी पर बैठ गए। बहुत देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—

'कुण्डनी, क्या करना होगा ?'

'कर सकोगे ?'

'और उपाय ही क्या है कुण्डनी ?'

'सत्य है, नहीं है। कल तुम्हें महालय में जाना होगा।'

'किस प्रकार ?'

'आचार्य का ब्रह्मचारी बनकर, आशीर्वाद देने ।'

'आचार्य ने क्या ऐसा ही कहा है ?'

'यही योजना स्थिर हुई है । और भी एक बात है ।'

'क्या ?'

'मैंने वचन दिया है कि मैं युवराज की रक्षा करूँगी । तुम यदि न करोगे तो मुझे करनी होगी, सोम ।'

'मैं जब तक जीवित हूँ, मैं करूँगा, तुम केवल मेरा पथ-प्रदर्शन करो । शुभे कुण्डनी, मैं तुम्हारा अनुगत सोम हूँ ।'

'तो सोम, प्रभात में हमें महालय चलना होगा । सारी योजना वहीं स्थिर की जाँयगी । परन्तु अभी हमें एक काम करना है ।'

'क्या ?'

'दीहदन्त के अड्डे पर जाना होगा ।'

'वह तो बहुत दूषित स्थान है ।'

'परन्तु हमें वहाँ जाना होगा ।'

'क्यों ?'

'राजकुमार का पता वहीं लगने की सम्भावना है ।'

'तो मैं वहाँ जाता हूँ ।'

'नहीं, हम तीनों को जाना होगा । नाउन उस पापी को पहचानती है।'

'नाउन क्या इस अभियान में विश्वसनीय रहेगी ?'

'वह सर्वथा विश्वास के योग्य है ।'

'तब जैसी तुम्हारी इच्छा ।'

'तो हम लोग एक मुहूर्त में तैयार होती हैं । अभी एक दण्ड दिन है । ठीक सूर्यास्त के बाद हमें वहाँ पहुँचना होगा । तब तक तुम भी एक लुच्चे मद्यप का रूप धारण करलो ।'

कुण्डनी का यह वाक्य सुनकर सोम असंयत होने पर भी हँस दिया ।

कुण्डनी चली गई ।

८२ : : दीहदन्त का अड्डा

कुण्डनी ने कार्पास कंचुक पहिन कुसुम्भ नमतक धारण किया, नेत्रों को अपांग से शृंगारित किया। स्तनों पर कौशेय पट्ट बांधा, स्वर्ण बलय भुजा में पहिने, अलक्त रागरंजित चरणों में झंकार-युक्त नूपुर धारण किए, माथे पर जड़ाऊ बन्धुल लगाया। फिर उसने हँसकर कहा—'ठीक हुआ नाउन ?'

'अभी नहीं,' नाउन ने हँसकर कहा। फिर उसने उठकर बहुत-सा लोध्ररेणु उसके मुख पर पोतकर मुख को मैनसिल से लांछित कर दिया, स्याही से चिबुक और कपोल पर तिल बनाया और हाथों में रंगीन हस्तिदन्त के चूड़े पहनाए। फिर लम्बे कायबंधन कमर में लटका चोल-पट्ट पहनाया और तब कहा—

'अब हुआ।'

'तो अब तू भी साज सज।' कुण्डनी ने उसका भी अपना ही सा शृंगार किया। नाउन ने हंसकर कहा—'समज्या अभिनय करना होगा सखि, कर सकोगी ?'

'क्यों नहीं, परन्तु नई-नई देहात मे जो आई हूँ, अल्हड़ बछेडी हूँ।' कुण्डनी ने नाउन की चुटकी भरते हुए कहा—'फिर बोली, चल अब देखें नागर के कैसे रंग हैं ?'

सोम ने एक नटखट नागर का उल्बण वेश धारण किया था। उसने शतबल्लिक धारण किया था और कण्ठ में मंजरीक पहनी थी। कमर में कलावुक मुरज बांधा था। वह लाल उपानह पहन झट तैयार हो गया।

तीनों जब राजमार्ग पर पहुँचे तो अलिन्द सूने थे, गवाक्षों के कपाट बन्द थे वीथियों में जहाँ-तहाँ राजदीप जल रहे थे, परन्तु राजपथ का अंधकार उनसे दूर नहीं हो रहा था।

दीहदन्त का अड्डा श्रावस्ती के जनाकीर्ण अंतरालय मे एक गंदी और तंग गली में था। वहाँ उस समय मिट्टी के दीप जल रहे थे। मद्य की दुर्गन्ध आ रही थी। मद्यप, द्यूतकार, चोर, गलाकट तथा निम्न श्रेणी के विट् विदूषक और लम्पट वहाँ बैठे मद्य पीते हुए भांति-भांति के गपोड़े हांक रहे थे। बहुत से लोग अपशब्द बक रहे थे। बहुत-से स्त्रियों के क्रय-विक्रय की बात कर रहे थे। एक जुआरी ने चार दम्म में अपनी स्त्री को एक मित्र के पास गिरवीं रख दिया था। अब वह वहां बैठा लोगों से अपने उस मित्र का सिर फोड़ देने का सकल्प भी प्रकट कर रहा था और गौड़ीय मद्य के घूंट भी गले से उतारता जा रहा था। एक दुबली-पतली नवयुवती मदपायियों को चषक भर-भर कर देती जा रही थी। मदोन्मत्त ग्राहक उसे छेड-छेड कर गंदी बातें बक रहे थे। लोग सुनकर हँस रहे थे।

तीनों ने वहां पहुँचकर एक अंधकारपूर्ण स्थान में खडे होकर परामर्श किया। पहले नाउन अड्डे में गई। उसे दीहदंत देखते ही प्रसन्न हो गया। हँसते हुए उसने कहा—

'अरी, तेरी जय रहे रानी। आज इतने दिन बाद किधर ?'

नाउन ने होठों पर उँगली रख संकेत से उसे अपने पास बुलाया और कान में धीरे से कहा—

'एक चिड़िया फांस लाई हूँ। अड्डे में समज्या अभिनय करेगी, ग्राहकों को मद्य देगी। अवसर पाकर बेच लेना। बीस दम्म से कम न मिलेंगे ?'

'अरे वाह, यह तो बहुत बढ़िया बात है। वह क्या कोई अगारिका है ?

'नहीं, नटनी है।'

'कोई हानि नहीं, किन्तु सुन्दरी है ?'

'देख ले, सुन्दरी क्या ऐसी-वैसी है ?'

'तो उसे पिछले द्वार से भीतर ला, वहाँ आलोक में देखूँ।'

'पर कहे देती हूँ, दस दम्म लूंगी । एक भी कम नहीं ।'

'पर पहले माल तो दिखा ?'

'हां माल देखो, खूब खरा है ।'

नाउन बाहर आई और कुण्डनी को भीतर ले गई । कुण्डनी का रूप देख दंति की आंखों में धुंध छा गई ।

उसने हाथ मलते हुए कहा—'हन्दजे, तू क्या समज्या अभिनय कर सकती है ?'

कुण्डनी ने व्रीड़ा-लास्य दिखाकर और तनिक मुस्कराकर सिर हिला दिया ।

'तब अच्छा है । तो नाउन, तू पांच दम्म ले । देख ले, अभी नई है, बहुत खिलाना-पिलाना, सिखाना पड़ेगा ।'

'नहीं रे, सिखाना नहीं, सब जानती है, देख ।'

'उसने जाकर कुण्डनी को संकेत किया ।

कुण्डनी ने जो नृत्य-लास्य किया और रूप का उभार दिखाया तो उपस्थित चोर और हलाकू लम्पट वाह-वाह करने लगे ।

जिस जुआरी ने अपनी औरत को गिरों रख दिया था, उसने हाथ के दम्म उछालकर कहा—'कह रे दीह, कितने में बेचेगा इस दासी को ?'

उसके साथ वाले पुरुष ने उसे धकेलते हुए बांह से होठों का मद्य पोंछते हुए कहा—

'यह दासी मैं लूंगा । मुझे सौ दम्म को भी भारी नहीं ।'

इसी समय सोम नागरिक लम्पट का वेष धारण किए अड्डे में आ एक आसन पर बैठ गया । मद्य ढालनेवाली लड़की ने सुराभाण्ड और चषक उसके आगे धर दिए । सोम ने थोड़े से स्वर्णखण्ड दीहदन्त के आगे फेंक कर कहा—'दे सबको मद्य ।' सब मद्यप प्रसन्न हो उठे और उसके चारों ओर आ जुटे । दीहदन्त ने उसे प्रसन्न करने को आसन्दी आसिक्त-कोपधान पर उसे बैठाया । नाउन ने कहा—'यही वह है दन्त ?'

'वह कौन ?'

'राजपुत्र को जिसने उड़ाया है। देखते तो हो, कितना स्वर्ण है उसके पास।'

दीहदन्त ने हंसकर कहा—'यह नहीं है, वह है।'

उसने दोनों जुआरियों की ओर संकेत किया। नाउन ने उचककर उन्हें देखा और कुण्डनी को संकेत किया। कुण्डनी ने लीला-विलास करके उन्हें सम्मोहित कर दिया। दोनों झगड़ा बन्द कर हंसने और मद्य पीने लगे।

सोम नाउन का संकेत पा उनके पास आ बैठा। उसने कहा—

'कह मित्र, दासी कैसी है ?'

'क्या कहने हैं मित्र ! परन्तु इसे मैं मोल लूंगा।'

'किन्तु मित्र, यह सहज नहीं है। इस दुष्ट दीह ने इसे राजकुमार विदूडभ को भेंट करने का संकल्प किया है ?'

हाथ का मद्यपात्र रिक्त कर उसने हंसते हुए कहा—'तो जाय यह कोशल-दुर्ग में।'

सोम के कान खड़े हो गए। उसने कहा—

'कोशल-दुर्ग में इसे भेजना चाहिए मित्र। कोई कौशल कर, वह उसी नटी के संबंध में दासी से बात कर रहा है। ले पी मित्र।' सोम ने मद्य-पात्र उसके आगे करके कहा।

बंधुल मेरा मित्र है। वह सबका सेनापति है, मेरा नहीं। मेरा मित्र है।' उसने हंसते हुए कहा।

'तो मित्र, फिर बाधा क्या है ? बंधुल सेनापति यदि कोशल-दुर्ग में है, तो इस दीह को वहीं लाद दो। फिर दासी तेरी है, एक पण भी खर्च नहीं होगा।'

'मैं आज ही मित्र बंधुल से कहूँगा मित्र। रहस्य की बात है। बंधुल मेरा चिरबाधित है।'

'और कुमार विदूडभ ?'

'ओह, उसकी क्या बात ? वह बंदी है।'

'क्या सच ? यह क्या कहते हो मित्र ?'

'चुप, कहने योग्य नहीं। वह उसी कोशल-दुर्ग में बंदी है।'

'नहीं मित्र, तुझे किसी ने भ्रमित किया है।'

'तू मूर्ख है मित्र। मैंने उसे स्वयं दुर्ग के बन्दीगृह में पहुँचाया है। अरे, जलगर्भ में बन्दी-घर का द्वार है।'

'क्या कह रहा है मित्र ? ले मद्य पी।'

और चषक पीकर उसने कहा—'क्या मेरी बात पर अविश्वास करते हो ?'

'विश्वास नहीं होता मित्र। तू झूठ बोलता है।'

'तो दाँव बद।'

'मैं सौ दम्म दांव पर लगाता हूँ।'

'क्या सौ दम्म ?' उस पुरुष ने आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़ कर सोम को देखा।

'पूरे सौ, दम्म, मित्र,' सोम ने दम्मों से परिपूर्ण थैली निकालकर दिखाते हुए कहा—'तो अभी दिखा और सौ दम्म ले।'

'परन्तु रात है।'

'तो क्या हुआ ?'

'राह अगम्य कानन में है।'

'अरे मित्र, यह खड्ग है। फिर मेरे पास बाहर दो बढ़िया अश्व हैं।'

'दम्म भी हैं, अश्व भी हैं, तब विलम्ब क्यों ? चल मित्र अभी।'

'तब चल।'

दोनों व्यक्ति अड्डे से बाहर आए और अश्व पर चढ़ एक ओर तेजी से बढ़कर अन्धकार में लीन हो गए।

८३ :: कोशल-दुर्ग

श्रावस्ती से तीन कोस दक्षिण दिशा में सरयू के तट पर एक सुदृढ़ दुर्ग था, जो 'कोशल कोट' के नाम से प्रसिद्ध था। इस कोट के एक ओर नदी और तीन ओर खाई थी। दुर्ग का रूप वर्गाकार था और इसकी हर एक भुजा सहस्त्र हाथ लम्बी थी। गढ़ की चारों दिशाओं में दो विशाल मुख्य द्वार और आठ छोटे प्रवेश-पथ थे। गढ़ की बाहरी प्राचीर मिट्टी की थी, जो तीस हाथ ऊँची थी और उसकी नींव का निचला भाग सौ हाथ मोटा था। प्राचीर के दोनों ओर तीन चार आयत विस्तार का मोटा पक्का मसाले का पलस्तर था। उसके बाद पक्की ईंटों की पर्त लगी थी। जो छोटे-छोटे आठ द्वार थे, उनमें से प्रत्येक की चौड़ाई पचीस हाथ थी। इन द्वारों के भीतरी भाग में तेरह-तेरह हाथ के और भी द्वार थे। इन द्वारों के पार्श्व-भाग में छोटे-छोटे पाँच-छः हाथ चौड़े और भी द्वार थे। सूर्यास्त के बाद बड़े द्वारों के बन्द हो जाने पर कोट के निवासी इन्हीं छोटे द्वारों से आते-जाते थे। प्रधान द्वार के पार्श्व में ऊँचे-ऊँचे तिरसठ हाथ लम्बे और अट्ठाइस हाथ चौड़े चतुष्कोण गुम्बज थे, जिन पर चढ़ने को सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। दुर्ग में बीचोंबीच सोलह खम्भों पर सभा-भवन टिका था। खाई और मुख्य द्वार को एक काठ का बहुत भारी पुल जोड़ता था। सूर्यास्त के बाद यह पुल रस्सियों से उठा दिया जाता। उस समय दुर्ग में आना किसी भाँति सम्भव नहीं था। श्रावस्ती से बाहर आते ही अगम कान्तार लग जाता था, उसमें कोई मार्ग या वीथी नहीं थी। सम्पूर्ण कान्तार बड़े-बड़े घने वृक्षों और गुल्मों से भरा था। वहाँ बहुत

से हिंस्र जन्तु रात-दिन विचरण करते थे। सर्वसाधारण की बात तो दूर रही, बड़े-बड़े जीवट के आदमियों को भी उधर जाने का साहस नहीं होता था। दुर्दान्त डाकू, भीषण अपराधी, पक्के जुंआरी, हत्यारे, राज-विद्रोही आदि राजदण्ड से बचने के लिए ही इस महा कान्तार में आश्रय लिया करते थे। दुर्ग में थोड़ी-सी सेना भी रहती थी। परन्तु सब सैनिक रात को दुर्ग में नहीं रहने पाते थे। दुर्ग के मुख्य द्वार से कोई सहस्र हाथ के अन्तर पर एक छोटी-सी बस्ती थी। इसी में इन सैनिकों के परिवार रहते थे। सैनिक भी रात को वहीं चले आते थे। दुर्ग में केवल गिने हुए आवश्यक जन ही रह जाते थे। श्रावस्ती से एक घुमावदार कच्ची राह इस ग्राम तक आई थी।

दुर्गपति एक वृद्ध क्षत्रप थे। वे सपरिवार दुर्ग ही में रहते थे। उनकी आयु साठ को पार कर गई थी। डीलडौल के लम्बे, हाथ-पैरों के मज-बूत और साहसी आदमी थे। उनका कण्ठ-स्वर बहुत भारी था और दृष्टि पैनी। परिवार में केवल एक किशोरी इकलौती पुत्री थी। उसे जिसने शिशुकाल से पोषण किया, वह एक क्रीता काली दासी थी। दासी को दुर्गपति और उनकी पुत्री, दोनों बहुत मानते थे। विधि-विडम्बना से दुर्ग-पति भग्न-हृदय थे। उन्होंने यह एकान्त एकनिष्ठ जीवन स्वयं ही महा-राज प्रसेनजित् से माँग लिया था। गत सत्रह वर्षों से वे निरन्तर इसी दुर्ग में रह रहे थे। एक बार भी वे इससे बाहर कभी निकले नहीं। इस दासी के सिवा एक दास भी उनका था। वह व्रज जड़ था। वह निपट बहरा और गूंगा था, परन्तु उसमें एक साँड़ के बराबर बल था। इसे दुर्गपति ने बहुत बाल्यावस्था में तीर्थयात्रा करते हुए अनार्य देश से मोल खरीदा था।

मालिक की भाँति दुर्गपति के दोनों सेवक भी विश्व के सम्बन्धों से पृथक् थे। ये दोनों भी कभी किसी नगर में नहीं गए। हाँ, दास और कभी-कभी दासी भी उस निकटवर्ती गाँव में अवश्य चली जाती थीं।

इस चार मूल प्राणियों के सिवा रात को पुल भंग होने के बाद

केवल आठ सिपाही दुर्ग में रह जाते थे। वे केवल दुर्ग-द्वार पर पहरा देते थे।

दुर्ग के पश्चिम मुख्य द्वार के निकट, जिधर गहन कान्तार पड़ता था, एक दृढ़ प्रकोष्ठ पत्थरों का बना था। यह वास्तव में बन्दीगृह था। बन्दी-गृह में कोई प्रकट प्रवेश-द्वार न था। केवल छत के पास एक आयतभर का छिद्र था। इस छिद्र के द्वारा ही बन्दी को वायु, अन्न, जल और प्रकाश प्राप्त होता था। गुप्त द्वार जल के भीतर था। द्वार के ऊपर एक अलिन्द था, जिसमें लौह-फलक जड़े थे। उस अलिन्द में, जब वहाँ कोई बन्दी रहता था, तो आठ प्रहरी खास तौर पर रात-दिन पहरा देने को नियत रहते थे।

खाई के उस पार इस बन्दीघर के ठीक छिद्र के सामने एक छोटी-सी पक्की दुमंजिला अट्टालिका थी। यह अट्टालिका प्रायः सदा बन्द रहती थी। कभी-कभी इसमें रहस्यपूर्ण रीति से कोई राजपुरुष दो-चार दिन को आ ठहरते थे। वहाँ तक दुर्ग के उस ओर वाली बस्ती को केवल एक छोटी-सी पगडण्डी चली गई थी। बस्ती में सिपाहियों के घरों के सिवा कुछ घर कृषकों के भी थे। उन्होंने आसपास की थोड़ी-सी भूमि साफ करके अपने खेत बना लिए थे। कुल बस्ती में केवल एक दुकान मोदी की थी, तथा एक पानागार था। रात्रि को बहुत देर तक उसी पानागर में चहल-पहल रहती थी। बस्ती के रहने वाले प्रायः वहाँ बैठकर पान करते हुए गप्पें उड़ाया करते थे।

इस समय दुर्ग में एक बन्दी था। इससे बन्दीगृह के बाहरी अलिन्द में आठ सशस्त्र सैनिकों का पहरा बैठा था और खाई के उस पार जो घर था, उसमें भी मनुष्यों के रहने का आभास मिल रहा था। परन्तु नियमित रूप से जैसी व्यवस्था चली आ रही थी, दुर्ग में वैसी ही चल रही थी। दुर्गपति साधारण नित्य-नियम से रह रहे थे। केवल बन्दीगृह के प्रान्त को छोड़कर और कहीं कुछ नवीनता नहीं प्रकट हो रही थी।

कीचड़ और मिट्टी में लतपत सोमप्रभ ने सूर्योदय से प्रथम ही घर में प्रवेश किया। उनका अश्व भी बुरी तरह थक गया था। कुण्डनी और नाउन तमाम रात जागती रहकर सोम की प्रतीक्षा करती रही थीं। अब कुण्डनी ने कुछ आश्वस्त होकर किन्तु, सन्देह भरे नेत्रों से सोम को देखा। सोम ने संक्षेप में कहा—'कुण्डनी, सब देख आया हूँ। राजकुमार को छुड़ाना सहज नहीं है। परन्तु चलो, अब हम राजमहिषी से पहले मिल लें। मैं अभी एक मुहूर्त में तैयार होता हूँ। तुम भी तैयार हो लो।'

और बातें नहीं हुई। सोम ने नित्यकर्म से निवृत्त हो खूब डटकर स्नान किया। आपाद श्वेत कौशेय धारण किया। मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाया। सिर पर भंगपट्ट बाँधा। उत्तरासग को ब्रह्मचारी की भाँति कन्धे पर डालकर कहा—'कुण्डनी' अब इस वेश में खड्ग तो मैं नहीं ले जा सकूंगा।'

'उसकी आवश्यकता नहीं सोम।'

'क्यों नहीं ? शत्रु के अन्तःपुर में छद्मवेश में प्रवेश करना होगा, फिर दिनदहाड़े। तू कहती है कि खड्ग की आवश्यकता नहीं।'

'नहीं है सोम। हम शत्रु का उपकार करने उसी की नियुक्ति पर जा रहे हैं।'

विशेष बातचीत नहीं हुई। तीनों जन चलकर राजद्वार पर पहुँचे। नाउन ने पुष्प-करंडिका और गंगाजल की झझरी सोम के साथ में दे दी। कुण्डनी और नाउन का द्वारी से परिचय था, अतः उसने मार्ग दे दिया।

तीनों टेढ़ी-तीरछी वीथियों को पार करते हुए कलिंगसेना महिषी के हर्म्य में पहुँच गए।

आचार्य केसकम्बली वहीं उपस्थित थे। देवी नन्दिनी भी तुरन्त आ उपस्थित हुई।

सोम ने भूमिका न बढ़ाकर कहा—'आचार्य, राजकुमार कोशल-दुर्ग में बन्दी हैं, वहाँ से उनकी मुक्ति सहज नहीं होगी ?'

'परन्तु सौम्य, तुझे अपना पराक्रम दिखाना होगा। यह तेरी कोशल राजवंश पर भारी अनुकम्पा होगी।'

नन्दिनीदेवी ने आँखों में आंसू भरकर कहा—'कोशलगढ़ को मैं जानती हूँ भद्र। महाराज ने वहाँ मेरे पिता को बन्दी कर दिया था। उन्होंने मेरा समर्पण महाराज को करके अपना उद्धार किया था।'

कलिंगसेना ने दृढ़ स्वर में कहा—'भद्र, यदि तुम्हें कुछ असुविधा हो तो मैं स्वयं कोशल-दुर्ग में खड्गहस्त जाऊँगी। तुम्हें जो कुछ विदित है, वह कहो।'

'नहीं भद्रे, मैं जीवन के मूल्य पर भी राजकुमार का उद्धार करूँगा।' सोम ने धीरे से कहा।

'साधु, साधु। भद्र, ऐसा ही होना चाहिए। मैं कारायण को तुम्हारी सहायता के लिए कह दूँगा। आचार्य ने गद्गद होकर कहा।

सोम ने कहा—

'आचार्य, वहाँ युक्ति-बल से काम चलेगा। बन्दीघर का द्वार जल-मग्न है। उसमें एक भारी यन्त्रक जड़ा है। उसकी सूत्रिका चाहिए, यह एक बात है।'

'दुर्ग के बाहर मल्ल बन्धुल स्वयं पचास भटों के साथ अत्यन्त सावधानी से बन्दी पर पहरा दे रहा है। उससे सम्मुख युद्ध नहीं हो सकता। कूटयुद्ध करना होगा। यह दूसरी बात है।'

'हम लोग दुर्ग पर आक्रमण करके बलपूर्वक युवराज का उद्धार करेंगे, इसका गुमान भी यदि बन्धुल को हो गया तो वह राजकुमार की हत्या

कर सकता है। अभी तक उसने जो उन्हें हनन नहीं किया, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वह उनसे महाराज का पता पूछना चाहता है। यह तीसरी बात है।'

'दुर्गपति बड़ा कठोर और एकान्त व्यक्ति है। बन्दी के गृह-द्वार की सूत्रिका उसी के पास रहती है, वहाँ से उसका प्राप्त होना असम्भव है। यह चौथी बात हैं।'

'दुर्ग में बाहर-भीतर सब मिलाकर सौ आदमी हैं। जिनमें पचास भट बन्धुल के साथ अट्टालिका में हैं। शेष उस गाँव में। दुर्ग में केवल दो-दो भट एक-एक प्रहर बन्दीगृह पर पहरा देते हैं, परन्तु आवश्यकता होने पर तुरन्त सहायता प्राप्त हो सकती है।'

आचार्य ने सब सुनकर कहा—'क्या तुमने कोई योजना निश्चित की है सौम्य ?'

'की है, किन्तु वह अपूर्ण है आचार्य, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'किसकी भद्र ?'

'एक लम्पट धूर्त की ?'

'किस अभिप्राय से ?'

'वह युवराज को उड़ाने के षड्यन्त्र में सम्मिलित था। उसने स्वर्ण लेकर मुझे अपना सब भेद बता दिया है और सूत्रिका की सिक्थ-मुद्रा मुझे ला देने का वचन दिया है। वह मुझे दो दण्ड दिन चढ़े तक मिलेगा। वह अपने उद्योग में संलग्न है।'

'क्या भद्र, वह छल नहीं करेगा ?' देवी नन्दिनी ने कहा।

'आशा तो नहीं है देवी। उसे भारी पारिश्रमिक मिल चुका है। केवल सूत्रिका की सिक्थ-मुद्रा ला देने से ही उसे सहस्र स्वर्ण की प्राप्ति और होगी, जो वह जीवन भर में संग्रह नहीं कर सकता।'

'तो भद्र, तुम हमें क्या करने को कहते हो ?' गान्धारपुत्री कलिंग-सेना ने सुनील नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा—'मैं अपनी सामर्थ्य से दुर्ग में पहुँच भर सकती हूँ। परन्तु यह क्या यथेष्ट होगा ?'

'नहीं भद्रे । यथेष्ट भी न होगा और उचित भी नहीं होगा ।'

'किन्तु भद्र, यदि तुम्हें सिक्थ-मुद्रा न मिली ?' आचार्य ने चिन्तित भाव से पूछा ।

'तो भी मैं देख लूंगा आचार्य । किन्तु मैं अभी एक बार सेनापति कारायण से मिलना चाहता हूँ । हाँ, आपको राजपुत्र की कब आवश्यकता होगी ?'

'कल तीन दण्ड सूर्य चढ़ने पर । वही मुहूर्त अभिषेक का है । अभी तक महाराज और राजपुत्र दोनों के अपहरण के समाचार अप्रकट हैं । सब यही जानते हैं, महाराज देवी के प्रासाद में हैं । यही मैं भी कहता हूँ । मैं कल सूर्योदय होते ही यज्ञानुष्ठान साधारण रीति पर प्रारम्भ कर दूंगा । तीन दण्ड दिनमान होने पर महाराज को अभिषेक की वेदी पर आना होगा ।'

'तो आचार्य, जैसे भी होगा, मैं ठीक समय पर राजपुत्र को अभिषेक-वेदी पर ला बैठाऊँगा । यदि न ला सकूँ तो यही समझना कि सोमप्रभ जीवित नहीं है ।'

वह एकबारगी ही उठकर चल दिए । सबके हृदय आकन्तिक हो गए । कुण्डनी और नाउन ने उनका अनुगमन किया । सब स्तब्ध थे ।

८५ : : कठिन अभियान

सब योजना ठीक कर ली गई । सिक्थ-मुद्रा मिल गई । उस पर से सूत्रिका बन गई । नाउन को संग लेकर कुण्डनी ने एक पहर दिन रहे नटनी के वेष में दुर्ग की ओर प्रस्थान किया । चलती बार वह अपनी विषदग्ध कटार को यत्न से वेणी में छिपाना नहीं भूली ।

सोम ने दिन भर सोकर काटा था। सूर्यास्त के समय उन्होंने सर्वांग पर तैलाभ्यंग किया, एक कोपीन कसी और कठिन कंचुक पहन एक क्षौम प्रावार से शरीर को लपेट लिया। खड्ग उन्होंने वस्त्र में छिपा लिया।

शम्ब को एक मजबूत बड़ी रस्सी और दण्डसत्थक दी गई। एक छोटा धनुष और कुछ बाण भी उसे दिए गए। उसे भी तैलासक्त कर कोपीन धारण कराया गया। इसके बाद दोनों ने एक दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर गहन कान्तार में प्रवेश किया।

इसी समय कारायण ने अपने दो सौ सैनिकों की टुकड़ी लेकर दूसरे मार्ग से कोशल दुर्ग की निकटवर्ती अट्टालिका की ओर कूच किया।

कान्तार भूमि सोम ने भली-भाँति देखकर मार्ग की खोज करली थी, इसलिए अन्धकार होने पर भी वे दो मुहूर्त ही में दुर्ग के दक्षिण द्वार के सामने पहुँच गए। अपने अश्वों को उन्होंने कान्तार में छिपाकर लम्बी बागडोर से बाँध दिया। इसके बाद उन्होंने निश्शब्द दुर्ग-द्वार की ओर प्रयाण किया।

द्वार के बाहर जो अट्टालिका थी, उसमें काफी चहल-पहल थी। उसमें से नृत्य-गीत की और बीच-बीच में मनुष्यों के उच्च हास्य की ध्वनि आ रही थी। सोम ने समझ लिया कि यहाँ कुण्डनी का रङ्ग जमा हुआ है। बन्दीघर के ऊपर अलिन्द में प्रकाश न था। परन्तु दो छाया-मूर्तियाँ वहाँ घूमती दीख रही थीं। सोम पार्श्व में पूर्व की ओर घूमकर एक अश्वत्थवृक्ष के निकट पहुँचे। अश्वत्थ के तने में उन्होंने रस्सी का एक सिरा दृढ़ता से बाँधा, तथा दूसरे को अच्छी तरह कमर में बाँध लिया। शम्ब से कहा—'शम्ब, सामने केवल दो छाया-मूर्तियाँ अलिन्द में दीख रही हैं। आवश्यकता होने पर वे आठ हो सकती हैं। इससे अधिक नहीं। ध्यान से सुन, मैं जल में जाता हूँ। तू रस्सी को थामे रह, ज्यों ही यह ढीली प्रतीत हो, तू वृक्ष पर चढकर छिपकर यत्नकर से बैठ जाना। तेरे तरकस में सोलह बाण हैं। याद रख, एक भी बाण व्यर्थ न जाय और अलिन्द पर एक भी जीवित पुरुष खड़ा न रहने पाए। परन्तु

प्रथम रस्सी का ध्यान रखना।'

शम्ब ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। वह दण्डसत्थक को हाथ में ले दूसरे हाथ से रस्सी को थाम खाई के किनारे बैठ गया। सोम ने चुपचाप जल में प्रवेश कर निश्शब्द डुबकी लगाई। रस्सी की खेंच बढ़ गई। वह वृक्ष के तने में अच्छी तरह बँधी हुई थी। शम्ब उसका छोर हाथ में लिए ध्यान से उसका तनाव देख रहा था।

सोम निश्शब्द जल के भीतर ही भीतर बन्दीगृह के द्वार पर जा पहुँचे। थोड़े ही यत्न से द्वार-सुरंग उन्हें मिल गई। वे द्वार-सुरंग में प्रविष्ट हो गए। सुरङ्ग सीढ़ी की भाँति उन्नत होती गई थी। दस पैढ़ी ऊपर जाने पर उनका सिर जल से बाहर निकला। क्षण भर ठहर कर उन्होंने यहाँ साँस ली और रस्सी कमर से खोल दी। फिर वे और चार-पाँच पैढ़ी चढ़े। अब उन्हें वह लौह-द्वार मिला, जहाँ भारी यन्त्रक लगा था। सूत्रिका उनके पास थी, उससे उन्होंने यन्त्रक खोल डाला। गुहा में घोर अन्धकार था। वायु का भी प्रवेश न था। उस छोटी-सी जगह में उनका दम घुट रहा था। यन्त्रक खोलते ही वे एक दूसरी छोटी-सी कोठरी में जा पहुँचे, जो चारों ओर से पत्थरों की दीवारों से घिरी थी। उसमें कोई दूसरा द्वार न था। प्रकाश का साधन सोम के पास न था। वे टटोल-टटोल कर चारों ओर उस कोठरी में घूमने लगे। वे सोच रहे थे, यदि यही बन्दीगृह है तो बन्दी कहाँ है? यदि बन्दीगृह और है तो उसका मार्ग कहाँ है? परन्तु उन्हें इसका कोई भी निराकरण नहीं मिल रहा था। वे अन्त को एक बार विमूढ़ हो उसी कोठरी में बैठ गए।

उधर, ज्यों ही सोम ने रस्सी कमर से खोली, रस्सी ढीली हो गई। शम्ब आश्वस्त हो हँसते हुए रस्सी का सिरा छोड़ अश्वत्थ पर चढ़ गया और अच्छी तरह डासना मार आसन जमा बैठ गया। बैठकर उसने ध्यानपूर्वक अलिन्द की ओर देखा। दो छाया-मूर्तियाँ वहाँ अन्धकार में घूम रही थीं। शम्ब ने बाण सीधा किया और कान तक तानकर छोड़

दिया। बाण उस व्यक्ति की पसलियों को चीरता हुआ फेंफड़े में अटक गया। वह व्यक्ति झूमकर अलिन्द के किनारे तक आया और छप से जल में गिर गया। दूसरे व्यक्ति को यह पता नहीं लगा कि क्या हुआ। वह आश्चर्य मुद्रा से झुककर उस पुरुष को देखने लगा। इसी समय दूसरे बाण ने उसके कन्धे में घुसकर उसे भी समाप्त कर दिया। वह पुरुष भी वहीं अलिन्द में झूल पड़ा।

शम्ब अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न हुआ। वह अब ध्यान से तीसरे शिकार की ताक में बैठ गया। थोडी ही देर में दो सैनिक बातें करते हुए अलिन्द में आए और प्रहरी को इस भाँति लटकते देख उनमें से एक ने उसका नाम लेकर पुकारा। उत्तर न पाकर वह निकट आया। निकट आकर देखा—वह पुरुष मृत है। एक बाण उसके अंग में घुस गया है। दोनों प्रहरी भीत हो एक-दूसरे को देखने लगे। इसी समय शम्ब का तीसरा बाण सनसनाता हुआ आकर उनमें से एक के वक्ष-गह्वर में पार हो गया। वह पुरुष रक्त-वमन करता हुआ वहीं गिर गया।

दूसरे सैनिक ने आतंकित हो तुरही फूंकी। तुरही की तीव्र ध्वनि शून्य रात में दूर दूर तक गूँज उठी। इसी समय शम्ब का चौथा बाण उसके कण्ठ के आर-पार हो गया। तुरही उसके हाथ से छूट पड़ी। वह मृत होकर वहीं गिर गया।

परन्तु तुरही का शब्द अट्टालिका के लोगों ने सुन लिया। शब्द सुनते ही वहाँ के मनुष्यों में प्रगति प्रकट हुई। वाद्य, नृत्य बन्द हो गया और मनुष्यों की दौड़-धूप, चिल्लाहट के शब्द सुनाई देने लगे। शस्त्रों की झनझनाहट भी सुनाई देने लगी।

कारायण अपने दो सौ भटों को लिए पूर्व-नियोजित योजना के अनुसार इस अट्टालिका के चारों ओर अत्यन्त अप्रकट रूप से घेरा डाले पड़े थे। उन्होंने सैनिकों को आवश्यक आदेश दिए और वे अट्टालिका से बाहर निकले मनुष्यों पर प्रहार करने को सन्नद्ध हो गए। परन्तु यह देखकर उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा कि अट्टालिका का

प्रकाश बुझ गया। वहाँ सन्नाटा छा गया। किसी जीवित प्राणी के वहाँ रहने का आभास ही नहीं रहा।

सेनापति कारायण अब विमूढ़ होकर सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। इसी समय दुर्ग में विपत्ति-सूचक घण्ट बजा और निकटवर्ती ग्राम से सोते हुए सैनिक शस्त्र सन्नद्ध होकर दौड़ते हुए दुर्ग की ओर जाते देख पड़े। खाईं पर बड़ी-बड़ी चर्खियाँ काष्ठ के भारी पुल को गिराने लगीं। कारायण ने यह देख अपना कर्त्तव्य निश्चिय कर लिया। उन्होंने पचास भट छाँटकर अपने साथ लिए, शेष डेढ़ सौ सैनिक अपने अधिनायकों की अधीनता में तीन टुकड़ियों में विभक्त किए। पहली टुकड़ी के नायक को आदेश दिया कि वह तुरन्त दुर्ग-द्वार पर प्रच्छन्न भाव से जाकर खाईं के पुल पर अधिकार कर ले। दुर्ग में किसी शत्रु सैनिक को प्रविष्ट न होने दे। प्रत्येक सैनिक को सामने आते ही जान से मार डाले। नायक अपने सैनिक लेकर दबे पैर दुर्ग-द्वार की ओर दौड़ चला।

दूसरे नायक को सेनापति ने आदेश दिया कि वह घूमकर पश्चिमी दुर्ग-द्वार के चारों ओर फैल जाय और ग्राम से आते हुए सैनिकों को काट डाले। नायक के उधर चले जाने पर सेनापति ने तीसरी टुकड़ी के नायक को आज्ञा दी कि मैं अट्टालिका पर आक्रमण करता हूँ, तुम बाहर से इसकी रक्षा करना। किसी भी सैनिक को भीतर मत घुसने देना। इतनी व्यवस्था कर सेनापति ने अपने पचास भट लेकर अट्टालिका पर आक्रमण किया। साधारण आघात से द्वार भंग हो गया। परन्तु उसे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था कि अट्टालिका में इतने आदमियों की चहल-पहल थी, प्रकाश था, वहाँ से गान-वाद्य की ध्वनि आ रही थी, पर वहाँ से एक भी जन बाहर नहीं निकला। क्या कारण है कि अब वहाँ एकबारगी ही सन्नाटा छा गया? क्या भूमि मनुष्यों को निगल गई? कारायण सेनापति ने सैनिकों को प्रकाश करने का आदेश दिया। प्रकाश में उन्होंने गान-पान के अवशेष देखे, परन्तु मनुष्य नहीं। उन्होंने अत्यन्त सावधानी से प्रत्येक प्रकोष्ठ को, प्रत्येक कोष्ठक को देखना प्रारम्भ किया। एक प्रकोष्ठ

में उन्होंने कुण्डनी और नाउन को वस्त्र-खण्ड से बंधी हुई पड़ी देखा। सेनापति ने उन्हें बन्धन-मुक्त करके उनके मुंह में ठूंसा हुआ कपड़ा निकाला। सेनापति कुण्डनी और उनकी संगिनी से परिचित न थे। उनसे पूछा—

'तुम कौन हो और कक्ष के और आदमी कहाँ हैं ?'

कुण्डनी ने पूछा—'क्या आप सेनापति कारायण हैं ?'

'हां, मैं कारायण हूँ।'

'तो सेनापति, संकट सन्निकट है, शीघ्रता कीजिए। वह गर्भद्वार है। वहाँ सोलह सशस्त्र भट गए हैं। सम्भव है, सोमभद्र से उनका संघर्ष हो जाय। भीतर गर्भगृह में सोम एकाकी गए हैं।'

कारायण ने नग्न खड्ग लेकर गर्भगृह में प्रवेश किया। परन्तु वहाँ अधिक जन नहीं जा सकते थे। सेनापति ने सोलह भट छांट लिए।

लम्बी और पतली गुहा में चलते-चलते उन्होंने चार सशस्त्र तरुणों को सामने देखा। इन्हें देखते ही वे इन पर टूट पड़े, परन्तु सेनापति ने क्षण भर ही में उन्हें काट डाला। आगे उन्होंने एक लौहद्वार को देखा जो बन्द था। सेनापति उसे देखकर हताश हो गए। वे द्वार तोड़ने या खोलने का उद्योग करने लगे।

कुण्डनी ने नाउन से कहा—'चलो हला, अब हम अपने उद्योग का दूसरा प्रकरण पूरा करें। बाहर कहीं शम्ब है पहिले उसे देखना होगा। निश्चय उसी की प्रतिक्रिया होने से सैनिकों ने तुरही-नाद किया था, इससे वह बन्दीगृह के उस ओर कहीं होगा।'

इतना कह कुण्डनी नाउन का हाथ पकड़ कर बाहर आई। उसने उसी अश्वत्थ वृक्ष के नीचे खड़े होकर संकेत किया। शम्ब भट वृक्ष पर से कूद पड़ा।

कुण्डनी ने कहा—'शम्ब, तेरा स्वामी कहाँ है ?'

'वे जल में गए हैं।'

'कितना विलम्ब हुआ ?'

'बहुत, एक दण्ड काल।'

'तो शम्ब, वे विपद में पड़ सकते हैं, तू साहस कर ।'

शम्ब ने हुंकृति की ।

कुण्डनी ने कहा—'वह बन्दीगृह देख रहा है ?'

शम्ब ने सिर हिलाया । कुण्डनी ने कहा—'उसका प्रवेशद्वार जल-मग्न है । तू गोता लगा । ठीक उस अलिन्द के मध्य भाग के नीचे तुझे एक गुहा-छिद्र मिलेगा । वह उन्नत सोपान है । उसमें घुसकर तू बन्दीगृह में पहुँचेगा । उसी में तेरे स्वामी का मित्र बन्दी है, जिसके उद्धार के लिए सोम वहां एकाकी गए हैं । परन्तु उनके सामने सोलह योद्धा हैं । शम्ब तू साहस कर ।'

शम्ब ने दण्डसत्थक दृढ़ता से हाथ में थामा और धनुष-बाण कुण्डनी को देकर कहा—'इसमें से केवल चार बाण कम हुए हैं । बारह बाण अभी तूणीर में हैं । इससे देवी की रक्षा हो सकती है । मेरे लिए यह यथेष्ट है ।' उसने हँसकर दण्डसत्थक की ओर संकेत किया ।

कुण्डनी ने धनुष-बाण ले लिया । शम्ब ने रस्सी का छोर कमर से बांधते हुए कहा—'यह रस्सी थामे रहें देवी । जब यह ढीली हो तो समझना शम्ब ठीक स्थान पर पहुँच गया ।' कुण्डनी ने रस्सी थाम ली । शम्ब ने धीरे से जल में प्रवेश किया और अदृश्य हो गया । थोड़ी ही देर में रस्सी ढीली हो गई ।

कुण्डनी ने नाउन से कहा—'हला, सोम को सहायता पहुंच गई । उधर से भी और इधर से भी । अब हमें इस अश्वत्थ पर चढ़कर बैठना और परिणाम की प्रतीक्षा करना चाहिए ।'

सोम उस कोष्ठक में चारों ओर घूमते, हाथों से टटोलते, खड्ग की मूठ से दीवार और फर्श ठोकते, परन्तु कोई फल न होता था । वहाँ से कहीं जाने का कोर द्वार नहीं देख पड़ता था । वे हताश होकर बैठ जाते और फिर उद्योग करते । बहुत देर बाद उन्हें कोठरी में प्रकाश का आभास हुआ । वे ध्यान से देखने लगे कि प्रकाश यहां कहां से आया । उन्हें कुछ ही क्षणों में प्रतीत हो गया कि ऊपर छत में एक छिद्र है, प्रकाश वहीं से

आ रहा है। इसी समय चार मनुष्य उस छिद्र में से उस कोष्ठक में कूद पड़े। एक के हाथ में प्रकाश था। सोम उन्हें देख फुर्ती से गुहाद्वार में छिप गए। चार मनुष्यों में से एक ने कहा—'मैं बन्दी को देखता हूँ, तुम यहीं यत्न से द्वार की रक्षा करो।' उसने किसी युक्ति से तल-भूमि की एक शिला को हठा दिया और उसमें घुस गया। सोम ने देखा, वह मल्ल वन्धुल था।'

सोम एकबारगी ही खड्ग लेकर उन मनुष्यों पर टूट पड़े। वे मनुष्य भी साधारण भट न थे। सोम ने क्षण भर ही में कठिनाई को समझ लिया। सोम चाहते थे कि वे वन्धुल का अनुगमन करके दूसरे कक्ष में प्रविष्ट हों, परन्तु तीनों भटों ने कठिन अवरोध किया। प्रारम्भ ही में सोम एक घाव खा गए।

इसी क्षण शम्ब ने कोष्ठक में प्रवेशकर दण्डसत्थक का एक भरपूर हाथ एक भट के सिर पर मारा जिससे उसके कपाल के दो खण्ड हो गए और रक्त की वित्ता भर फुहार उठ खड़ी हुई। ठीक समय पर शम्ब का साहाय्य पाकर सोम मै हर्ष से चिल्लाकर कहा—'वाह शम्ब, खूब किया! रोक इन दोनों को, मैं भीतर जाता हूँ।' और सोम दुर्धर्ष वेग से खड्ग फेंकते हुए तलभूमि में प्रविष्ट हो गए।

बन्धुल खड्ग ऊँचा किए विदूडभ का हनन करने जा रहा था। बन्धुल ने कहा—'दासीपुत्र, बता, महाराज कहाँ है? या मर।' विदूडभ लौह-शृङ्खला से आबद्ध दीवार में चिपके हुए चुपचाप खड़े थे। उनके ओठ परस्पर चिपक गए थे, उनकी आँखों से घृणा और क्रोध प्रकट हो रहा था। सोम ने पहुंचकर बन्धुल को ललकारते हुए कहा—'बन्धुल, शृङ्खला-बद्ध बंदी की हत्या से तेरा वीरत्व कलुषित होगा। आ इधर, मैंने अभी तक मल्लों का खड्ग देखा नहीं है।'

'तब देख। तू कदाचित् वही चोर की भाँति अन्तःपुर में घुसनेवाला मागध है?' बन्धुल ने घूमकर कहा।

'वही हूँ बधुल।'

'तब ले।'

बंधुल ने करारा वार किया। सोम यत्न से बचाव और वार करने लगे। दोनों अप्रतिम सुभट उस छोटे कक्ष में भीषण खड्ग-युद्ध में व्यस्त हो गए।

युवराज विदूडभ ने चिल्लाकर उदग्र हो कहा—'अरे वाह मित्र, ठीक आए। परन्तु खेद है कि मैं सहायता नहीं कर सकता।' फिर भी उन्होंने आगे बढ़कर शृंखलाबद्ध दोनों हाथ जोर से बंधुल के सिर पर दे मारे। बंधुल के सिर से रक्त फूट पड़ा, उसने पलटकर राजकुमार पर खड्ग का एक वार किया। इसी क्षण सुयोग पा सोम ने बंधुल के वामस्कन्ध पर एक भरपूर हाथ मारा। बन्धुल और राजकुमार दोनों ही गिरकर तड़पने लगे।

सेनापति कारायण हताश होकर जब गर्भमार्ग में लौहार्गल को खोल नहीं सके तो उन्होंने द्वार भंग करने का उद्योग किया। इसी समय द्वार खुला और कुछ भट सामने देख पड़े। ये भट बंधुल के थे, जो नीचे बंदी-गृह में युद्ध होता देख सहायता को लौटे थे। परन्तु सामने शत्रु को देख वे पीछे भाग पड़े। कारायण भी उनके पीछे अपने भट लेकर दौड़े। उनके पास प्रकाश था, दौड़ने में बाधा नहीं हुई। बंधुल के भट छत के छेद से प्रकोष्ठ में कूद पड़े। यही कारायण ने किया। इस समय एक भट शम्ब से जूझ रहा था। इनमें से एक ने शम्ब पर प्रहार किया और वह भीतर तलगृह में घुस गया।

ठीक इसी समय बन्धुल और युवराज घायल होकर गिरे थे। सोम ने आहट पाकर पीछे शत्रु को देखा, परन्तु उनके पीछे कारायण और उनके भटों को आते देख हर्षनाद किया।

देखते ही देखते सब भट काट डाले गए। बन्धुल को बन्दी कर लिया गया तथा आहत राजकुमार को लेकर वे सब गर्भमार्ग से चलकर दुर्ग के बाहर अट्टालिका में लौट आए।

बाहर कारायण के सैनिकों ने अनायास ही दुर्ग-रक्षक सेना के सिपा-

हियों को काट डाला था। वे सावधान नहीं थे, इससे कुछ प्रतिरोध भी न कर सके।

दुर्गपति ने जो विपत्ति-घण्ट बजाया था उसे सुनकर जो सैनिक निकट के गाँव से सहायतार्थ दौड़े थे उन्हें मार कर कारायण के सैनिकों ने पुल पार कर दुर्गपति को सपरिवार बन्दी कर लिया था। दुर्गपति इस आक्रमण से सर्वथा असावधान थे। वे कारायण के सैनिकों को अपने सैनिक समझे थे।

दिन का प्रकाश इस समय तक पूर्वाकाश में फैल गया था। कुण्डनी और नाउन अश्वत्थ पर चढ़ी सब गति-विधि देख रही थीं। अट्टालिका में अपने आदमियों को फिर से लौटा हुआ समझ वे भी वृक्ष से उतर कर वहीं आ गईं।

सोम ओर विदूडभ दोनों आहत थे। कुण्डनी ने नाउन की सहायता से उनके घाव बांधे। इसके बाद उन्होंने शम्ब को चारों ओर देखा। शम्ब वहाँ नहीं था। सब लोग शम्ब को भूल ही गए थे। सोम को याद आया कि शम्ब को हमने गर्भगृह में युद्ध करते छोड़ा था।

कुछ सैनिक फिर गर्भगृह में गए, परन्तु शम्ब वहाँ नहीं था।

सबके चले जाने पर गर्भगृह में अन्धकार हो गया। शम्ब समझ ही नहीं सका कि सब कहाँ लुप्त हो गए। अपने प्रतिद्वन्द्वी को भूपतित करके शम्ब ने मार्ग की बहुत खोज-टटोल की। अन्त को वह उसी जल-गर्भ-स्थित मार्ग से लौटा। जब सब कोई शम्ब के लिए चिन्तित थे, कुण्डनी ने उसे जल में तैरते हुए देखा। जल से निकलकर वह स्वामी के निकट आया। वह बहुत प्रसन्न था।

बन्दियों को सेनापति कारायण को सौंप, सोम ने शरीर-रक्षक सैन्य सहित आहत राजकुमार को लेकर तुरन्त राजधानी की ओर कूच किया। शम्ब, कुण्डनी और नाउन भी उन्हीं के साथ चल दिए।

८६ : : अभिषेक

यज्ञ-मण्डप में बड़ी भीड़ थी। अध्वर्यु और सोलहों ऋत्विक् अभिषेक-द्रव्य लिए उपस्थित थे। अनुगत राजा, क्षत्रप, माण्डलिक, गणपति, निगम, सेट्ठि, गृहपति, सामन्त और जानपद सभी एकत्र थे। राजा की प्रतीक्षा हो रही थी। राजा अन्तःपुर से नहीं आ रहे थे। राजा के इस विलम्ब के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अटकलें लगाई जा रही थीं। बहुत लोग बहुविध कानाफूसी कर रहे थे।

आचार्य अजित केसकम्बली ने उच्च स्वर से कहा—'अभिषेक का महायोग उपस्थित है, यजमान यज्ञभूमि में आकर वेदी पर बैठें।'

इसी समय यज्ञभूमि के प्रान्त-भाग में कोलाहल होने लगा। क्षण भर बाद ही सोमप्रभ रक्त से भरा खड्ग हाथ में लिए हुए, रक्तलिप्त घायल राजपुत्र विदूडभ को सम्मुख किए, हठात् यज्ञभूमि में घुस आए। नग्न खड्ग हाथ में लिए कारायण और उनके भट उनके पीछे थे। यह दृश्य देखकर चारों ओर कोलाहल मच गया। अनेक क्षत्रपों, राजाओं और माण्डलिकों ने खड्ग खींच लिए। सेना में भी हलचल मच गई और चारों ओर कोलाहल होने लगा।

सोमप्रभ ने आगे बढ़कर वेदी पर विदूडभ को प्रतिष्ठित करके खड्ग और हाथ ऊपर उठाकर उच्च स्वर से कहा—'भन्ते गण, राजसभासद, ब्राह्मण और पौर जानपाद सुनें। यह महाराज विदूडभ कौशलपति यहाँ उपस्थित हैं। अभिषेक महायोग है, अभिषेक प्रारम्भ हो। मैं मागध सोमप्रभ घोषित करता हूँ कि कोशल के अबाध अधिपति परमपरमेश्वर

महाराज विदूडभ हैं। जो कोई विरोध का साहस करेगा, उसका सत्कार यह खड्ग करेगा।'

उन्होंने वही रक्त से भरा हुआ खड्ग हवा में ऊंचा किया। बहुत से कण्ठों ने एक साथ ही जय-जयकार किया—'महाराज कोशलपति की जय! देव कोशलपति विदूडभ की जय!'

बहुतों ने विरोध में शस्त्र निकाले। कारायण, उनके भट और सोम व्याघ्र की भाँति उन पर टूट पड़े। देखते-ही-देखते यूप के चारों ओर मुरदों के ढेर लग गए। यज्ञ-पशु अव्यवस्थित हो इधर-उधर भागने लगे। अनेक राजाओं, क्षत्रपों और मण्डलाधिपों ने इन वीरों का साथ दिया। वे गाजर-मूली की तरह विरोधियों को काटने लगे और, जानपद, निगम, श्रेणीपति सब बार-बार महाराज विदूडभ का जय-जयकार करने लगे। विरोधी दल का कोई नेता न रह गया।

अध्वर्यु अजित केसकम्बली ने हाथ उठाकर कहा—'सब कोई सुनें, कौन है जो नये महाराज का विरोधी है? वह आगे आए।' कोई प्रमुख पुरुष आगे नहीं बढ़ा। आचार्य ने पुकारकर फिर कहा—'जिसे नये राजा से विरोध हो, वह अग्रसर हो।' इस पर भी सन्नाटा रहा। तब तीसरी बार घोषणा हुई।

अब आचार्य अजित केसकम्बली ने कहा—'सब कोई सुनें। पुराना राजा यहां पर मण्डल में उपस्थित नहीं है और न कोई उसका प्रतिनिधि समर्थक ही है। राज्य एक क्षण भी राजा के बिना नहीं रह सकता। नया राजा उसका औरस पुत्र है। उसका कोई विरोध नहीं करता। अतः मैं घोषणा करता हूँ कि वही अब इस यज्ञ का यजमान है। —'तो महाराज विदूडभ, मैं तुम्हें यज्ञपूत करता हूँ। कहो तुम, 'मैं इस राजसूय महानुष्ठान के लिए आपको वरण करता हूँ।'

'मैं वरण करता हूँ।' विदूडभ ने तीन बार कहकर आचार्य का वरण किया।

आचार्य ने घोषणा की—'हे विश्वदेवा, सुनो; हे ब्राह्मणों, सुनो; हे

मनुष्यों, सुनो; हम वरण किए गए सोलहों ऋत्विक् विधिवत् अब इस राजसूय के महत् अनुष्ठान में देव कोशलपति विदूडभ का अभिषेक करते हैं।'

आचार्य के संकेत से बहुत शंख एक साथ बज उठे।

अभिषेक-अनुष्ठान प्रारम्भ हो गया। राजा लोग अपने हाथों में अभिषेक-सामग्री से भरे पात्रों को विधिपूर्वक सजाकर पद-मर्यादा के क्रम से खड़े हो गए। रेणु विदेहराज ने श्वेत रंग का काम्बोज अश्व भेंट किया। अस्सक के राजा ब्रह्मदत्त ने स्वर्णमण्डित रथ ला उपस्थित किया। कलिंगराज सत्तभु ने रथ पर ध्वजारोपण किया। मगध-सम्राट् का भेजा हुआ रत्नमाल और मणिग्रथित उष्णीष मागध अमात्य ने राजा को धारण कराया। शाक्यों के गण-प्रतिनिधि ने रथ में स्वर्णमण्डित जुआ जोड़ा। किसी ने मणिजटित जूते, किसी ने तरकस, किसी ने खड्ग राजा को धारण कराया। किसी ने गन्धमाल्य दिया।

अब अजित केसकम्बली, कणाद, औलूक, वैशम्पायन पैल, स्कन्द कात्यायन, जैमिनि और शौनक ने राज्याभिषेक विधि का प्रारम्भ किया। वेद-पाठ होने लगा। कुरुसंघ राज्य के श्रुत, सोम और धनञ्जय श्वेत छत्र लेकर राजा के पीछे खड़े हुए।

सौवीर भरत, विदेहराज रेणु, काशिराज, धत्तरथ, सेतव्य हिरण्य-नाभ राजा पर चँवर डुलाने लगे। अठारह दक्षिणावर्त शंख फूंके गए। फिर उन्हीं शंखों में भर-भरकर सत्रह तीर्थों का जल और एक सूर्यकिरणों का जल कुल अठारह प्रकार के जल, जो यूप की उत्तर दिशा में उदुम्बर पात्रों में पृथक्-पृथक् रखे हुए थे, उनसे राजा का अभिषेक किया जाने लगा।

पहले सरस्वती नदी के जल से, फिर बहाववाली नदी के जल से, फिर प्रतिलोम जल से, मार्गान्तर के जल से, समुद्र-जल से, भंवर के जल से, स्थिर जल से, धूप की वर्षा के जल से, तालाब के जल से, कुएँ के जल से, ओस के जल से, फिर तीर्थों के विविध जलों से भिन्न-भिन्न मन्त्र

पढ़कर राजा का अभिषेक किया गया ।

अब सोम-पान होकर गवालम्भन हुआ । फिर बारह 'पार्थहोम' किये गए और नए महाराज को घृताप्लुत वस्त्र पहनाया गया । उस पर यज्ञ-पात्रों के चित्र सुई से कढ़े हुए थे । उस पर बिना रंगी ऊन का पाण्डव कम्बल और उसके ऊपर लम्बा चोंगा पहनाया गया । ऋषियों ने पुकारा —'यह क्षत्र की नाभि है ।'

अध्वर्यू ने धनुष चढ़ाकर कहा—'यह इन्द्र का वृत्रहन्ता भुज है ।' और उसके दोनों छोर मन्त्रपूत करके महाराज को दिया । फिर उसने मन्त्र-पूत तीन बाण राजा को दिए और यज्ञ में बैठे हुए पंडक के मुंह में ताँबा दिया । अब दिग्विजय का होम-पाठ हुआ । यजमान की बाँह पकड़ कर उसे अध्वर्यु ने चारों ओर घुमाया । प्रति दिशा में कुछ पेंड चलाकर कहा—

'प्राची को चढ़, गायत्री छन्द, रथन्तर साम, त्रिवृत् स्तोम, वसन्त ऋतु और ब्रह्मधन तेरी रक्षा करे ।'

'दक्षिण को चढ़, त्रिष्टुभ छन्द, वृहत् साम, पंचदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु और क्षत्रधन तेरी रक्षा करे ।'

'पश्चिम को चढ़, जगती छन्द, वैरूप साम, सप्तदश स्तोम, वर्षाऋतु और विशधन तेरी रक्षा करे ।'

'उत्तर को चढ़, अनुष्टुप् छन्द, वैराज साम, एकविंश स्तोम, शरद् ऋतु और फलरूपी धन तेरी रक्षा करे ।'

'ऊपर को चढ़, पंक्ति छन्द, शाक्वर रैवत साम, सत्ताईस और तेंतीस स्तोम, हेमन्त-शिशिर ऋतु और वर्चस् धन तेरी रक्षा करे ।'

फिर राजा ने व्याघ्रचर्म के नीचे रखे सीसे को ठोकर मारी, अध्वर्यु ने मन्त्र पढ़ा, फिर राजा व्याघ्रचर्म पर बैठा । सोने का एक चन्द्र राजा के पैरों पर रखा गया । अध्वर्यु ने कहा—'मृत्यु से बचा ।'

सौ छिद्रवाला स्वर्ण का मुकुट सिर पर धारण कराया गया । अध्वर्यु ने कहा—'तू ओज है, अमृत है, विजय है ।'

राजा ने दोनों भुजा ऊँचीं करके घोष किया—

'हे मित्र वरुण, अपने रथ पर चढ़ो और दिति-अदिति सीमावद्ध और असीम को देखो।'

अब अध्वर्यु और पुरोहित ने पलाश के पात्र में रखे जलों से फिर राजा का अभिषेक किया। ब्रह्मा ने मन्त्र-पाठ किया। अध्वर्यु ने फिर उच्च स्वर से घोषित किया—'हे देवो, इसे उत्तेजित करो। कोई इसका सपत्न न हो। बड़े क्षत्र के लिए, बड़े बड़प्पन के लिए, बड़े मनुष्यों पर राज्य के लिए, इन्द्र के इन्द्रिय के लिए, कोशल जनपद के लिए यह राजा महाराजा विदूडभ तुम कोशलों का राजा है। हम ब्राह्मणों का राजा, सोम है।'

तब अठारह दक्षिणावर्त्त शंख एक साथ फिर फूंके गए।

अब रथविमोचनीय होम हुआ और भिन्न-भिन्न मन्त्र पढ़कर रथ के अंग-प्रत्यंग होम किए गए।

राजा को व्याघ्रचर्म के ऊपर खदिर की चौकी पर रखे हुए सिंहासन पर बैठाया गया और राजा'धृतव्रत' घोषित किया गया।

फिर द्यूत हुआ। बहेड़े के पाँसे लाए गए। रत्न राजा को घेरकर बैठे। अध्वर्यु ने राजा को यज्ञकाष्ठ से पीटा।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है, तू सत्यप्रणेता सविता है।

राजा—ब्रह्मन्!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है, तू प्रजाओं का बलवान् इन्द्र है।

राजा—ब्रह्मन्!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है, तू कृपालु रुद्र है।

राजा—ब्रह्मन्!

अध्वर्यु—तू ब्रह्मा है।

इस प्रकार अभिषेक समाप्त हुआ। इसके दसवें दिन 'दाशपेय' याग हुआ। सोम से भरे हुए दस प्याले एक यजमान और नौ ऋत्विकों के

लिए रखे गए। दसों को कमर झुकाकर प्यालों की ओर रेंगना पड़ा और अपने दादा से लेकर पहले के और पीछे के दस पुरखों के नाम लेने पड़े, जो सोमयाजी रहे हों। उस समय मन्त्र-पाठ हुआ—

सविता प्रेरणा करने वाले से, सरस्वती वाणी से, त्वष्टा बनाए रूपों से, पूषा पशुओं से, यजमान इन्द्र से, बृहस्पति ब्रह्म से, वरुण ओज से, अग्नि तेज से, सोम राजा से विष्णु दसवीं देवता से, प्रेरित होकर मैं रेंगता हूँ।'

प्रत्येक प्याले में दस-दस जनों ने पिया। एक ऋत्विक् और नौ और। यों सौ जनों ने सोम-पान किया। राजा ने सबको सोने के कमलों की मालाएँ पहनाईं।

अब यज्ञ की समाप्ति पर सहस्र शंख-ध्वनि हुई। विदूडभ राजा ने सींगों में सोना मढ़कर सौ गायें तथा ग्यारह युवती सुन्दरी स्वर्णालंकारों से अलंकृता दासियाँ प्रत्येक श्रोत्रिय ब्राह्मण को दीं। ब्रह्मा, उद्गाता तथा अन्य ऋत्विजों को उनकी मर्यादा के अनुसार बहुत-सा स्वर्ण, रत्न, वस्त्र, दासी और बछड़े दिए गए।

दान-मान-सत्कार, दक्षिणा, आतिथ्य, भोजन आदि से सन्तुष्ट हो ब्राह्मण महाराज विदूडभ की जय-जयकार करते हुए बिदा हुए। समागत राजाओं, जानपद प्रधानों और सेट्ठियों, जेट्ठकों आदि को भी विविध भेंट, दान-मान से नए राजा ने बिदा किया। जो मित्र, बन्धु और राजा नहीं आए थे, उन्हें गाड़ियों और छकड़ों में सामग्री भर कर भेज दी गई। जो विरोधी यज्ञ-विद्रोह में मारे गए, उनके उत्तराधिकारी पुत्रपरिजनों को दान, मान, पदवी और पुरस्कार से सत्कृत कर सन्तुष्ट किया गया।

इस प्रकार यज्ञ में आए सब ब्राह्मण, यति, ब्रह्मचारी, राजा, राजवर्गी, पौर-जानपद, सब भाँति सन्तुष्ट प्रसन्न हो महाराज विदूडभ का दिग्दिगन्त में यशोगान करते हुए अपने-अपने घर गए। भाग्यहीन विगलित-यौवन गतश्री प्रसेनजित् को किसी ने स्मरण भी नहीं किया।

८७ : : आत्मदान

राजमहालय के एक सुसज्जित कक्ष में सोमप्रभ शय्या पर पड़े थे। उनके घाव अब भर गए थे, परन्तु दुर्बलता अभी थी। कुण्डनी उनकी शय्या के निकट चुपचाप बैठी थी। शम्ब कक्ष के एक कोने में बैठा स्वामी को चुपचाप देख रहा था। सोम किसी गम्भीर चिन्तना से व्याकुल थे। उनकी चिन्तना का गहन विषय था कि राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा को ले जाकर कहाँ रखा जाय ? वे उससे विवाह करने के अधिकारी भी हैं या नहीं ? क्या उन-जैसे अज्ञात-कुलशील व्यक्ति का इतने बड़े राज्य के अधिपति की पुत्री से विवाह करना समुचित होगा ? विशेषकर उस दशा में, जब कि वही राजकुमारी के पिता के हन्ता, उनके राज्य के हर्ता और राजनन्दिनी की विपत्ति के आधार थे ! उन्हें क्या राजकुमारी की अवश अवस्था और परिस्थिति से ऐसा अनुचित लाभ उठाना चाहिए ? यदि यह परिस्थिति न उत्पन्न हो जाती तो क्या चम्पा-राजनन्दिनी उन्हें प्राप्त हो सकती थी ? क्या स्वार्थवश उन्हें राजनन्दिनी का अहित करना उचित है ? यही सब विचार थे, जो उन्हें उद्विग्न और विचलित कर रहे थे।

इसी समय महाश्रमण भगवान् महावीर वहाँ आ उपस्थित हुए। कुण्डनी ने आसन कर बैठाकर उनका अभिवादन किया।

श्रमण महावीर ने कहा—'भद्र सोमप्रभ, मैं तेरे ही लिए आया हूँ। अपने सुख को देख, पुण्य को देख, मलरहित हो। पुत्र, यह शरीर बहु मलों का घर है। इसमें काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, ऐषणाएं हैं। सो पुत्र, यह समुद्र के समान है। समुद्र में आठ अद्भुत गुण हैं, इसी से असुर महा-

समुद्र में अभिरमण करते हैं। वह क्रमशः निम्न, क्रमशः प्रवण, क्रमशः प्रारम्भार होता है। वह स्थिर-धर्म है, किनारे को नहीं छोड़ता। वह मृत शरीर को निवास नहीं करने देता, बाहर फेंक देता है। सब महानदी, गंगा, यमुना, अचिरवती, शरभू, मही जब महा समुद्र को प्राप्त होती हैं तो अपना नाम-गोत्र त्याग देती हैं और भी पानी, धारा, अन्तरिक्ष का वर्षाजल समुद्र में जाता है, परन्तु महासमुद्र में ऊनता या पूर्णता कभी नहीं होती। वह महासमुद्र एक-रस है। वह रत्नाकर है—शंख, मोती, मूँगा, बैदूर्य, शिला, रक्त वर्षमणि मसाण गल्ल समुद्र में रहती है। वह महासमुद्र महान् प्राणियों का निवास हैं—तिमि, तिमिगिल, तिमिर, पिंगल, असुर, नाग, गन्धर्व उसमें वास करते हैं। उनमें सौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं, तीन सौ योजनवाले भी हैं, चार सौ योजनवाले भी हैं।'

'सो पुत्र, धर्ममय जीवन भी समुद्र की भाँति क्रमशः गहरा, क्रमशः प्रवण, क्रमशः प्रारम्भार है, एकदम किनारे से खड़ा नहीं होता। सो धर्मजीवन में क्रमशः किया, मार्ग, आज्ञा और प्रतिवेध होता है। उसी का क्रमशः अभ्यास करने से मनुष्य अनागामी भी होता है। यह जीवन का ध्रुव ध्येय है। सो सोमभद्र, तू महासमुद्र के अनुरूप बन, पुण्य कर और मलरहित हो निर्वाण को प्राप्त कर।'

सोम ने कहा—'तो भगवन्, आप जैसा मेरे लिए हितकर समझें।'

'यही तो भद्र। तूने विदूडभ को राजा बनाया, यह तेरा सत्कर्म हुआ। पर शील का भार अब भी तुझ पर है, उसे भी उतार। वह तेरे लिए सह्य न होगा, कल्याणकर न होगा।'

'भगवान् श्रमण जैसा ठीक समझें।'

'उसे तू कोशल की पट्टराजमहिषी बनने दे भद्र। बस इसी में सब हो गया।'

सोम का मूँह रक्तहीन श्वेत हो गया। वह मृत पुरुष की भाँति शय्या पर पड़ रहे। परन्तु उन्होंने स्थिर वाणी से कहा—

'भगवन् ऐसा ही हो। आप सत्य कहते हैं, मैं वह भार वहन नहीं कर सकता।'

'तेरा कल्याण हो आयुष्मान्। मैं कुमारी से कहूँगा, राजकुमार भी।'

'आप्यायित हुआ भगवन, चिरवाधित हुआ भगवन।' सोम ने यन्त्र-वत् कहा। वह काष्ठवत् शय्या में पड़े रह गए। कुण्डनी ने सुना। उसका मुंह सूख गया। भगवान महावीर कक्ष से धीरे-धीरे चले गए।

८८ : : सहभोग्यमिदंराज्यम्

मध्यान्होत्तर चतुरंगला छायाकाल में राजसभा का आयोजन हुआ। कोशलपति महाराज विदूडभ छत्र-चंवर धारण किए सभाभवन में पधारे। उनके आगे-आगे सोमप्रभ नग्न खड्ग लिए और पीछे सेनापति कारायण खड्ग लिए चल रहे थे। सिंहासन पर बैठते ही महालय से शंख-ध्वनि हुई। वेदपाठी ब्राह्मणों ने स्वस्ति-वाचन पाठ और कुल-कुमारियों ने अक्षत-लाजा विसर्जन किया। इसके बाद महाराज विदूडभ ने सिंहासन से खड़े होकर आचार्य अजित केसकम्बली को महामात्य का खड्ग देकर कहा—'आर्य, मैं आपको कोशल के महामात्य पद पर नियुक्त करता हूँ। यह खड्ग ग्रहण कीजिए।'

आचार्य ने खड्ग ग्रहण करके उच्चासन के निकट आकर उच्च स्वर से कहा—'सह भोग्यमिदं राज्यम्' साथ-साथ भोगने योग्य राज्य को कोई अकेला नहीं भोग सकता, इसलिए मैं घोषणा करता हूँ कि जो अमात्य और राजकर्मचारी निष्ठापूर्वक अपने अधिकारों पर रहना चाहते हैं, वे शान्तिपूर्वक रहें। महाराज विदूडभ अपने राज्यकाल में उन्हें द्विगुणित भक्त-वेतन देंगे। जिस अमात्य और राजकर्मचारी ने राजविद्रोह किया हो,

उसका वह कार्य पूर्व महाराज प्रसेनजित् के प्रति आदर-भावना का द्योतक समझकर महाराज विदूडभ उसे क्षमा करते हैं। अब वह यदि राजनिष्ठा से राजसेवा करे तो उसकी नियुक्ति यथापूर्व रहेगी। ऐसे लोग सेवा न करें तो पुत्र, परिजन, धन-सहित स्वेच्छा से जहां चाहें चले जायं, कोई प्रतिबन्ध नहीं है। परन्तु जो कोई राज्य में विद्रोह करेगा या किसी प्रकार मन-वचन-कर्म से शांति-भंग करेगा, उसे कठोरतम दण्ड दिया जायगा।'

इस घोषणा के होने पर सभा में हर्ष-ध्वनि और महाराज विदूडभ का जयजयकार हुआ। महामात्य ने फिर कहा—'महाराज की आज्ञा से मैं सबसे प्रथम महाराज और कोशल-राज्य की ओर से मागध राजमित्र और कोशल के मान्य राज-अतिथि श्रीसोमप्रभदेव का अभिनन्दन करता हूँ, जिनके शौर्य, विक्रम और मैत्री के फलस्वरूप हमें आज का शुभ दिन देखना नसीब हुआ। महाराज विदूडभ घोषित करते हैं कि आज से कोशल सदैव मगध का मित्र है। मगध का शत्रु कौशल का शत्रु और मगध का मित्र कोशल का मित्र है। कोशल के परम मित्र मागध श्री सोमप्रभदेव के अनुरोध पर कोशलपति महाराज विदूडभ यह घोषणा करते हैं कि वत्सराज उदयन की मैत्री चाहे भी जिस मूल्य पर कोशल प्राप्त करेगा और मैत्री का संदेश लेकर शीघ्र ही कोई राजपुरुष वत्सराज महाराज उदयन की सेवा में जायगा। अपनी मैत्री, सद्भावना और कृतज्ञता के प्रकाशन-स्वरूप महाराज विदूडभ मगध-सम्राट् को काशी का राज्य भेंट करते हैं।'

इस पर सब ओर हर्षध्वनि हुई। महामात्य ने कहा–'अब सन्धिविग्रहिक के पद पर महासामन्त पायासी और अर्थमन्त्री के पद पर महाशाल लौहित्य की नियुक्ति की जाती है, तथा राज्य-व्यवस्था के संचालनार्थ आठ अमात्यों का एक अमात्यमण्डल नियुक्त किया जाता है। उनके सामर्थ्य की परीक्षा उनके किए हुए कार्यों की सफलता से की जायगी। महाबलाधिकृत सेनापति कारायण को और राजपुरोहित बसुभट्ट को नियत किया जाता है, जो शास्त्रप्रतिपादित गुणों से युक्त, उन्नत कुल में उत्पन्न,

षडंग वेदों के ज्ञाता, दण्ड-नीति, ज्योतिष तथा अथर्ववेदोक्त मानुषी और दैवी विपत्तियों के प्रतिकार में निपुण हैं।'

इसके बाद महाराज विदूडभ को भेंटें दी जाने लगीं। सबसे प्रथम मगध की ओर से सोमदेव ने एक रत्नजटित खड्ग भेंट किया। इसके बाद देश-देश के राजा, राजप्रतिनिधि और फिर श्रीमन्त, सेट्ठि तथा पौरगण और राजकर्मचारियों ने भेंटें अर्पण कीं। फिर मंगलवाद्य के साथ यह समारोह सम्पूर्ण हुआ।

८९ : : मार्मिक भेंट

रात बीत गई थी। बड़ा सुन्दर प्रभात था। रात भर सो चुकने के बाद अब सोम का मन बहुत हल्का था, पर गहन चिन्तना से उनका ललाट सिकुड़ रहा था। भविष्य के सम्बन्ध में नहीं, बीते हुए गिनती के दिनों के सम्बन्ध में। भाग्य ने उन्हें कैसे खेल खिलाए थे। खिड़की से छनकर प्रभात का क्षीण प्रकाश उनकी शय्या पर आलोक की रेखाएँ खींच रहा था और वह सुदूर नीलाकाश में टकटकी बाँधे मन्द स्मित कर रहे थे। शम्ब उनके पैरों के पास चुपचाप बैठा था। बहुत-सा रक्त निकल जाने से उसका घनश्याम वर्ण मुख विवर्ण हो रहा था, फिर भी वह अपने स्वामी के चिन्तन से सिकुड़े हुए ललाट को देख-देख मन ही मन उद्विग्न हो रहा था। इसी समय जीवक कौमारभृत्य ने आकर कहा—'महाराजाधिराज अभी आपको देखा चाहते हैं, भन्ते सेनापति।'

सोम तुरन्त तैयार हो गए। मुंह से उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा।

विदूडभ एक छोटी शय्या पर लेटे हुए थे। सोम ने शय्या के निकट पहुँच कर कहा—'अब देव कोशलपति का मैं और क्या प्रिय कर

सकता हूँ ?'

विदूडभ अब भी बहुत दुर्बल थे। उन्होंने स्निग्ध दृष्टि से सोम की ओर देखा और दोनों हाथ उनकी ओर पसार कर धीमे स्वर से कहा—'मित्र सोम, अधिक कहने के योग्य नहीं हूँ। परन्तु मित्र, कोशल का यह राज्य तुम्हारा ही है।'

'सुनकर सुखी हुआ महाराज। मेरी अकिञ्चन सेवाएँ कोशल और कोशलपति के लिए सदा प्रस्तुत रहेंगी।'

विदूडभ ने अर्धनिमीलित नेत्रों से सुदूर नीलाकाश को देखते हुए कहा—'मैंने बहुत चाहा था मित्र, कि तुम्हें अपने प्राणों के समान अपने ही निकट रखूं, परन्तु महाश्रमण महावीर और माता कलिंगसेना ने यह ठीक नहीं समझा। मित्र, राजनीति ही तुमसे मेरा विछोह कराती है।'

'और भी बहुत कुछ महाराज। परन्तु राजनिति मानव-जनपद की चरम व्यवस्था है। उसके लिए हमें त्याग करना ही होगा।'

'सो मैं प्राणाधिक मित्र को त्याग रहा हूँ वयस्य।' विदूडभ की आँखों में आँसू भर आए और उन्होंने तनिक उठकर सोम को अंक में भर लिया।

सोम के होठ भी कुछ कहने को फड़के, परन्तु मुंह से शब्द नहीं निकले। उन्होंने कांपते हाथ से विदूडभ का हाथ पकड़ कर कहा—'कामना करता हूँ, महाराज सुखी हों, समृद्ध हों। मैं अब चला महाराज।'

'कोशल को सब कुछ देकर मित्र !' विदूडभ हठात् शय्या से उठ खड़े हुए। परन्तु जीवक ने उन्हें पकड़कर शय्या पर लिटा कर कहा—'शान्त हों देव, भन्ते सेनापति फिर आएँगे।'

सोम ने क्षण भर रुककर विदूडभ की ओर देखे बिना ही वहाँ से प्रस्थान किया।

९० : : चिरबिदा

उन्होंने चीनांशुक धारण किया था, जिसके किनारों पर लाल लहरिया टंका था। कण्ठ में उज्ज्वल मोतियों की माला थी जिसकी आभा ने उनकी कम्बुग्रीवा और वक्ष को आलोकित कर रखा था। कपोलों पर लोध्ररेणु से संस्कार किया था और सालक्तक पैरों में कुसुम-स्तवक-ग्रंथित उपानह थे। अंशुकान्त से बाहर निकले हुए उनके अनावृत मृदुल युगल बाहु मृणालनाल की शोभा धारण कर रहे थे। प्रवाल के समान अरुणाभ उत्फुल्ल अधरोष्ठों के बीच हीरक-सी आभावाली उज्ज्वल धवल दन्तपंक्ति देखते ही बनती थी। गण्डस्थल की रक्ताभ कान्ति मद्य-आपूरित स्फटिक-चषक की शोभा को लज्जित कर रही थी। उज्ज्वल उन्नत ललाट पर उन्होंने मनःशिला की जो लाल श्री अंकित की थी, वह सुवर्ण-द्वीप में जलती द्वीप-शिखा सी दिप रही थी। अंसस्थलों में लगा लोध्ररेणु उनके माणिक्य-कुण्डलों पर एक धूमिल आवरण-सा डाल रहा था। उनके लोचनों से एक अद्भुत मद-धारा प्रवाहित हो रही थी। उनकी सघन कृष्ण केशराशि पर गूंथे हुए बड़े-बड़े मौक्तिकों की शोभा सुनील आकाश में जगमगाते तारों की छवि धारण कर रही थी।

प्रासाद के उद्यान में अशोक के बड़े-बड़े वृक्षों की कतार चली गई थी। उनके नवीन लम्बे अनीदार गहरे हरे-रंग के पत्तों के बीच खिले लाल-लाल फूल बड़े सुहावने लग रहे थे। उसी वृक्षावली के बीच एक लताकुञ्ज था। कुञ्ज के चारों ओर माधवी लता फैली हुई थी। उसी लताकुञ्ज में वह तन्मय हो एक चित्र बना रही थीं। उनका कंचुक-बंधन

शिथिल हो गया था। भावावेश से उनका श्वास आवेगित था। नेत्रों की पलकें चित्र-फलक पर स्थिर और मग्न थीं। कोमल, चम्पकवर्णी पतली उँगलियाँ कूचिका से लाजावर्त और मनःशिला की रेखाएँ चित्र पर खींच रही थी। वायु शान्त थी, वातावरण में सौरभ बिखर रहा था। लतागुल्म स्तब्ध थे। वह यत्न से चित्र पर अन्तिम स्पर्श दे रही थीं। सारा चित्र एक वस्त्र-खण्ड से ढंका था।

सोम के आने की आहट उन्हें नहीं मिली। वह दबे-पाँव उनके पीछे जाकर खड़े हो गए।

चित्र को पूरा करके उन्होंने उस पर का आवरण उठाया। एक बूंद अश्रु चित्र पर गिर पड़ा।

उस दिन बसंत का वह प्रभात लाल-लाल लावण्य-स्रोत से प्लावित हो अनुराग-सागर की तरह तरङ्गों में डूबता-उतराता दीख रहा था।

चित्र सोमप्रभ का था।

सोम ने आगे बढ़कर काँपते स्वर में कहा—'शील।'

वह चौंक उठीं। उन्होंने बड़ी-बड़ी पलकें उठाकर सोम को देखा। लज्जा से उनका मुख झप गया। दोनों हाथ निढाल से होकर नीचे को लटक गए। सोम ने घुटनों के बल बैठकर राजनन्दिनी के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर अवरुद्ध कण्ठ से फिर कहा—'शील।'

राजकुमारी ने बड़ी-बड़ी भारी पलकें उठाकर सोम को देखा और असंयत भाव से कहा—'सोम, प्रियदर्शन, तुम आहत हो, बैठ जाओ, बैठ जाओ।'

'तो तुमने मुझे क्षमा कर दिया शील ? यह मैं जानता था। मैं जानता था, तुम मुझे अवश्य क्षमा कर दोगी। परन्तु शील प्रिये, अपने को मैं कभी नहीं क्षमा करूँगा, कभी नहीं।'

'वह सब तुम्हें करना पड़ा, सोमभद्र।'

'किन्तु प्रिये, मैंने जिस दिन प्रथम तुम्हें देखा था, अपना हृदय तुम्हें दे दिया था। मैंने प्राणों से भी अधिक तुम्हें प्यार किया। तुम मेरे क्षुद्राशय

को नहीं जानती। मेरा निश्चय था कि विदूडभ राजकुमार को बन्दीगृह में मरने दिया जाय, कोशल राजवंश का अन्त हो और अज्ञात-कुलशील सोम कोशलपति बनकर तुम्हें कोशल-पट्टराजमहिषी पद पर अभिषिक्त करे, सब कुछ अनुकूल था, एक भी बाधा नहीं थी।'

'मैं जानती हूँ, प्रियदर्शन। पर तुमने वही किया, जो तुम्हें करना योग्य था। किन्तु अब ?'

'अब मुझे जाना होगा प्रिये ?'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ हूँ, प्रिय।'

'नहीं शील, ऐसा नहीं हो सकता। मुझे जाना होगा और तुम्हें रहना होगा। मैं कोशल का अधिपति न बन सका, किन्तु तुम कोशल की पट्ट-राजमहिषी रहोगी, यह ध्रुव है।'

'मैं, सोम प्रियदर्शन, तुम्हारी चिरकिंकरी पत्नी होने में गर्व अनुभव करूँगी।'

'ओह, नहीं, एक अज्ञात-कुल-शील नगण्य वंचक की पत्नी महा-महिमामयी चम्पा-राजनन्दिनी नहीं हो सकतीं।'

'किन्तु सोमभद्र, मैं तुम्हारी चिरदासी शील हूँ। मैं तुम्हें आप्यायित करूँगी अपनी सेवा से, सान्निध्य से, निष्ठा से और तुम अपना प्रेम-प्रसाद देकर मुझे आपूर्यमाण करना।'

'मेरे प्रत्येक रोम-कूप का सम्पूर्ण प्रेम, मेरे शरीर का प्रत्येक रक्त-बिंदु, मेरे जीवन का प्रत्येक श्वास आसमाप्ति तुम्हारा ही है शील। पर यह नहीं हो सकता, तुम्हें कोशल की पट्टराजमहिषी बनना होगा।'

'किन्तु मैं तुम्हें प्यार करती हूँ सोम, केवल तुम्हें।'

'और मैं भी तुम्हें, प्राणाधिक शील। किन्तु पृथ्वी पर प्यार ही सब कुछ नहीं है। सोचो तो, यदि प्यार ही की बात होती तो मैं विदूडभ का क्यों उद्धार करता ? क्यों अपने हाथों उसके सिर पर कोशल का राज-मुकुट रखकर कोशलेश्वर कहकर अभिवादन करता ? प्रिये, चारुशीले, निष्ठा और कर्तव्य मानव-जीवन का चरम उत्कर्ष है। मैंने उसी को

निबाहा। अब तुम मुझे सहारा दो।

सोम ने कुमारी के चरण-तल में बैठकर उसके दोनों हाथ अपने नेत्रों से लगा लिए। कुमारी कटे वृक्ष की भाँति उनके ऊपर गिर गई। उनकी आँखों से अश्रु-धारा बह चली। बहुत देर तक दोनों निर्वाक् निश्चल रहे। फिर कुमारी ने उठकर धीरे से जैसे मरता हुआ मनुष्य बोलता है, कहा—'मैं जानती थी, तुम यही करोगे। सोम, प्रियदर्शन, किन्तु मेरे प्रत्येक रोम में तुम्हारा वास है और आजीवन रहेगा। जीवन के बाद भी, अति चिरन्तन काल तक।'

'तुम्हारा कल्याण हो, तुम सुखी हो कोशल पट्टराजमहिषी शील-चन्दना चन्द्रभद्रे, सुभगे !' सोम ने झुककर खड्ग उष्णीष से लगाकर राजसी मर्यादा से कुमारी का अभिवादन किया और कक्ष से बाहर पैर बढ़ाया। कुमारी ने एक पग आगे बढ़ाकर वाष्पावरुद्ध कण्ठ से कहा—'सोमभद्र, मेरे धूम्रकेतु को लेते जाओ, वह बाहर है। उसे तुम पशु मत समझना और मेरी ही भाँति प्यार करना।'

'ऐसा ही होगा शील। तुम्हारा यह प्रेमोपहार मेरे जीवन का बहुत बड़ा सहारा होगा।'

फिर सोम एक क्षण को भी नहीं रुके। लम्बे-लम्बे पैर बढ़ाते हुए प्रासाद के बाहरी प्रांगण में आ खड़े हुए। वहाँ कुण्डनी और शम्ब उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। उन्होंने धूम्रकेतु पर प्यार की एक थपकी दी, फिर कुण्डनी की ओर देखकर मुस्कुराए और बिना एक शब्द बोले तीनों प्राणियों ने उसी क्षण वैशाली के राजपथ पर अश्व छोड़ दिए।

पूर्वार्द्ध समाप्त